भगवद्गीता सटीक

अनुवादक

रायबहादुर बाबू ज्ञालिमसिंह

~~२३०~~

केसरीदास सेठ द्वारा
नवलकिशोर प्रेस में मुद्रित और प्रकाशित ।

लखनऊ

तीसरीबार

सन् १९२२ ई० ।

All rights reserved.

Acc. 1138/९९२८

अथ वन्दना ॥

वन्दे शैलसुतापतिं भयहरं मोक्षप्रदं प्राणिनां
मोहध्वान्तसमूहभञ्जनविधौ प्राभास्करं चान्वहम् ।
यद्बोधोदयमात्रतः प्रविलयं प्रत्यूहशैलव्रजा
यान्त्येवाखिलसिद्धयः प्रतिदिनं चाद्यन्तहीनं परम् १
यं ध्यायन्ति मुनीश्वराः प्रतिदिनं संयम्य सर्वेन्द्रिया-
ण्यर्वाक्तीर्थजलाभिषिक्तशिरसो नित्यक्रियानिर्वृताः ।
षट्चक्रादिविचारसारकुशला नन्दान्ति योगीश्वरा-
स्तं वन्दे परमात्मरूपमनघं विश्वेश्वरं ज्ञानदम् २
दो० करों वन्दना ब्रह्म को, जो अनन्त निजरूप ।
जेहि जाने जगभ्रम सकल, मिटै अन्धतमकूप १
नाम रूप जामें नहीं, नहीं जाति अरु भेद ।
सो मैं पूरणब्रह्म हूं, रहत त्रिविध परिछेद २
सकल वेदको सार जो, गीता है जस नाम ।
भाषा में तस अर्थ को, लखै सकल संग्राम ३
सन्तसङ्गसे जो लख्यो, सो मैं करूं बखान ।
परमानन्द सहायते, जानै सकल जहान ४
पुरी अयोध्या के निकट, अकबरपुर है गांव ।
जन्मभूमि मम जान तू, ज़ालिमासिंहहि नांव ५
चित्रगुप्त मम वंश है, भरद्वाज है गोत्र ।
ज़ालिमासिंहहि कहत हैं, सुनैं सबन के श्रोत्र ६
शिवदयालु मम जनक हैं, इच्छासिंहको बाल ।
प्रतापसिंह पितु तासुको, रहै सकलको पाल ७

सम्पूर्ण वेदों और शास्त्रों में लिखा है कि जगत् की उत्पत्ति से पूर्व केवल एक ब्रह्महीं था और कुछ न था और सब जीव सूक्ष्मरूप से उसी मायाविशिष्ट चेतन ईश्वर में ही स्थित थे जब सब जीवों के कर्म फल देनेको उदय हुए तब उस मायाविशिष्ट चेतन में जगत् के उत्पन्न करने की इच्छा हुई तब उस ईश्वर ने चर-अचररूप जगत् को उत्पन्न किया फिर उस जगत् की स्थिति और धर्म की मर्यादा चलाने के लिये ब्रह्माद्वारा प्रजापतियों को उत्पन्न किया फिर सनकादिकों को उत्पन्न करके उनके अन्तःकरण में मोक्ष का साधन जो निवृत्तिरूप धर्म है उसको स्फुरण किया तब उन सनकादिकों ने संसार में निवृत्तिरूप धर्म को चलाया फिर परमेश्वरने मरीचि आदिक ऋषियों के हृदय में प्रवृत्तिरूप धर्म को प्रकाश किया उन्हों ने जगत् की मर्यादा के लिये प्रवृत्तिरूप धर्म को चलाया अर्थात् दो प्रकार के मुनियों से दो प्रकार का धर्म संसार में चला इसलिये दो प्रकारकेही अधिकारी मनुष्य हैं सत्ययुगादिकों में निवृत्तिरूप मार्ग संसार में अधिकतर था क्योंकि उस मार्ग के अधिकारी सत्यवक्ता बहुत उत्पन्न होते थे फिर कुछकाल के एरफेर से और कामादिकोंकी बहुलता और जीवों के कर्मों की विचित्रता से जब पृथिवीपर निवृत्तिरूप धर्म प्रायः करके नष्ट होगया और अधर्म बढ़गया तब धर्मरक्षार्थ

जगत् का कर्ता परमेश्वर, वसुदेव और देवकी के गृह में अवतार लेकर विचार करने लगा कि किस प्रकार फिर निवृत्तिरूप धर्म का जगत् में प्रचार किया जावे इस प्रकार परमात्मा को चिन्तन करतेही महाभारत के संग्राम की तैयारी हुई संग्राम के प्रारम्भकालमेंही अर्जुनको शोक व मोहने आच्छादन किया उस शोक व मोह करके आच्छादित हुआ अर्जुन अपना धर्म जो युद्ध करना था उसके त्याग की इच्छा को और परका धर्म जो भिक्षाटनादि है उसके ग्रहण की इच्छा को करताभया तब भगवान् ने उपदेश के अवसर को जानकर अर्जुन को केवल निमित्तमात्र बनाकर संपूर्ण जीवों के कल्याण के अर्थ निवृत्तिरूप धर्म का उपदेश किया क्योंकि जीवों के लिये शोक व मोह अनर्थ के कारण हैं और शोक व मोहवालेही जीव जन्म मृत्यु संसार में घटीयन्त्रवत् भ्रमते रहते हैं जब किसी जीव के पूर्वजन्मों का पुण्यकर्म उदय होताहै तब उसको विवेक होता है कि किस उपाय करके मैं मुक्त होऊँ फिर वह मोक्ष के साधनों में प्रवृत्त होता है ऐसे विचारवान् पुरुषों के बोध के लिये भगवान् ने जिस गीताशास्त्र को अर्जुन को निमित्त बनाकर सर्वजीवों के कल्याणार्थ उपदेश किया है उसी गीता के ऊपर मैंभी अल्पबुद्धिजनों के बोधार्थ भाषा में व्याख्या करताहूं ॥

भूमिका ॥

इस अपार संसारसमुद्र के पार होने को भगवद्गीता अद्भुत अलौकिक नौका है इसके द्वारा असंख्य जीव अजाखुरवत् पार होगये हैं और आगे भी होंगे जो मुमुक्षुजन हैं उनके शुद्ध विमल हृदय को यह भाषा टीका सहित अन्वय पदार्थ और भावार्थ के जिसको शिवदयालुसिंह वर्मा के पुत्र ज़ालिमसिंह निवासी ग्राम अकबरपुर ज़िला फ़ैज़ाबाद ने पण्डित गङ्गादत्त निवासी मुरादाबाद और श्रीस्वामी परमानन्दजी की अत्यन्त सहायता से रचना किया है अर्पण कियाजाता है आशा है कि उनके हृदयकमल को सूर्यवत् प्रकाशकर आनन्दित करेगा विदित हो कि जितनी भाषाटीका अबतक भगवद्गीता के ऊपर बनाई गई हैं उनसे पाठकजनों को यह नहीं ज्ञात होता है कि किस पद का क्या अर्थ है केवल श्लोक का तात्पर्य शब्दार्थ से न सिद्ध होकर यथोचित फलदायक नहीं होता है जिन पाठकजनों को संस्कृत विद्या का अभ्यास नहीं है उनको तो ऐसी टीकाओं से कुछ भी लाभ नहीं होता है इस टीका में पहिले मूल श्लोक है फिर पदच्छेद है फिर वामहस्त की ओर संस्कृत अन्वय दिया है और दक्षिणहस्त की

ओर पदार्थ सहित भाषार्थ लिखा है यदि वाम तरफ़ का लिखाहुआ ऊपर से नीचे तक पढ़ाजाय तो उत्तम संस्कृत मिलेगा और यदि दक्षिण हस्त की तरफ़ वाला पढ़ाजाय तो पूरा अर्थ श्लोक का मध्यदेशीय भाषा में मिलेगा और यदि बायें तरफ़ से दहिने तरफ़ को पढ़ाजाय तो हरएक संस्कृत पद का अर्थ भाषा में मिलेगा जहांतक होसका है प्रत्येक संस्कृत पद का अर्थ विभक्ति के अनुसार लिखा गया है इस टीका के पढ़ने से संस्कृतविद्या का भी अभ्यास होगा इस टीका में मूल का कोई शब्द छूटने नहीं पाया है और श्लोक का पूरा २ अर्थ उसी के शब्दोंही से सिद्ध कियागया है अपनी कल्पना कुछ नहीं कीगई है हां कहीं २ ऊपर से संस्कृत पद श्लोक का अर्थ स्पष्ट करने के लिये रक्खा गयाहै और उस पद के प्रथम यह + चिह्न लगादियागया है ताकि पाठकजनों को विदित होजाय कि यह पद मूल का नहीं है ॥

भावार्थ सविस्तार भी दिया है ताकि जो केवल भाषाही जानते हैं वे भी पढ़कर आनन्दित हों । जहां कहीं पहिले अर्थ स्पष्ट नहीं था या मूलके शब्द छूटगये थे या अर्थ सिद्ध करने के लिये ऊपर से लायेहुये संस्कृत शब्दों पर चिह्न नहीं बनाये गये थे वह सब अब की बार संशोधित कर दियागया है ॥

भवदीय—
ज़ालिमसिंह
पोस्टमास्टर जनरल, ग्वालियर.

अथ मानसिकस्नानम् ।

ॐत्रिविक्रमं तीर्थपदं नत्वा सर्वाघनाशनम् ।
ध्यानस्नानं प्रवक्ष्यामि सर्वसत्कर्मसिद्धये १
खस्थितं पुण्डरीकाक्षं मन्त्रमूर्त्तिं हरिं स्मरेत् ।
अनन्तादित्यसंकाशं वासुदेवं चतुर्भुजम् २
श्रीभूमिसहितं देवमुदयाचलसन्निभम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं वनमालिनम् ३
श्यामलं शान्तहृदयं दिव्यपीताम्बरावृतम् ।
दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गं चारुहासं शुभेक्षणम् ४
अनेकरत्नसञ्छन्नस्फुरन्मकरकुण्डलम् ।
नारदादिभिरासेव्यं भास्वद्विपुलकङ्कणम् ५
सकिङ्किणीककेयूरहारनूपुरशोभितम् ।
ध्वजवज्राङ्कुशोल्लासि पदपाथोरुहद्वयम् ६
तत्पादोदकजां गङ्गां निपतन्तीं स्वमूर्धनि ।
चिन्तयेद्ब्रह्मरन्ध्रेण प्रविशन्तीं स्वकां तनुम् ७
तया संक्षालयेत्सर्वमन्तर्देहगतं मलम् ।
तत्क्षणाद्विरजा मन्त्री जायते स्फटिकोपमः ८
अन्तर्बहिश्च शुद्ध्यर्थं मानसं स्नानमाचरेत् ।
इदं मानसिकं स्नानं प्रोक्तं हरिहरादिभिः ९
वासुदेवाच्युतानन्तगोविन्दमधुसूदनाः ।
मुरारिनारसिंहानिरुद्धसंकर्षणास्तथा १०
रजस्तमोमोहजाताञ्जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिजान् ।
वाङ्मनःकायजान् दोषान् नवैतान् नामभिर्दहेत् ११
सार्धत्रिकोटितीर्थेषु स्नानात्कोटिगुणं फलम् ।

यो नित्यमाचरेदेवं स वै नारायणः स्मृतः १२
कालमृत्युमतिक्रम्य जीवत्येव न संशयः।
नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमोनमः १३
नमस्त्रिपथगामिन्यै विश्वमूर्त्यै नमोनमः।
नमोस्तु पापहारिण्यै भागीरथ्यै नमोनमः १४
इडा भागीरथी गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी।
तयोरन्तर्गता नाडी सुषुम्णाख्या सरस्वती १५
ध्यानह्रदे ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम् १६
अतिनीलघनश्यामं विपुलायतलोचनम्।
स्मरामि पुण्डरीकाक्षं तेन स्नातो भवाम्यहम् १७
नित्योऽहं निर्विकल्पोऽहं निराकारोऽहमव्ययः।
सदा मत्सन्निधानेन चेष्टते सर्वमिन्द्रियम् १८
आदिमध्यान्तमुक्तोऽहं न बद्धोऽहं कदाचन।
स्वभावनिर्मलः शुद्धः स एवाहं न संशयः १९
सच्चिदानन्दरूपोऽहं परिपूर्णोऽस्मि सर्वदा।
ब्रह्मैवाहं न संसारी मुक्तोऽहमिति भावयेत् २०
अशक्तश्चेद्भावयितुं वाक्यमेतत् सदा जपेत्।
वाक्याभ्यसनमात्रेण ब्रह्मभूतो भवेन्नरः २१
एवं यः प्रत्यहं स्मृत्वा मानसं स्नानमाचरेत्।
स देही च परब्रह्मपदं याति न संशयः २२

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकश्रीशङ्कराचार्यप्रोक्तं मानसिकं स्नानम् ॥

अथ आत्मपूजा ।

आनन्दे सच्चिदानन्दे निर्विकल्पैकरूपिणि ।
स्थितेऽद्वितीये भावे वै कथं पूजा विधीयते १
पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम् ।
स्वच्छस्य पाद्यमर्घं च शुद्धस्याचमनं कुतः २
निर्मलस्य कुतः स्नानं वस्त्रं विश्वोदरस्य च ।
निरालम्बस्योपवीतं रम्यस्याभरणं कुतः ३
निर्लेपस्य कुतो गन्धं पुष्पं निर्वासनस्य च ।
निर्गन्धस्य कुतो धूपं स्वप्रकाशस्य दीपकम् ४
नित्यतृप्तस्य नैवेद्यं निष्कामस्य फलं कुतः ।
ताम्बूलं च विभोः कुत्र नित्यानन्दस्य दक्षिणा ५
स्वयंप्रकाशमानस्य कुतो नीराजनो विधिः ।
प्रदक्षिणा ह्यनन्तस्य चाद्वितीयस्य का नतिः ६
अन्तर्बहिश्च पूर्णस्य कथमुद्वासनं भवेत् ।
इयमेव परा पूजा शम्भोः सत्यस्वरूपिणः ७
देहो देवालयः प्रोक्तो जीवो देवः सदाशिवः ।
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोहंभावेन पूजयेत् ८
तुभ्यं मह्यमनन्ताय मह्यं तुभ्यं शिवात्मने ।
नमो देवाधिदेवाय पराय परमात्मने ९
योगी देहाभिमानी स्याद्रोगी कर्मणि तत्परः ।
ज्ञानी मोक्षाभिमान्येव तत्त्वज्ञेनाभिमानता १०
किं करोमि क्व गच्छामि किं गृह्णामि त्यजामि किम् ।
आत्मना पूरितं सर्वं महाकल्पाम्बुना यथा ११

इति श्रीशक्तिधरसंगृहीतेयमात्मपूजा ॥

अथ भगवद्गीतासटीक

पहिला अध्याय ।

मूलम् ।

धृतराष्ट्र उवाच-

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय १

पदच्छेदः ।

धर्मक्षेत्रे, कुरुक्षेत्रे, समवेताः, युयुत्सवः, मामकाः, पाण्डवाः, च, एव, किम्, अकुर्वत, संजय ॥

अन्वयः शब्दार्थ

संजय=हे संजय !
धर्मक्षेत्रे=धर्मरूपी क्षेत्र
कुरुक्षेत्रे=कुरुक्षेत्र में
समवेताः=इकट्ठेहुये
युयुत्सवः=युद्धकी इच्छावाले

अन्वयः शब्दार्थ

मामकाः=मेरे पुत्रों के हितकारी
च=और
पाण्डवाः=पाण्डवादि
एव=निश्चय करके
किम्=क्या
अकुर्वत=करते भये

भावार्थ।

महाभारत युद्ध के आरम्भकाल विषे बाह्य चक्षुवों से हीन और अन्तर चक्षुवों करके युक्त प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्र ने व्यास भगवान् से कहा कि हे भगवन्! युद्ध का समाचार मुझे कैसे ज्ञात होगा, तब व्यास भगवान् ने कहा कि मेरा शिष्य और तुम्हारा शुभचिन्तक संजय मेरे वर के प्रसाद से इसी हस्तिनापुर में तुमको सब युद्ध का वृत्तान्त सुनावेगा. ऐसा कहकर व्यास भगवान् चलेगये, तत्पश्चात् जिसकाल में दोनों तरफ़ों की सेना युद्धभूमि में एकत्र हुई, और सब योद्धा युद्ध करने को तैयार हुये, उस समय राजा धृतराष्ट्र ने संजय से पूछा कि हे संजय! धर्मका क्षेत्र यानी धर्म की भूमि जो कुरुक्षेत्र है, उस विषे मेरे पुत्र दुर्योधनादिक और मेरे भ्राता राजा पाण्डुके पुत्र युधिष्ठिरादिक जो कि युद्धकी कामना करके एकत्र होरहे हैं, क्या करते भये॥

नोट–राजा धृतराष्ट्र के इस प्रश्न से ऐसा जाना जाता है कि उसको युद्ध के होने में संशय था, इसी वास्ते उसने संशययुक्त पूछा कि क्या वे दोनों सेना परस्पर युद्ध करती भईं, या युद्ध करने से निवृत्त होती भईं, कुरुक्षेत्र कहने का यह तात्पर्य है कि कौरवों के वंश का चलानेवाला कुरुनामक एक राजा हुआहै, उसका यह क्षेत्र है, यानी उसकी यह भूमि है, जिसमें युद्धकी तैयारी हुई है, राजा कुरुने उस भूमि में बहुत

धर्म किया था, इस कारण वह धर्मक्षेत्र शब्द करके प्रसिद्ध है, और धर्मक्षेत्र कहने से राजा धृतराष्ट्र के मन का यह अभिप्राय था कि उस धर्मभूमि कुरुक्षेत्र में जाने से पापियों की भी बुद्धि धर्मपरायण होजाती है, यदि दुर्योधन की बुद्धि धर्मपरायण होगई हो तो क्या आश्चर्य है, और यदि उसका अन्तःकरण ऐसा शुद्ध होगया हो तो वह युद्ध से निवृत्त होकर कल्याणपूर्वक अचल रहेगा, अथवा युधिष्ठिर तो पूर्व से ही धर्मात्मा है, धर्मभूमि में जाने से उसका चित्त अधिक धर्म की ओर होगया होगा, तब वह हिंसारूपी युद्धकर्म को कदापि नहीं करेगा, और वन को लौट जावेगा, और अगर ऐसा हुआ तब भी मेरे पुत्रों का ही राज्य बना रहेगा, अथवा हमारे पुत्रों की अधिक और बली सेना को देखकर, और भीष्म कर्णादि महाबली सेनापतियों को देखकर, युधिष्ठिरादिकों के हृदय में भय उत्पन्न हुआ होगा, तब भी हमारे ही पुत्रों का राज्य अटल बनारहेगा, धृतराष्ट्र के इस कुटिल अभिप्राय को अपने हृदय में जानकर उसके गन्धर्वनगरवत् मनोराज्य के नष्टार्थ संजय कहता भया कि ॥ १ ॥

मूलम्।

संजय उवाच-

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।

चार्यजी से कहता है कि हे आचार्य ! इन पाण्डवों की सेनाको आप देखिये, आपके शिष्य और राजा द्रुपद के पुत्र बुद्धिमान् धृष्टद्युम्न ने इसको व्यूहरचना करके बनाया है ॥

नोट–दुर्योधन ने जो आचार्य से धृष्टद्युम्न को उन का शिष्य और सेनाकी रचना करनेवाला कहा है, उस से उसका अन्तरीय अभिप्राय आचार्यके अन्तःकरण में क्रोध उत्पन्न करने का था, और इसी वास्ते उसने कहा कि आपका शिष्य होकर और आपसे ही अस्त्र शस्त्र विद्या को ग्रहण करके अब वह आपही के साथ युद्ध करने को रणभूमि में स्थित है, इससे बढ़कर और क्या कृतघ्नता होगी, उसने आचार्य को भड़काया, ताकि वह क्रोधित हों, क्योंकि विना क्रोध के युद्ध का होना असंभव है, इसलिये दुर्योधन ने क्रोध-उत्पादक वचन कहा ॥ ३ ॥

मूलम्।

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ४

पदच्छेदः।

अत्र, शूराः, महेष्वासाः, भीमार्जुनसमाः, युधि, युयुधानः, विराटः, च, द्रुपदः, च, महारथः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अत्र=इस
युधि=युद्ध में
महेष्वासाः=बड़े धनुषवाले
शूराः=शूरवीर
भीमार्जुनसमाः=भीम और अर्जुन के तुल्य

अन्वयः शब्दार्थ

युयुधानः=सात्यकि है
च=और
विराटः=राजा विराट है
च=और
महारथः=महारथी
द्रुपदः=राजा द्रुपद है

भावार्थ ।

केवल धृष्टद्युम्नही उनकी सेना में योद्धा नहीं है, किन्तु और भी बड़े बड़े अस्त्रशस्त्रविद्या के जाननेवाले और बड़े बड़े धनुषों को धारण करनेवाले योद्धा हैं, और वे युद्ध करने में भीम और अर्जुन के बराबर हैं, और वे ये हैं, युयुधान यानी सात्यकि है, राजा विराट है, और महारथी राजा द्रुपद है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित् कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ५

पदच्छेदः ।

धृष्टकेतु, चेकितानः, काशिराजः, च, वीर्यवान्, पुरुजित्, कुन्तिभोजः, च, शैब्यः, च, नरपुङ्गवः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

धृष्टकेतुः=राजा धृष्टकेतु
च=और
चेकितानः=राजा चेकितान
च=और
वीर्यवान्=पराक्रमी
काशिराजः=काशीदेशका राजा

अन्वयः **शब्दार्थ**

पुरुजित्=पुरुजित् राजा
कुन्तिभोजः=राजा कुन्तिभोज
च=और
नरपुङ्गवः=मनुष्यों में श्रेष्ठ
शैव्यः=राजा शैव्य

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ।

राजा धृष्टकेतुका नाम राजा चेकितानभी है, और बड़ा पराक्रमवाला जो काशी का राजा है, और जो राजा पुरुजित् है, और जो कुन्तिभोज नामक राजाहै, और जो मनुष्यों में श्रेष्ठ शैव्य नामवाला राजा है ॥ ५ ॥

मूलम्।

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ६

पदच्छेदः।

युधामन्युः, च, विक्रान्तः, उत्तमौजाः, च, वीर्यवान्, सौभद्रः, द्रौपदेयाः, च, सर्वे, एव, महारथाः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
विक्रान्तः=पराक्रमी
युधामन्युः=राजा युधामन्यु
च=और
वीर्यवान्=बड़ा पराक्रमी
उत्तमौजाः=उत्तमौजा राजा

अन्वयः शब्दार्थ

सौभद्रः=सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु
च=और
द्रौपदेयाः=द्रौपदी के पांचों पुत्र
सर्वेएव=सबही ये
महारथाः=महारथी हैं

भावार्थ ।

पराक्रमयुक्त जो युधामन्यु राजा है, और जो वीर्यवान् यानी बड़ा बलवाला उत्तमौजा नाम करके राजा है, और सुभद्रा का पुत्र जो अभिमन्यु है, और द्रौपदी के प्रतिविन्ध्या आदि जो पांच पुत्र हैं, ये सब महारथी हैं। महारथी उसको कहते हैं जो अकेला एकादश हज़ार यानी ग्यारह हज़ार धनुर्धारियों के साथ युद्ध करे, और अस्त्र शस्त्र विद्या में निपुण हो, जो असंख्य योद्धों के साथ अकेलाही युद्ध करे वह अतिरथी कहा जाता है, और जो एक योद्धा के साथ युद्ध करसके वह रथी कहा जाता है, और जो एकके साथ भी युद्ध न कर सके वह अर्धरथी कहा जाता है, दुर्योधन के मुख्य

मुख्य योद्धा गिनाने का मतलब यह था कि इनके साथ युद्ध करने को आपही केवल समर्थ हैं, और आपही इनको जय करेंगे ॥ ६ ॥

मूलम्।

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान् ब्रवीमि ते ७

पदच्छेदः।

अस्माकम्, तु, विशिष्टाः, ये, तान्, निबोध, द्विजोत्तम, नायकाः, मम, सैन्यस्य, संज्ञार्थम्, तान्, ब्रवीमि, ते ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

तु=और
द्विजोत्तम=हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ आचार्य !
अस्माकम्=हमारी तरफ़
ये=जो
विशिष्टाः=श्रेष्ठ हैं
तान्=तिनको
निबोध=जान तू

अन्वयः **शब्दार्थ**

मम=मेरी
सैन्यस्य=सेना के
ये=जो
नायकाः=सरदार हैं
तान्=तिनको
संज्ञार्थम्=गिनाने के लिये
ते=तुझसे
ब्रवीमि=कहताहूं

भावार्थ ।

दुर्योधन को जो भय होनेका सन्देह हुआ था, उसके दूर करने के लिये वह अपनी सेना के मुख्य मुख्य योद्धों के नामोंको आचार्य के प्रति गिनाता है, और कहता है कि हे द्विजोत्तम ! जो कोई हमारी सेना में श्रेष्ठ हैं, अर्थात् जो हमारी सेना के सरदार हैं उनके नामों को आपके प्रति सुनाताहूं ॥ ७ ॥

मूलम् ।

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिर्जयद्रथः ८

पदच्छेदः ।

भवान्, भीष्मः, च, कर्णः, च, कृपः, च, समितिंजयः, अश्वत्थामा, विकर्णः, च, सौमदत्तिः, जयद्रथः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

भवान्=आप
च=और
भीष्मः=भीष्मजी
च=और
कर्णः=कर्ण
च=और

अन्वयः शब्दार्थ

समितिंजयः=संग्राम के जीतनेवाले
अश्वत्थामा=अश्वत्थामा
कृपः=कृपाचार्य
च=और
विकर्णः=विकर्ण

सौमदत्तिः=सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा
जयद्रथः=राजाजयद्रथ

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ।

प्रथम तो आपही सबमें श्रेष्ठ हैं, फिर भीष्मजी हैं, और कर्ण हैं, और संग्राम के जीतनेवाले कृपाचार्य हैं, और अश्वत्थामा हैं, और विकर्ण हैं, और सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा और राजा जयद्रथ हैं ॥ ८ ॥

मूलम्।

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ९

पदच्छेदः।

अन्ये, च, बहवः, शूराः, मदर्थे, त्यक्तजीविताः, नानाशस्त्रप्रहरणाः, सर्वे, युद्धविशारदाः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
अन्ये=दूसरे
बहवः=बहुत से
शूराः=शूरवीर

अन्वयः शब्दार्थ

मदर्थे=मेरेलिये
त्यक्तजीविताः=त्याग किया है जीवन जिन्होंने

नानाशस्त्रप्रहरणाः = नानाप्रकारके शस्त्रचलाने वाले हैं जो
+ च=और
सर्वे=सब
युद्धविशारदाः = युद्ध में प्रवीण हैं जो सो ये सब संग्राम में स्थित हैं

भावार्थ ।

इनसे अतिरिक्त और भी बहुतसे शूरवीर योद्धा हमारी तरफ़ हैं, जिन्होंने मेरेलिये जीने की आशा को त्याग करदिया है, वे नानाप्रकार के शस्त्र के चलाने वाले हैं, और युद्ध करने में बड़े निपुण हैं ॥

नोट-दुर्योधन के ऐसा कहने का तात्पर्य यह था कि जब आप सरीखे महाबली हमारी सहायता करने के लिये तैयार हैं तब हमको किसका भय है ॥ ९ ॥

मूलम् ।

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् १०

पदच्छेदः ।

अपर्याप्तम्, तत्, अस्माकम्, बलम्, भीष्माभिरक्षितम्, पर्याप्तम्, तु, इदम्, एतेषाम्, बलम्, भीमाभिरक्षितम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अस्माकम्=हमारी
तत्=वह
बलम्=सेना
भीष्माभिरक्षितम्=भीष्मसे रक्षा की हुई
अपर्याप्तम्=असमर्थ मालूम होती है
तु=और

अन्वयः शब्दार्थ

एतेषाम्=इनकी
इदम्=यह
बलम्=सेना
भीमाभिरक्षितम्=भीमसेन से रक्षा की हुई
पर्याप्तम्=समर्थ मालूम होती है

भावार्थ।

हमारी सेना पाण्डवों की सेना के साथ युद्ध करने में असमर्थ प्रतीत होती है, क्योंकि उभयपक्षपाती जो भीष्मजी हैं उन करके हमारी सेना रक्षित है, और पाण्डवों की सेना युद्ध करने में समर्थ मालूम होती है क्योंकि भीमसेन करके रक्षित है, और भीमसेन को केवल अपनाही पक्ष है, इसी वास्ते इनकी सेना समर्थ प्रतीत होती है, अथवा हमारी सेना एकादश अक्षौहिणी है, और पाण्डवोंकी सेना केवल सात अक्षौहिणी है, इनकी सेना से हमारी सेना अधिक है, और सूक्ष्मबुद्धि भीष्म करके रक्षित है, इसलिये बली है, और इनकी सेना चपल बुद्धिविशिष्ट भीमसेन

करके रक्षित है, और हमारी सेना से न्यून भी है, इस वास्ते हमारी सेनाके साथ युद्ध करने को असमर्थ है, हमको इनसे किञ्चित् भी भय नहीं, इस अपने अभिप्राय को दुर्योधन आचार्य के प्रति इस वाक्य करके सूचना करता है ॥ १० ॥

मूलम् ।

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ११

पदच्छेदः ।

अयनेषु, च, सर्वेषु, यथाभागम्, अवस्थिताः, भीष्मम्, एव, अभिरक्षन्तु, भवन्तः, सर्वे, एव, हि ॥

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
सर्वेषु=सब
अयनेषु= मार्गों में
यथाभागम्=अपनी अपनी जगह बिषे
अवस्थिताः=स्थित हुये
भवन्तः=आप

अन्वयः शब्दार्थ

सर्वे=सब कोई
एवहि=निश्चय करके
भीष्मम्=भीष्मपितामहजी की
एव=ही
अभिरक्षन्तु=रक्षा करें

भावार्थ।

दुर्योधन द्रोणाचार्य को अपनी निर्भयता दिखाकर भीष्मजी के प्रसन्न करने के लिये अपने सेनापतियों से कहताहै कि तुम सब सेनापति अपनी अपनी रणभूमि को न त्यागकर, अपने अपने स्थान में स्थित हुये भीष्मपितामहजी की रक्षा करो ताकि ऐसा न हो कि भीष्मजीको कोई शत्रु पीछे से आकर मारडाले, भीष्मजी की रक्षा सेही हमारी रक्षा है ॥ ११ ॥

मूलम्।

तस्य संजनयन् हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् १२

पदच्छेदः।

तस्य, संजनयन्, हर्षम्, कुरुवृद्धः, पितामहः, सिंहनादम्, विनद्य, उच्चैः, शंखम्, दध्मौ, प्रतापवान् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
तस्य	उसके	पितामहः	भीष्मपितामह
हर्षम्	हर्षको	उच्चैः	उच्चस्वरसे
संजनयन्	पैदाकरतेहुये	सिंहनादम्	सिंहके सदृश
कुरुवृद्धः	कुरुवंशियोंमें वृद्ध	विनद्य	गर्जके
प्रतापवान्	प्रतापी	शंखम्	शंखको
		दध्मौ	बजातेभये

भावार्थ ।

द्रोणाचार्यजी के साथ भययुक्त दुर्योधनको बातचीत करतेहुये देखकर उसके भय दूर करने के लिये हर्ष उत्पन्न करते हुये कुरुवंशियों में वृद्ध महाप्रतापी भीष्मपितामहजी उच्चस्वर से सिंहशब्दवत् गर्जकर अपने शंखको बजाते भये ॥ १२ ॥

मूलम् ।

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाऽभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् १३

पदच्छेदः ।

ततः, शंखाः, च, भेर्यः, च, पणवानकगोमुखाः, सहसा, एव, अभ्यहन्यन्त, सः, शब्दः, तुमुलः, अभवत् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

ततः=उसकेबाद
शंखाः=शंख
च=और
भेर्यः=नगारे
च=और

अन्वयः शब्दार्थ

पणवानकगोमुखाः=ढोल मृदङ्ग और नरसिंहा आदि बाजे
सहसाएव=तिसीक्षणमें एकबारगी

अभ्यहन्यन्त=बजतेभये
सः=वह
शब्दः=शब्द
तुमुलः=भयंकर
अभवत्=होता भया

भावार्थ ।

भीष्मजी के शंख बजाने के पश्चात्, दुर्योधन की सेना में, अनेक राजाओं के शंख, नगारे, ढोल, मृदंग और गोमुख यानी नरसिंहेआदि बाजे एकबारगी बजते भये, और उन बाजोंका शब्द महाभयंकर होता भया ॥ १३ ॥

मूलम् ।

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः १४

पदच्छेदः ।

ततः, श्वेतैः, हयैः, युक्ते, महति, स्यन्दने, स्थितौ, माधवः, पाण्डवः, च, एव, दिव्यौ, शंखौ, प्रदध्मतुः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
च=और
ततः=उसकेपीछे

अन्वयः शब्दार्थ
श्वेतैः=सफ़ेद
हयैः=घोड़ोंकरके

युक्ते=जुड़ेहुये
महति=बड़े
स्यन्दने=रथमें
स्थितौ=बैठेहुये
माधवः=माधव
+ च=और

पाण्डवः=अर्जुन
एव=भी
दिव्यौ=अलौकिक
शंखौ=शंखोंको
प्रदध्मतुः=बजातेभये

भावार्थ।

कौरवों की सेनाके युद्ध उत्सवको धृतराष्ट्र के प्रति कहकर संजय पाण्डवों की सेनाके युद्धउत्सवको धृतराष्ट्रसे कहताहै कि हे राजन् ! कौरवोंकी सेनामें, शंखोंकी ध्वनि होने के पश्चात्, श्वेत घोड़ों करके युक्त, बड़भारी रथ में स्थित, माधव यानी कृष्ण और अर्जुन अपने अपने दिव्य शंखोंको बजाते भये ॥ १४ ॥

मूलम्।

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः १५

पदच्छेदः।

पाञ्चजन्यम्, हृषीकेशः, देवदत्तम्, धनंजयः, पौण्ड्रम्, दध्मौ, महाशंखम्, भीमकर्मा, वृकोदरः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

हृषीकेशः=श्रीकृष्ण
पाञ्चजन्यम्=पाञ्चजन्यनामक शंख को
धनंजयः=अर्जुन
देवदत्तम्=देवदत्तनामक शंखको

अन्वयः शब्दार्थ

+ च=और
भीमकर्मा=भयंकरहैकर्म जिसका ऐसा
वृकोदरः=भीमसेन
पौण्ड्रम्=पौण्ड्रनामक
महाशंखम्=महाशंख को
दध्मौ=बजाते भये

भावार्थ ।

पाञ्चजन्यनामक शंख को श्रीकृष्ण, और देवदत्त नामवाले शंखको अर्जुन, और पौण्ड्रनामवाले शंख को भयानककर्मकर्मी भीमसेन बजातेभये ॥ १५ ॥

मूलम् ।

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ १६

पदच्छेदः ।

अनन्तविजयम्, राजा, कुन्तीपुत्रः, युधिष्ठिरः, नकुलः, सहदेवः, च, सुघोषमणिपुष्पकौ ॥

अन्वयः　शब्दार्थ

कुन्तीपुत्रः=कुन्तीके पुत्र
राजा=राजा
युधिष्ठिरः=युधिष्ठिर
अनन्तविजयम्=अनन्तविजयनामक शंखको
च=और
नकुलः=नकुल

अन्वयः　शब्दार्थ

+ च=और
सहदेवः=सहदेव
सुघोषमणिपुष्पकौ=सुघोष और मणिपुष्पकनामक शंख को
+ दध्मौ=बजातेभये

भावार्थ।

और अनन्तविजयनामक शंखको कुन्तीके पुत्र राजा युधिष्ठिर, और नकुल सुघोषमणिनामक शंख को, और सहदेव पुष्पकनामवाले शंख को बजाते भये ॥ १६ ॥

मूलम्।

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः १७

पदच्छेदः।

काश्यः, च, परमेष्वासः, शिखण्डी, च,

महारथः, धृष्टद्युम्नः, विराटः, च, सात्यकिः, च, अपराजितः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

परमेष्वासः=बड़े धनुष वाला
काश्यः=काशीका राजा
च=और
महारथः=महारथी
शिखण्डी=शिखण्डी
च=और
धृष्टद्युम्नः=धृष्टद्युम्न

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
विराटः=विराट
च=और
अपराजितः=नहींजीता गया है किसी से ऐसा
सात्यकिः=सात्यकि

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ।

श्रेष्ठ धनुष धारण करनेवाला काशीका राजा, और महारथी शिखण्डी, और धृष्टद्युम्न, और विराट, और अजित, सात्यकि ॥ १७ ॥

मूलम्।

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते।
सौभद्रश्चमहाबाहुःशंखान्दध्मुःपृथक्पृथक्१८

पदच्छेदः।

द्रुपदः, द्रौपदेयाः, च, सर्वशः, पृथिवीपते, सौभद्रः, च, महाबाहुः, शंखान्, दध्मुः, पृथक्, पृथक् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

द्रुपदः=राजाद्रुपद
च=और
द्रौपदेयाः=द्रौपदीकेपुत्र
च=और
महाबाहुः=बड़ीभुजावाला
सौभद्रः=सुभद्राकापुत्र अभिमन्यु

अन्वयः शब्दार्थ

सर्वशः=सबतरफ़से
पृथिवीपते=हे राजन्, धृतराष्ट्र !
पृथक्पृथक्=अलग अलग
शंखान्=शंखोंको
दध्मुः=बजाते भये

भावार्थ।

राजा द्रुपद और द्रौपदी के पांचो पुत्र प्रतिविन्ध्य आदि और सुभद्राका पुत्र बड़ी भुजावाला अभिमन्यु हे राजन्, धृतराष्ट्र ! ये सब अलग अलग अपने अपने शंखों को बजाते भये ॥ १८ ॥

मूलम्।

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलोभ्यनुनादयन् १९

पदच्छेदः ।

सः, घोषः, धार्तराष्ट्राणाम्, हृदयानि, व्यदारयत्, नभः, च, पृथिवीम्, च, एव, तुमुलः, अभ्यनुनादयन् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सः	वह	अभ्यनुनादयन्	शब्दसे भरतीहुई
तुमुलः	बड़ी	धार्तराष्ट्राणाम्	धृतराष्ट्र के पुत्रोंके
घोषः	आवाज़	हृदयानि	हृदयों को
नभः	आकाशको	व्यदारयत्	फाड़ती भई
च	और		
पृथिवीम्	पृथिवीको		

भावार्थ ।

हे राजन्, धृतराष्ट्र ! पाण्डवों की सेना के शंखोंका शब्द तुम्हारे पुत्रों के हृदयों को फाड़ता हुआ, आकाश और पृथिवी को प्रतिध्वनि से पूर्ण करता भया ॥ १६ ॥

मूलम् ।

अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः २०

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते।
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत २१

पदच्छेदः।

अथ, व्यवस्थितान्, दृष्ट्वा, धार्तराष्ट्रान्, कपिध्वजः, प्रवृत्ते, शस्त्रसंपाते, धनुः, उद्यम्य, पाण्डवः, हृषीकेशम्, तदा, वाक्यम्, इदम्, आह, महीपते, सेनयोः, उभयोः, मध्ये, रथम्, स्थापय, मे, अच्युत॥

अन्वयः शब्दार्थ

महीपते=हे राजन्!
अथ=इसके अनन्तर
शस्त्रसंपातेप्रवृत्ते=शस्त्रचलने की तैयारी पर
व्यवस्थितान्=स्थित हुये
धार्तराष्ट्रान्=धृतराष्ट्रकी तरफ़वालों को
दृष्ट्वा=देखकरके
+च=और
धनुः=धनुषको

अन्वयः शब्दार्थ

उद्यम्य=उठाकर
कपिध्वजः=कपिहै ध्वजा में जिसके ऐसा
पाण्डवः=अर्जुन
तदा=तब
हृषीकेशम्=कृष्ण महाराज से
इदम्=यह
वाक्यम्=वाक्य
आह=कहता भया कि
अच्युत=हे अच्युत!

उभयोः=दोनों
सेनयोः=सेनाओं के
मध्ये=बीच में
मे=मेरे
रथम्=रथको
स्थापय=खड़ा करो

भावार्थ।

हे राजन् ! शंखआदि ध्वनि के अनन्तर जब दोनों तरफ़ की सेना के शस्त्र चलने पर थे, तब कपिध्वज अर्जुन ने अपने धनुष को उठाकर, युद्ध करने को उपस्थित तुम्हारे पुत्रों को देखकर, श्रीकृष्णजी से इस वाक्य को कहा कि हे अच्युत ! दोनों सेनाओं के मध्य में मेरे रथ को स्थापन करिये ॥ २०–२१ ॥

मूलम्।

यावदेतान्निरीक्षेहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे २२

पदच्छेदः।

यावत्, एतान्, निरीक्षे, अहम्, योद्धुकामान्, अवस्थितान्, कैः, मया, सह, योद्धव्यम्, अस्मिन्, रणसमुद्यमे ॥

अन्वयः शब्दार्थ
यावत्=ताकि

अन्वयः शब्दार्थ
एतान्=इन

अवस्थितान्=स्थित हुये
योद्धुकामान्=युद्धकरने की इच्छा वालोंको
अहम्=मैं
निरीक्षे=देखूं कि
कैःसह=किनके साथ

मया=मुझकरके
अस्मिन्=इस
रणसमुद्यमे=तैयार लड़ाई में
योद्धव्यम्=युद्ध करना योग्य है
+ च=और

भावार्थ ।

ताकि युद्ध करने की कामनावाले जो योद्धा इस रणभूमि में आकर स्थित हुये हैं, उनको मैं अच्छी तरह से देखूं, भगवान् पूछते हैं, कि तुम युद्ध करने को आये हो या कि युद्ध करनेवालों की परीक्षा करने को आये हो जो इनको देखना चाहते हो, उस पर अर्जुन कहता है, कि मैं युद्ध करने के लिये तो अवश्य आया हूं, पर इतना देखना चाहताहूं कि किनके साथ मुझको युद्ध करना योग्य है, और किनके साथ युद्ध करना योग्य नहीं, क्योंकि मैं धर्मयुद्ध करना चाहता हूं, अधर्मयुद्ध करना नहीं चाहता हूं ॥ २२ ॥

मूलम् ।

योत्स्यमानानवेक्षेहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः २३

पदच्छेदः ।

योत्स्यमानान्, अवेक्षे, अहम्, ये, एते, अत्र, समागताः, धार्तराष्ट्रस्य, दुर्बुद्धेः, युद्धे, प्रियचिकीर्षवः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

ये=जो
एते=ये
दुर्बुद्धेः=दुर्बुद्धि
धार्तराष्ट्रस्य=दुर्योधन के
प्रियचिकीर्षवः=प्रिय करने की इच्छावाले
अत्र=इस

अन्वयः शब्दार्थ

युद्धे=युद्ध में
समागताः=आये हैं
+ तान्=उन
योत्स्यमानान्=युद्ध करनेवालों को
अहम्=मैं
अवेक्षे= देखूं

भावार्थ ।

फिर अर्जुन कहता है कि धृतराष्ट्र के पुत्र कुबुद्धि दुर्योधन की सहायता के लिये जो अन्य देशों से राजा युद्ध करने को इस रणभूमि में आये हैं, उनको मैं देखूं, और जबतक मैं उनको अच्छी तरह से न देखलेऊं तबतक आप मेरे रथ को दोनों सेना के बीच में खड़ा रखिये ॥ २३ ॥

मूलम् ।

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् २४

पदच्छेदः ।

एवम्, उक्तः, हृषीकेशः, गुडाकेशेन, भारत, सेनयोः, उभयोः, मध्ये, स्थापयित्वा, रथोत्तमम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

भारत=हे राजन् !
एवम्=इसप्रकार
गडाकेशेन=अर्जुन करके
उक्तः=कहेहुये
हृषीकेशः=श्रीकृष्ण

अन्वयः शब्दार्थ

उभयोः=दोनों
सेनयोः=सेनाओं के
मध्ये=बीच में
रथोत्तमम्=उत्तम रथको
स्थापयित्वा=खड़ाकरके

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ ।

जब राजा धृतराष्ट्र ने यह सुना कि अर्जुन ने दोनों सेनाओं के मध्यमें रथ के स्थापन करने को कृष्ण से कहा तब उसके चित्तमें यह फुरा कि यदि अहिंसारूपी धर्मको आश्रय करके, कृष्ण अर्जुन को युद्ध से हटादेवेंगे तो मेरे पुत्रों का राज्य बनारहेगा ।

धृतराष्ट्र के इस दुष्ट आशय को जानकर संजय कहते हैं कि हे राजन् ! अर्जुनकरके प्रेरित, श्रीकृष्ण दोनों सेनाओं के बीच में, उत्तम रथ को स्थापित करतेभये, यानी युद्ध से न हटाते भये, कहां स्थापित करतेभये सो आगे कहते हैं ॥ २४ ॥

मूलम् ।

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषाञ्च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति २५

पदच्छेदः ।

भीष्मद्रोणप्रमुखतः, सर्वेषाम्, च, महीक्षिताम्, उवाच, पार्थ, पश्य, एतान्, समवेतान्, कुरून्, इति ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

भीष्मद्रोणप्रमुखतः = भीष्म और द्रोण के सामने
च=और
सर्वेषाम्=सब
महीक्षिताम्=राजाओं के
प्रमुखतः=सामने

अन्वयः **शब्दार्थ**

उवाच=कहते भये कि
पार्थ=हे अर्जुन !
एतान्=इन
समवेतान्=इकट्ठे हुये
इति=इसप्रकार
कुरून्=कौरवों को
पश्य=तू देख

भावार्थ ।

जहां पर भीष्मपितामह और द्रोणाचार्यादिक विद्यमान थे, और भी बहुत से राजा लोग स्थित थे, उन के सम्मुख रथको खड़ा करके, भगवान् कहते भये कि हे पार्थ ! ये जो युद्ध के लिये कौरव स्थित हुये हैं उन को तुम देखो ॥ २५ ॥

मूलम् ।

तत्रापश्यत् स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन् पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ।
श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि २६

पदच्छेदः ।

तत्र, अपश्यत्, स्थितान्, पार्थः, पितॄन्, अथ, पितामहान्, आचार्यान्, मातुलान्, भ्रातॄन्, पुत्रान्, पौत्रान्, सखीन्, तथा, श्वशुरान्, सुहृदः, च, एव, सेनयोः, उभयोः, अपि ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

अथ=तब
पार्थः=अर्जुन
उभयोः=दोनों

अन्वयः **शब्दार्थ**

सेनयोः=सेनाओं में
पितॄन्=पितरों को
पितामहान्=दादों को

आचार्यान्=आचार्यों को
मातुलान्=मामों को
भ्रातॄन्=भाइयों को
पुत्रान्=पुत्रों को
पौत्रान्=पौत्रों को
तथा=और
सखीन्=मित्रों को
श्वशुरान्=श्वशुरों को
च=और
सुहृदः=सुहृदों को
स्थितान्=खड़ेहुये
तत्र=उस युद्ध में
एव=निश्चय करके
अपश्यत्=देखता भया

भावार्थ।

भगवान् श्रीकृष्ण के कहने पर, अर्जुन उस रणभूमि में पितरों को यानी पिता के भाइयों को और पितामह भीष्मादि दादों को और द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदिक आचार्यों को, मामोंको, भाइयों को, पुत्रों और पौत्रोंको, मित्रोंको, श्वशुरों को, सुहृदों को दोनों सेनाओं के बीच में देखता भया ॥ २६ ॥

मूलम्।

तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान्।
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् २७

पदच्छेदः।

तान्, समीक्ष्य, सः, कौन्तेयः, सर्वान्, बन्धून्, अवस्थितान्, कृपया, परया, आविष्टः, विषीदन्, इदम्, अब्रवीत् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तान्=उन
सर्वान्=सब
अवस्थितान्=इकट्ठे हुये
बन्धून्=बन्धुओं को
समीक्ष्य=देखकर
सः=वह
कौन्तेयः=कुन्ती का पुत्र अर्जुन

अन्वयः शब्दार्थ

परया=बड़ी
कृपया=दया से
आविष्टः=संयुक्त हो
विषीदन्=दुःखित होता हुआ
इदम्=यह
अब्रवीत्=कहताभया कि

भावार्थ ।

रणभूमि में सब बन्धुगणों को स्थित देखकर, अर्जुन अति दयासंयुक्त क्लेशित होकर, कृष्णजी से बोलता भया ॥ २७ ॥

मूलम् ।

दृष्ट्वेमान्स्वजनान्कृष्ण युयुत्सून् समवस्थितान् ।
सीदन्ति मम गात्राणि मुखञ्च परिशुष्यति २८

पदच्छेदः ।

दृष्ट्वा, इमान्, स्वजनान्, कृष्ण, युयुत्सून्, समवस्थितान्, सीदन्ति, मम, गात्राणि, मुखम्, च, परिशुष्यति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

कृष्ण=हे कृष्ण !
इमान्=इन

अन्वयः शब्दार्थ

युयुत्सून्=युद्ध की इच्छावाले

समवस्थितान्=खड़े हुये
स्वजनान्=बन्धुओं को
दृष्ट्वा=देखकर
मम=मेरा
गात्राणि=शरीर

सीदन्ति=ढीला होता जाता है
च=और
मुखम्=मुख
परिशुष्यति=सूखाजाता है

भावार्थ ।

हे कृष्ण ! युद्ध करने की इच्छावाले, इन अपने बन्धुगणों को रणभूमि में स्थित देखकर, मेरा सम्पूर्ण शरीर ढीला होता जाता है, और मुख सूखा जाता है ॥ २८ ॥

मूलम् ।

वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ।
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक् चैव परिदह्यते २९

पदच्छेदः ।

वेपथुः, च, शरीरे, मे, रोमहर्षः, च, जायते, गाण्डीवम्, स्रंसते, हस्तात्, त्वक्, च, एव, परिदह्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
मे=मेरे
शरीरे=शरीर में
वेपथुः=कम्प

अन्वयः शब्दार्थ

जायते=होता है
च=और
रोमहर्षः=रोमाञ्च
+ जायते=उत्पन्न होता है

हस्तात्=हाथ से
गाण्डीवम्=गाण्डीवधनुष्
स्रंसते=गिरा पड़ता है
च=और
त्वक्=त्वचा
एव=भी
परिदह्यते=जली जाती है

भावार्थ ।

और मेरे शरीर विषे कम्प होता है, मेरे रोयें खड़े होते जाते हैं, मेरे हाथ से गाण्डीवधनुष् गिरा पड़ता है, और मेरी त्वचा जली जाती है ॥ २९ ॥

मूलम् ।

न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ।
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ३०

पदच्छेदः ।

न, च, शक्नोमि, अवस्थातुम्, भ्रमति, इव, च, मे, मनः, निमित्तानि, च, पश्यामि, विपरीतानि, केशव ॥

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
अवस्थातुम्=खड़े होने को
न शक्नोमि=नहीं समर्थ मैं होता हूं
च=और
मे=मेरा

अन्वयः शब्दार्थ

मनः=मन
भ्रमतिइव=चक्कर सा खाता है
च=और
केशव=हे कृष्ण !
विपरीतानि=उलटे

निमित्तानि=सगुनोंको

पश्यामि=देखता हूं

भावार्थ।

हे केशव ! विपरीत सगुनों को मैं देखरहाहूं, मेरा मन चक्रवत् भ्रमण कररहा है, अब संग्राम बिषे मैं खड़ा होने को समर्थ नहीं हूं ॥ ३० ॥

मूलम्।

न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ।
न काङ्क्षे विजयं कृष्ण नच राज्यं सुखानि च ३१

पदच्छेदः।

न, च, श्रेयः, अनुपश्यामि, हत्वा, स्वजनम्, आहवे, न, काङ्क्षे, विजयम्, कृष्ण, न, च, राज्यम्, सुखानि, च ॥

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
आहवे=युद्ध में
स्वजनम्=बन्धुओं को
हत्वा=मारकर
श्रेयः=कल्याण को
न=नहीं
अनुपश्यामि=देखता हूं
च=और
कृष्ण=हे कृष्ण !

अन्वयः शब्दार्थ

विजयम्=जय को
न काङ्क्षे=नहीं चाहताहूं
च=और
राज्यम्=राज्य को
+ नकाङ्क्षे=नहीं चाहताहूं
+ च=और
सुखानि=सुखों को भी
+ नकाङ्क्षे=नहीं चाहताहूं

भावार्थ ।

अर्जुन कहता है कि हे भगवन्! अपने बन्धुगणों को रणमें मारकर, मैं अपने कल्याणको नहीं देखता हूं। श्रीकृष्ण कहते हैं कि यदि तू रणमें शत्रुओं को नहीं मारेगा तब तो तुम्हारी जय नहीं होगी, और विना जय के तुमको राज्य नहीं मिलेगा, और विना राज्यके शारीरिक सुख भी नहीं होगा, इसपर अर्जुन कहता है कि हे कृष्ण! मैं जयकी इच्छा नहीं करताहूं, और न राज्यकी इच्छा करता हूं, और न शारीरिक सुखों की इच्छा करताहूं ॥ ३१ ॥

मूलम् ।

किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ।
येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाःसुखानि च ३२

पदच्छेदः ।

किम्, नः, राज्येन, गोविन्द, किम्, भोगैः, जीवितेन, वा, येषाम्, अर्थे, काङ्क्षितम्, नः, राज्यम्, भोगाः, सुखानि, च ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
गोविन्द	हे गोविन्द !	राज्येन	राज्यसे
नः	हमको	किम्	क्या प्रयोजन है

च=और
भोगैः=भोगों से
वा=अथवा
जीवितेन=जीवनसे
+ किम्=क्याप्रयोजन है
येषाम्=जिनके
अर्थे=वास्ते

नः=हमको
राज्यम्=राज्य
भोगाः=राज्यसम्बन्धी भोग
+ च=और
सुखानि=सुख
काङ्क्षितम्=इच्छित है

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ ।

हे गोविन्द ! हमको राज्य से और भोगों से और जीने से क्या प्रयोजन है, जिन इष्ट मित्रों के लिये ये सब राज्य भोगादिक सम्पादन किये जाते हैं ॥ ३२ ॥

मूलम् ।

त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ।
आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ३३

पदच्छेदः ।

ते, इमे, अवस्थिताः, युद्धे, प्राणान्, त्यक्त्वा, धनानि, च, आचार्याः, पितरः, पुत्राः, तथा, एव, च, पितामहाः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
ते=वे

अन्वयः शब्दार्थ
इमे=ये लोग यानी

आचार्याः=द्रोणादिआचार्य
पितरः=पिताके भाई
+ च=और
पुत्राः=पुत्र
तथा एव च=और
पितामहाः=भीष्मादि पितामह

प्राणान्=प्राणों को
च=और
धनानि=धनोंको
त्यक्त्वा=त्यागकरके
युद्धे=युद्ध में
अवस्थिताः=स्थित भये हैं

भावार्थ ।

वे सब यानी द्रोणादि आचार्य, पिता के तुल्य आयु वाले, पिता के भाई दुर्योधनादि के पुत्र, अपने पुत्रवत्, भीष्मादि पितामह, अपने प्राणों और धनों को त्याग कर, अर्थात् प्राणोंके धारण करने की आशा को और धनों की रक्षा करने की कामना को त्याग करके, युद्ध में स्थित हैं ॥ ३३ ॥

मूलम् ।

मातुलाःश्वशुराःपौत्राःश्यालास्सम्बन्धिनस्तथा ।
एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोपि मधुसूदन ३४

पदच्छेदः ।

मातुलाः, श्वशुराः, पौत्राः, श्यालाः, सम्बन्धिनः, तथा, एतान्, न, हन्तुम्, इच्छामि, घ्नतः, अपि, मधुसूदन ॥

अन्वयः शब्दार्थ

मधुसूदन=हे कृष्ण !
मातुलाः=मामा
श्वशुराः=श्वशुर
पौत्राः=पौत्र
श्यालाः=साले
तथा=और
सम्बन्धिनः=रिश्तेदार ये सब

अन्वयः शब्दार्थ

घ्नतः=मारतेहुये आवें
अपि=तौभी
एतान्=इन सबके
हन्तुम्=मारने को
न इच्छामि=मैं नहीं इच्छा करताहूं

भावार्थ।

हे कृष्ण ! मामा श्वशुर पौत्र और साले और और सम्बन्धिगण जो हैं, अगर वे सब मिलकर मुझको मारें भी तौ भी मैं उनके मारने की इच्छा नहीं करताहूं ॥ ३४ ॥

मूलम्।

अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ।
निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन३५

पदच्छेदः।

अपि, त्रैलोक्यराज्यस्य, हेतोः, किम्, नु, महीकृते, निहत्य, धार्तराष्ट्रान्, नः, का, प्रीतिः, स्यात्, जनार्दन ॥

अन्वयः शब्दार्थ

त्रैलोक्यराज्यस्य = तीनों लोकों के राज्यके
हेतोः = वास्ते
अपि = भी
स्वजनान् = बन्धुओंको
हन्तुम् = मारना
+ न इच्छामि = नहीं चाहताहूं
महीकृते = पृथिवीमात्र के राज्य के लिये

अन्वयः शब्दार्थ

किन्नु = भला क्या
जनार्दन = हे जनार्दन !
धार्तराष्ट्रान् = धृतराष्ट्र के पुत्रोंको
निहत्य = मारकर
नः = हमको
का प्रीतिः = क्या लाभ
स्यात् = होगा

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं अगर तुम इन सब शत्रुवों को युद्धमें नहीं मारोगे तब पृथिवी के राज्यको कैसे भोगोगे, तब अर्जुन कहता है कि अगर तीनों लोकों का राज्य भी इनके मारने से मुझको प्राप्त होवे तौभी मैं इनको नहीं मारूंगा, पृथिवीमात्रके राज्यकी प्राप्तिके लिये क्या इनको मारूंगा ॥ ३५ ॥

मूलम् ।

पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिनः ।
तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनःस्याम माधव ३६

पदच्छेदः।

पापम्, एव, आश्रयेत्, अस्मान्, हत्वा, एतान्, आततायिनः, तस्मात्, न, अर्हाः, वयम्, हन्तुम्, धार्तराष्ट्रान्, स्वबान्धवान्, स्वजनम्, हि, कथम्, हत्वा, सुखिनः, स्याम, माधव ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

एतान्=इन
आततायिनः=आततायियोंको
हत्वा=मारकरके
अस्मान्=हमलोगोंको
पापम् एव=पापही
आश्रयेत्=होगा
तस्मात्=इसलिये
स्वबान्धवान्=अपनेबन्धु
धार्तराष्ट्रान्=धृतराष्ट्रकीतरफ़वालोंको

अन्वयः **शब्दार्थ**

हन्तुम्=मारनेको
वयम्=हमलोग
अर्हाः=योग्य
न=नहीं हैं
हि=क्योंकि
माधव=हे माधव !
स्वजनम्=अपने रिश्तेदारोंको
हत्वा=मारकर
कथम्=क्योंकर
सुखिनः=सुखी
स्याम=हमलोग होंगे

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि अग्निका लगाना, किसी को विष खिलाना, हाथमें शस्त्र लेकर मारने को आना,

दूसरे के धनको या भूमिको या स्त्री को चुरालेना, इन ६ कर्मों के करनेवाले आततायी कहेजाते हैं, और शास्त्र कहता है कि इन आततायियों के मारनेवालेको कोई पाप नहीं होताहै, दुर्योधनादिक आततायीहैं, उन्होंने छहो कर्म किये हैं, इनको मारने से तुमको पाप नहीं होगा, तुम विनाही विचारे इनको मारडालो, इसपर अर्जुन कहता है कि आततायी के मारनेका विधान करनेवाला अर्थशास्त्र है, धर्मशास्त्र कहताहै कि किसी जीव की भी हिंसा न करो, अर्थशास्त्र से धर्मशास्त्र बली है, अतएव इन आततायियों को मारकर भी हमलोगों को पापही होगा, इसवास्ते धृतराष्ट्रके पुत्रआदि जो अपनेही सम्बन्धी हैं उनको हम मारने के योग्य नहीं हैं, अथवा गुरु, भ्राता और मित्र आदिकोंको मारकर, हमहीं आततायी बनजावेंगे, तबभी इनके मारनेका पाप हमको ही होगा, इसकारण भी हम इनको नहीं मारेंगे, फिर अर्जुन कहता है कि हे माधव ! स्वजनोंको मारकर, हम कैसे सुखी होवेंगे, किन्तु कदापि न होवेंगे, अतएव हम इनका वध नहीं करेंगे ॥ ३६ ॥

मूलम्।

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ३७

पदच्छेदः।

यद्यपि, एते, न, पश्यन्ति, लोभोपहतचेतसः, कुलक्षयकृतम्, दोषम्, मित्रद्रोहे, च, पातकम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
लोभोपहतचेतसः	लोभ से नष्ट होगयाहै चित्त जिनका ऐसे
एते	ये लोग
यद्यपि	यद्यपि
कुलक्षयकृतम्	कुल के नाश होने से उत्पन्न हुये
दोषम्	दोषको
च	और
मित्रद्रोहे	मित्र के साथ द्रोह में
पातकम्	पातकको
न पश्यन्ति	नहीं देखते हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि तुम तो कुल के नाश करने में दोष जानकर युद्ध करने में प्रवृत्त नहीं होतेहो, वे भी तो कुल के नाश करने में दोष को जानते हैं, फिर वे क्यों प्रवृत्त होते हैं, तब अर्जुन कहता है कि राज्य की प्राप्ति के लोभ से उनका चित्त मलिन होगया है, इस वास्ते कुल के क्षयकृत दोष को नहीं देखते हैं, और मित्रके साथ द्रोहकृत पापको भी नहीं देखते हैं ॥ ३७ ॥

मूलम्।

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्।

कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ३८

पदच्छेदः ।

कथम्, न, ज्ञेयम्, अस्माभिः, पापात्, अस्मात्, निवर्तितुम्, कुलक्षयकृतम्, दोषम्, प्रपश्यद्भिः, जनार्दन ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
जनार्दन	=हे कृष्ण !	दोषम्	=दोषको
अस्मात्	=इस	प्रपश्यद्भिः	=देखतेहुये
पापात्	=पाप से	अस्माभिः	=हमकरके
निवर्तितुम्	=निवृत्त होना	कथम्	=क्योंकर
कुलक्षयकृतम्	=कुल के नाश किये हुये	न ज्ञेयम्	=नहीं जानने योग्य है

भावार्थ ।

यदि वे कुल के क्षयकृत दोष को लोभाविष्ट होकर, न भी देखें, पर हमलोगों को इसप्रकार के दोष को अवश्य देखना चाहिये, क्योंकि हमलोग अपने धर्म पर आरूढ हैं, ऐसे पाप से हमको दूर रहना चाहिये, हे जनार्दन=दुष्टजनों के नाशकर्ता ! ॥ ३८ ॥

मूलम् ।

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ३९

पदच्छेदः ।

कुलक्षये, प्रणश्यन्ति, कुलधर्माः, सनातनाः, धर्मे, नष्टे, कुलम्, कृत्स्नम्, अधर्मः, अभिभवति, उत ॥

अन्वयः शब्दार्थ

कुलक्षये=कुल क नाश होने पर
सनातनाः=सनातन
कुलधर्माः=कुलकेसब धर्म
प्रणश्यन्ति=नाशहोजाते हैं
धर्मे नष्टे=धर्म के नष्ट होने पर

अन्वयः शब्दार्थ

कृत्स्नम्=संपूर्ण
कुलम्=कुलको
अधर्मः=अधर्म
अभिभवति=दबा देता है
उत=ऐसा सुना गया है

भावार्थ।

कुल के नाश होनेपर सनातन कालके जो कुल के धर्म चलेआते हैं, वे सब नाश होजाते हैं, और धर्मों के नाश होने के पश्चात् सब कुल में अधर्मही अधर्म फैल जाता है ॥ ३९ ॥

मूलम् ।

अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ४०

पदच्छेदः ।

अधर्माभिभवात्, कृष्ण, प्रदुष्यन्ति, कुलस्त्रियः, स्त्रीषु, दुष्टासु, वार्ष्णेय, जायते, वर्णसंकरः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

कृष्ण=हे कृष्ण !
अधर्माभिभवात्=अधर्मकी वृद्धि होने से
कुलस्त्रियः=कुलकी स्त्रियां
प्रदुष्यन्ति=दूषित हो जाती हैं

अन्वयः **शब्दार्थ**

वार्ष्णेय=हे कृष्ण !
स्त्रीषुदुष्टासु=स्त्रियों के दुष्ट होने पर
वर्णसंकरः=वर्णसंकर
जायते=उत्पन्न होते हैं

भावार्थ ।

हे कृष्ण ! जब अधर्म वृद्धि को प्राप्त होता है तब कुल की स्त्रियां दुष्ट होजाती हैं, स्त्रियों के दुष्ट होने पर, हे कृष्ण ! कुल में वर्णसंकर होते हैं ॥ ४० ॥

मूलम् ।

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ४१

पदच्छेदः ।

संकरः, नरकाय, एव, कुलघ्नानाम्, कुलस्य, च, पतन्ति, पितरः, हि, एषाम्, लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

कुलघ्नानाम्=कुल के नाश करनेवालों के
कुलस्य=कुल के

अन्वयः **शब्दार्थ**

नरकायैव=नरक केही लिये
संकरः=वर्णसंकर हैं

च=और
एषाम्=इनके
पितरः=पितर स्वर्ग से
पतन्ति=गिरजाते हैं
हि=क्योंकि
लुप्तपिण्डोदकक्रियाः=लुप्त होगया है श्राद्ध और तर्पण उनका

भावार्थ।

कुलनाशकर्ता के कुलको नरक में लेजाने के लिये वर्णसंकर हैं, और कुलघातकों के पितर उस कुल में वर्णसंकर होने के कारण स्वर्ग से गिर पड़ते हैं, क्योंकि उनके पिण्ड और श्राद्धादिकों की क्रिया सब लुप्त होजाती है ॥ ४१ ॥

मूलम्।

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यन्तेजातिधर्माःकुलधर्माश्चशाश्वताः४२

पदच्छेदः।

दोषैः, एतैः, कुलघ्नानाम्, वर्णसंकरकारकैः, उत्साद्यन्ते, जातिधर्माः, कुलधर्माः, च, शाश्वताः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

कुलघ्नानाम्=कुलके नाश करनेवालों के
वर्णसंकरकारकैः=वर्णसंकर करनेवालों के

शाश्वताः=सनातन
कुलधर्माः=कुल के धर्म
एतैः=इन

वर्णसंकरकारकैः=वर्णसंकर करने वाले
दोषैः=दोषों करके
उत्साद्यन्ते=नाश होजाते हैं

भावार्थ ।

पूर्वोक्त वर्णसंकरादि दोषों करके कुलघातकों के कुलों के धर्म और ब्राह्मणआदि जातियों के धर्म जो कि बहुत काल से चले आते हैं सब नष्ट होजाते हैं ॥ ४२ ॥

मूलम् ।

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ४३

पदच्छेदः ।

उत्सन्नकुलधर्माणाम्, मनुष्याणाम्, जनार्दन, नरके, नियतम्, वासः, भवति, इति, अनुशुश्रुम ॥

अन्वयः शब्दार्थ

जनार्दन=हे कृष्ण !
उत्सन्नकुलधर्माणाम्=नाश हुये हैं कुलके धर्म जिनके ऐसे
मनुष्याणाम्=मनुष्यों का
वासः=वास

अन्वयः शब्दार्थ

नियतम्=निश्चय करके
नरके=नरक में
भवति=होता है
इति=ऐसा
अनुशुश्रुम=हम सुनते हैं

भावार्थ ।

हे जनार्दन ! नाश हुये हैं कुल के धर्म जिनके ऐसे मनुष्यों का वास निश्चय करके नरक में ही होता है, ऐसा हमने व्यासादिकों से सुना है ॥ ४३ ॥

मूलम् ।

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ४४

पदच्छेदः ।

अहो, बत, महत्, पापम्, कर्तुम्, व्यवसिताः, वयम्, यत्, राज्यसुखलोभेन, हन्तुम्, स्वजनम्, उद्यताः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहोबत=	बड़े अफ़सोस की बात है कि ऐसे	राज्यसुखलोभेन=	राज्यके सुखके लोभ करके
महत्पापम्=	बड़े पाप	स्वजनम्=	अपने बन्धुगणों के
कर्तुम्=	करने को	हन्तुम्=	मारने को
वयम्=	हमलोग	उद्यताः=	उद्यत हुये हैं
व्यवसिताः=	तैयार हुये हैं		
यत्=	कि		

भावार्थ ।

अर्जुन कहता है, कि अहो बड़ा खेद है, अर्थात्

बड़े अफ़सोस की वार्ता है कि हमलोग ऐसे महान् पाप करने को उद्यत हुये हैं यानी राजसम्बन्धी सुखके लिये अपने सम्बन्धियों के मारनेको तैयार हैं, इससे अधिक और क्या अनर्थ होगा ॥ ४४ ॥

मूलम्।

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ४५

पदच्छेदः।

यदि, माम्, अप्रतीकारम्, अशस्त्रम्, शस्त्रपाणयः, धार्तराष्ट्राः, रणे, हन्युः, तत्, मे, क्षेमतरम्, भवेत् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यदि=अगर
माम्=मुझ
अप्रतीकारम्=युद्धकीइच्छारहित
अशस्त्रम्=अशस्त्रको
शस्त्रपाणयः=शस्त्रहै हाथमें जिनके ऐसे
धार्तराष्ट्राः=धृतराष्ट्रके पुत्र

अन्वयः शब्दार्थ

रणे=लड़ाई में
हन्युः=मारें
तत्=तो
मे=मेरा
क्षेमतरम्=अत्यन्त कल्याण
भवेत्=हो

भावार्थ।

अर्जुन फिर कहता है कि यदि मुझ शस्त्ररहित

और युद्धकी इच्छारहित को रण में ये धृतराष्ट्र के पुत्र शस्त्रों को हाथों में लेकर मारें तो भी मेराही कल्याण होगा, और इनकी अकल्याणता होगी, क्योंकि मैं अपने धर्म पर आरूढ़ हूं, और ये सब अधर्म को ग्रहण किये हैं ॥ ४५ ॥

मूलम्।

संजय उवाच-

एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ४६

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽर्जुनविषादयोगोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

पदच्छेदः।

एवम्, उक्त्वा, अर्जुनः, संख्ये, रथोपस्थे, उपाविशत्, विसृज्य, सशरम्, चापम्, शोकसंविग्नमानसः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
शोकसंविग्नमानसः	शोकमेंडूब गयाहै मन जिसका ऐसा	अर्जुनः	अर्जुन
		संख्ये	रणभूमि में
		सशरम्	बाणसहित
		चापम्	धनुष्को

विसृज्य=छोड़कर	उक्त्वा=कहकर
+ च=और	रथोपस्थे=रथ के पिछले भाग में
एवम्=इसप्रकार यानी पूर्वोक्त प्रकार	उपाविशत्=बैठगया

भावार्थ ।

शोकमें डूबगया है मन जिसका ऐसा अर्जुन इस प्रकार कह करके उस रणभूमि में बाणके सहित धनुष् को त्याग कर रथके पिछले भाग पर बैठजाता भया ॥ ४६ ॥

पहिला अध्याय समाप्त ॥

दूसरा अध्याय ।

मूलम् ।

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः १

पदच्छेदः ।

तम्, तथा, कृपया, आविष्टम्, अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्, विषीदन्तम्, इदम्, वाक्यम्, उवाच, मधुसूदनः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तथा=पूर्वोक्तप्रकार
कृपया=कृपा से
आविष्टम्=युक्त
अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्=पूर्ण आंसुवों से व्याकुलहैं नेत्र जिसके ऐसे

अन्वयः शब्दार्थ

विषीदन्तम्=दुःखी
तम्=उस अर्जुन से
इदम्=इस
वाक्यम्=वाक्य को
मधुसूदनः=श्रीकृष्णमहाराज
उवाच=कहतेभये

भावार्थ ।

अहिंसाही परम धर्म है, और हिंसाही अधर्म है,

सम्बन्धियों का मारना हिंसारूपी महाअधर्म है, इन अपने मनोगत सिद्धान्तों को भगवान्‌के प्रति कहकर जब अर्जुन तूष्णीम् होकर रथपर बैठगया, तब उस वृत्तान्त को संजय से सुनकर, धृतराष्ट्र अपने पुत्रों के राज्य की अटलता समझकर चुप होरहा, तब उस के अभिप्रायको जानकर संजयने कहा कि हे राजन् ! एकाग्रचित्त होकर सुनो, ये मेरे हैं, मैं इनका हूं, ये जो अहं और ममत्व वृत्तियां हैं, वेही मोहरूप अतिदुःखदायी हैं, उस मोह करके कृपायुक्त होरहा है जो, और शोकजनित-क्लेशयुक्त है जो, और परिपूर्ण और व्याकुल होरहे हैं दोनों नेत्र जिसके, ऐसे दुःखित अर्जुन को देखकर मधु नामवाले दैत्यके मारनेवाले श्रीकृष्णभगवान् कहते भये ॥ १ ॥

मूलम्।

श्रीभगवानुवाच-

✓कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन २

पदच्छेदः।

कुतः, त्वा, कश्मलम्, इदम्, विषमे, समुपस्थितम्, अनार्यजुष्टम्, अस्वर्ग्यम्, अकीर्तिकरम्, अर्जुन ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

अनार्यजुष्टम्=जोश्रेष्ठलोगों करके सेवने योग्य नहीं है

अस्वर्ग्यम्=जिससे स्वर्ग कीप्राप्तिनहीं होती है

अकीर्तिकरम्=जिससे यश नहीं मिलता है ऐसी

अन्वयः **शब्दार्थ**

इदम्=यह

कश्मलम्=अज्ञानता

अर्जुन=हे अर्जुन !

त्वा=तुझको

विषमे=युद्ध में

कुतः=कहांसे

समुपस्थितम्=प्राप्त हुई है

भावार्थ।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इति स्मृतः ॥ १ ॥ नित्यमप्रतिबन्धेन वर्तते यत्र षाड्विधम् । समग्रैश्वर्यमुख्यं तद्भगाख्यं भगवानिति ॥ २ ॥ सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन ६ का नाम भग है, ये ६ नित्यही प्रतिबन्धसे रहित जिसमें रहैं उसीका नाम भगवान् है, इन ६ ऐश्वर्य आदि गुणयुक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन के प्रति कहते हैं कि हे अर्जुन ! संग्राम समय यह जो कश्मल यानी मोह है सो किस कारण तुझको प्राप्त हुआ है, क्या मोक्ष की इच्छासे, या स्वर्गकी इच्छा से, या यशकी इच्छा से तुझको यह प्राप्त हुआ है । यदि मोक्षकी इच्छा करके यह

प्राप्त है तो असेवित है, क्योंकि चित्तकी शुद्धि विना मोक्षकी इच्छा होती नहीं, और निज धर्म के त्याग से चित्तकी शुद्धि कदापि होती नहीं, इसलिये मोक्षकी इच्छा करके इसका सेवन नहीं बनता है, और अगर स्वर्गकी इच्छा करके यह प्राप्त है, तोभी इसका सेवन नहीं बनता है, क्योंकि स्वधर्मत्यागीको स्वप्नमें भी स्वर्गकी प्राप्ति नहीं, और अगर यशकी इच्छा करके यह प्राप्त है, तोभी नहीं बनता है, क्योंकि इसके सेवने से यशका नाश होताहै, इस वास्ते स्वधर्मका विरोधी यह मोह तुझको त्यागने योग्य है ॥ २ ॥

मूलम् ।

मा क्लैब्यं गच्छ कौन्तेय नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ३

पदच्छेदः ।

मा, क्लैब्यम्, गच्छ, कौन्तेय, न, एतत्, त्वयि, उपपद्यते, क्षुद्रम्, हृदयदौर्बल्यम्, त्यक्त्वा, उत्तिष्ठ, परन्तप ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
कौन्तेय	हे अर्जुन !	एतत्	यह
क्लैब्यम्	नपुंसकता को	त्वयि	तेरे बिषे
मागच्छ	मत प्राप्तहो	न	नहीं

उपपद्यते=योग्यहै
परन्तप=हे श्रेष्ठतप करनेवाले !
क्षुद्रम्=क्षुद्र
हृदयदौर्बल्यम्=हृदयकी दुर्बलता को
त्यक्त्वा=त्याग करके
उत्तिष्ठ=खड़ाहो

भावार्थ।

सम्बन्धियों को युद्धभूमि में देखकर मुझको मोह उत्पन्न हुआ है, उस मोह के कारण धनुष् के उठाने में मैं असमर्थ हूं, इस कारण मैं उनके साथ दारुण युद्ध कैसे कर सक्ताहूं ? अर्जुन के मनके इस अभिप्राय को जानकर भगवान् कहते हैं कि यह अधैर्यता जिसको कि तूने ग्रहण किया है, तेज और सुखका नाशक है, इसको तू प्राप्त होने के योग्य नहीं है, क्योंकि तेरी माता कुन्तीने देवताकी कृपासे अति बलवान् तुझको उत्पन्न किया है, और तूने साक्षात् महादेव के साथ भी युद्ध कियाहै, तुम बड़े प्रभाववाले हो, तुम्हारे में यह कायरपना उचित नहीं है, हे परन्तप, हे शत्रुओंके तपानेवाले, हे अर्जुन ! हृदयकी दुर्बलता और क्षुद्रताको त्यागकर युद्ध के लिये उठो, खड़े हो, अपने क्षत्रियत्वधर्म का त्याग मत करो ॥ ३ ॥

मूलम्।

अर्जुन उवाच-

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।

इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ४

पदच्छेदः।

कथम्, भीष्मम्, अहम्, संख्ये, द्रोणम्, च, मधुसूदन, इषुभिः, प्रतियोत्स्यामि, पूजार्हौ, अरिसूदन ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

मधुसूदन=हे कृष्ण !
भीष्मम्=भीष्मपितामह को
च=और
द्रोणम्=द्रोणाचार्य को
पूजार्हौ=जो पूजने योग्य हैं
अहम्=मैं

अन्वयः **शब्दार्थ**

अरिसूदन=हे शत्रु के नाश-कर्ता !
संख्ये=लड़ाई में
कथम्=कैसे
इषुभिः=बाणोंसे
प्रतियोत्स्यामि=मारूंगा

भावार्थ।

अर्जुन कहता है कि स्वधर्म का त्याग मैंने शोकवश नहीं कियाहै, किंतु युद्ध को अधर्म जानकर किया है, जिनके गोद में मैंने खेलाहै, और जिन्होंने मेरी पालना कीहै, ऐसे जो पितामह भीष्मजी हैं, और जिनसे मैंने धनुर्विद्या को सीखा है, ऐसे जो द्रोणाचार्यजी हैं, उनके साथ मैं रणमें बाणों करके कैसे युद्ध करूंगा, ये दोनों महापुरुष पुष्पों करके पूजने के

योग्य हैं, जब इनके साथ क्रीडावस्था बिषे, वाणी करके भी हर्ष के निमित्त संग्राम करना उचित नहीं तो फिर उनके साथ प्राणघातक बाणों से मैं कैसे युद्ध करूंगा ॥ ४ ॥

मूलम् ।

गुरूनहत्वा हि महानुभावाञ्छ्रेयो भोक्तुं
भैक्ष्यमपीह लोके । हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ५

पदच्छेदः ।

गुरून्, अहत्वा, हि, महानुभावान्, श्रेयः, भोक्तुम्, भैक्ष्यम्, अपि, इह, लोके, हत्वा, अर्थकामान्, तु, गुरून्, इह, एव, भुञ्जीय, भोगान्, रुधिरप्रदिग्धान् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
महानुभावान्=बड़े प्रतापवाले
गुरून्=गुरुवों को
अहत्वा=न मारकर
इहलोके=इसलोक में
भैक्ष्यम्=भिक्षा
भोक्तुम्=भोगना

अन्वयः शब्दार्थ
अपि=भी
हि=निःसंदेह
श्रेयः=श्रेष्ठहै
तु=और
अर्थकामान्=ऐश्वर्य की इच्छावाले

गुरून्=गुरुवों को
हत्वा=मारकर
इहएव=इस संसार में ही

रुधिर-प्रदिग्धान्=रक्तसे भरे
भोगान्=भोगों को
भुञ्जीय=मैं भोगूंगा

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि युद्धके अभिमान करके गर्वित जो द्रोणाचार्य आदिक हैं, वे इस समय पूजा के योग्य कैसे होसक्ते हैं ? धर्मशास्त्र में लिखा है कि गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः । उत्पथं प्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥ १ ॥ जो गुरु कर्तव्य अकर्तव्य को न जानता हो, खोटे मार्ग में प्रवृत्त हो, उसका त्याग कर देना उचितहै, इन सबमें अधर्म की बातें घटती हैं, इसलिये इनमें जो गुरुत्वपनाहै, उसको त्यागकरके इनके साथ युद्ध करनाही धर्म है, इसमें कोई भी दोष नहीं, उसपर अर्जुन कहता है कि हे कृष्ण ! गुरुवोंको न मारकरकेही हम सब को पारलौकिक सुख होगा, इनको मारकरके कदापि सुख नहीं होगा, और यद्यपि क्षत्रिय के लिये इस लोकमें भिक्षा मांगकर खाना निषिद्ध है तो भी वह गुरुवों के वध करने से तो अत्यन्त ही श्रेष्ठहै, और हे भगवन् ! जो वेदको अध्ययन करके और तपआदिकों करके बड़े प्रभाव को प्राप्त हुये हैं वे तुच्छ लिप्साआदि

दोषों करके कदापि दूषित नहीं होसक्ते हैं, जैसे सर्वभक्षी अग्नि अपने भोग के दोषके सम्बन्धकरके दूषित नहीं होसक्ताहै, यदि कहो कि वे अर्थ के लोभीहैं, और अर्थ के लिये उन्होंने अपनेको बेचडाला है तो ऐसे लोभियों के मारने में क्या हानि है, तो सुनिये इन पूज्य लोगों को मारकर, इनके रुधिरसे भरेहुये भोगोंका भोगनाही क्या श्रेष्ठ है, इसलिये मैं ऐसे भोगों को कदापि नहीं भोगूंगा ॥ ५ ॥

मूलम्।

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः। यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ६

पदच्छेदः।

न, च, एतत्, विद्मः, कतरत्, नः, गरीयः, यत्, वा, जयेम, यदि, वा, नः, जयेयुः, यान्, एव, हत्वा, न, जिजीविषामः, ते, अवस्थिताः, प्रमुखे, धार्तराष्ट्राः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
एतत्=यह
न विद्मः=हम नहीं जानते हैं कि

अन्वयः शब्दार्थ

कतरत्=कौनसा
नः=हममेंसे
गरीयः=बलवान्है
यद्वा=अथवा

जयेम=हम जीतें
यदिवा=या
नः=हमको
जयेयुः=वे जीतें
यान्एव=जिनको
हत्वा=मारकर

न जिजीविषामः=हम नहीं जीने की इच्छा करते हैं
ते=वे
धार्तराष्ट्राः=धृतराष्ट्र के पुत्र
प्रमुखे=सामने
अवस्थिताः=खड़े हैं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि भिक्षा मांग करके खाना क्षत्रियके प्रति शास्त्रविरुद्धहै, यानी निन्दितकर्म है, और धर्मयुद्ध करना कल्याणकारक है, इसलिये युद्ध करना तुम्हारा धर्म है, उसपर अर्जुन कहताहै कि हे प्रभो! इस वार्ताको मैं नहीं जानता हूं कि भिक्षा मांग कर खाना हमारे लिये श्रेष्ठ है, या युद्ध करना श्रेष्ठ है, और अगर हम युद्धका प्रारम्भ भी करें तो हम यह नहीं जानते हैं कि हमको वे जीतेंगे या हम उनको जीतेंगे, यदि हम उनको जीत भी लेवें तोभी वास्तव में हमारा ही पराजय है क्योंकि जब स्वजनों को मारकर हम जीनेकी इच्छा नहीं करते हैं तो फिर उनको मारकर हम विषयभोगों के भोगने की इच्छा कैसे करेंगे, ये जो धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधनादिक रण में हमारे सम्मुख स्थित हैं इनको मारकर भोगों के भोगने से तो भिक्षाही मांगकर खाना श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥

मूलम्।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः। यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ७

पदच्छेदः।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः, पृच्छामि, त्वाम्, धर्मसम्मूढचेताः, यत्, श्रेयः, स्यात्, निश्चितम्, ब्रूहि, तत्, मे, शिष्यः, ते, अहम्, शाधि, माम्, त्वाम्, प्रपन्नम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः = दीनता से उपहत होगया है स्वभावजिसका
धर्मसम्मूढचेताः = धर्मकेबिषे मूढ़होरहाहै चित्त जिसका ऐसा मैं
त्वाम्=तुझसे
पृच्छामि=पूछता हूं कि
यत्=जो
श्रेयः=श्रेष्ठ
स्यात्=होवे

अन्वयः शब्दार्थ

तत्=उसको
निश्चितम्=निश्चय करके
मे=मुझसे
ब्रूहि=कह तू
अहम्=मैं
ते=तेरा
शिष्यः=शिष्यहूं
माम्=मुझको
शाधि=उपदेशकर
त्वाम्=तेरे
प्रपन्नम्=मैं शरण हूं

भावार्थ।

जो धनी होकर कुछभी द्रव्यको नहीं खर्च करता है, वह व्यवहारमें कृपण कहाता है, और जो आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये बुद्धिद्वारा विचार नहीं करता है, वहभी परमार्थदृष्टि से कृपण कहाजाता है, अर्थात् जो अनात्मवित् अज्ञानी है, वही कृपण है, इसपर अर्जुन कहता है कि हे महाराज ! अज्ञाननिमित्तक जो कृपणतारूपी मोह है, यानी ये मेरे हैं मैं इनका हूं, ऐसा जो निश्चयहै, वही कृपणतारूपी दोष मेरे बिषेहै, उस दोष करके क्षत्रियका स्वभाव जो शूरवीरता है वह मेरा नष्ट होगया है, इसकारण धर्म के निर्णय करने में मेरा चित्त अतिमूढ़ होगया है, और मैं नहीं जानता हूं कि इन भीष्मादिकोंका मारना इस रणमें मेरा धर्म है या इनका पालन करना धर्म है, इसप्रकार संशयों करके ग्रस्तचित्तवाला हुआ जो मैं हूं, सो आपसे पूछता हूं कि जो मेरे लिये कल्याणकारक हो उसको आप कहिये, भगवान् हँसकर कहते हैं कि तुम तो हमारे मित्र हो, तुम आपही क्यों नहीं विचार करलेते हो, तब अर्जुन कहता है कि मैं आपका शिष्य हूं, आपही मुझे शिक्षा दीजिये, मैं आपकी शरण को प्राप्त हुआ हूं ॥ ७ ॥

मूलम्।

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छो-

षणामिन्द्रियाणाम् । अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ८

पदच्छेदः ।

न, हि, प्रपश्यामि, मम, अपनुद्यात्, यत्, शोकम्, उच्छोषणम्, इन्द्रियाणाम्, अवाप्य, भूमौ, असपत्नम्, ऋद्धम्, राज्यम्, सुराणाम्, अपि, च, आधिपत्यम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

भूमौ=पृथिवी में
असपत्नम्=शत्रुरहित
ऋद्धम्=भरेपुरे
राज्यम्=राज्यको
च=और
सुराणाम्=देवताओं के
अपि=भी
आधिपत्यम्=स्वामित्वको
अवाप्य=पायकरके
न= नहीं

अन्वयः शब्दार्थ

प्रपश्यामि=देखता हूं कि
मम=मेरा
शोकम्=शोक
यत्=जो
इन्द्रियाणाम्=इन्द्रियों का
उच्छोषणम्=सुखानेवाला है
हि=निश्चय करके
अपनुद्यात्=दूर होवे

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि तुम तो सब शास्त्र पढ़े हो, तुम आपही अपने कल्याणके साधनका विचार क्यों

नहीं करते हो, तब अर्जुन कहता है कि हे भगवन् ! मेरे विचार में ऐसा कोई भी साधन नहीं आता है जो इन्द्रियों का सुखानेवाला मेरे शोकको दूर करसके, भगवान् कहते हैं कि जब तुम युद्ध करके जयको प्राप्त होगे तब राज्य की प्राप्ति होने से तुम्हारा शोक दूर होजावेगा, उसपर अर्जुन कहताहै कि हे भगवन् ! पृथिवी में निष्कण्टक चक्रवर्तित्व राज्य को प्राप्त होकर या स्वर्ग में इन्द्रपदको पाकर मेरा शोक दूर नहीं होसक्ता है, क्योंकि मेरे शोक के नाशके ये उपाय नहीं हैं ॥ ८ ॥

मूलम् ।

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तपः ।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ९

पदच्छेदः ।

एवम्, उक्त्वा, हृषीकेशम्, गुडाकेशः, परन्तपः, न, योत्स्ये, इति, गोविन्दम्, उक्त्वा, तूष्णीम्, बभूव, ह ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
परन्तपः=श्रेष्ठ तपवाला	योत्स्ये=युद्ध करूंगा मैं
गुडाकेशः=अर्जुन	इति=ऐसा फिर
हृषीकेशम्=कृष्ण से	गोविन्दम्=कृष्ण से
एवम्=इस पूर्वोक्तप्रकार	ह=स्पष्ट
उक्त्वा=कहकर	उक्त्वा=कहकर
+ च=और	तूष्णीम्=चुप
न=नहीं	बभूव=होताभया

भावार्थ ।

अर्जुन के वृत्तान्त को सुनकर धृतराष्ट्र ने फिर संजय से पूछा कि इसके अनन्तर अर्जुन क्या करता भया, तब संजय कहता है कि शत्रुवों का तपानेवाला और निद्रा का जीतनेवाला जो अर्जुन है, वह हृषीकेश से यानी इन्द्रियों के स्वामी कृष्णजी से ऐसा कहकर कि हे गोविन्द ! मैं युद्ध नहीं करूंगा चुप होताभया ॥ ९ ॥

मूलम् ।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः १०

पदच्छेदः ।

तम्, उवाच, हृषीकेशः, प्रहसन्, इव, भारत, सेनयोः, उभयोः, मध्ये, विषीदन्तम्, इदम्, वचः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
भारत=	हे राजन् !	उभयोः=	दोनों
प्रहसन्निव=	हँसते हुये	सेनयोः=	सेनाओं के
हृषीकेशः=	कृष्ण महाराज	मध्ये=	बीच में
तम्=	उस	इदम्=	इस
विषीदन्तम्=	खेद करते हुये अर्जुन से	वचः=	वाक्य को
		उवाच=	कहते भये

भावार्थ ।

तब दोनों सेनाओं के मध्य में, विषादको प्राप्तहुआ

जो अर्जुन है, उससे सब इन्द्रियों के प्रेरक कृष्ण प्रसन्नमुख होके यह वचन कहते भये कि ॥ १० ॥

मूलम् ।

श्रीभगवानुवाच-

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ११

पदच्छेदः ।

अशोच्यान्, अन्वशोचः, त्वम्, प्रज्ञावादान्, च, भाषसे, गतासून्, अगतासून्, च, न, अनुशोचन्ति, पण्डिताः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
अशोच्यान्	जोशोचनेयोग्य नहीं हैं उनको
अन्वशोचः	तू शोचता है
च	और
त्वम्	तू
प्रज्ञावादान्	पण्डितों की तरह
भाषसे	कहता है
गतासून्	मरेहुयों को
च	और
अगतासून्	ज़िन्दों को
पण्डिताः	पण्डितलोग
न	नहीं
अनुशोचन्ति	शोच करते हैं

भावार्थ ।

हे अर्जुन ! दो प्रकार के मोहने संसार में सब जीवों को मोहन कररक्खाहै, एक तो साधारण मोह है, दूसरा असाधारण है, साधारण मोह उसे कहते हैं जो सबको

बराबरहो यानी एकही तरहपरहो, उसी करके स्वप्रकाश शुद्धचेतन असंसारी आत्मा बिषे स्थूल, सूक्ष्म, और कारण इन तीनों शरीरों के अध्यास से जगत् में सत्यत्व बुद्धि और शरीरादिकों में आत्मबुद्धि होरही है, और यह वृत्ति सब जीवों को बराबर है, और जो हरएक मनुष्य को अपनी अपनी जाति की उत्कृष्टताका अभिमान है या स्वधर्म बिषे अरुचि और परधर्म बिषे प्रीति होती है, वह असाधारण मोह है। यह सबको बराबर नहीं है, किन्तु भिन्न भिन्न है, अर्जुनको दोनों प्रकारका मोह इस समय प्राप्त है, जो भीष्मादिकों के शरीरों के नाश से उनके आत्मा के नाश का भ्रम हुआ है सो देहादिकों में आत्मबुद्धि साधारण मोह हुआ है, और स्वधर्म जो युद्ध है उसमें अरुचि और परधर्म जो भिक्षाटन है उसमें प्रीति यह असाधारण मोह हुआ है। शास्त्रद्वारा तीनों देह से पृथक् जो आत्माका ज्ञान है सो साधारण मोहका निवर्तक है, और क्षत्रियधर्म जो युद्ध है, उसमें हिंसाआदिक जो दोष हैं उनका दोष न जानना ऐसा जो बोध है वह असाधारण मोह का निवर्तक है, और ऐसा नियम भी है कि कारण के नाश होने से कार्य का नाश होता है, जबतक मोह का नाश न होगा तबतक उसके कार्य शोक का भी नाश न होगा, इस लिये प्रथम पूर्वोक्त दो प्रकार के मोह का नाश करना उचित है। हे पार्थ! सब मोहादिकों का कारण

अध्यास है, अनात्मा जो शरीरादिक हैं उनमें आत्मबुद्धि होनी अर्थात् शरीरकोही आत्मा मानना, और असङ्ग शुद्ध निर्विकार जो आत्मा है उसमें अनात्मबुद्धि होनी यानी आत्माको सुखी दुःखी मानना, इसी का नाम अध्यास है, और अध्यास के नाश होने से मोहादिकों का नाश स्वतःही होजाताहै, इस लिये प्रथम अर्जुन का अध्यास दूर करना चाहिये, इस अभिप्राय को मनमें रखकर भगवान् अर्जुन के प्रति कहते हैं कि, हे अर्जुन! भीष्मादिक शोच करने के योग्य नहीं हैं, तुम मत शोक करो, ये मेरे लिये मारे जावेंगे और मैं इनके विना कैसे जीऊंगा इस तरहका शोक करना तुमको उचित नहीं है, तुम पण्डित हो और पण्डित होकर पण्डितों करके कथन करने के अयोग्य शब्दों को बोलते हो, तुमको ऐसे शब्द के बोलनेमें लज्जा नहीं आती है, तुम तूष्णीं होकर कायरों की तरह बैठरहेहो, इससे बढ़कर और क्या तुम्हारे लिये अनुचित कर्म होगा, अथवा पण्डितों की तरह तुम बोलते हो परन्तु, तात्पर्य को तुम नहीं जानते हो, इसी से तुम्हारे बिषे मूढ़ता और पाण्डित्यता दोनों देखने में आती हैं, अर्जुन कहता है कि, हे महाराज! सम्बन्धियों के वियोग में पण्डितों को भी शोक होता है, फिर मुझे शोक हुआ तो क्या आश्चर्य है? तब भगवान् कहते हैं कि ऐसा मत

कहो, क्योंकि तुम्हारा कथन केवल हास्य योग्य है, और जो पण्डित हैं यानी जिन्होंने गुरुद्वारा वेदान्त शास्त्रका श्रवण किया है और जीव ब्रह्म की एकता को जिन्होंने युक्तियों के द्वारा मनन किया है, वह मरेहुये और जीतेहुये सम्बन्धियों का शोक नहीं करते हैं, और न बन्धुवों के वियोगसे मोह को प्राप्त होते हैं, जैसे स्वप्न में कोई सम्बन्धी मरगया है और कोई जीता है उनका शोक जाग्रत् अवस्था में लोग नहीं करते हैं, इसी तरह अज्ञानसे जन्य जो भ्रमज्ञान है उसकरके कल्पित जो बन्धुवर्ग हैं, उनके जीने और मरने का शोक ज्ञानवान् पण्डित नहीं करते हैं। भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! तुम पण्डित होकर शोक मत करो, आत्मतत्त्व बिषे स्थित हो ॥ ११ ॥

मूलम्।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् १२

पदच्छेदः।

न, तु, एव, अहम्, जातु, न, आसम्, न, त्वम्, न, इमे, जनाधिपाः, न, च, एव, न, भविष्यामः, सर्वे, वयम्, अतः, परम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
नतुएव=क्या नहीं	जातु=कभी

अहम्=मैं
आसम्=होताभया
त्वम्=तू
न=नहीं
+अभूः=होता भया
इमे=ये
जनाधिपाः=राजालोग
न=नहीं

+अभूवन्=होते भये
च=और
वयम्=हम
सर्वे=सब
अतः परम्=इसके बाद
न भविष्यामः=नहीं होंगे
न एव=यह बात नहीं

भावार्थ।

दो प्रकार के मोहका स्वरूप और उसका कारण भगवान् ने पूर्व कहा, अब उस मोहकी निवृत्तिके उपाय को कहते हैं क्योंकि संसार में मोह जीवों के दुःखका हेतु है, और मोहकी निवृत्ति अत्यन्त सुखकारक है, और मोहके नाश हुये विना पुरुषको मोक्ष कदापि नहीं है, इसलिये यत्न करके मोहको दूर करना चाहिये, अर्जुनके मोहको हटाने के लिये भगवान् कहते हैं, इस जन्मसे पूर्व क्या मैं नहीं था, ऐसा नहीं, किन्तु मैं था, वैसेही तूभी क्या पूर्व न था, ऐसा नहीं किन्तु इस जन्म से पहले भी तू था। ये जो राजालोग इस युद्धमें हैं, क्या इस जन्म से पूर्व न थे, ऐसा नहीं किन्तु ये सब इस जन्म से पूर्व भी थे, इतने कथन से भगवान् ने आत्मा को प्रागभावका अप्रतियोगी कथन किया है, जिसका अपनी उत्पत्तिसे पूर्व अपने

कारण में अभाव रहता है, वह अपने अभाव का प्रतियोगी कहाता है, जैसे घटकी उत्पत्तिसे पूर्व कपालों में अभाव रहता है, उसी अभाव का नाम प्रागभाव है, घटके उत्पन्न होने से वह अभाव नष्ट होजाता है, इस वास्ते प्रागभाव अनित्य भी है, और उसका प्रतियोगी घट होता है, क्योंकि ऐसा नियम है कि ॥ यस्याभावः स प्रतियोगी ॥ जिसका पहले अभाव होता है, वही अपने अभाव का प्रतियोगी होता है, सो ऐसा आत्मा नहीं है, क्योंकि इस जन्मके शरीर की उत्पत्ति से पूर्व भी आत्माका सद्भावही था, इसलिये आत्मा प्रागभाव का प्रतियोगी नहीं है, ऐसा भगवान् का तात्पर्य है, और फिर भगवान् कहते हैं कि ॥ अतः ऊर्ध्वम् ॥ इस जन्म से अनन्तर अर्थात् देहपात से उत्तर ॥ अहम् त्वम् इमे भूपा न भविष्यामः ॥ हम, तुम, ये राजालोग क्या नहीं होवेंगे ॥ इति न ॥ ऐसा नहीं है ॥ किन्तु सर्वे वयम् ॥ हम सब लोग ॥ भविष्यामःएव ॥ अवश्य आगेभी फिर होवेंगे ॥ कस्मात् ॥ किस कारण ॥ आत्मनो नित्यत्वात् ॥ आत्माको नित्य होनेसे ॥ इतने कथन करने से भगवान् ने आत्मा को ध्वंसका अप्रतियोगी कहा है ॥ ध्वंस नाम नाशका है, जिसका नाश होताहै, वह अपने नाशका प्रतियोगी होता है, जैसे घट को जब दण्ड मारकर फोड़दिया तब घटका नाश होगया, उस नाशका घट प्रतियोगी है, वैसे

आत्मा नहीं है, क्योंकि आत्मा का नाश तीन काल में भी नहीं होता है, आत्मा नित्य है और एक है, शरीररूपी उपाधियों के भेद करके आत्मा भेदवाला प्रतीत होता है, वास्तव में आत्मा का भेद नहीं है, किंतु हम, तुम, यह सब जो व्यवहार है सो शरीररूपी उपाधियों करके होता है, आत्मा सदा ज्यों का त्यों एकरस नित्यहै, और शरीरों के ग्रहण और त्याग में भी आत्मा की कोई हानि नहीं, इसी वार्ता को भगवान् अगले श्लोक में दिखलावेंगे ॥१२॥

मूलम् ।

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति १३

पदच्छेदः ।

देहिनः, अस्मिन्, यथा, देहे, कौमारम्, यौवनम्, जरा, तथा, देहान्तरप्राप्तिः, धीरः, तत्र, न, मुह्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
यथा	जैसे
देहिनः	प्राणी के
अस्मिन्	इस
देहे	देहमें
कौमारम्	कुमार अवस्था
यौवनम्	युवाअवस्था
जरा	वृद्धाअवस्था होती है
तथा	वैसेही
देहान्तरप्राप्तिः	एकदेह के बाद दूसरे देहकी प्राप्ति होती है

तत्र=उस बिषे	न मुह्यति=मोह नहीं करता है
धीरः=विद्वान् पुरुष	

भावार्थ।

प्रश्न ॥ देहसे भिन्न आत्मा की सिद्धि नहीं होती है, क्योंकि लोकमें ऐसा व्यवहार देखने में आता है कि उत्पन्न हुआ देवदत्त मरगया, इसप्रकार के वाक्य से साबित होताहै कि जन्मता मरता शरीरही है, और जो कहता है कि मैं श्यामहूं, मैं गौर हूं, तो श्यामतादिक गुण भी शरीरकेही हैं, और मैं शब्दका विषय भी शरीरही है, इस प्रत्यक्ष प्रमाण से तो शरीरही आत्मा साबित होता है, शरीरसे भिन्न आत्मा साबित नहीं होता है ॥ उत्तर ॥ शरीर में जो आत्मप्रत्यय है सो भ्रमज्ञानहै, जैसे पुत्रके मरने से पुरुष कहताहै कि हाय मैं मरगया, और पुत्रके जन्म से कहता है कि मैं जीगया, पुत्र के मरने से वह मरता नहीं, और पुत्र के जन्मसे वह जीता नहीं, किंतु मोह करके मरना, जीना अपने बिषे आरोप करता है, इसी तरह शरीर में भी मोह करके अहंप्रत्यय को आरोप करता है, शरीर आत्मा नहीं है, किंतु शरीर से आत्मा भिन्न है, और जैसे घटकी उत्पत्ति से घटाकाशकी उत्पत्ति कहीजाती है, और घटके नाशसे घटाकाशका नाश माना जाता है, वास्तव में घटाकाश न उत्पन्न होता है और न नाश होताहै, किंतु घटही उत्पन्न होता है, और घट

ही नाश होता है, वैसेही शरीर की उत्पत्ति के साथ आत्माकी उत्पत्ति और शरीर के नाशके साथ आत्मा का नाश व्यवहारमात्र होताहै यही भ्रमज्ञान है, यथार्थ नहीं, वास्तव से आत्माकी उत्पत्ति और नाश होता नहीं, क्योंकि आत्मा देह से भिन्न है, जैसे इस वर्तमान देह में देही यानी देह धारण करने वाला जो आत्मा है, तिसके देहकी कौमार, यौवन और जराअवस्था प्राप्त होती है, यानी जिस काल में कौमार अवस्था आतीहै, उस कालबिषे यौवन अवस्था नहीं आती है, और जब यौवन अवस्था आती है, तब कौमार अवस्था नष्ट होजाती है, और जब वृद्धा अवस्था आती है तब यौवन अवस्था नष्ट होजाती है, एक के होतेहुये दूसरी अवस्था नहीं आती, क्योंकि परस्पर विरोधी हैं, और अवस्थाके भेदसे शरीरकाही भेद होता है, क्योंकि शरीर की रंगत बदलती जाती है, परन्तु आत्मा का भेद नहीं होता है, जो आत्मा बाल्यावस्था में था वही कुमार, युवाआदि अवस्था में भी रहता है, इसीहेतु से ऐसी प्रत्यभिज्ञा भी होतीहै कि जो मैं बाल्यावस्था में माता पिता को देखताथा वही मैं अब वृद्धाअवस्था में पौत्रों को देखताहूं, शरीर की अनेक अवस्था के होनेपर भी आत्मा एकही तरह ज्योंका त्यों रहता है, आत्मा का भेद नहीं होता, यदि शरीरही आत्मा होता तब कुमार अवस्था में देखे जो पदार्थ हैं उनका युवा वा वृद्धा

अवस्था में स्मरण न होता, क्योंकि वह कुमारअवस्था वाला शरीररूपी आत्मा वृद्धाअवस्थामें रहा नहीं, और अन्यकरके अनुभव कियेहुये पदार्थोंका अन्यको स्मरण होता नहीं क्योंकि ऐसा नियम है कि जो अनुभवका कर्ता होता है वही स्मरणका भी कर्ता होता है, जिस आत्मा ने कुमारअवस्था में अनुभव किया था उसीको स्मरण भी होताहै, इन्हीं युक्तियों से साबित होताहै कि शरीर से आत्मा भिन्नहै, जिसके बदलनेसे जो न बदले वह उससे भिन्न होताहै, अवस्था करके शरीर के बदलने से भी आत्मा नहीं बदलता है, अतएव आत्मा शरीर से भिन्नहै, जैसे निर्विकार आत्मा को कौमार, यौवनादि अवस्था प्राप्त होती हैं, वैसेही उसको इस देहपात के अनन्तर देहान्तर की प्राप्ति भी होती है, और जैसे इस देहसे आत्मा भिन्न है, वैसेही जन्मान्तर के देहान्तरों से भी आत्मा भिन्न है, और जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्था भिन्न भिन्न हैं, परन्तु तीनों अवस्था का साक्षी आत्मा एकहै, क्योंकि जो जाग्रत् के व्यवहार का साक्षी है वही स्वप्न के व्यवहार का भी साक्षी है, इसीवास्ते वह अपने स्वप्नका निरूपण जाग्रत् में करताहै और वही आत्मा सुषुप्ति अवस्थाके आनन्द का भी साक्षी है, इसी वास्ते सुषुप्ति के आनन्दका भी स्मरण करता है, इसीसे साबित होता है कि देह से आत्मा भिन्न है, यदि देहकोही आत्मा मानोगे तब

बालकोंकी स्तनपानादिकोंमें जो प्रवृत्ति उनके उत्पन्न होतेही होती है नहीं होनी चाहिये, क्योंकि यह शरीर तो पूर्व था नहीं जो इसको स्तनपान आदिक करनेके संस्कार होते और विना संस्कार और इष्टसाधनता ज्ञान के प्रवृत्ति होती नहीं, इसलिये अगर इस शरीर से आत्मा को भिन्न मानो तब उसके जन्मान्तर के संस्कारोंसे स्तनपानादिकों में प्रवृत्ति बनेगी, जैसे इस जन्म के शरीर में और जन्मान्तरों के शरीरोंमें एकही आत्माहै, वैसे ब्रह्मासे लेकर स्थावर पर्यन्त सब शरीरों में आत्मा एक है, और जो निरवयव व्यापकहै उसमें विना उपाधि के भेदसे भेद होता नहीं, ऐसा जानकर ज्ञानवान् पुरुष शोक मोहसे तर जाता है ॥ १३ ॥

मूलम् ।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्वभारत १४

पदच्छेदः ।

मात्रास्पर्शाः, तु, कौन्तेय, शीतोष्णसुखदुःखदाः, आगमापायिनः, अनित्याः, तान्, तितिक्षस्व, भारत ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
तु	और	कौन्तेय	हे कुन्ती के पुत्र !

मात्रास्पर्शाः=शब्दस्पर्श रूपरसगन्ध यानी कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय के विषय

शीतोष्णसुखदुःखदाः=शीतउष्ण सुख और दुःख के देनेवाले और

आगमापायिनः=आने जाने वाले हैं

च=और

अनित्याः=नाशवान् हैं

तान्=उनको

भारत=हे अर्जुन !

तितिक्षस्व=तुम सहो

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ आत्मा नित्य और विभु रहे परंतु ब्रह्मा से लेकर स्तम्भपर्यन्त सब शरीरों में एक आत्मा कैसे होसक्ता है, यदि एकही आत्मा सब शरीरों में हो तब एकके सुख होने से सबको सुखी होनाचाहिये, या एक के दुःख होने से सबको दुःखी होना चाहिये, क्योंकि सुख, दुःख का ज्ञाता और सुख, दुःख गुणोंवाला आत्मा सबमें एकही है पर ऐसा तो होता नहीं, किंतु एकही क्षण में कोई सुखी, कोई दुःखी प्रतीत होताहै, इसकारण प्रत्येक शरीरमें आत्मा भिन्न भिन्न सिद्ध होताहै ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि ॥ मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय ॥ हे कुन्ती के पुत्र, अर्जुन ! इन्द्रियोंका

जो विषयों के साथ सम्बन्ध है, वही शीत, उष्ण-जन्य सुख, दुःखका देनेवाला है, और वह सम्बन्ध आगमापायी है, यानी उत्पत्तिनाशवाला है, इसीसे क्षणभंगुरहै, तात्पर्य यह है कि अन्तःकरणकी परिणाम रूप जो वृत्तियां हैं, वे वृत्तियां चक्षुरादि इन्द्रियों द्वारा निकलकर जब विषयों के ऊपर जाती हैं, तब विषयों के साथ वृत्ति द्वारा इन्द्रियों का सम्बन्ध होता है, उस सम्बन्धसे सुख, दुःख होता है, एकही पदार्थ किसी काल में सुखका हेतु होता है, और फिर वही पदार्थ दूसरे काल में दुःख का हेतु होता है, जैसे अग्नि सर्दी के दिनों में सुखका हेतु होता है, फिर वही गर्मी के दिनों में दुःख का हेतु होजाता है, शीतलता जाड़े में दुःखका हेतु है, वही गर्मी में सुख की हेतु होती है, इसी वास्ते वह सुख, दुःख, शीत और उष्ण से जन्य है, जिस कारण बुद्धि की वृत्ति के सम्बन्ध से सुख-दुःखादिक प्रतीत होते हैं, उसी कारण वे सुख दुःखादिक सब बुद्धि के ही धर्म हैं, जब सुषुप्ति, मूर्च्छाआदिक अवस्था में बुद्धि अपने कारण अज्ञान में लय होजाती है, तब सुख दुःखादिक भी नहीं प्रतीत होते हैं, यदि वे सुख, दुःख आत्मा के धर्म होते, तब सुषुप्ति आदिकों में भी प्रतीत होते, पर ऐसा तो देखने में नहीं आता है, इसी से साबित होता है कि सुख, दुःखादिक सब बुद्धि केही धर्म हैं, आत्मा के नहीं हैं,

और बुद्धि प्रत्येक शरीर में भिन्न भिन्न है, इसी हेतु करके एक को सुख होने से दूसरे को सुख नहीं होता है, एकको दुःख होने से दूसरे को दुःख नहीं होता है, क्योंकि हर एक शरीर में अन्तःकरण भिन्न भिन्न है, जैसे जल करके भरेहुये अनेक पात्रों में एक ही सूर्य का प्रतिविम्ब पड़ता है, यानी मलिन जल में मलिन, स्वच्छ जलमें स्वच्छ, हिलतेहुये जलमें हिलताहुआ, चलतेहुये जलमें चलताहुआ, स्थित जल में स्थितहुआ प्रतिविम्ब प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में सूर्य और उसके प्रतिविम्ब में न मालिनता है, न स्वच्छता है, न स्थिरता है, न चलना है, न हिलना है, जल में ही मलिनता, चलना, हिलना आदिक है, सूर्य और उसका प्रतिविम्ब ज्यों का त्यों है, तैसेही सब अन्तःकरणों में आत्मा का प्रतिविम्ब पड़ताहै, अन्तःकरण के धर्मों के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, आत्मा ज्योंका त्यों सबमें एकरस प्रकाशमान है, जैसे एक शरीर के कई एक अंगहैं, एक अंगमें जब खेद होता है तब बाक़ी के अंगों में नहीं होता है, और आत्मा सब शरीरों में एक है, यदि आत्मा का धर्म दुःख होता तब सारे शरीरमें दुःख होता, सो ऐसा तो होता नहीं, इस हेतु से भी सुख, दुःखादिक आत्मा के धर्म नहीं हैं, इसतरह सब शरीरों में एकही चैतन्य आत्मा निराकार प्रकाशमानहै, और शरीरादिकों से न्यारा भी है ॥ १४ ॥

मूलम् ।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते १५

पदच्छेदः ।

यम्, हि, न, व्यथयन्ति, एते, पुरुषम्, पुरुषर्षभ, समदुःखसुखम्, धीरम्, सः, अमृतत्वाय, कल्पते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

पुरुषर्षभ=हे पुरुषों में श्रेष्ठ, अर्जुन !
समदुःखसुखम्=सुख दुःखको बराबर जानने वाले
यम्=जिस

अन्वयः शब्दार्थ

धीरम्=बुद्धिमान्
पुरुषम्=पुरुष को
एते=ये विषय
न व्यथयन्ति=नहीं सताते हैं
सः=वह मनुष्य
अमृतत्वाय=मोक्षके लिये
कल्पते=योग्यसमझा जाता है

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ यदि अन्तःकरणही भोक्ता है, और सुख दुःखादिक उसका धर्म है, तब उसीको चेतन आत्मा मानना चाहिये, और उससे भिन्न आत्मा मानने की

कोई आवश्यकला नहीं है, यदि ऐसा मानोगे तो बन्ध अन्तःकरण में होगा, और मोक्ष आत्मा में होगी, सो यह कैसे होसक्ता है ? क्योंकि जो बन्ध होता है वही मुक्त भी होताहै, इस शङ्का के उत्तर को भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! अनात्मा अन्तःकरण के साथ आत्मा का तादात्म्य अध्यास होने से कल्पित बन्ध जो आत्मा में प्रतीत होता है, उसकी निवृत्ति अद्वैत आत्मज्ञान से होती है, यदि बन्ध स्वाभाविक यानी सत् होता तब उसकी निवृत्ति भी कदापि होती नहीं, क्योंकि जो जिसका स्वाभाविक धर्म अग्नि की उष्णता की तरह है, वह सैकड़ों प्रमाणों से भी दूर नहीं होता है, और चूंकि बन्धकी निवृत्ति आत्मज्ञान करके होती है, इसलिये बन्ध मिथ्या है, जिसको ऐसा अद्वैत आत्मबोध हुआ है, उसको विषय और इन्द्रियों के सम्बन्ध पीड़ा नहीं करसक्ते हैं, क्योंकि उसने सुख, दुःख को सम जाना है, इसी वास्ते वही धीर पुरुष मोक्ष के योग्य है ॥ १५ ॥

मूलम् ।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः १६

पदच्छेदः ।

न, असतः, विद्यते, भावः, न, अभावः, विद्यते,

सतः, उभयोः, अपि, दृष्टः, अन्तः, तु, अनयोः, तत्त्वदर्शिभिः॥

अन्वयः शब्दार्थ
असतः=असत्का
भावः=भाव
न विद्यते=नहीं होता है
+ च=और
सतः=सत्का
अभावः=अभाव
न विद्यते=नहीं होता है

अन्वयः शब्दार्थ
अनयोः=इन
उभयोः=दोनोंका
अन्तः=सारवस्तु
तत्त्वदर्शिभिः=ब्रह्मवेत्ताओं करकेही
दृष्टः=देखागया है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! जो असत् वस्तु है, उसका भाव यानी सत् कदापि नहीं होसक्ताहै, और जो सत् वस्तुहै उसका अभाव यानी नाश कभी नहीं हो सक्ताहै, जो सबमें व्यापक है, वही सबका अधिष्ठानहै, वही सत् है, वही आत्माहै, उसका नाश कदापि नहीं, जो सबमें व्यापक नहीं है, किन्तु परिच्छिन्न, उत्पत्ति नाशवाला रज्जु में सर्पकी तरह है, उस वस्तुकी कोई सत्ता कदापि नहीं होसक्ती है, वही मिथ्या है, और वही शीतोष्णादि जगत् सब परिच्छिन्न है, और वही उत्पत्ति नाशवाला है, यह कदापि सत् नहीं, और कल्पित वस्तुकी सत्ता अधिष्ठान से भिन्न कुछ नहीं होती है, इसलिये सब कल्पित वस्तु मिथ्या हैं, और अधिष्ठान

ज्ञानस्वरूप व्यापकचेतनही सत् है, इन दोनों का यानी सत् असत् का निर्णय जिसप्रकार तत्त्ववेत्ताओं ने किया है, तुमभी हे अर्जुन! वैसेही विचारकरके उसको जानो, और सद्रूप आत्मा में अपने निश्चयको दृढ़ करो ॥ १६ ॥

मूलम्।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति १७

पदच्छेदः।

अविनाशि, तु, तत्, विद्धि, येन, सर्वम्, इदम्, ततम्, विनाशम्, अव्ययस्य, अस्य, न, कश्चित्, कर्तुम्, अर्हति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तु=और
तत्=उसको
अविनाशि=अविनाशी
विद्धि=तू जान
येन=जिस करके
इदम्=यह
सर्वम्=सब

अन्वयः शब्दार्थ

ततम्=व्याप्त है
अस्य=इस
अव्ययस्य=नाशरहितके
विनाशम्=नाश
कर्तुम्=करनेको
कश्चित्=कोई भी
न अर्हति=समर्थ नहीं है

भावार्थ।

प्रश्न ॥ ज्ञानस्वरूप आत्मा नित्य कैसे होसक्ता है, घटज्ञानके उत्पन्न होतेही पटज्ञान नष्ट होता है, मैं घट

को जानताहूं, पटको नहीं जानताहूं, इन प्रतीतियों से तो ज्ञान उत्पत्ति नाशवालाही साबित होता है, जब ऐसा इसका स्वरूप है, तब फिर ज्ञानस्वरूप आत्मा कैसे नित्य होसक्ता है ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! जिस एक चिद्रूप, ज्ञानस्वरूप, नित्य, विभु, आत्मा करके सारा जगत् व्याप रहा है, उसको तुम अविनाशी जानो, और घटाकार, पटाकार, अन्तःकरण की वृत्तियां उत्पन्न होती हैं, वृत्ति स्वच्छपदार्थ अन्तःकरण का परिणाम है, उसमें आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है, वृत्ति की उत्पत्ति और नाश है, आत्मा का नहीं, क्योंकि वह सब जड़ मिथ्यापदार्थों में व्यापक है, परिच्छिन्न नहीं है, और जिसकी सत्ता करके जगत् सत् की नाईं प्रतीत होरहा है, वह ज्ञानस्वरूप परिच्छिन्न और अनित्य कदापि नहीं होसक्ता है, और श्रुति भी उसको सद्रूप, ज्ञानस्वरूप, अनन्तरूप कहती है, उस सद्रूप आत्मवस्तु के नाश करने में कोई समर्थ नहीं है, क्योंकि कल्पितवस्तु अपने अधिष्ठान की हानि नहीं करसक्ती है ॥ १७ ॥

मूलम् ।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत १८

पदच्छेदः ।

अन्तवन्तः, इमे, देहाः, नित्यस्य, उक्ताः, शरीरिणः,

अनाशिनः, अप्रमेयस्य, तस्मात्, युध्यस्व, भारत ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यतः=क्योंकि
इमे=ये
अन्तवन्तः=नाशवान्
देहाः=देहें
नित्यस्य=नित्य
अनाशिनः=अविनाशी

अन्वयः शब्दार्थ

अप्रमेयस्य=प्रमाण रहित
शरीरिणः=जीवात्मा की
उक्ताः=कही गई हैं
तस्मात्=इसलिये
भारत=हे अर्जुन !
युध्यस्व=युद्ध कर

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! जैसे स्वप्न के हाथी, घोड़े और मनुष्यादिकों के शरीर, स्वप्नस्थ आत्मा विषे कल्पित हैं, वैसेही जाग्रत् के शरीर भी सब आत्मा में कल्पित हैं, इसी से मिथ्या हैं ॥ प्रश्न ॥ पूर्वोक्त चिद्रूप आत्माकी सिद्धि में यानी होने में प्रमाण है वा नहीं है, यदि प्रमाण है तो जिसकी सिद्धि प्रमाण करके होती है वह मिथ्या होताहै, जैसे घटादिक, यदि उसकी सिद्धि में प्रमाण नहीं है तो फिर प्रमाण रहित आकाश के पुष्पकी नाईं भी मिथ्या है ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि हे पार्थ ! जो वस्तु जड़, उत्पत्ति, नाशवाली होती है, वही प्रमाण करके सिद्ध होती है, आत्मा ऐसा नहीं है, क्योंकि वह उत्पत्ति-नाश-रहित चेतन है, इसलिये इन्द्रियरूपी प्रमाणों का विषय नहीं,

जो प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय तीनों का जाननेवाला है और जो एकही काल में तीनों को प्रकाश करता है, उसकी सिद्धि में किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं, वह स्वतःसिद्ध है, और ऐसा नियमहै कि चेतनही जड़ को प्रकाशता है यानी जानता है, जड़ चेतनको नहीं जानसक्ता है, हे अर्जुन ! तुम चेतन आत्माको नित्य, अविनाशी जानकर युद्ध करो ॥ १८ ॥

मूलम् ।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते १९

पदच्छेदः ।

यः, एनम्, वेत्ति, हन्तारम्, यः, च, एनम्, मन्यते, हतम्, उभौ, तौ, न, विजानीतः, न, अयम्, हन्ति, न, हन्यते ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

यः=जो
एनम्=इसको
हन्तारम्=मारनेवाला
वेत्ति=जानता है
च=और
यः=जो

अन्वयः **शब्दार्थ**

एनम्=इसको
हतम्=मारा हुआ
मन्यते=मानता है
तौ=वे
उभौ=दोनों
न=नहीं

विजानीतः=जानते हैं
अयम्=यह
न=न
हन्ति=मारता है और
न=न
हन्यते=माराजाता है

भावार्थ।

प्रश्न ॥ उक्त रीतिसे शोकादिक मुझमें न भी हों, पर भीष्मादिकों के वधनिमित्तक पाप तो होगा, क्योंकि हिंसक और प्रेरक दोनोंके लिये धर्मशास्त्रमें पाप बराबर लिखाहै, इसलिये इस युद्धमें जो आपका वचन है, सो अयुक्तहै ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि हे सौम्य! जो शुद्ध, अक्रिय, निरवयव आत्माको हननक्रियाका कर्ता मानता है, यानी मारनेवाला मानता है, और जो आत्मा को हननक्रिया का कर्म यानी हननक्रिया करके मरनेवाला मानता है, वे दोनों देहाभिमानी, मूर्ख आत्माके स्वरूपको नहीं जानते हैं, क्योंकि यह आत्मा न तो हननक्रियाका कर्ता है, और न हननक्रिया का कर्म है, और चार्वाक जो देह आत्मवादी हैं, वे आत्माको हननक्रियाका कर्म मानते हैं, और नैयायिक जो बुद्धि आदिक गुणोंवाला आत्मा को मानते हैं, वे आत्मा को हनन क्रियाका कर्ता मानते हैं, इन दोनों के मतको त्यागकर वेदान्तमतको आश्रयण करके तुम युद्ध करो ॥ १९ ॥

मूलम्।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा

भविता वा न भूयः । अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे २०

पदच्छेदः ।

न, जायते, म्रियते, वा, कदाचित्, न, अयम्, भूत्वा, भविता, वा, न, भूयः, अजः, नित्यः, शाश्वतः, अयम्, पुराणः, न, हन्यते, हन्यमाने, शरीरे ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अयम्=यह आत्मा
कदाचित्=कभी भी
न जायते=नहीं पैदाहोता है
वा=और
न म्रियते=नहीं मरता है
वा=और
भूत्वा=होकर के
भूयः=फिर
न भविता=नहीं होगा

अन्वयः शब्दार्थ

अयम्=यह
अजः=अजहै
नित्यः=नित्यहै
शाश्वतः=शाश्वतहै
पुराणः=पुराण है
हन्यमाने शरीरे=शरीर के नाशहोनेपर
न हन्यते=नहीं नाश होता है

भावार्थ ।

पूर्ववाक्य में भगवान् ने कहा है कि आत्मा हननक्रिया का न कर्म है, और न कर्ता है, उसीको और हेतुवों करके साबित करते हैं ॥ न जायते ॥ आत्मा जन्मता नहीं है, जो पूर्व न होकर पश्चात् होताहै वही

जन्मवाला कहाता है, जैसे घटादिक हैं, सो आत्मा ऐसा नहीं है, और "न म्रियते"॥ आत्मा मरता भी नहीं है, जो पहिले होकर फिर उत्तरकाल में न रहे वही मरा कहाता है, सो आत्मा ऐसा नहीं है, क्योंकि शरीरपात के अनन्तर भी आत्मा रहता है, इसवास्ते वह मरता भी नहीं है, इन्हीं हेतुवों से आत्मा अजहै, यानी जन्म से रहित है, और शाश्वत है, यानी क्षयसे रहित है, और पुराणहै, यानी पूर्वसेही नवीनकी तरह है, इसवास्ते बढ़ता भी नहीं है, और जो नूतन अवस्था को प्राप्त होता है, वही बढ़ता है, यह नित्यही नूतन है, इसलिये बढ़ने से भी रहित है, अतएव शरीर के नाश होनेपर भी आत्मा का नाश नहीं होता है॥ २०॥

मूलम्।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् २१

पदच्छेदः।

वेद, अविनाशिनम्, नित्यम्, यः, एनम्, अजम्, अव्ययम्, कथम्, सः, पुरुषः, पार्थ, कम्, घातयति, हन्ति, कम्॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यः	जो	अविनाशिनम्	अविनाशी
एनम्	इसको	नित्यम्	नित्य

अजम्=अज
अव्ययम्=अव्यय
वेद=जानता है
पार्थ=हे अर्जुन !
सः=वह
पुरुषः=पुरुष

कथम्=क्योंकर
कम्=किसको
घातयति=मरवाता है
+च=और
कम्=किसको
हन्ति=मारता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! वस्तु का नाश तीन तरह से होताहै, गुणके नाश से गुणी का नाश, जैसे गन्धके नाशसे कस्तूरी का नाशहै, और अवयवों के नाश से अवयवीका नाश, जैसे तन्तुवों के नाश से पटका नाश है, और धर्म के नाश से धर्मी का नाश, जैसे कटक के नाश से स्वर्णका नाश है, आत्मा निर्गुण, निरवयव निर्धर्मक है, इसलिये आत्मा का नाश कदापि नहीं होता है, और उत्पत्ति नाश रहित व्याप्त सब का साक्षी जो आत्मा है वही मैंहूं, ऐसा जिसने गुरु शास्त्र उपदेश द्वारा आत्मा का साक्षात्कार कियाहै, वही पूर्णज्ञानी है, वह न किसीको मारताहै, और न मरवाता है, शुद्ध सच्चिदानन्द न कर्ता है, न प्रेरकहै, देहादिकों के अध्यास से भ्रान्ति करके पुरुष आत्मा में कर्तृत्वादिकों की कल्पना करता है, भगवान् फिर कहते हैं, हे अर्जुन ! अज्ञानियों ने आत्मा में कर्तृत्वादिक धर्म मान

रक्खे हैं, उन मूर्खों के बोधके लिये शास्त्र बना है, आत्मज्ञानियों के लिये नहीं, हे अर्जुन ! तुम आत्मज्ञान को प्राप्त होकर अपने में कर्तृत्व और मेरेमें प्रेरकत्वकी शङ्काका त्याग करके स्वधर्म युद्धमें प्रवृत्त हो ॥ २१ ॥

मूलम्।

✓ वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति
नरोपराणि । तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही २२

पदच्छेदः।

वासांसि, जीर्णानि, यथा, विहाय, नवानि, गृह्णाति, नरः, अपराणि, तथा, शरीराणि, विहाय, जीर्णानि, अन्यानि, संयाति, नवानि, देही ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यथा	जैसे	तथा	वैसेही
नरः	मनुष्य	देही	जीवात्मा
जीर्णानि	पुराने	जीर्णानि	पुराने
वासांसि	कपड़ों को	शरीराणि	देहों को
विहाय	छोड़कर	विहाय	छोड़कर
अपराणि	और	अन्यानि	दूसरे
नवानि	नये कपड़ोंको	नवानि	नवीन शरीरोंको
गृह्णाति	ग्रहण करताहै	संयाति	प्राप्त होता है

भावार्थ।

प्रश्न ॥ यदि भीष्मादिकों के मारनेसे इनके आत्मा का नाश न भी हो, परन्तु इनके शरीरों का नाश तो अवश्यही होगा ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहतेहैं कि हे अर्जुन! जैसे लोक में पुरुष अपने पुराने वस्त्रों को त्यागकर, नवीन वस्त्रों को पहिनते हैं, और वस्त्रों के त्याग व ग्रहण में उनको कोई भी क्लेश नहीं होता है, वैसेही आत्मा को भी पुराने शरीररूपी वस्त्रों के त्याग करने में और नवीन शरीरों के ग्रहण करने में कोई भी क्लेश नहीं होता है, और हे अर्जुन! भीष्मादिकों के शरीर जीर्ण होगये हैं, इनके जीर्ण शरीररूपी वस्त्रों को तुम रणमें दूर करके इनको दिव देवतादिकों के नवीन शरीरों से शोभित करावो, इस महान् उपकारको अपने हृदय में रखकर तुम युद्ध और दोषबुद्धि को त्याग करो, क्षत्रिय को स्वधर्मयुक्त कार्यके करने में दोष नहीं होताहै ॥ २२॥

मूलम्।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः २३

पदच्छेदः।

न, एनम्, छिन्दन्ति, शस्त्राणि, न, एनम्, दहति, पावकः, न, च, एनम्, क्लेदयन्ति, आपः, न, शोषयति, मारुतः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

एनम्=इसको
न=न
शस्त्राणि=शस्त्र
छिन्दन्ति=काटसक्ते हैं
एनम्=इसको
न=न
पावकः=अग्नि
दहाति=जलासक्ता है
च=और

अन्वयः शब्दार्थ

एनम्=इसको
न=न
आपः=पानी
क्लेदयन्ति=गीला करसक्ते हैं
न=न
मारुतः=वायु
+एनम्=इसको
शोषयति=शोषणकरसक्ता है

भावार्थ।

प्रश्न ॥ जैसे घरके जलजाने से घरके भीतर जो स्तम्भ आदिक हैं, वे भी जलजाते हैं, वैसे देह के नाश होने से देह के अन्तर जो आत्मा है उसका भी नाश होजावेगा ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! शस्त्र शरीर के अङ्गों का छेदन करके शरीर के अन्तर्वर्ती आत्मा का छेदन नहीं करसक्ता है, क्योंकि शस्त्र सावयव पदार्थों काही छेदन करता है, और अग्नि शरीर को दाह करसक्ता है, क्योंकि शरीर सावयव और स्निग्ध है, निरवयव स्निग्धता से रहित आत्मा का दाह नहीं करसक्ता है, जल भी सावयव कोही गीला करता है, निरवयव आत्माको गीला नहीं करसक्ता है, और

वायु रसवाले पदार्थकोही सुखा सक्ता है, रसरहित आत्माको नहीं सुखासक्ता है, और ये चारों तत्त्व आत्मा की सत्तासेही अपने अपने कामों को करते हैं, विना आत्मा की सत्ताके ये कुछ भी नहीं करसक्ते हैं ॥ २३ ॥

मूलम् ।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यःसर्वगतःस्थाणुरचलोऽयं सनातनः २४

पदच्छेदः ।

अच्छेद्यः, अयम्, अदाह्यः, अयम्, अक्लेद्यः, अशोष्यः, एव, च, नित्यः, सर्वगतः, स्थाणुः, अचलः, अयम्, सनातनः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

अयम्=यह जीवात्मा
अच्छेद्यः=कटने योग्य नहीं है
अयम्=यह
अदाह्यः=जलनेयोग्य नहीं है
अयम्=यह
अक्लेद्यः=गलनेयोग्य नहीं है

अन्वयः **शब्दार्थ**

च=और
अशोष्यःएव=शोषणयोग्य नहीं है
अयम्=यह
नित्यः=नित्य है
सर्वगतः=व्यापक है
स्थाणुः=स्थिर है
अचलः=अचल है
सनातनः=सनातन है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! शस्त्रादिक आत्मा के नाश करने में असमर्थ हैं, क्योंकि आत्मा अच्छेद्यहै, अदाह्यहै, अक्लेद्यहै, अशोष्यहै, नित्यहै, सर्वगत है, स्थिरहै, अचल है, सनातन है, अग्नि आदिक जो चार भूत हैं सो एक दूसरेके नाशके हेतु हैं, सबके अन्तर जो आत्मा है उसके नाशके हेतु ये तत्व नहीं होसक्ते हैं, और चूंकि आत्मा नित्यहै, सर्वगत है, सर्वव्यापीहै, स्थाणुवत् स्थिरहै, क्रियारहित है, इसलिये वह उत्पत्तिवाला नहीं है, और सर्वगत होने के कारण प्राप्त होनेके योग्य भी नहीं है, क्योंकि वह नित्य प्राप्त है, और स्थिर होनेके कारण आत्मा विकारी भी नहीं है, और अचल होने के कारण संस्कारी भी नहीं है, गुणों के आरोपका नाम संस्कार है, अथवा दोष के अपनयन का नाम संस्कारहै, सो आत्मा में गुणों का आरोप्य या दोषका अपनयन यानी दूरीकरण नहीं बनता है, क्योंकि आत्मा निर्गुण, और दोषसे रहित है, और शस्त्रादिक भी इसीकी सत्ता करके अपने कार्य को करते हैं, इसलिये आत्माके ऊपर शस्त्रादिक अपना कार्य नहीं करसक्ते हैं ॥ २४ ॥

मूलम्।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि २५

पदच्छेदः ।

अव्यक्तः, अयम्, अचिन्त्यः, अयम्, अविकार्यः, अयम्, उच्यते, तस्मात्, एवम्, विदित्वा, एनम्, न, अनुशोचितुम्, अर्हसि ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
अयम्=यह	तस्मात्=इसलिये
अव्यक्तः=अप्रकट	एवम्=इसप्रकार
अयम्=यह	एनम्=इसको
अचिन्त्यः=अचिन्त्य	विदित्वा=जान करके
अयम्=यह	न=नहीं
अविकार्यः=विकार रहित	अनुशोचितुम्=शोच करने
उच्यते=कहाजाता है	अर्हसि=योग्य तू है

भावार्थ ।

संसाररूपी समुद्र में मग्न हुये जीवों के उद्धार के लिये कृपालु जो भगवान् हैं, वे बारबार उसी अद्वैत ब्रह्मकाही प्रतिपादन करते हैं, इसी हेतु से इन वाक्यों में पुनरुक्ति दोष नहीं आता है, भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! यह आत्मा अव्यक्त है, जो इन्द्रियों करके जाना जाता है वह व्यक्त कहाता है, आत्मा इन्द्रियों करके नहीं जाना जाता है, इसी से वह अव्यक्त कहा जाताहै, और जो अतीन्द्रिय है, उसमें अनुमान प्रमाण की प्रवृत्ति भी नहीं होती है, इसलिये आत्मा अनुमान

प्रमाण का विषयभी नहीं है, और जो विकारी इन्द्रियां हैं वे अर्थापत्ति प्रमाण के विषय हैं, अविकारी आत्मा अर्थापत्ति प्रमाण का विषय नहीं है, और रूपादिक जो इन्द्रियों के विषय हैं, और इन्द्रियों का समूहरूप जो लिङ्गशरीर है, वह जाग्रत् अवस्था में अनुमानका विषय है, और कारण शरीर सुषुप्ति में साक्षीका विषयहै, इस कारण शरीर से भिन्न जो है उसको भी विषय करने वाला आत्मा है, और वेद भी आत्माको अव्यक्तरूपही प्रतिपादन करता है, उस आत्मा को जानकर हे अर्जुन ! तुम वृथा शोक करने के योग्य नहीं हो ॥ २५ ॥

मूलम् ।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि २६

पदच्छेदः ।

अथ, च, एनम्, नित्यजातम्, नित्यम्, वा, मन्यसे, मृतम्, तथा, अपि, त्वम्, महाबाहो, न, एवम्, शोचितुम्, अर्हसि ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

च=और
अथ=अगर
एनम्=इसको

अन्वयः **शब्दार्थ**

नित्यजातम्=नित्य उत्पन्न हुआ
वा=और

नित्यम्=नित्य
मृतम्=मराहुआ
मन्यसे=मानता है तू
तथापि=तौभी
त्वम्=तू

महाबाहो=हे लम्बी भुजावाला !
एवम्=इसप्रकार
शोचितुम्=शोचने को
न=नहीं
अर्हसि=योग्य है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! यदि आत्मा को श्रवण करके तुम जाननेको समर्थ नहीं हो, और बौद्ध के या चार्वाकके मतको स्वीकार करके आत्मा को उत्पत्ति नाशवाला तुम मानते हो, तौ भी तुमको शोक करना उचित नहीं है, तब फिर वैदिकमत को आश्रयण करके शोक करना ऐसी कुबुद्धि तुम्हारे में कहां से होगई है, बौद्धादिकों के मतों में भी तो जन्मान्तर नहीं है, जब उनके मत से भी युद्ध में भीष्मादिकों के मारनेका दोष नहीं हो सक्ता है तब वैदिक सिद्धान्त से दोष कैसे होसक्ता है ॥ २६ ॥

मूलम् ।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्माद्परिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि २७

पदच्छेदः ।

जातस्य, हि, ध्रुवः, मृत्युः, ध्रुवम्, जन्म, मृतस्य, च,

तस्मात्, अपरिहार्ये, अर्थे, न, त्वम्, शोचितुम्, अर्हसि ॥

अन्वयः शब्दार्थ

हि=क्योंकि
जातस्य=पैदाहुये का
ध्रुवः=निश्चय करके
मृत्युः=मृत्यु है
च=और
मृतस्य=मरेहुये का
ध्रुवम्=निश्चय करके
जन्म=जन्म है
तस्मात्=इसलिये

अन्वयः शब्दार्थ

अपरिहार्ये अर्थे=जिसका उपाय नहीं होसक्ता है उस बात में
न=नहीं
त्वम्=तू
शोचितुम्=शोचने को
अर्हसि=योग्य है

भावार्थ।

यदि ऐसा कहो कि आत्मा को नित्य मान करके मैं शोक करताहूं, क्योंकि दृष्ट अदृष्ट दुःखों का होना भी नित्य पदार्थ में ही बनता है, तो हे अर्जुन ! सुनो पूर्व जन्म के कर्मों करके जो आत्मा को इस जन्म में शरीर मिलाहै उसका नाश भी अवश्य होगा, और इस जन्म में जो कर्म किये हैं उनके फल के भोगने के लिये फिर मरने से उत्तर दूसरा शरीर भी ज़रूरही मिलेगा, अतएव दूरीकरण करनेको अशक्य जो जन्म मरण हैं उन के लिये तुम शोक करने के योग्य नहीं हो ॥ २७ ॥

मूलम् ।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना २८

पदच्छेदः ।

अव्यक्तादीनि, भूतानि, व्यक्तमध्यानि, भारत, अव्यक्तनिधनानि, एव, तत्र, का, परिदेवना ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अव्यक्तादीनि=	आदि नहीं है प्रकट जिनका	भारत=	हे अर्जुन !
व्यक्तमध्यानि=	मध्य है प्रकट जिनका	भूतानि=	प्राणी हैं
अव्यक्तनिधनानि=	अन्त है नहीं प्रकट जिनका ऐसे जो	तत्र=	उन बिषे
		एव=	निश्चय करके
		का=	क्या
		परिदेवना=	शोक है

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ अर्जुन कहता है कि यदि आत्मा शोक करने के योग्य नहीं है, पर शरीरों का नाश तो शोक करने के योग्य है, इसी वास्ते मैं भीष्मादिकों के शरीरों के लिये शोक करताहूं ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते कि हे अर्जुन ! उत्पत्ति से पूर्वभूतों के कार्य जो शरीर हैं वे दृष्टिगोचर नहीं थे, और अन्त में यानी

नाश होने के पश्चात् भी दृष्टिगोचर नहीं होते हैं, इस लिये उत्पत्ति से उत्तर और नाशसे पूर्व मध्य बिषे भी दृष्टिगोचर जो होरहे हैं, वह कहनेमात्रही हैं, वास्तव में नहीं हैं, क्योंकि जो वस्तु आदिमें नहीं है, और अन्तमें भी नहीं है, वह मध्यमें यानी प्रतीतिकाल में भी वास्तवमें नहीं है, जैसे स्वप्नके अथवा इन्द्रजालादिकों के पदार्थ जो उत्पत्ति से पूर्व और नाशसे पश्चात् नहीं होते हैं वे मध्यमें भी नहीं होते हैं, केवल भ्रान्ति करकेही प्रतीत होते हैं, वैसेही जाग्रत् के पदार्थ भी हैं, ये भी अज्ञान करकेही प्रतीत होते हैं, वास्तव से नहीं, स्वप्नमें पुत्रादिकों को प्राप्त होकर जाग्रत् में अज्ञानी पुरुष भी उनके नाश होनेपर उनका शोक नहीं करते हैं, क्योंकि वे उनके नहीं थे, ऐसेही ये सब सम्बन्धी न तुम्हारे हैं, न तुम उनके हो, इस शास्त्रीय ज्ञानको प्राप्त होकर तुम इनके शोक करने के योग्य नहीं हो ॥ २८ ॥ मूलम्।

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः। आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् २९

पदच्छेदः।

आश्चर्यवत्, पश्यति, कः, चित्, एनम्, आश्चर्यवत्, वदति, तथा, एव, च, अन्यः, आश्चर्यवत्, च, एनम्,

अन्यः, शृणोति, श्रुत्वा, अपि, एनम्, वेद, न, च, एव, कः, चित् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
कश्चित्	कोई
एनम्	इसको
आश्चर्यवत्	आश्चर्यवत्
पश्यति	देखता है
तथा एव	वैसेही
च	और
अन्यः	कोई
एनम्	इसको
आश्चर्यवत्	आश्चर्यवत्
वदति	कहता है
च	और
अन्यः	कोई
एनम्	इसको
आश्चर्यवत्	आश्चर्यवत्
शृणोति	सुनताहै
च	और
कश्चित्	कोई
एनम्	इसको
श्रुत्वा अपि	सुन करके भी
न वेद	नहीं जानताहै

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! समाधि के परिपक्क से वेदान्तवाक्यजन्य बुद्धिकी वृत्तिमें, स्थिर शुद्धजल बिषे चन्द्रप्रतिबिम्बवत्, आत्मा को जो कोई विद्वान् देखताहै, सो वह विद्वान् आश्चर्यकी नाईं है, और जिस आत्माको वह देखताहै वह आत्मा भी आश्चर्य की नाईं है, और जो उसका देखना है वह भी आश्चर्यकी नाईं है, और आत्मज्ञानका उपदेश करने वाला भी आश्चर्यकी नाईं है, क्योंकि उसका उपदेश

कर्म, उपासना आदिकों से विलक्षण, अज्ञानियों के चित्तमें शीघ्र आरूढ़ नहीं होसक्ताहै, और चूंकि वह निःस्पृह है, इसलिये वह भी आश्चर्यरूपहै, और जो ज्ञानवान् का उपदेशहै, यानी निर्विकल्पसाक्षी आत्मा का जो कथनहै, वह भी आश्चर्यवत्‌है, और जो मुमुक्षु उसके उपदेश से आत्मज्ञानको प्राप्त होताहै वह भी दुर्लभहै, अर्थात् श्रवण करनेके योग्य आत्मा, और उस का श्रवण और श्रोता यानी श्रवण करनेवाला ये तीनों आश्चर्यवत्‌हैं, यानी दुर्लभहैं, क्योंकि कोई तो आत्मा को देखताहै, परन्तु कहता नहीं, और कोई देखता भी है और कहता भी है, और कोई उपदेष्टासे सुनता है, परन्तु जानता नहीं है, कोई सुनताभी है, और जानता भी है, और कोई न सुनताहै, न जानताहै, न कहता है ॥ २९ ॥

मूलम्।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात् सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ३०

पदच्छेदः।

देही, नित्यम, अवध्यः, अयम, देहे, सर्वस्य, भारत, तस्मात्, सर्वाणि, भूतानि, न, त्वम्, शोचितुम्, अर्हसि ॥

अन्वयः शब्दार्थ

भारत=हे अर्जुन!
अयम्=यह

अन्वयः शब्दार्थ

देही=जीवात्मा
सर्वस्य=सबके

देहे=देह में
नित्यम्=नित्य है
अवध्यः=अवध्य है
तस्मात्=इसलिये
सर्वाणि=सब

भूतानि=प्राणियों को
त्वम्=तू
शोचितुम्=शोचने
अर्हसि=योग्य
न=नहीं है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! देह के नाश होने पर भी आत्माका नाश नहीं होता है, इसलिये तुम भीष्मादिकों के शरीरों में ममत्व वृत्ति का त्याग करके शोक मत करो, स्थूल शरीर के नाशको दूर करना अशक्य है, और सूक्ष्म शरीर का नाश विना ज्ञान के होता नहीं, यह भी मोक्षपर्यन्त स्थायी है, इसलिये भी शोक करना योग्य नहीं, स्थूलशरीर और सूक्ष्मशरीर और आत्मा ये तीनों शोक करने के योग्य नहीं, स्थूलशरीर और सूक्ष्मशरीर के साथ आत्माका तादात्म्य अध्यास होने से मिथ्या संसार भ्रम करके सत्यकी नाईं प्रतीत होता है, सो उस भ्रमका और अध्यास का मूल कारण अविद्या है, उस अविद्याके दूर करने से तुम शोकरहित होगे, अतएव अविद्या के दूर करने का तुम यत्न करो ॥ ३० ॥

मूलम् ।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ३१

पदच्छेदः ।

स्वधर्मम्, अपि, च, अवेक्ष्य, न, विकम्पितुम्, अर्हसि, धर्म्यात्, हि, युद्धात्, श्रेयः, अन्यत्, क्षत्रियस्य, न, विद्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
स्वधर्मम्=अपने धर्मको
अपि=भी
अवेक्ष्य=देखकरके
न=नहीं
विकम्पितुम्=कांपने
अर्हसि=योग्य तू है

अन्वयः शब्दार्थ

हि=क्योंकि
क्षत्रियस्य=क्षत्रिय को
धर्म्यात्=धर्मयुक्त
युद्धात्=युद्ध से
श्रेष्ठः=श्रेष्ठ
अन्यत्=और कोई वस्तु
न विद्यते=नहीं है

भावार्थ ।

पूर्व जो भगवान् ने दो प्रकार का मोह अर्जुन के प्रति कहा था, उन दोनों में से अर्जुन के साधारण मोह को तीनों शरीरों से पृथक्, आत्मा के विवेचन करके दूर करदिया, अब अर्जुन के असाधारण मोह के दूर करने के लिये भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! तुम आत्मतत्त्व को जानकर युद्ध करो, क्योंकि युद्ध करना शास्त्र प्रमाणद्वारा क्षत्रिय का स्वधर्म है, अपने धर्म को विचार करके तुम युद्ध करो, क्योंकि राजा के लिये भीख आदिक कल्याणकारक नहीं हैं,

और मनुने भी कहा है ॥ समोत्तमाधमै राजा चाहूतः पालयन्प्रजाः । न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ॥ १ ॥ सम, उत्तम, और अधम शत्रुवों करके बुलायाहुआ राजा, प्रजाका पालन करताहुआ, और अपने क्षात्रधर्म को स्मरण करता हुआ, संग्राम से कभी भी निवृत्त न होवे, इसलिये हे अर्जुन ! तुम युद्ध अवश्य करो ॥ ३१ ॥

मूलम् ।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ३२

पदच्छेदः ।

यदृच्छया, च, उपपन्नम्, स्वर्गद्वारम्, अपावृतम्, सुखिनः, क्षत्रियाः, पार्थ, लभन्ते, युद्धम्, ईदृशम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
च	=और	सखिनः	=भाग्यवान्
अपावृतम्	=खुलाहुआ	क्षत्रियाः	=क्षत्रिय
स्वर्गद्वारम्	=स्वर्ग का दरवाज़ा	पार्थ	=हे अर्जुन !
यदृच्छया	=अपनेआप	ईदृशम्	=ऐसे
उपपन्नम्	=प्राप्तहुआहै	युद्धम्	=युद्धको
		लभन्ते	=प्राप्तहोतेहैं

भावार्थ।

प्रश्न ॥ यद्यपि युद्ध करना स्वधर्म है, तौ भी भीष्मादिक के साथ युद्ध करना निन्दित है ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! यदृच्छा करके यानी यत्नसे विनाही आपसे आप भाग्यशाली क्षत्रियों को ऐसा युद्ध प्राप्त होताहै, क्योंकि ऐसा युद्ध स्वर्गका साधन है, इसलिये यह त्यागने योग्य नहीं है, ये भीष्मादिक सब आततायी हैं, इनके मारने में तुमको दोष भी नहीं, मनुने भी कहाहै कि ॥ गुरुं वा बालवृद्धं वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् । नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ॥ १ ॥ गुरुहो, वा बालकहो, वा वृद्धहो, वा ब्राह्मणहो, वा शास्त्रका वेत्ताहो, यदि इनमें से कोई भी आततायी हो, तो उसके मारने का दोष मारनेवाले को नहीं होताहै ॥ १ ॥ और यदि वेदान्त का जाननेवालाभी आततायी मारनेको सम्मुख आवे तो उसको भी अवश्यही मारे, क्योंकि आततायी कैसाही हो उसके मारने से उसके हन्ताको दोष नहीं होता है, क्या तुमको नहीं मालूम है कि भीष्मजी ने भी तो अपने गुरु परशुरामजी से युद्ध किया था, इस लिये उनसे भागना उचित नहीं, तुमको भी इनके साथ युद्ध करना उचित है ॥ ३२॥

मूलम्।

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।

ततः स्वधर्मं कीर्तिञ्च हित्वा पापमवाप्स्यसि ३३

पदच्छेदः।

अथ, चेत्, त्वम्, इमम्, धर्म्यम्, संग्रामम्, न, करिष्यसि, ततः, स्वधर्मम्, कीर्तिम्, च, हित्वा, पापम्, अवाप्स्यसि ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अथ	और	ततः	तो
चेत्	अगर	स्वधर्मम्	अपने धर्म
त्वम्	तू	च	और
इमम्	इस	कीर्तिम्	कीर्तिको
धर्म्यम्	धर्मरूपी	हित्वा	छोड़कर
संग्रामम्	लड़ाई को	पापम्	पापको
न	नहीं	अवाप्स्यसि	प्राप्त होगा
करिष्यसि	करेगा		

भावार्थ।

अर्जुन कहताहै कि, हे महाराज! जब मुझको युद्धके फलकी इच्छा नहीं है तब फिर मैं वृथा युद्ध क्यों करूं? उसपर भगवान् कहते हैं कि यदि भीष्मादिकों करके युद्ध के लिये बुलायाहुआ तू इनके साथ युद्ध नहीं करेगा, और भय करके अपने धर्म से हट जायगा, तो जो तूने पूर्व अनेक जन्मों में पुण्यका संग्रह किया

है, उसके त्याग से और यशके त्याग से पापको ही प्राप्त होगा ॥ ३३ ॥

मूलम्।

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ३४

पदच्छेदः।

अकीर्तिम्, च, अपि, भूतानि, कथयिष्यन्ति, ते, अव्ययाम्, सम्भावितस्य, च, अकीर्तिः, मरणात्, अतिरिच्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
ते=तेरे
अव्ययाम्=नाशरहित
अकीर्तिम्=अपयशको
अपि=भी
भूतानि=मनुष्य
कथयिष्यन्ति=कहेंगे

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
सम्भावितस्य=प्रतिष्ठित पुरुष की
अकीर्तिः=अकीर्ति
मरणात्=मरने से भी
अतिरिच्यते=ज्यादा बढ़ कर है

भावार्थ।

भगवान् फिर कहते हैं कि, हे अर्जुन ! इस रणभूमि में आकर यदि तुम अब युद्ध नहीं करोगे तो तुम्हारे शत्रु तुम्हारी निन्दा करेंगे, और कहेंगे कि, अर्जुन न शूरमा है, न धर्मात्मा है, और जो प्रतिष्ठित पुरुष है

वह निन्दा से मरनेको उत्तम मानता है, तुम तो बड़े प्रतिष्ठित हो, क्योंकि साक्षात् महादेव के साथ तुमने संग्राम किया है, इसलिये तुम्हारी निन्दा होनी अच्छी नहीं, तुम युद्ध अवश्य करो ॥ ३४ ॥

मूलम् ।

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषाञ्च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ३५

पदच्छेदः ।

भयात्, रणात्, उपरतम्, मंस्यन्ते, त्वाम्, महारथाः, येषाम्, च, त्वम्, बहुमतः, भूत्वा, यास्यसि, लाघवम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

+ परंतप=हे अर्जुन !
भयात्=भयके कारण
रणात्=रणसे
उपरतम्=भागाहुआ
त्वाम्=तुझको
महारथाः=शूरवीर
मंस्यन्ते=समझेंगे
च=और

अन्वयः शब्दार्थ

येषाम्=जिनका
त्वम्=तू
बहुमतः=बड़ा माना हुआ
भूत्वा=होकर
+ तेषाम्=उनके
लाघवम्=लघुता को
यास्यसि=प्राप्त होगा

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ युद्धके न करने से यदि प्राकृतपुरुष निन्दा

करें पर भीष्मादिक तो निन्दा नहीं करेंगे ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! भीष्म, द्रोण और शल्य तथा कर्णादिक भी तुमको महान् पुरुषों से बहिष्कृत मानेंगे, वे कृपा करके युद्धसे तुमको पराङ्मुख नहीं मानेंगे, जो भीष्मादिक तुमको गुणों के कारण सबसे अधिक मानते थे, वही अब तुमको स्वधर्म में स्थित न होने के कारण, सबसे निकृष्ट मानेंगे ॥ ३५ ॥

मूलम् ।

अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ३६

पदच्छेदः ।

अवाच्यवादान्, च, बहून्, वदिष्यन्ति, तव, अहिताः, निन्दन्तः, तव, सामर्थ्यम्, ततः, दुःखतरम, नु, किम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
च=और	सामर्थ्यम्=पुरुषार्थ को
बहून्=बहुत	निन्दन्तः=निन्दाकरतेहुये
अवाच्यवादान्=अनुचित वचनों को	वदिष्यन्ति=कहेंगे
तव=तेरे	ततः=उससे
अहिताः=शत्रु	दुःखतरम्=ज़्यादा दुःख
तव=तेरे	त्वाम्=तुझको
	नु किम्=क्या होगा

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ युद्धके न करने से भीष्मादिक मेरे उपकार को न मानैं पर दुर्योधनादिक तो मेरे उपकार को मानेंगे, क्योंकि युद्ध न करने से उनके प्राणों की रक्षा होगी ॥ **उत्तर** ॥ भगवान् कहते हैं यदि तुम युद्धको नहीं करोगे तब दुर्योधनादिक जो तुम्हारे शत्रु हैं वेही अवाच्यशब्दों करके तुम्हारी निन्दा करेंगे, तब फिर इससे अधिक दुःख और तुमको क्या होगा ॥ ३६ ॥

मूलम् ।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ३७

पदच्छेदः ।

हतः, वा, प्राप्स्यसि, स्वर्गम्, जित्वा, वा, भोक्ष्यसे, महीम्, तस्मात्, उत्तिष्ठ, कौन्तेय, युद्धाय, कृतनिश्चयः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

वा=अगर
+ त्वम्=तू
हतः=मारा गया तो
स्वर्गम्=स्वर्ग को
प्राप्स्यसि=प्राप्त होगा
वा=अगर

अन्वयः शब्दार्थ

जित्वा=जीता तो
महीम्=पृथिवी को
भोक्ष्यसे=भोगेगा
तस्मात्=इसलिये
कौन्तेय=हे अर्जुन !
+ त्वम्=तू

कृतनिश्चयः=जिसने निश्चय कियाहै	युद्धाय=युद्धके लिये
	उत्तिष्ठ=उठखड़ा हो

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ युद्धके न करने से शत्रु निन्दा करेंगे, और युद्ध के करने से भीष्मादिकों के वध्य होने पर मध्यस्थ पुरुष निन्दा करेंगे, तब उभय पाश होती है, इसमें क्या करना चाहिये ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं, स्वधर्म करनेवालों की मध्यस्थ पुरुष कभी नहीं निन्दा करते हैं, और स्वधर्म करनेवालों की निन्दा किसी शास्त्र में भी नहीं लिखी है, अतएव तुम स्वधर्म कोही करो ॥ ३७ ॥

मूलम् ।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ३८

पदच्छेदः ।

सुखदुःखे, समे, कृत्वा, लाभालाभौ, जयाजयौ, ततः, युद्धाय, युज्यस्व, न, एवम्, पापम्, अवाप्स्यसि ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सुखदुःखे	सुख और दुःखको	लाभालाभौ	लाभ और हानिको

जयाजयौ=जीत और हार को
समे=बराबर
कृत्वा=समझकरके
ततः=फिर
युद्धाय=युद्धके लिये
युज्यस्व=तैयार हो

एवम्=इसप्रकार यानी ऐसा करने से
पापम्=पापको
न=नहीं
अवाप्स्यसि=प्राप्त होगा तू

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! सुख और सुख का कारण लाभ और लाभका कारण जय, इनमें राग को त्याग करके और दुःख और दुःखका कारण हानि और उसका कारण पराजय, इनमें द्वेषको त्याग करके, युद्धके लिये तैयार हो जाव ऐसा करनें से तुम पापसे लिपायमान नहीं होवोगे, क्योंकि जो फलकी इच्छा करके युद्धमें गुरु आदिकों का वध करता है वह घोर पापको प्राप्त होता है, और जो फलकी इच्छासे रहित होकर युद्धको स्वधर्म जानकर करता है वह पापको नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि युद्ध कामुककर्म नहीं है, यह नित्यकर्म है, और नित्यकर्म के न करने में प्रत्यवाय होता है; करने में नहीं होता है ॥ ३८ ॥

मूलम् ।

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ।

बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ३९

पदच्छेदः।

एषा, ते, अभिहिता, सांख्ये, बुद्धिः, योगे, तु, इमाम्, शृणु, बुद्ध्या, युक्तः, यया, पार्थ, कर्मबन्धम्, प्रहास्यसि ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

एषाबुद्धिः=यह पूर्वोक्त मति
ते=तेरे लिये
सांख्ये=आत्मज्ञान बिषे
अभिहिता=कहीगई है
या=जो
बुद्धिः=बुद्धि
योगे=कर्मयोग बिषे

अन्वयः **शब्दार्थ**

+कथयिष्यते=कही जावेगी
तु इमाम्=उसको
शृणु=सुन
यया बुद्ध्या=जिस बुद्धिसे
युक्तः=युक्त हुआ
पार्थ=हे अर्जुन !
कर्मबन्धम्=कर्म के बन्धनको
प्रहास्यसि=तू त्यागदेगा

भावार्थ।

प्रश्न ॥ जब एकही पुरुषके प्रति एकही कालमें परस्पर विरोधी ज्ञान और कर्मका उपदेश बनता नहीं है, तब फिर आप मुझे दोनोंका उपदेश क्यों करते हैं ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जो शास्त्र की व्यवस्थाको श्रवण करता है, उसके प्रति अवस्थाभेद से ज्ञान और कर्म का उपदेश बनता है, संपूर्ण

उपाधियों से रहित आत्मतत्त्वका कथन किया जावे, जिस करके उसका नाम सांख्य यानी उपनिषद् है, उस उपनिषद् करके जो प्रतिपाद्य ब्रह्म है उसका नाम सांख्य है, उस ब्रह्मका जो ज्ञान है वही अज्ञानका नाशक है, जिसको मैंने तुम्हारे प्रति कथन किया है, और जो मुझसे कथन किये हुये अर्थ में चित्तके दोषसे तुम्हारी बुद्धि नहीं ठहरती है तब चित्तके दोषके हटानेके लिये और तत्त्वज्ञानके उदयके लिये निष्कामकर्मयोगका तुम अनुष्ठान करो, क्योंकि शुद्ध बुद्धिवाले के लिये आत्मज्ञानका उपदेश है मलिनबुद्धिवाले के लिये निष्कामकर्मका अनुष्ठान है, निष्कामकर्म के अनुष्ठान से उत्पन्न हुई जो निश्चयरूपी बुद्धि है उस करके स्वकर्म में युक्त होकर चित्तकी अशुद्धि निमित्तक जो बन्धन है उससे तुम छूट जावोगे ॥ ३९ ॥

मूलम् ।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ४०

पदच्छेदः ।

न, इह, अभिक्रमनाशः, अस्ति, प्रत्यवायः, न, विद्यते, स्वल्पम्, अपि, अस्य, धर्मस्य, त्रायते, महतः, भयात् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

अभिक्रमनाशः = निष्काम कर्मयोग के आरम्भ का नाश

न इह = कभी नहीं इस मोक्ष मार्ग बिषे

अस्ति=है

+ च=और

अन्वयः **शब्दार्थ**

प्रत्यवायः=दोष निष्कामकर्म में

न विद्यते=नहीं है

अस्य=इस

धर्मस्य=धर्मका

स्वल्पम् अपि=थोड़ाभी कर्म किया हुआ

महतः=बड़े

भयात्=भयसे

त्रायते=बचालेता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! कल्याणका कारक जो निष्कामकर्म है, उसके फलका नाश कदाचित् नहीं होताहै, और जो सकामकर्म है वह यदि किञ्चित् अङ्गसे न्यून होजावे तब प्रत्यवायका जनक होताहै, और निष्फल भी होजाताहै, सो ऐसा निष्कामकर्म नहीं है, क्योंकि निष्कामकर्म किञ्चित् अङ्गसें न्यून होने परभी प्रत्यवायका जनक नहीं है, और न निष्फल होताहै, चित्तकी शुद्धि के लिये थोड़ासा भी कियाहुआ धर्म बड़ेभारी भयसे रक्षा करता है ॥ ४० ॥

मूलम्।

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ४१

पदच्छेदः ।

व्यवसायात्मिका, बुद्धिः, एका, इह, कुरुनन्दन, बहुशाखाः, हि, अनन्ताः, च, बुद्धयः, अव्यवसायिनाम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
कुरुनन्दन	=हे अर्जुन !	बुद्धयः	=बुद्धियां
व्यवसायात्मिका	=आत्मा के निश्चयकरनेवाला	बहुशाखाः	=बहुत भेद वाली
बुद्धिः	=ज्ञान	+ च	=और
एकाहि	=एकही है	अनन्ताः	=बहुत प्रकार की
च	=और	इह	=इस मोक्षमार्ग बिषे हैं
अव्यवसायिनाम्	=अविवेकी पुरुषोंकी		

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! आत्मतत्त्व को निश्चय करनेवाली जो बुद्धि है वह चारों वर्णों के लिये एकही तरह की है, और वही वेद वाक्यजन्य

निश्चयात्मिका बुद्धि विपरीत बुद्धियों का बाधक है, और जो अनिश्चयात्मिका बुद्धि है वह अज्ञानियों की होती है, सो कामना के भेद से और शाखा के भेद से नानाप्रकार की है, और चूंकि संसारमें मूढ़ चित्तवाले अज्ञानी नाना हैं, इसलिये उनकी बुद्धियां भी नाना हैं, और निश्चयात्मिका बुद्धि सब ज्ञानियों में एकही है, और बुद्धियों के भेद से ज्ञानी अज्ञानी के निश्चय का भी भेद है ॥ ४१ ॥

मूलम्।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ४२

पदच्छेदः।

याम्, इमाम्, पुष्पिताम्, वाचम्, प्रवदन्ति, अविपश्चितः, वेदवादरताः पार्थ, न, अन्यत्, अस्ति, इति, वादिनः ॥

मूलम्।

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ४३

पदच्छेदः ।

कामात्मानः, स्वर्गपराः, जन्मकर्मफलप्रदाम्, क्रियाविशेषबहुलाम्, भोगैश्वर्यगतिम्, प्रति ॥

(श्लोक ४२ और ४३ का अन्वय और शब्दार्थ एक साथही कियागया है)

अन्वयः	शब्दार्थ
जन्मकर्मफलप्रदाम्	=कर्म का फल जन्म देने वाली है जो
क्रियाविशेषबहुलाम्	=क्रिया विशेष अनेक प्रकार का है
याम्	=जिसमें
भोगैश्वर्यगतिं प्रति	=भोग और ऐश्वर्य की प्राप्तिहै जिसमें
न अन्यत् अस्ति	=उससे और नहीं है दूसरा कोई
इति	=ऐसी
इमाम्	=इस

अन्वयः	शब्दार्थ
पुष्पिताम्	=पुष्पित
वाचम्	=वाणी को
पार्थ	=हे अर्जुन !
अविपश्चितः	=मूर्ख कर्मकाण्डी
वेदवादरताः	=वेदके वाक्यों में प्रीति रखने वाले
वादिनः	=वादी
कामात्मानः	=कामी
स्वर्गपराः	=स्वर्ग परमार्थी पुरुष
प्रवदन्ति	=बारबार व्याख्यान करते हैं

मूलम् ।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयाऽपहृतचेतसाम् ।

व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ४४

पदच्छेदः।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम्, तया, अपहृतचेतसाम्, व्यवसायात्मिका, बुद्धिः, समाधौ, न, विधीयते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
तया	उस पुष्पित वाणी करके	व्यवसायात्मिका	आत्मा की निश्चय करने वाली
अपहृतचेतसाम्	अच्छी प्रकार से हरा गया है चित्त जिनका ऐसे	बुद्धिः	बुद्धि
भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम्	भोग और ऐश्वर्यमें लगे हुयों की	समाधौ	समाधि में
		न विधीयते	नहीं लगती है

भावार्थ।

जो पुष्पित विष की लताकी तुल्य बड़ी सुन्दर प्रतीत होती है, और विना विचार के रमणीय मालूम होती है, वही वेद की अर्थवादरूपी वाणी है, वही वाणी जन्म मरणकी देनेवाली है, क्योंकि उस वाणी को श्रवण करके पुरुष कर्म करता है, फिर उसका फल जो जन्म मरण है उसको प्राप्त होताहै, घटीयन्त्र की तरह इस जन्म मरणरूपी चक्र को चलाने वाली

वही वाणी है, और स्वर्ग के भोगोंकी प्राप्तिके लिये भिन्न भिन्न क्रिया जिस वाणी में विधान की हैं उस अतिविस्तारवाली वाणी को वेद के तात्पर्यको न जाननेवाले जो रागी पण्डित हैं वे कथन करते हैं, क्योंकि वेदके अर्थवाद वाक्यों में उनकी प्रीति है, यानी विश्वास है, इसलिये वे कहते हैं कि, पुत्र, पशु-आदिक फल के देनेवाले कर्मोंकोही वेद कहता, ज्ञान और ज्ञानके फलको नहीं कहता, और स्वर्गकी प्राप्ति कोही वे लोग मोक्ष मानते हैं, क्योंकि वैराग्यादिकों से उनके चित्त शून्य हैं, इसलिये वे मोक्षकी कथा कदापि नहीं सुनते हैं, ऐसे मूढ़ अज्ञानी पुरुषोंको समाधि-विषयक निश्चयात्मिका बुद्धि कदापि उत्पन्न नहीं होती है ॥ ४२।४३।४४ ॥

मूलम्।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वोनित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेमआत्मवान् ४५

पदच्छेदः।

त्रैगुण्यविषयाः, वेदाः, निस्त्रैगुण्यः, भव, अर्जुन, निर्द्वन्द्वः, नित्यसत्त्वस्थः, निर्योगक्षेमः, आत्मवान् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
अर्जुन=हे अर्जुन !
त्रैगुण्यविषयाः=तीनों गुणके हैं विषय जिनमें ऐसे
वेदाः=चारों वेद हैं
+ त्वम्=तू
निस्त्रैगुण्यः=गुणरहित
आत्मवान्=प्रमादरहित

अन्वयः शब्दार्थ
निर्द्वन्द्वः=सुखदुःखरहित
निर्योगक्षेमः=योग क्षेमरहित
नित्यसत्त्वस्थः=नित्यही सत्त्व बिषे स्थित होनेवाला
भव=हो

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! ॥ त्रैगुण्यविषया वेदाः ॥ अर्थात् तीनों गुणों का कार्य जो कर्म है उसी को वेद विषय करता है, यानी बोधन करताहै, कर्मकाण्डरूप जो वेद है वह कामना के अनुसार कर्म और कर्म के अनुसार फल को बोधन करता है, यानी सकामी पुरुषही कर्मकाण्डरूप वेद के अधिकारी हैं, निष्कामियों के प्रति अज्ञानही है, इसलिये तुमभी निष्काम हो, क्योंकि निष्कामकर्म बन्धनका हेतु नहीं है ॥ प्रश्न ॥ निष्काम होना अतिकठिन है, क्योंकि शरीरनिर्वाहके लिये अन्नवस्त्रादिकों की तो कामना बनी रहती है ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! तुम धैर्य को आश्रयण करके योगक्षेमसे रहित

हो, यानी योगक्षेमकी चिन्ता कोभी मत करो, क्योंकि अन्तर्यामी परमात्मा तुम्हारे योगक्षेमका करने वाला है, अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिका नाम योग है, और प्राप्तहुई वस्तुकी रक्षाका नाम क्षेम है, अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिकी चिन्ता मत करो, और प्राप्त वस्तुकी रक्षा की चिन्ताभी मत करो, बुद्धिकी वृत्तिको विक्षेप करने वाली योगक्षेमकी चिन्ता का त्याग करके अपने आत्मा में स्थित हो ॥ ४५ ॥

मूलम्।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ।
तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ४६

पदच्छेदः।

यावान्, अर्थः, उदपाने, सर्वतः, संप्लुतोदके, तावान्, सर्वेषु, वेदेषु, ब्राह्मणस्य, विजानतः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

यावान्=जितना
अर्थः=प्रयोजन
उदपाने=वापी, कूप, तड़ागादिमें सिद्ध होताहै
तावान्=उतना सब प्रयोजन

अन्वयः **शब्दार्थ**

सर्वतः=चारों तरफ़ से
संप्लुतोदके=भरेहुयेसमुद्र में एकही जगह सिद्ध होताहै
+ तथा=उसी तरह

+यावान्=जितना
+अर्थ=प्रयोजन
सर्वेषु वेदेषु=सब वेदों के अनेक कर्मों से सिद्ध. होता है

+तावान्=उतना सब प्रयोजन
विजानतः=ज्ञानी
ब्राह्मणस्य=ब्रह्मके जाननेवाले संन्यासी बिषे प्राप्तहै

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जैसे पर्वतों में से छोटे छोटे झरने गिरते हैं, उनमें से किसी में तो केवल हाथही धोयेजाते हैं, और किसी में पानही कियाजाता है, और किसी में स्नानही कियाजाताहै, और जो भारी जलाशय यानी तालाब है, उस एकमेंही स्नानादिक सब क्रिया होजाती हैं, उसीप्रकार भिन्न भिन्न शास्त्रों में कहे जो काम्यकर्म हैं, उन हरएक कर्म से जो फल होताहै, अर्थात् मनुष्यानन्द से लेकर ब्रह्मानन्दपर्यन्त जितना आनन्द है, उन सब आनन्दों से अधिक आनन्द आत्मज्ञानीको होता है, क्योंकि सब क्षुद्रविषयानन्द ब्रह्मानन्दकी लेशमात्रहैं, वे सब अविद्या करके कल्पित उपाधियों की न्यून अधिकता से अनेक प्रकारके होरहे हैं, क्योंकि जड़ दुःखरूप मिथ्या प्रपञ्च

में सुख कहां है किन्तु कहीं भी नहीं है, परन्तु सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म जो सर्वत्र व्यापक है उसीका एक लवमात्र आनन्द जगत् के विषयों में प्रतीत होता है, हे अर्जुन ! निष्कामकर्मोंको करके अन्तःकरण की शुद्धिद्वारा आत्मानन्द के उदय होने के लिये तुम यत्न करो, वह आनन्द ईश्वर बिषे बुद्धि को अर्पण करके अहंकार से रहित होकर निष्कामकर्मों के करने से होगा ॥ ४६ ॥

मूलम् ।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोस्त्वकर्मणि ४७

पदच्छेदः ।

कर्मणि, एव, अधिकारः, ते, मा, फलेषु, कदाचन, मा, कर्मफलहेतुः, भूः, मा, ते, सङ्गः, अस्तु, अकर्मणि ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

कर्मणि=कर्म में
एव=ही
ते=तेरा
अधिकारः=अधिकार है
फलेषु=फलोंबिषे

अन्वयः **शब्दार्थ**

कदाचन=कभी भी
मा=नहीं है
कर्मफलहेतुः=कर्म के फल का कारण
मा भूः=तू मत हो

+ च=और
ते=तेरी
सङ्गः=प्रीति
मा=न
अकर्मणि=अकर्म में यानी कर्मके न करने बिषे
अस्तु=होवै

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! जिसको ऐसा बोधहै कि मुझे यह कर्म करना चाहिये उसीका कर्म में अधिकार है, सो तुम्हारा कर्ममेंही अभी अधिकार है, वेदान्तवाक्यों के विचारमें तुम्हारा अधिकार नहीं है, और कर्म करने से पूर्व अथवा उत्तर यानी कर्म करने के पश्चात् इस कर्मका फल मैं भोगूंगा ऐसा बोध भी तुमको नहीं होना चाहिये ॥ प्रश्न ॥ मैं इन कर्मोंको करताहूं, इनके फलको मैं भोगूंगा, इस बुद्धि से विना भी कर्म अपनी सामर्थ्य से फलको उत्पन्न करदेगा ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जो फलकी कामना करके कर्म किया जाता है वही फलका उत्पादक होता है, जो कर्म फलकी कामना को त्याग करके कियाजाता है वह फलका जनक नहीं होता है, सो तुम फलकी कामना को त्याग करके निष्काम होकर कर्म को क़रो, क्योंकि जो निष्कामता करके कर्म कियाजाता है वह फलका कारण नहीं

होता है, और कर्म के न करने में तुम्हारी प्रीति नहीं होना चाहिये ॥ ४७ ॥

मूलम् ।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ४८

पदच्छेदः ।

योगस्थः, कुरु, कर्माणि, सङ्गम्, त्यक्त्वा, धनञ्जय, सिद्ध्यसिद्ध्योः, समः, भूत्वा, समत्वम, योगः, उच्यते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
धनञ्जय	हे अर्जुन !
सिद्ध्यसिद्ध्योः	सिद्धि और असिद्धि में
समः	तुल्य
भूत्वा	होकर
सङ्गम्	फलको
त्यक्त्वा	त्याग करके
च	और
योगस्थः	योगमेंस्थित होता हुआ
कर्माणि	कर्मोंको
कुरु	तू कर
+ इति	ऐसा
समत्वम्	सम होनाही
योगः	योग
उच्यते	कहाजाताहै

भावार्थ ।

अर्जुन कहताहै कि, हे भगवन्! कैसे निष्काम होकर कर्म करना चाहिये ? भगवान् कहते हैं कि

समाहितचित्त होकर यानी एकाग्रचित्त होकर और समतारूपी योग में स्थित होकर फलकी कामनाका त्याग करके और कर्तृत्वबुद्धि का त्याग करके और ईश्वरार्पण बुद्धि करके कर्म को करना चाहिये और फल की प्राप्ति में हर्षको त्याग करके और फलकी असिद्धि यानी अप्राप्ति में विषादको त्याग करके जो कर्म कियाजाता है उसीका नाम समतारूपी योग है ॥४८॥

मूलम् ।

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ४९

पदच्छेदः ।

दूरेण, हि, अवरम्, कर्म, बुद्धियोगात्, धनञ्जय, बुद्धौ, शरणम्, अन्विच्छ, कृपणाः, फलहेतवः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

धनञ्जय=हे अर्जुन !
बुद्धियोगात्=ज्ञानयोग से
कर्म=कर्म
दूरेण=अत्यन्त
अवरम्=निकृष्ट है
बुद्धौ=ज्ञानबिषे

अन्वयः शब्दार्थ

शरणम्=शरणकोयानी आश्रयको
अन्विच्छ=तलाशकर यानीइच्छाकर
हि=क्योंकि
फलहेतवः=कर्मके फलके चाहने वाले
कृपणाः=दुःखी होतेहैं

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ जब प्रयोजन के विना मन्दपुरुष की भी कर्म में प्रवृत्ति नहीं होती है तब फिर फल के विना निष्काम कर्मों को हम कैसे करें, फलकी कामना करके हम कर्मोंको क्यों न करें ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि फल की कामना करके कियेहुये जो कर्म हैं वही जन्मादिकों के हेतु हैं, और फलकी कामना से रहित होकर कियेहुये जो कर्म हैं वे आत्मज्ञानकी प्राप्ति के हेतु हैं, अतएव सकामकर्म निकृष्ट है, जो फलकी कामना करके कर्मोंको करता है वह कृपण है, जैसे लोकमें अतिकृपण कष्ट करके संग्रह कियेहुये धनसे दानादिजन्य भोगके भोगने में समर्थ नहीं होते हैं, वैसेही अतियत्न करके वैदिककर्मों के करनेवाले भी क्षुद्रविषयानन्द की अभिलाषा करके ब्रह्मानन्द को प्राप्त नहीं होते हैं इसी से वह भी कृपण कहे जाते हैं ॥ ४६ ॥

मूलम् ।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ५०

पदच्छेदः ।

बुद्धियुक्तः, जहाति, इह, उभे, सुकृतदुष्कृते, तस्मात्, योगाय, युज्यस्व, योगः, कर्मसु, कौशलम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
बुद्धियुक्तः=ज्ञानसेयुक्त हुआ पुरुष
इह=इसलोकमें
उभे=दोनों
सुकृतदुष्कृते=पुण्य और पापको
जहाति=त्याग देताहै

अन्वयः शब्दार्थ
तस्मात्=इसवास्ते
योगाय=योगके लिये
युज्यस्व=तैयार हो
कर्मसु=कर्मों में
योगः=योग
कौशलम्=चातुर्य है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! जो पुरुष समत्व बुद्धि करके युक्त हुआ स्वधर्म का अनुष्ठान करता है वह सहित मूलके पुण्य पापको नाश करदेताहै, और वही अन्तःकरण की शुद्धिद्वारा आत्मज्ञानको प्राप्त होकर ब्रह्मरूप होजाता है इसलिये तुमभी ज्ञानयोग की प्राप्ति के लिये यत्न करो ॥ ५० ॥

मूलम्।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ५१

पदच्छेदः।

कर्मजम्, बुद्धियुक्ताः, हि, फलम्, त्यक्त्वा, मनीषिणः, जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः, पदम्, गच्छन्ति, अनामयम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

जन्मबन्ध-विनिर्मुक्ताः = जन्मके बंधन से मुक्त हुये

+ च=और

बुद्धियुक्ताः=ज्ञानसे युक्त हुये

मनीषिणः=विद्वान् पुरुष

कर्मजम्=कर्मसे उत्पन्न हुये

अन्वयः शब्दार्थ

फलम्=फलको

त्यक्त्वा=त्यागकर

हि=निश्चयकरके

अनामयम्=दुःखरहित

पदम्=स्थानको

गच्छन्ति=प्राप्त होते हैं

भावार्थ।

प्रश्न ॥ सब पुरुषों को पापके नाश करनेकी आवश्यकता है परन्तु पुण्यके नाश करनेकी आवश्यकता किसीको भी नहीं है, क्योंकि पुण्यके नाश करने से मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती है ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! जन्म मरण का हेतु जो पुण्य हैं वही त्याग करने के योग्य है, परन्तु जो अन्तःकरण की शुद्धिका हेतु पुण्यहै वह त्याग करने के योग्य नहीं है, इसलिये अन्तःकरण की शुद्धिका हेतु जो निष्काम कर्म हैं उन्हींको तुम करो, क्योंकि अन्तःकरण की शुद्धिद्वारा तुम आत्मज्ञान को प्राप्त होवोगे ॥ ५१ ॥

मूलम् ।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।

तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ५२

पदच्छेदः।

यदा, ते, मोहकलिलम्, बुद्धिः, व्यतितरिष्यति, तदा, गन्तासि, निर्वेदम्, श्रोतव्यस्य, श्रुतस्य, च॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

यदा=जिस कालमें
ते=तेरी
बुद्धिः=बुद्धि
मोहकलिलम्=मोहरूपी कीचड़को
व्यतितरिष्यति=अच्छे प्रकार तरैगी
तदा=उसी काल में

अन्वयः **शब्दार्थ**

श्रोतव्यस्य=सुनने योग्यहै जो
च=और
श्रुतस्य=सुनाहुआ है जो उसके
निर्वेदम्=त्यागको
गन्तासि=तू प्राप्त होगा

भावार्थ।

प्रश्न॥ निष्काम कर्मों के करनेसे कबतक मेरे अन्तःकरणकी शुद्धि होगी॥ **उत्तर॥** भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! इसमें कालका नियम नहीं है, निष्काम कर्मों को करते करते जिस काल में तुम्हारे चित्त के अविवेकजन्य मल दूर होजावेंगे, अर्थात् यह मैं हूं, ये मेरे हैं इत्यादि अविद्या करके उत्पन्न हुई कुदृष्टि तुम्हारी दूर होजावेगी तब उसी काल में तुम्हारा चित्त

शुद्ध होजावेगा, फिर उसीकाल में समस्त श्रोतव्य और श्रुतकर्मों के फलको तुम प्राप्त होजावोगे, अर्थात् सम्पूर्ण कर्मोंका फल जो वैराग्य है उसको तुम प्राप्त होवोगे ॥ ५२ ॥

मूलम्।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ५३

पदच्छेदः।

श्रुतिविप्रतिपन्ना, ते, यदा, स्थास्यति, निश्चला, समाधौ, अचला, बुद्धिः, तदा, योगम्, अवाप्स्यसि ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

यदा=जब
ते बुद्धिः=तेरी बुद्धि
श्रुतिविप्रतिपन्ना=आध्यात्म शास्त्रके सिवाय और शास्त्रकेसुननेसे विकल्प को प्राप्त हुई
निश्चला=निश्चल

अन्वयः **शब्दार्थ**

अचला=अचल
+ भूत्वा=होकर
समाधौ=समाधि में
स्थास्यति=स्थित होगी
तदा=तब
+ त्वम्=तुम
योगम्=योगको
अवाप्स्यसि=प्राप्त होवोगे

भावार्थ।

प्रश्न ॥ अर्जुन कहता है कि हे भगवन् ! कब मुझको वैराग्य होकर आत्मज्ञान उदय होगा ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! अनेक विषयवाले शास्त्रों के श्रवण करने से संशय विपर्ययवाली हुई जो तुम्हारी बुद्धि है वह तुम्हारी बुद्धि जब शुद्ध होकर इसलोक और परलोक के भोगों में दोषदृष्टि करके युक्त होगी, और विक्षेप को त्यागकर आत्मतत्त्व में निश्चल होकर स्थित होगी अथवा जब जाग्रत् और स्वप्न के मनोराज्य से वर्जित होकर आत्मतत्त्व में स्थित होगी या जब सुषुप्ति मूर्च्छादिलय से शून्य होकर आत्मा में स्थित होगी या जब असंभावना विपरीत भावना को त्यागकर निदिध्यासनद्वारा संपन्न होकर आत्मतत्त्वमें निश्चल होगी तब तुम ब्रह्मानन्द आत्मज्ञानको प्राप्त होवोगे, और स्थितप्रज्ञ कहेजावोगे ॥ ५३ ॥

मूलम्।

न.श।।

अर्जुन उवाच–

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्॥५४

पदच्छेदः।

स्थितप्रज्ञस्य, का, भाषा, समाधिस्थस्य, केशव,

स्थितधीः, किम्, प्रभाषेत, किम्, आसीत, व्रजेत, किम् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

केशव=हे कृष्ण!
समाधिस्थस्य=समाधि में स्थित है जो
+च=और
स्थितप्रज्ञस्य=स्थित हुई है बुद्धि जिस की ऐसे पुरुष का
का=क्या
भाषा=लक्षण है

अन्वयः **शब्दार्थ**

+च=और
स्थितधीः=निश्चल बुद्धिवाला
किम्=कैसे
प्रभाषेत=बोलता है
किम्=कैसे
आसीत=बैठता है
किम्=कैसे
व्रजेत=गमन करता है

भावार्थ।

अर्जुन कहता है कि, हे भगवन्! जितने स्थितप्रज्ञोंके यानी जीवन्मुक्तों के लक्षण हैं वे सब मुमुक्षुवों के उपयोगी हैं, यानी उनके मुक्तिके उपाय हैं, और स्थितप्रज्ञ दो प्रकारके होते हैं, यानी एक समाधिस्थ दूसरे व्युत्थित, इन दोनों में से समाधिस्थ स्थितप्रज्ञको लोग किन चिह्नों करके जानते हैं, अर्थात् कौनसे चिह्न देखकर उनको स्थितप्रज्ञ कहते हैं, और समाधि से व्युत्थान होकर स्थितप्रज्ञ

व्युत्थानं प्रतिरोधे च विरोधाचरणेऽपि
[illegible] स्वतन्त्राचरणे च व्युत्थानं

किसप्रकार से भाषण करताहै, और मनके निरोधके लिये इन्द्रियों का निग्रह करके कैसे स्थित होता है, और गमन कैसे करता है यानी विषयों को कैसे प्राप्त होताहै ॥ ५४ ॥

नोट-इस वाक्यमें अर्जुन के चार प्रश्न हैं-लक्षण, भाषण, स्थान और गमन ॥

मूलम् ।

श्रीभगवानुवाच-

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ५५

पदच्छेदः ।

प्रजहाति, यदा, कामान्, सर्वान्, पार्थ, मनोगतान्, आत्मनि, एव, आत्मना, तुष्टः, स्थितप्रज्ञः, तदा, उच्यते ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

पार्थ=हे अर्जुन !
यदा=जब
पुरुषः=पुरुष
मनोगतान्=हृदयमेंप्रविष्ट हुये
सर्वान्=सम्पूर्ण
कामान्=कामों को

अन्वयः **शब्दार्थ**

प्रजहाति=त्याग करता है
+च=और
आत्मनिएव=अपने स्वरूप हीमें
आत्मना=आपही करके
तुष्टः=संतुष्ट होताहै

+सः=वह
तदा=तब
स्थितप्रज्ञः=स्थितप्रज्ञ
उच्यते=कहाता है

भावार्थ ।

अर्जुन के चारों प्रश्नों के उत्तर में भगवान् कहते हैं कि जिसकाल में मुमुक्षु मनकी सम्पूर्ण कामना को त्याग करदेता है उसी कालमें आत्मा में स्थित होकर स्थितप्रज्ञ कहाजाता है, यदि सब कामनायें आत्मा के धर्म होते तब अग्नि की उष्णताकी तरह उनका त्याग कभी भी न होसक्ता, जिस कारण ये सब कामना आदिक मनके धर्म हैं, इसी कारण मनके निरोध करने से इनका त्याग होसक्ता है, और मनके निरोध होजाने पर मुमुक्षु अपने आत्मानन्दको प्राप्त होकर स्थितप्रज्ञ कहाजाता है ॥ ५५ ॥

मूलम् ।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ५६

पदच्छेदः ।

दुःखेषु, अनुद्विग्नमनाः, सुखेषु, विगतस्पृहः, वीतरागभयक्रोधः, स्थितधीः, मुनिः, उच्यते ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

दुःखेषु=दुःखों में
अनुद्विग्नमनाः=नहीं क्षोभित हुआ है चित्त जिसका
+ च=और
सुखेषु=सुखों के लिये
विगतस्पृहः=दूर होगई है इच्छा जिसकी
+ च=और

अन्वयः **शब्दार्थ**

वीतरागभयक्रोधः=नष्ट होगया है रागभयक्रोध जिसका
+ च=और
स्थितधीः=स्थिर हुई है बुद्धि जिसकी ऐसा पुरुष
मुनिः=मुनि
उच्यते=कहाजाता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! स्थितप्रज्ञ के भाषण, आसन, गमन, मूढ़ों से विलक्षण हैं, इन तीनों में से प्रथम आसन को सुनो, आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक इन तीन प्रकार के दुःखों के प्राप्त होनेपर भी जिसका मन व्याकुल नहीं होता है (क्योंकि उसको देह का अभिमान नहीं है, और देहाभिमानवालाही इन दुःखों करके उद्वेग को प्राप्त होता है) और सत्त्वगुण का कार्य जो सुख है उसको प्राप्त होकर भी उसमें जिसकी इच्छा नहीं है, और आत्मानन्द की प्राप्ति करके दूर होगया है, विषयों में

राग और शत्रुवों से भय और क्रोध जिसका ऐसा जो मुनि है वही स्थितप्रज्ञ कहाजाता है ॥ ५६ ॥

मूलम् ।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ५७

पदच्छेदः ।

यः, सर्वत्र, अनभिस्नेहः, तत्, तत्, प्राप्य, शुभाशुभम, न, अभिनन्दति, न, द्वेष्टि, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता ॥

अन्वयः शब्दार्थ

सर्वत्र=सबजगह में
अनभिस्नेहः=स्नेहरहित होता हुआ
तत्तत्=उस उस
शुभाशुभम्=शुभ और अशुभको
प्राप्य=प्राप्त होकर
यः=जो पुरुष

अन्वयः शब्दार्थ

न=नहीं
अभिनन्दति=हर्ष करता है
+च=और
न=नहीं
द्वेष्टि=द्वेष करताहै
तस्य=उसकी
प्रज्ञा=बुद्धि
प्रतिष्ठिता=स्थिर है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! देह, वित्त और स्त्री आदिकों में जिसका स्नेह नहीं रहा है, और प्रारब्ध

कर्म के वशसे सुखके हेतु शोभन विषय भोग को भी प्राप्त होकर हर्षसहित विषय की श्लाघाको जो नहीं करता है, और प्रारब्धकर्म से दुःखके हेतु, अप्रिय विषयको भी प्राप्त होकर जो उसकी निन्दा नहीं करताहै उसीकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित यानी स्थिर है, अतएव मुमुक्षुको उचित है कि सब में राग द्वेषरहित होकर, स्तुति और निन्दा से वर्जित रहे ॥ ५७ ॥

मूलम्।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ५८

पदच्छेदः।

यदा, संहरते, च, अयम्, कूर्मः, अङ्गानि, इव, सर्वशः, इन्द्रियाणि, इन्द्रियार्थेभ्यः, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यदा=जब
अयम्=यह पुरुष
इन्द्रियाणि=इन्द्रियोंको
इन्द्रियार्थेभ्यः=इन्द्रियों के विषय से
संहरते=खींचलेताहै

अन्वयः शब्दार्थ

इव=जैसे
कूर्मः=कछुवा
सर्वशः=चारों तरफ़से
अङ्गानि=अपनेअङ्गोंको
संहरते=बटोरलेता है
+तदा=तब

तस्य=उसकी
प्रज्ञा=बुद्धि
प्रतिष्ठिता=स्थित है

भावार्थ ।

अब अर्जुन के तीसरे प्रश्नके उत्तर में, भगवान् छः श्लोकों करके कहते हैं-जैसे कछुवा अपने अङ्गों को अपने में धैर्यता से संकोच करलेता है वैसेही स्थितप्रज्ञभी व्युत्थानकाल में विक्षेप के कारण संपूर्ण इन्द्रियों को विषयों से हटाकर धैर्यता से अपने में संकोच करलेता है, अतएव उसी की प्रज्ञा समाधि में स्थित होती है, इतरों की नहीं ॥ ५८ ॥

मूलम् ।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ५९

पदच्छेदः ।

विषयाः, विनिवर्तन्ते, निराहारस्य, देहिनः, रसवर्जम्, रसः, अपि, अस्य, परम्, दृष्ट्वा, निवर्तते ॥

अन्वयः शब्दार्थ
निराहारस्य=निराहार
देहिनः=जीव के
विषयाः=विषयभोग

अन्वयः शब्दार्थ
विनिवर्तन्ते=निवृत्त होजाते हैं
+च=और
परम्=परमात्मा को

दृष्ट्वा=देख करके
अस्य=इस पुरुष का
रसः=राग
अपि=भी
रसवर्जम्= निर्बीज
निवर्तते=नष्ट होजाता है

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ रोगी जो निराहार रहता है या जो उपवास व्रत रखता है, उसकी भी इन्द्रियां विषयों की ओर से हटजाती हैं तब फिर उसमें और स्थितप्रज्ञ में भेद क्या हुआ ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! रोगी की और व्रती की इन्द्रियां भी विषयों से उस काल में हट तो जाती हैं, परन्तु उनका राग विषयों में बना रहता है, यानी रोगी का विषयों में राग निवृत्त नहीं होता है, क्योंकि उसको आत्मसुख का लाभ है नहीं, और स्थितप्रज्ञ की इन्द्रियां राग के सहित विषयों से हट जाती हैं, क्योंकि उसको आत्मानन्द का लाभ हुआ है ॥ ५९ ॥

मूलम् ।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ६०

पदच्छेदः ।

यततः, हि, अपि, कौन्तेय, पुरुषस्य, विपश्चितः, इन्द्रियाणि, प्रमाथीनि, हरन्ति, प्रसभम्, मनः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

कौन्तेय=हे अर्जुन !
यततः=यत्न करनेवाले
विपश्चितः=विद्वान्
पुरुषस्य=पुरुषके
मनः=मनको
अपि=भी
प्रमाथीनि=मथन करनेवाली

अन्वयः शब्दार्थ

इन्द्रियाणि=इन्द्रियां
हि=निश्चय करके
प्रसभम्=ज़बरदस्ती से
हरन्ति=हर लेती हैं

भावार्थ ।

इन्द्रियों के सहित मनके निग्रह करने के विना बुद्धिकी स्थिरता नहीं होती है, इसी वार्ता को भगवान् अब कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जैसे चोर ज़बरदस्ती धनी के माल को चुरा लेते हैं, इसी प्रकार इन्द्रियां भी पुनः पुनः भोगों में दोषदृष्टि करती हुइ भी, विद्वान् के मनको विषयों की तरफ़ चुरा लेजाती हैं, यानी मनको विकारी करदेती हैं, जब कि विद्वानों के मन को विषय हरलेते हैं, तब फिर अविद्वानों की कौन गिनती है ॥ ६० ॥

मूलम् ।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।

वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ६१

पदच्छेदः ।

तानि, सर्वाणि, संयम्य, युक्तः, आसीत, मत्परः, वशे, हि, यस्य, इन्द्रियाणि, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तानि=उन
सर्वाणि=सब
+इन्द्रियाणि=इन्द्रियों को
संयम्य=रोक करके
युक्तः=एकाग्रचित्त होता हुआ
+यः=जो
मत्परः=मेरे आश्रय
आसीत=बैठता है

अन्वयः शब्दार्थ

+च=और
यस्य=जिसकी
इन्द्रियाणि=इन्द्रियां
हि=निश्चय करके
वशे=वशमें हैं
तस्य=उसकी
प्रज्ञा=बुद्धि
प्रतिष्ठिता=स्थित है

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ इन्द्रियों के रोकने का उपाय क्या है ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जो निरन्तर मेरा भक्त है, और मुझमेंही जिसका पूरा विश्वास है, वही इन्द्रियों के वश करने में समर्थ होसक्ता है, जैसे राजा को आश्रयण करके राजा के भृत्य चोरों को अपने

वशमें कर लेते हैं, और वेभी उनको राजा के भृत्य जानकर उनसे भयभीत होकर उनके वशमें होजाते हैं, वैसेही परमेश्वर के भक्त को परमेश्वर का भृत्य जानकर इन्द्रियां भी उनके वशमें होजाती हैं, इस लिये हे अर्जुन ! तुम भी परमेश्वर परायण होकर सम्पूर्ण इन्द्रियों को अपने वशमें करके बाह्य व्यापार से रहित होकर स्थित हो ॥ ६१ ॥

मूलम् ।

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्संजायते कामः कामात् क्रोधोभिजायते ६२

पदच्छेदः ।

ध्यायतः, विषयान्, पुंसः, सङ्गः, तेषु, उपजायते, सङ्गात्, संजायते, कामः, कामात्, क्रोधः, अभिजायते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

विषयान्=विषयों को
ध्यायतः=ध्यान करते हुये
पुंसः=पुरुषकी
सङ्गः=प्रीति
तेषु=उन विषयों में
उपजायते=उत्पन्न होती है

अन्वयः शब्दार्थ

सङ्गात्=प्रीति से
कामः=कामना
संजायते=उत्पन्न होती है
कामात्=कामना की अपूर्णता से
क्रोधः=क्रोध
अभिजायते=उत्पन्न होता है

भावार्थ।

प्रश्न॥ जिस सांपके दांत उखाड़ डाले जाते हैं वह सांप फिर काट नहीं सक्ता है, क्योंकि उसके पास काटने का साधन नहीं रहा है, वैसेही इन्द्रियद्वारा मन भी विषय को ग्रहण करता है, विना इन्द्रियों के मन का गमन बाह्य होता नहीं इसलिये इन्द्रियों का निग्रह करना आवश्यक है, मन के निग्रह करनेकी कोई आवश्यकता नहीं॥ उत्तर॥ भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! सम्पूर्ण अनर्थों का करनेवाला मनही है, इसलिये मन काही निग्रह करना चाहिये, क्योंकि निगृहीत इन्द्रियवालों का भी मन सुन्दर सुन्दर विषयों का चिन्तन करने लगता है, और उन विषयों में प्रीति को उत्पन्न करके अपने सुख का हेतु उनको जानता है, फिर उनकी प्राप्ति की इच्छा करता है, यदि विषय की प्राप्ति में किसी ने विघ्न डाल दिया तो विषय की इच्छा वाले को क्रोध उत्पन्न होता है, और क्रोध के कारण करने न करने का विवेक उसको नहीं रहता है॥ ६२॥

मूलम्।

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशोबुद्धिनाशात्प्रणश्यति ६३

पदच्छेदः ।

क्रोधात्, भवति, सम्मोहः, सम्मोहात्, स्मृतिविभ्रमः, स्मृतिभ्रंशात्, बुद्धिनाशः, बुद्धिनाशात्, प्रणश्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
क्रोधात्=	क्रोध से	स्मृतिभ्रंशात्=	स्मृतिज्ञानके नाश होने से
सम्मोहः=	अज्ञान	बुद्धिनाशः=	बुद्धि नाश होती है
भवति=	उत्पन्न होता है	बुद्धिनाशात्=	बुद्धिके नाश होने से
सम्मोहात्=	अज्ञान से	प्रणश्यति=	पुरुष नष्ट होजाता है
स्मृतिविभ्रमः=	स्मृतिज्ञान का नाश होजाता है		

भावार्थ ।

जब पुरुष को अति क्रोध होता है तब वह आचार्य आदिकों का भी अपमान करता है, तत्पश्चात् उसको मोह उत्पन्न होता है, और मोह के होने से स्मृति भ्रंश होजाती है, अर्थात् शास्त्र और आचार्य ने जो उपदेश किया था उसका विचार उसको नहीं रहता है, उसी से फिर उसकी आत्मविषयिणी बुद्धि भी भ्रष्ट होजाती है, फिर वह मृतक के तुल्य होजाता है, इस लिये हे अर्जुन ! प्रथम तुम मन के निग्रह करने में यत्न करो ॥ ६३ ॥

मूलम्।

रागद्वेषविमुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ६४

पदच्छेदः।

रागद्वेषविमुक्तैः, तु, विषयान्, इन्द्रियैः, चरन्, आत्मवश्यैः, विधेयात्मा, प्रसादम्, अधिगच्छति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
रागद्वेषविमुक्तैः	=रागऔरद्वेष से मुक्त हुआ
आत्मवश्यैः	=अपने वश किये हुये
इन्द्रियैः	=इन्द्रियों करके
विषयान्	=विषयों को
चरन्	=भोगता हुआ
विधेयात्मा	=विवेकी पुरुष
प्रसादम्	=चित्तकी प्रसन्नता यानी शान्ति को
तु	=अवश्य
अधिगच्छति	=प्राप्त होता है

भावार्थ।

प्रश्न ॥ अर्जुन कहता है कि, हे महाराज ! जब कि मन के निग्रह करनेसेही विषयों से पुरुष बचता है, तब फिर मनकाही निग्रह करना चाहिये, इन्द्रियों के निग्रह करनेकी क्या आवश्यकता है ॥ उत्तर ॥ भगवान्

कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जिसने मन और इन्द्रिय दोनों को अपने आधीन किया है वह स्वाधीन इन्द्रियों करके राग द्वेष से रहित होकर शब्दादिक विषयों को भोगता भी है परन्तु चित्त की शुद्धता के कारण आत्मा के साक्षात्कार की योग्यता को ही प्राप्त होता है, इसलिये चित्त और इन्द्रिय दोनों का तुम निरोध करो, विना दोनों के निरोध किये हुये शान्ति को नहीं प्राप्त होगे ॥ ६४ ॥

मूलम् ।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ६५

पदच्छेदः ।

प्रसादे, सर्वदुःखानाम्, हानिः, अस्य, उपजायते, प्रसन्नचेतसः, हि, आशु, बुद्धिः, पर्यवतिष्ठते ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

प्रसादे=ब्रह्मानन्द के प्राप्त होने पर

अस्य=इस पुरुष के

सर्वदुःखानाम्=संपूर्ण दुःखों का

अन्वयः **शब्दार्थ**

हानिः=नाश

उपजायते=होजाता है

हि=क्योंकि

प्रसन्नचेतसः=प्रसन्न चित्त वाले की

बुद्धिः=बुद्धि
आशु=शीघ्र
पर्यवतिष्ठते=अच्छे प्रकार स्थित होजातीहै

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जब पुरुष का चित्त शुद्ध होजाता है, तब भ्रान्तिजन्य आध्यात्मिकादि दुःखों का नाश होजाता है, और फिर शीघ्रही इसका मन प्रसन्नता को प्राप्त होता है, और इसकी ब्रह्मविषयिणी बुद्धि भी उत्पन्न होती है ॥ ६५ ॥

मूलम्।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ६६

पदच्छेदः।

न, अस्ति, बुद्धिः, अयुक्तस्य, न, च, अयुक्तस्य, भावना, न, च, अभावयतः, शान्तिः, अशान्तस्य, कुतः, सुखम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
अयुक्तस्य=	जिसका चित्त एकाग्र नहीं हुआ है ऐसे पुरुषकी
बुद्धिः=	बुद्धि ब्रह्मविषयिणी
न अस्ति=	नहीं है
च=	और

अयुक्तस्य=अज्ञानी को
भावना=आत्मविचार
न=नहीं है
च=और
अभावयतः=अविवेकी पुरुष को
शान्तिः=शान्ति

न=नहीं है
+च=और
अशान्तस्य=शान्तिरहित पुरुष को
सुखम्=सुख
कुतः=कहां है

भावार्थ ।

और जो अजितचित्त है, अर्थात् जिसका मन अपने वश में नहीं है उसकी ब्रह्मविषयिणी बुद्धि नहीं होती है, और उस बुद्धि के अभाव होने से शान्ति का कारण जो निदिध्यासनरूप भावना है वह भी उस को नहीं प्राप्त होती है, और अशान्ति का कारण अविद्या भी उसकी नष्ट नहीं होती है, और अविद्या के न नाश होने से आत्मा का साक्षात्कार भी उसको नहीं होता है, तब फिर उसको मोक्ष कहां से होगा, इसलिये चित्तके निरोधके लिये यत्न करना चाहिये॥६६॥

मूलम् ।

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ६७

पदच्छेदः ।

इन्द्रियाणाम्, हि, चरताम्, यत्, मनः, अनु-

विधीयते, तत्, अस्य, हरति, प्रज्ञाम्, वायुः, नावम्, इव, अम्भसि ॥

अन्वयः शब्दार्थ
चरताम्=विषयोंकीतरफ़ दौड़तीहुई
इन्द्रियाणाम्=इन्द्रियों के पीछे
यत्=जो
मनः=मन
अनुविधीयते=प्रवृत्त हो जाता है
तत्=सो मन
अस्य=इस पुरुष की

अन्वयः शब्दार्थ
प्रज्ञाम्=बुद्धि को
हि=अत्यन्त
हरति=चल विचल करदेता है
इव=जैसे
वायुः=पवन
नावम्=नाव को
अम्भसि=जल में
+ हरति=उलटपलट करदेता है

भावार्थ।

प्रश्न ॥ जिसका मन आत्मा में नहीं जुड़ा है, उस की बुद्धि ब्रह्मविषयिणी क्यों नहीं होती है ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! अपनी इच्छा से विषयों में विचरनेवाली जो इन्द्रियां हैं, उनमें से यदि एक भी इन्द्रिय विषय की तरफ़ जाती है, तो मनको भी साथही लियेही जाती है, और साधक की आत्मगोचर शास्त्रीय बुद्धि को हरलेती है, यदि सब

इन्द्रियां विषयों की तरफ़ जाकर इसकी बुद्धिको हर लेवें तो इसमें कौन आश्चर्य की बात है, और जैसे जल में मूर्ख मल्लाह के होने से वायु नौका को हरलेता है यानी जिधर चाहता है उधरही ले जाता है वैसेही मनरूपी मल्लाह के चञ्चल होने से इन्द्रियां भी इस की प्रज्ञारूपी नौका को हरलेती हैं, यानी स्वाधीन करके आत्मा की तरफ़ से हटाकर विषयों की तरफ़ को ले जाकर अनर्थ में डालदेती हैं, और मनके स्थिर होने से इन्द्रियां इसकी प्रज्ञा को नहीं हरसक्ती हैं, इस ये तुम भी मनके स्थिर करने में यत्न करो ॥ ६७ ॥

मूलम् ।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ६८

पदच्छेदः ।

तस्मात्, यस्य, महाबाहो, निगृहीतानि, सर्वशः, इन्द्रियाणि, इन्द्रियार्थेभ्यः, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

महाबाहो=हे अर्जुन !
तस्मात्=इसलिये
यस्य=जिसकी
इन्द्रियाणि=इन्द्रियां

अन्वयः **शब्दार्थ**

इन्द्रियार्थेभ्यः=इन्द्रियों के विषय से
सर्वशः=सब तरफ़ से
निगृहीतानि=रुकी हुई हैं

तस्य=उसकी
प्रज्ञा=बुद्धि
प्रतिष्ठिता=स्थित है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! जिसकी इन्द्रियां सहित चित्त के निगृहीत हैं, उसी की प्रज्ञा अवश्य प्रतिष्ठित है यानी स्थिर है, इसलिये तुम भी मन के निरोध करने में यत्न करो॥ ६८॥

मूलम्।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः६९

पदच्छेदः।

या, निशा, सर्वभूतानाम्, तस्याम्, जागर्ति, संयमी, यस्याम्, जाग्रति, भूतानि, सा, निशा, पश्यतः, मुनेः॥

अन्वयः शब्दार्थ
या=जो
निशा=रात्रि
सर्वभूतानाम्=सब प्राणियों की है

अन्वयः शब्दार्थ
तस्याम्=उस बिषे
संयमी=जितेन्द्रिय पुरुष
जागर्ति=जागता है

यस्याम्=जिस बिषे
भूतानि=प्राणी
जाग्रति=जागते हैं
सा=वह
पश्यतः=देखनेवालेयानी आत्मा के अनुभव करनेवाले
मुनेः=मुनिकी
निशा=रात्रि है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं हे अर्जुन ! वेदान्त के वाक्यों से उत्पन्न भई जो "ब्रह्माहमस्मि" ऐसी दृढ़ प्रज्ञा है, वह ज्ञानवान् कोही होती है, यानी ज्ञानी को ही उसका प्रकाश होता है, अज्ञानी को उसका प्रकाश नहीं होता है, इसलिये उनको वह प्रज्ञा रात्रि की तरह है, वे उसमें सोये पड़े रहते हैं, और जो ज्ञानी हैं, वे उसमें जागते रहते हैं, और जो ग्राह्यग्राहकरूप अज्ञानमयी रात्रि है, जिसमें सब प्राणी स्वप्नवत् व्यवहार करते हैं, वह आत्मज्ञानी की रात्रि है, क्योंकि जीवन्मुक्त ज्ञानी को उसका ग्राह्य ग्राहक व्यवहार नहीं प्रतीत होता है, जो पुरुष सोया हुआ स्वप्न को देखता है, तो जबतक वह नहीं जागता है तबतक स्वप्न को देखता ही रहता है, जब जागता है तब उसके स्वप्न का बाध यानी नाश होजाता है, वैसेही जीवन्मुक्त को भी आत्मा के साक्षात्कार होने पर संसाररूपी स्वप्न का बाध होजाता है, कौवों

को रात्रि में नहीं दिखाता है और उलूकों को दिन में नहीं दिखाता है, इसलिये कौवों की रात्रि उलूकों का दिन है, और जैसे कौवों का दिन उलूकों की रात्रि है, और उलूकों का दिन कौवों की रात्रि और उलूकों की रात्रि कौवों का दिन है, वैसेही ज्ञानवानों की निष्ठा अज्ञानियों की रात्रिवत् है, और अज्ञानियों की निष्ठा ज्ञानवानों की रात्रिवत् है अर्थात् दोनों निष्ठा परस्पर रात्रि की तरह हैं ॥ ६९ ॥

मूलम्।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रवि-
शन्ति यद्वत्। तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स
शान्तिमाप्नोति न कामकामी ७०

पदच्छेदः।

आपूर्यमाणम्, अचलप्रतिष्ठम्, समुद्रम्, आपः, प्रविशन्ति, यद्वत्, तद्वत्, कामाः, यम्, प्रविशन्ति, सर्वे, सः, शान्तिम्, आप्नोति, न, कामकामी ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यद्वत्	जैसे	समुद्रम्	समुद्र में
आपः	नदियां	प्रविशन्ति	प्रवेश करती हैं यानी लीन होती हैं
आपूर्यमाणम्	सब तरफ़ से भरेहुये		
अचलप्रतिष्ठम्	अचलस्थित	तद्वत्	वैसेही

यम्=जिस पुरुष में
सर्वे=संपूर्ण
कामाः=कामना
प्रविशन्ति=लय होती हैं
सः=वह
शान्तिम्=शान्ति को
आप्नोति=प्राप्त होता है

कामकामी=भोगोंकीकामना करने वाला पुरुष
+शान्तिम्=शान्ति को
न=नहीं
+आप्नोति=प्राप्त होता है

भावार्थ।

पूर्व वाक्य करके भगवान् ने विक्षेपकी निवृत्ति विद्वान् की कही है, अब उसकी कामनाओं की शान्ति को कहते हैं ॥ हे अर्जुन ! जैसे वर्षाऋतुमें संपूर्ण जल नदियों द्वारा समुद्रमें प्रवेश करता है, परन्तु समुद्र अपनी मर्यादा को न त्यागता हुआ उन जलों करके क्षोभ को नहीं प्राप्त होता है, ज्योंका त्योंही स्थिर रहता है, वैसेही प्रारब्धकर्म से संपूर्ण विषयभोग भी विद्वान् ज्ञानी को प्राप्त होते हैं, परन्तु ज्ञानी क्षोभ को नहीं प्राप्त होता है, ज्योंका त्यों अपने आत्मानन्द में स्थित रहता है, क्योंकि सहित कार्य के उसकी अविद्या निवृत्त होगई है, इसलिये वह नैष्ठिकी शान्ति को यानी अत्यन्तशान्ति को प्राप्त होता है, वह कामकामी यानी कामना की इच्छावाला नहीं होता है, और

अज्ञानी कामकामी यानी कामनाकी इच्छावाला होता है, इतनाही ज्ञानी अज्ञानी का भेद है ॥ ७० ॥

मूलम्।

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ७१

पदच्छेदः।

विहाय, कामान्, यः, सर्वान्, पुमान्, चरति, निःस्पृहः, निर्ममः, निरहङ्कारः, सः, शान्तिम्, अधिगच्छति ॥

अन्वयः शब्दार्थ
यः=जो
पुमान्=मनुष्य
सर्वान्=संपूर्ण
कामान्=कामनाओं को
विहाय=छोड़ करके
निःस्पृहः=इच्छाराहित
निर्ममः=ममता रहित

अन्वयः शब्दार्थ
निरहङ्कारः=अहङ्कार रहित
चरति=विचरता है
सः=वह पुरुष
शान्तिम्=शान्तिको
अधिगच्छति=प्राप्त होता है

भावार्थ।

जैसे मार्ग में चलतेहुये पथिक को तृणादिकों का स्पर्श होता है, और पथिक उनसे उदासीन रहता है, वैसे विद्वान् भी प्राप्तहुये विषयों से उदासीन रहता है,

क्योंकि वह शरीर के निर्वाह करने में भी निःस्पृह है, और देहादिकों में वह अहंता ममता वृत्तिसे रहित है, और स्तुति निन्दा आदिकों से भी वह रहित है, और प्रारब्धकर्म करके शरीरकी यात्रा में भी उसको भ्रान्ति नहीं है, ऐसा जो विद्वान् है, वही शान्ति को प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥

मूलम्।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपिब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ७२

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगोनाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

पदच्छेदः।

एषा, ब्राह्मी, स्थितिः, पार्थ, न, एनाम्, प्राप्य, विमुह्यति, स्थित्वा, अस्याम्, अन्तकाले, अपि, ब्रह्मनिर्वाणम्, ऋच्छति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

पार्थ=हे अर्जुन !
एषा=यह पूर्वोक्त वर्णन की हुई

अन्वयः शब्दार्थ

ब्राह्मी=ब्रह्मसम्बन्धी
स्थितिः=स्थिति है
एनाम्=इसको

प्राप्य=प्राप्त होकरके
+शुद्धान्तःकरणः नरः=शुद्ध अन्तःकरणवाला पुरुष
न विमुह्यति=नहीं मोहको प्राप्त होता है
अन्तकाले=अन्तकाल में
अपि=भी
अस्याम्=इस ब्रह्मस्थिति में
स्थित्वा=स्थित होकरके
+सः=वह
ब्रह्मनिर्वाणम्=मोक्षको
ऋच्छति=प्राप्त होताहै

भावार्थ ।

भगवान् ने चार प्रश्नों के उत्तर के बहाने से जो ज्ञानवान् के लक्षण कहे हैं वे मुमुक्षुको जीवन्मुक्ति की प्राप्ति के लिये साधन हैं, अब भगवान् ज्ञानवान् की निष्ठा की स्तुति को करते हैं ॥ एषा ब्राह्मी ॥ यह जो अद्वैतब्रह्म को गोचर करनेवाली निष्ठा है, इस निष्ठाको प्राप्त होकर कोई भी ज्ञानवान् मोहको नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि मोह का कारण जो अविद्या है वह उसकी निवृत्त होजाती है, और आयु की समाप्ति में भी यानी मरणकाल में भी इस निष्ठाको प्राप्त होकर पुरुष मोक्ष को प्राप्त होता है, और जो यावत् आयुपर्यन्त इस निष्ठा में रहता है वह जीवन्मुक्त कहाजाता है ॥ ७२ ॥

दूसरा अध्याय समाप्त ॥

तीसरा अध्याय।

मूलम्।

अर्जुन उवाच-

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव १

पदच्छेदः।

ज्यायसी, चेत्, कर्मणः, ते, मता, बुद्धिः, जनादन, तत्, किम्, कर्मणि, घोरे, माम्, नियोजयसि, केशव॥

अन्वयः शब्दार्थ

जनार्दन=हे कृष्ण!
चेत्=अगर
बुद्धिः=ज्ञान
कर्मणः=कर्म से
ज्यायसी=श्रेष्ठ
ते=तुमकरके
मता=माना गया है
तत्=तौ

अन्वयः शब्दार्थ

किम्=किसवास्ते
घोरे=घोर
कर्मणि=कर्म में
माम्=मुझको
केशव=हे केशव!
नियोजयसि=प्रवृत्त करते हो

भावार्थ।

अर्जुन कहता है कि, हे जनार्दन! जिस कारण सब लोग अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिये तुमसे याचना करते हैं, उस कारण मैं भी अपने कल्याण के

लिये तुमसे याचना करता हूं, यदि आपको निष्काम कर्म से ज्ञान श्रेष्ठ प्रतीत होता है तो फिर हिंसादि क्रूर कर्मरूपी युद्ध में मुझे क्यों प्रेरणा करते हो, और बारम्बार कहते हो कि कर्म में ही तेरा अधिकार है, ज्ञानका उपदेश मुझे क्यों नहीं करते हो, मैं तुम्हारा शिष्य होकर तुम्हारे शरणको प्राप्त हुआ हूं, मैं वञ्चना करने के योग्य नहीं हूं ॥ १ ॥

मूलम्।

व्यामिश्रेणैव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोहमाप्नुयाम् २

पदच्छेदः।

व्यामिश्रेण, एव, वाक्येन, बुद्धिम्, मोहयसि, इव, मे, तत्, एकम्, वद, निश्चित्य, येन, श्रेयः, अहम्, आप्नुयाम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

व्यामिश्रेण=मिले हुये
वाक्येन=वाक्य करके
मे=मेरी
बुद्धिम्=बुद्धि को
इव=मानो
मोहयसि=मोहित करते हो

अन्वयः शब्दार्थ

तत्=उस
एकम्=एकको
निश्चित्य=निश्चय करके
वद=कहो
येन=जिस करके
अहम्=मैं

एव=अवश्य	आप्नुयाम्=प्राप्त होऊं
श्रेयः=कल्याण को	

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! हम तो किसी को वञ्चन नहीं करते हैं, तुम तो मेरे अतिप्यारे शिष्य हो, तुमको कैसे मैं वञ्चना करूंगा, तुमने मुझमें कौनसा चिह्न प्रतारणाका देखा है, जो तुम कहते हो कि मैं वञ्चना करताहूं ॥ अर्जुन कहता है कि, आप मिलेजुले वाक्यों को कहते हैं, कभी कर्म-उपदेशक वाक्यको और कभी ज्ञान-उपदेशक वाक्यको कहते हो, जिससे मेरे मनको भ्रान्ति होती है, आप मेरे बिषे मोह उत्पन्न करते हो, क्योंकि परस्पर विरुद्ध जो ज्ञान और कर्म हैं उनका आप उपदेश मुझको करते हो, दोनों का एकसा होना असम्भव है, इसलिये दोनों में से एकको निश्चय करके मेरे प्रति कहिये, जिस एक करके मैं कल्याण को प्राप्त होऊं ॥ २ ॥

मूलम् ।

श्रीभगवानुवाच-

लोकेस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ३

पदच्छेदः ।

लोके, अस्मिन्, द्विविधा, निष्ठा, पुरा, प्रोक्ता, मया,

अनघ, ज्ञानयोगेन, सांख्यानाम्, कर्मयोगेन, योगिनाम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अनघ=हे निष्पाप, अर्जुन !
अस्मिन्=इस
लोके=लोक में
द्विविधा=दो प्रकार की
निष्ठा=निष्ठा
मया=मुझ करके

अन्वयः शब्दार्थ

पुरा=सृष्टि के आदि में
प्रोक्ता=कही गई हैं
ज्ञानयोगेन=ज्ञानयोग करके
सांख्यानाम्=सांख्यविदों की
च=और
कर्मयोगेन=कर्मयोग करके
योगिनाम्=योगियों की

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! चित्त की शुद्धि और अशुद्धि के भेद से दो प्रकारके अधिकारियों के प्रति दो प्रकारकी निष्ठा हमने पूर्व कही है, और साध्य साधन के भेद करके वे दोनों निष्ठा एकही हैं, स्वतन्त्र होकर वे दो निष्ठा भिन्न भिन्न नहीं हैं, जो ज्ञानभूमि में प्रविष्ट सांख्यविद् यानी शुद्धचित्तवाले हैं, उनके प्रति तो ज्ञाननिष्ठा मैंने कही है, और जो अशुद्ध चित्तवाले कर्मों के अधिकारी हैं, उनके प्रति कर्मनिष्ठा मैंने कही है, क्योंकि पुरुष चित्तकी शुद्धिद्वाराही ज्ञानभूमि में प्रवेश करता है, विना चित्तकी शुद्धि के नहीं प्रवेश करसक्ता है, अतएव अवस्थाभेद करके एकही पुरुष के प्रति दोनों निष्ठा का उपदेश योग्य है ॥ ३ ॥

मूलम्।

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ४

पदच्छेदः।

न, कर्मणाम्, अनारम्भात्, नैष्कर्म्यम्, पुरुषः, अश्नुते, न, च, संन्यसनात्, एव, सिद्धिम्, समधिगच्छति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

कर्मणाम्=कर्मों के
अनारम्भात्=न आरम्भ करने से
नैष्कर्म्यम्=ज्ञाननिष्ठाको
पुरुषः=पुरुष
न=नहीं
अश्नुते=प्राप्तहोता है

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
संन्यसनात्=संन्यास करने से
एव=भी
सिद्धिम्=मोक्ष को
न=नहीं
समधिगच्छति=प्राप्तहोता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! कारण के अभाव होने से कार्य का भी अभाव होता है, निष्काम कर्म के अभाव से यानी न करने से चित्तकी शुद्धिका भी अभाव है, चित्तकी शुद्धिके अभावसे ज्ञानकी प्राप्तिका अभाव है यानी विना निष्काम कर्म के करने से ज्ञानयोगकी निष्ठा को कोई प्राप्त नहीं होताहै, और चित्त

की शुद्धि विना कर्मों को त्याग करके पुरुष ज्ञानरूपी सिद्धि को नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि चित्तकी शुद्धि विना कर्मके त्यागके फलदायक नहीं होती है, इसलिये चित्तकी शुद्धिके अर्थ कर्मों को तुम करो ॥ ४ ॥

मूलम्।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ५

पदच्छेदः।

न, हि, कश्चित्, क्षणम्, अपि, जातु, तिष्ठति, अकर्मकृत्, कार्यते, हि, अवशः, कर्म, सर्वः, प्रकृतिजैः, गुणैः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

हि=क्योंकि
जातु=कभी
कश्चित्=कोई
क्षणमपि=क्षणमात्र भी
अकर्मकृत्=बग़ैर कर्म किये हुये
न=नहीं
तिष्ठति=रहता है

अन्वयः शब्दार्थ

सर्वः=सब प्राणी
हि=निस्संदेह
प्रकृतिजैः=प्रकृति से उत्पन्न हुये
गुणैः=गुणों करके
अवशः=परवश हुये
कर्म=कर्म को
कार्यते=करते हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! कोई प्राणी एक क्षणमात्र भी विना कर्म किये नहीं रहसक्ताहै, इसीसे

सिद्ध होताहै कि अन्तःकरणकी शुद्धि विना कोई भी अक्रिय यानी अकर्मी नहीं होसक्ताहै, और जो अशुद्ध चित्तवाला है वह स्वाभाविक राग द्वेषादिक गुणोंवालाहै, वह गुणों के आधीन होकर संपूर्ण लौकिक वैदिक कर्मोंको करताहै, अतएव विना चित्तकी शुद्धि के कर्मोंका त्याग कदापि नहीं होसक्ता है ॥ ५ ॥

मूलम्।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ६

पदच्छेदः।

कर्मेन्द्रियाणि, संयम्य, यः, आस्ते, मनसा, स्मरन्, इन्द्रियार्थान्, विमूढात्मा, मिथ्याचारः, सः, उच्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

कर्मेन्द्रियाणि=कर्मेन्द्रियों को
संयम्य=रोक करके
+च=और
इन्द्रियार्थान्=इन्द्रियों के विषयों को
मनसा=मन से

अन्वयः शब्दार्थ

स्मरन्=यादकरताहुआ
यः=जो
आस्ते=बैठता है
सः=वह
विमूढात्मा=मूर्ख
मिथ्याचारः=पापाचार
उच्यते=कहाजाता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! जिसका चित्त

रागादिकों करके आक्रान्तहै, और जो बाह्यइन्द्रियों करके कर्मों को नहीं करताहै, और राग द्वेषादिकों करके और प्रेरित मन करके शब्दादिक विषयों को स्मरण करता है, और नित्य कर्मों का त्याग करता है, उसके चित्त की शुद्धि के अभाव होने से वह पापाचार यानी कपट आचरणवाला कहाजाता है ॥ ६ ॥

मूलम्।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ७

पदच्छेदः।

यः, तु, इन्द्रियाणि, मनसा, नियम्य, आरभते, अर्जुन, कर्मेन्द्रियैः, कर्मयोगम्, असक्तः, सः, विशिष्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तु=और
यः=जो
इन्द्रियाणि=इन्द्रियों को
मनसा=मन स
नियम्य=रोक करके
अर्जुन=हे अर्जुन !
असक्तः=फलकीइच्छारहित हुआ

अन्वयः शब्दार्थ

कर्मयोगम्=कर्मयोग को
कर्मेन्द्रियैः=कर्मइन्द्रिय द्वारा
आरभते=आरम्भ करता है
सः=वह पुरुष
विशिष्यते=श्रेष्ठ है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! कर्मों में ही है अधिकार जिसका वह सहित मनके चक्षुआदि इन्द्रियों को भोगों की तरफ़ से हटाकर और वागादिक कर्मेन्द्रियों को रोके चित्तकी शुद्धि के लिये निष्कामकर्म को फल की इच्छा से रहित होकर करे यानी जो मनको इन्द्रियों के भोगों में आसक्त न करके कर्मों को करता है वह श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

मूलम्।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः ८

पदच्छेदः।

नियतम्, कुरु, कर्म, त्वम्, कर्म, ज्यायः, हि, अकर्मणः, शरीरयात्रा, अपि, च, ते, न, प्रसिध्येत्, अकर्मणः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

नियतम्=वेदविहित नित्य
कर्म=कर्म को
त्वम्=तू
कुरु=कर
हि=क्योंकि
अकर्मणः=न कर्म करनेसे

अन्वयः शब्दार्थ

कर्म=कर्म करना
ज्यायः=श्रेष्ठ है
च=और
ते=तेरी
शरीरयात्रा=शरीरयात्रायानी शरीरका निर्वाह

अपि=भी
अकर्मणः=न कर्म करनेसे
न=नहीं
प्रसिध्येत्=सिद्ध होगी

भावार्थ।

भगवान् फिर कहते हैं कि हे अर्जुन ! ज्ञानेन्द्रियों को रोक करके और फल की इच्छा से रहित होकरके श्रौत स्मार्त कर्म जिसको वेदने विधान किया है, उन कर्मों को तुम करो, क्योंकि अशुद्ध चित्तवाले को कर्म का करना ही श्रेष्ठ है, विना कर्म करने के मन की शुद्धि नहीं होती है ॥ ८ ॥

मूलम्।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ९

पदच्छेदः।

यज्ञार्थात्, कर्मणः, अन्यत्र, लोकः, अयम्, कर्मबन्धनः, तदर्थम्, कर्म, कौन्तेय, मुक्तसङ्गः, समाचर ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
यज्ञार्थात्	=यज्ञार्थ यानी ईश्वर अर्पण
कर्मणः अन्यत्र	=कर्मके अतिरिक्त और कर्म करके
अयम्	=यह
लोकः	=लोक
कर्मबन्धनः	=कर्म का बन्धन है
तदर्थम्	=इसलिये

कौन्तेय=हे अर्जुन !
मुक्तसङ्गः=फलकी इच्छा को त्यागता हुआ
कर्म=कर्म को
समाचर=कर तू

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ अर्जुन कहता है कि स्मृति में कहा है कि कर्मों करके जीव बन्ध को प्राप्त होता है, और आत्मज्ञान करके मोक्ष को प्राप्त होता है, तब फिर बन्ध का जो कारण कर्म है उसका उपदेश मुझे क्यों करते हो ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! विष्णुप्रीत्यर्थ कर्मों से अतिरिक्त जो कर्म हैं वेही बन्ध के हेतु हैं, विष्णुप्रीत्यर्थ कर्म बन्ध के हेतु नहीं हैं, इसलिये फल की कामना से रहित होकर तुमभी विष्णुप्रीत्यर्थ कर्मों को करो ॥ ९ ॥

मूलम् ।

सह यज्ञाःप्रजाःसृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेनप्रसविष्यध्वमेषवोऽस्त्विष्टकामधुक् १०

पदच्छेदः ।

सह, यज्ञाः, प्रजाः, सृष्ट्वा, पुरा, उवाच, प्रजापतिः, अनेन, प्रसविष्यध्वम्, एषः, वः, अस्तु, इष्टकामधुक् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

सहयज्ञाः=साथ यज्ञोंके
प्रजाः=मनुष्यों को
पुरा=सृष्टि के आदिमें
सृष्ट्वा=पैदा करके
प्रजापतिः=ब्रह्मा
उवाच=कहताभया कि
अनेन=इस कर्म से

अन्वयः शब्दार्थ

प्रसविष्यध्वम्=बढ़ो तुम
एषः=यह
वः=तुम्हारा
इष्टकामधुक्=वाञ्छितफल का देनेवाला
अस्तु=हो

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! सृष्टि के आदि काल में प्रजापति ने जब प्रजा को उत्पन्न किया तब कर्माधिकारी जनों के प्रति कहा कि, तुम सब स्वाश्रम उचित कर्मों करके परस्पर वृद्धि को प्राप्त होवो यानी जब तुम सब यज्ञों को सादर करोगे तब वे यज्ञ तुम्हारी इष्टकामना को पूर्ण करेंगे ॥ १० ॥

मूलम्।

देवान्भावयताऽनेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ११

पदच्छेदः।

देवान्, भावयत, अनेन, ते, देवाः, भावयन्तु, वः, परस्परम्, भावयन्तः, श्रेयः, परम्, अवाप्स्यथ ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अनेन=इस यज्ञ करके
देवान्=देवताओं को
भावयत=तुम प्रसन्न करो
ते=वे
देवाः=देवता
वः=तुमको

अन्वयः शब्दार्थ

भावयन्तु=प्रसन्न करें
परस्परम्=परस्पर
भावयन्तः=प्रसन्न होते हुये
परम्=प्रत्यन्त
श्रेयः=कल्याण को
अवाप्स्यथ=तुम लोग प्राप्त होगे

भावार्थ ।

प्रजापतिने प्रजासे कहा कि, तुम सब यजमानरूप होकर हविर्भागरूपी यज्ञों से इन्द्रादिक देवताओं को तृप्त करो, और वे तृप्त होकर तुमको वृष्टि आदिकों करके उत्तम उत्तम अन्नादिकों को देवेंगे यानी तुम्हारी वृद्धिको करेंगे, तुम परस्पर एक दूसरे की वृद्धिको करते हुये कल्याण को प्राप्त होवोगे ॥ ११ ॥

मूलम् ।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः १२

पदच्छेदः ।

इष्टान्, भोगान्, हि, वः, देवाः, दास्यन्ते, यज्ञभा-

विताः, तैः, दत्तान्, अप्रदाय, एभ्यः, यः, भुङ्क्ते, स्तेनः, एव, सः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

वः=तुम्हारे
इष्टान्=इष्ट
भोगान्=भोगों को
यज्ञभाविताः=यज्ञसे संतुष्ट हुये
देवाः=देवता
हि=निस्सन्देह
दास्यन्ते=देंगे
तैः=उन करके

अन्वयः शब्दार्थ

दत्तान्=दिये हुये भोगों को
एभ्यः=उनके लिये
अप्रदाय=न देकर
यः=जो पुरुष
भुङ्क्ते=भोगता है
सः=वह
एव=अवश्य
स्तेनः=चोर है

भावार्थ।

केवल परलोकसम्बन्धी फलकोही तुम नहीं प्राप्त होवोगे, किन्तु इस लोक के वाञ्छित भोग जो हिरण्य और धान्यादिक हैं उनको भी तुम प्राप्त होवोगे, अर्थात् यज्ञों करके प्रसन्न हुये देवता तुमको इस लोक के वाञ्छित भोगों को भी देवेंगे, उन देवताओं करके दिये हुये ऋणकी तरह भोगों को जो भोगताहै, और देवताओं के प्रति हविः को यज्ञों के द्वारा नहीं देता

है, केवल अपनाही उदरभरण करता है, वह पुरुष चोर है, क्योंकि देवताओं से चुराकर खाता है ॥ १२ ॥

मूलम्।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् १३

पदच्छेदः।

यज्ञशिष्टाशिनः, सन्तः, मुच्यन्ते, सर्वकिल्बिषैः, भुञ्जते, ते, तु, अघम्, पापाः, ये, पचन्ति, आत्मकारणात् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यज्ञशिष्टाशिनः	= यज्ञके शेष भागके खानेवाले	ये	=जो
सन्तः	=होते हुये	पापाः	=पापी पुरुष
सर्वकिल्बिषैः	=संपूर्ण पापों से	आत्मकारणात्	= अपने ही वास्ते
मुच्यन्ते	=छूट जाते हैं	पचन्ति	=पकाते हैं
तु	=और	ते	=वे
		अघम्	=पापकोही
		भुञ्जते	=खाते हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! वैश्वदेव यज्ञके

अमृतरूपी शेषभाग को जो भक्षण करता है वह पुरुष देवताओं के ऋण से छूटजाता है, और निमित्त और नित्य कर्मों के न करने से जो पाप होते हैं, उन पापों से भी वह छूट जाता है, और जो वैश्वदेवादि यज्ञों को नहीं करते हैं, केवल अपनेही उदर की पूर्ति के लिये पकाते खाते हैं वे मानो पापों को ही भक्षण करते हैं, इसी वार्ता को स्मृतिकारों ने भी कहा है॥ कण्डनी पेषणी चुल्ली उदकुम्भी च मार्जनी। पञ्चसूना गृहस्थस्य ताभिः स्वर्गं न विन्दति॥ १॥ ऊखली, चक्की, उदकुम्भी, चूल्हा और झाड़ू इन पांचोंके द्वारा प्रतिदिन जीवहिंसा होने से गृहस्थों को पांच हत्या लगती हैं, और उन हत्याओं करके वे स्वर्ग को नहीं प्राप्त होते हैं॥ १॥ और जो यह कहा है कि ये पञ्चसूनाकृत पाप पांच यज्ञों करके दूर होजाते हैं सो वे ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ के नाम से विख्यात हैं—जप करने का नाम ब्रह्मयज्ञ है, होम देवयज्ञ है, दान मनुष्ययज्ञ है, तर्पण पितृयज्ञ है, वैश्वदेव बलि भूतयज्ञ है, इसलिये कर्माधिकारी पुरुषों को कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिये ऐसा प्रजापति का कथन है॥ १३॥

मूलम्।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः १४

पदच्छेदः।

अन्नात्, भवन्ति, भूतानि, पर्जन्यात्, अन्नसंभवः, यज्ञात्, भवति, पर्जन्यः, यज्ञः, कर्मसमुद्भवः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अन्नात्=अन्नसे
भूतानि=प्राणी
भवन्ति=उत्पन्न होते हैं
+ च=और
पर्जन्यात्=मेघसे
अन्नसंभवः=अन्नकी उत्पत्ति होती है

अन्वयः शब्दार्थ

यज्ञात्=यज्ञसे
पर्जन्यः=मेघ
भवति=उत्पन्नहोताहै
कर्मसमुद्भवः=कर्म से उत्पन्न हुआ
यज्ञः=यज्ञ है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! केवल विधि वाक्य सेही कर्म कर्तव्य नहीं हैं, किंतु जगत्‌रूपी चक्र का प्रवर्तक होने से भी कर्म कर्तव्य है, माता पिता करके खाया हुआ अन्न वीर्य और रक्तरूप से परिणाम को प्राप्त होता है, और उसीसे जिस प्रकार शरीर उत्पन्न होताहै उसको मैं कहता हूं तुम सुनो, वृष्टि से अन्न होता है, यज्ञों से वृष्टि होती है, यज्ञ अग्नि विषे फेंकी हुई आहुति सूर्यको प्राप्त होती है, सूर्य फिर वर्षा करता है, वर्षा से अन्नहोता है, अन्नसे फिर प्रजा होती

है। तात्पर्य इस सबका यहहै कि, यज्ञ एक कर्म है, कर्म नाम क्रिया का है, क्रिया एक क्षणमें उत्पन्न होती है, दूसरे क्षण में स्थिर रहती है, तीसरे क्षणमें नष्ट होजाती है, फलकाल में क्रिया रहती नहीं, और जो कारण होता है वह कार्य की उत्पत्ति से पूर्व क्षणमें रहता है, यदि न रहे तो विना कारण के कार्य हो नहीं सक्ता है, इस वास्ते क्रियारूप यज्ञ नष्ट होकर एक अदृष्टको उत्पन्न करताहै, उसीका नाम अपूर्व और धर्म भी है, वही संस्काररूप होकर चिरकाल तक रहता है, उसीसे फिर कालान्तर में कार्य उत्पन्न होता है, वही यज्ञरूप कर्मका कार्य है, और वही सुखादिकों का भी जनक है ॥ १४ ॥

मूलम् ।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् १५

पदच्छेदः ।

कर्म, ब्रह्मोद्भवम्, विद्धि, ब्रह्म, अक्षरसमुद्भवम्, तस्मात्, सर्वगतम्, ब्रह्म, नित्यम्, यज्ञे, प्रतिष्ठितम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
ब्रह्मोद्भवम्	ब्रह्म यानी वेद से उत्पन्न हुआ	कर्म	कर्म को
		विद्धि	जान तू

+ च=और

ब्रह्म=वेद

अक्षरसमुद्भवम्=अक्षर यानी परमात्मा से उत्पन्नहुआहै

तस्मात्=इसलिये

सर्वगतम्=व्यापक

ब्रह्म=परमात्मा

नित्यम्=नित्य

यज्ञे=यज्ञ में

प्रतिष्ठितम्=स्थित है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! वेद मूलक जो कर्म हैं, वेही धर्म को उत्पन्न करते हैं, और जो पाखण्ड सिद्धक कर्म हैं वे धर्मको उत्पन्न नहीं करसक्ते हैं, वे पाप के जनक हैं। अर्जुन कहता है कि, हे भगवन्! पाखण्डशास्त्र से वेदकी क्या विलक्षणता है, जिसकारण आप वेदविहित कर्म कोही धर्मका जनक कहते हैं॥ उत्तर॥ हे अर्जुन! चूंकि इस शरीर का भी आविर्भाव उसी अक्षर परमात्मा सेही होताहै, इसी वास्ते अतीन्द्रिय परमात्मामें वेदकोही स्वतःप्रमाणता है, और चूंकि वह वेद मायावी दोषयुक्त किसी पुरुष करके रचाहुआ नहीं है, इसीसे वेद स्वतःप्रमाण कहाताहै, और अपौरुषेय भी कहा जाताहै, यानी किसी पुरुष करके नहीं रचागयाहै और शास्त्र जोकि ऋषियोंके बनाये हुये हैं वे वेदमूलक होने से प्रमाण माने जाते हैं, और पाखण्डशास्त्र पाखण्डियों का बनाया हुआहै, इसीसे वह पाप

का जनकहै, और जिस कारण वेदकोही स्वतःप्रमाणता है, इसी वास्ते वेद अविनाशी ब्रह्मका बोधक है, अतएव अविनाशी ब्रह्म वेदमें ही स्थितहै, इसलिये वेदबोधित कर्म ही अनुष्ठान करने के योग्यहैं ॥ १५ ॥

मूलम्।

एवं निवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति १६

पदच्छेदः।

एवम्, निवर्तितम्, चक्रम्, न, अनुवर्तयति, इह, यः, अघायुः, इन्द्रियारामः, मोघम्, पार्थ, सः, जीवति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

एवम्=इस प्रकार
निवर्तितम्=फैले हुये
चक्रम्=चक्रको
यः=जो पुरुष
इह=इस संसार में
न=नहीं
अनुवर्तयति=वर्तताहै

अन्वयः शब्दार्थ

सः=वह
अघायुः=पापी
इन्द्रियारामः=इन्द्रियोंमें रमण करनेवाला
पार्थ=हे अर्जुन !
मोघम्=व्यर्थ
जीवति=जीवता है

भावार्थ।

सृष्टि के आदिकाल में परमेश्वर से ब्रह्माद्वारा वेद

उत्पन्न हुआ, उस वेद से फिर कर्म उत्पन्न हुआ, और उसीसे कर्मका ज्ञानभी उत्पन्न हुआ, फिर उस कर्म के अनुष्ठानसे धर्म उत्पन्न हुआ, उस धर्म से वृष्टि हुई, वृष्टि से फिर अन्न हुआ, अन्नसे शरीर हुये, उन शरीरों से फिर धर्म हुआ, फिर उससे वृष्टि हुई, फिर वृष्टि से अन्न हुआ, इस रीति से ईश्वर ने संसाररूपी चक्रको चलायाहै, जो मूढ़जन जगत्के निर्वाहक चक्र को नहीं आश्रयण करते हैं, वे पापी व्यर्थही जीते हैं, क्योंकि वे इन्द्रियों के भोगों में व्यर्थही आयुको खोते हैं, और कर्मों के अधिकारी होकर कर्मोंको न करके व्यर्थही जीते हैं ॥ १६ ॥

मलम्।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते १७

पदच्छेदः।

यः, तु, आत्मरतिः, एव, स्यात्, आत्मतृप्तः, च, मानवः, आत्मनि, एव, च, सन्तुष्टः, तस्य, कार्यम्, न, विद्यते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
तु	और
यः	जो
मानवः	मनुष्य
एव	निश्चय करके
आत्मरतिः	आत्मा में प्रीति रखनेवाला

स्यात्=है
च=और
+ यः=जो
आत्मतृप्तः=आत्माही में तृप्तहै
च=और

आत्मनिएव=आत्माही में
सन्तुष्टः=सन्तुष्ट है
तस्य=उसका
कार्यम्=कर्तव्यकर्म
न विद्यते=कोई नहीं है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! जो पुरुष इन्द्रियाराम है, वह स्त्री आदिकों में रतिको प्राप्त होता है, तृप्ति को प्राप्त होता है, और पुत्रादिकों के लाभ से तुष्टिको प्राप्त होताहै, और विषयभोगों की अप्राप्ति में दुःख को प्राप्त होताहै, और जो इन्द्रियाराम नहीं है, यानी इन्द्रियों करके विषयों में रमण करनेवाला नहीं है, किन्तु अपने आत्मामेंही जो रमण करने वालाहै, और जिसने निजानन्दका साक्षात्कार कर लिया है, विषयभोगों को जिसने तुच्छ जानकर त्याग दियाहै, वह अपने आत्मामेंही रति व तृप्ति व तुष्टिको प्राप्त होताहै, और वह कृतकृत्य होकर लौकिक वैदिक कर्म कोभी नहीं करताहै, क्योंकि उसमें कर्तव्यता का अभाव है ॥ १७ ॥

मूलम्।

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः १८

पदच्छेदः।

न, एव, तस्य, कृतेन, अर्थः, न, अकृतेन, इह, कः, चन, न, च, अस्य, सर्वभूतेषु, कः, चित्, अर्थव्यपाश्रयः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

तस्य=उसको
कृतेन=कर्म करने से
कश्चन=कोई भी
अर्थः=प्रयोजन
न एव=नहीं है
च=और
+ तस्य=उसको
अकृतेन=न करने से
नकश्चन=न कोई

अन्वयः **शब्दार्थ**

+प्रत्यवायः=दोष है
+ च=और
न=न
अस्य=उसको
सर्वभूतेषु=सब प्राणियों में
कश्चित्=किसी भी
अर्थव्यपाश्रयः=प्रयोजन का आश्रय है

भावार्थ।

उस विद्वान् का कर्मों के करने में प्रयोजन नहीं है, क्योंकि कर्मोंका फल जो स्वर्ग है, उसकी प्राप्ति

की उसको इच्छा नहीं है, और फल की इच्छावालाही कर्मों को करताहै, इच्छारहित पुरुष कदापि कर्म को नहीं करता है, और अपने स्वरूप में स्थित होजाने का नामही मोक्ष है, सो विद्वान् अपने स्वरूप में नित्यही स्थितहै, इसलिये मोक्षकी इच्छा भी उसको नहीं है, और कर्म के न करने में भी उसकी कोई हानि नहीं है, इस वास्ते ब्रह्मज्ञानी को कर्मोंका करना और न करना दोनों निष्फल हैं ॥ १८ ॥

मूलम्।

तस्मादसक्तः सतत कार्यं कर्म समाचर।
असक्तोह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः १९

पदच्छेदः।

तस्मात्, असक्तः, सततम्, कार्यम्, कर्म, समाचर, असक्तः, हि, आचरन्, कर्म, परम्, आप्नोति, पूरुषः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तस्मात्=इसलिये
असक्तः=फलकीइच्छा से रहित हुआ
सततम्=निरन्तर
कार्यम्=करने योग्य

अन्वयः शब्दार्थ

कर्म=कर्म को
समाचर=कर तू
असक्तः=फल की इच्छारहित
पूरुषः=पुरुष

कर्म=कर्म को
आचरन्=करता हुआ
हि=निःसंदेह
परम्=मोक्ष को
आप्नोति=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! जिस कारण तू इस प्रकारका ज्ञानी नहीं है, उसीकारण तू कर्मों में अधिकारवाला है, अन्तःकरण की शुद्धिवाला पुरुष मोक्ष को प्राप्त होता है, और अन्तःकरण की शुद्धि निष्काम कर्मों सेही होती है, इसलिये तू भी कर्मों को कर ॥ १९ ॥

मूलम् ।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि २०

पदच्छेदः ।

कर्मणा, एव, हि, संसिद्धिम्, आस्थिताः, जनकादयः, लोकसंग्रहम्, एव, अपि, संपश्यन्, कर्तुम्, अर्हसि ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**
हि=क्योंकि
कर्मणाएव=कर्मही करके

अन्वयः **शब्दार्थ**
जनकादयः=जनकादि राजऋषि

संसिद्धिम्=अन्तःकरण की शुद्धि को
आस्थिताः=प्राप्त हुये हैं
लोकसंग्रहम्=लोक संग्रह को
एवअपि=भी
संपश्यन्=भली प्रकार देखता हुआ
कर्तुम्=कर्म करने को
अर्हसि=तू योग्य है

भावार्थ।

अर्जुन कहता है कि, हे भगवन्! मैं तो ब्रह्मजिज्ञासु हूं, मैं कर्मों को त्याग करके श्रवणादिकों को क्यों न करूं ॥ उत्तर ॥ हे अर्जुन! पूर्व जो जनकादिक ज्ञानी हुयेहैं, और जो मुमुक्षु हुये हैं, उन्होंने भी कर्मों का त्याग नहीं किया है, वैसे तुम भी ज्ञानी हो वा मुमुक्षुहो कर्मों का त्याग मत करो, क्योंकि कर्मों करकेही जनकादिक अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा आत्मज्ञान को प्राप्त हुये हैं ॥ २० ॥

मूलम्।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते २१

पदच्छेदः।

यत्, यत्, आचरति, श्रेष्ठः, तत्, तत्, एव, इतरः, जनः, सः, यत्, प्रमाणम्, कुरुते, लोकः, तत्, अनुवर्तते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यत् यत्=जिस २ कर्म को
श्रेष्ठः=श्रेष्ठ पुरुष
आचरति=करता है
तत्तत्एव=उसी २ कर्म कोही
इतरःजनः=और मनुष्य
+ आचरति=करते हैं

अन्वयः शब्दार्थ

+ च=और
यत्=जिस
प्रमाणम्=प्रमाण को
सः=वह श्रेष्ठ पुरुष
कुरुते=ग्रहण करता है
लोकः=दुनिया भी
तत्=उसीप्रमाण को
अनुवर्तते=मानती है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! प्रधान राजा लोग और ऋषिलोग जो जो शुभ अशुभ आचरण को करते हैं, उन्हीं उन्हीं कर्मों कोही इतर पुरुषभी करते हैं, अर्जुन कहता है कि, वे आपही लोक शास्त्र का विचार करके उत्तम कर्मों को क्यों नहीं करते हैं? इसपर भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! इस लोक में श्रेष्ठ पुरुष जो जो लौकिक वैदिक कर्मको करते हैं और प्रमाण मानते हैं, इतर पुरुष भी उन्हीं कर्मों को प्रमाण मानकर करते हैं, स्वतन्त्र होकर नहीं करते हैं, इसलिये तुमभी स्वतन्त्र होकर कर्म को मत करो, किंतु शास्त्र के अनुसार कर्मों को करो ॥ २१ ॥

मूलम्।

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि २२

पदच्छेदः।

न, मे, पार्थ, अस्ति, कर्तव्यम्, त्रिषु, लोकेषु, किञ्चन, न, अनवाप्तम्, अवाप्तव्यम्, वर्ते, एव, च, कर्मणि॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

पार्थ=हे अर्जुन!
मे=मेरे लिये
त्रिषु=तीनों
लोकेषु=लोकों म
किञ्चन=कुछ
कर्तव्यम्=करने योग्य कर्म
न अस्ति=नहीं है
+ च=और

अन्वयः **शब्दार्थ**

अवाप्तव्यम्=प्राप्त होने योग्य वस्तु
+किम्=क्या
नअनवाप्तम्=नहीं प्राप्त है किंतु सब प्राप्त है
च=तौभी
कर्मणि=कम में
एव=ही
वर्ते=म बर्तताहूं

भावार्थ।

अपने कोही भगवान् दृष्टान्त देकर कहते हैं कि, हे पार्थ! यदि मुझ ईश्वर को कुछ भी कर्तव्य नहा है, क्योंकि तीनों लोकों म कोइ एसा पदार्थ नहीं है जो

मुझको प्राप्त न हो, तबभी मैं लोकों के हितार्थकर्मों कोही करता हूं ॥ २२ ॥

मूलम्।

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
ममवर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः २३

पदच्छेदः।

यदि, हि, अहम्, न, वर्तेयम्, जातु, कर्मणि, अतन्द्रितः, मम, वर्त्म, अनुवर्तन्ते, मनुष्याः, पार्थ, सर्वशः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

हि=क्योंकि
यदि=अगर
जातु=कभी
अहम्=मैं
अतन्द्रितः=आलस्यरहित होता हुआ
कर्मणि=कर्म में

अन्वयः शब्दार्थ

न वर्तेयम्=न बर्तूं तो
मम=मेरे
वर्त्म=मार्ग को
पार्थ=हे अर्जुन!
मनुष्याः=मनुष्य
सर्वशः=सब प्रकारसे
अनुवर्तन्ते=अनुगमन करेंगे

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ! यदि मैं जगत् का ईश्वर होकर आलस्य के कारण कदाचित् कर्मों को

नहीं करूं तो फिर सबलोग मुझ ईश्वर के मार्ग को न प्राप्त होकर कर्मों को नहीं करेंगे ॥ २३ ॥

मूलम्।

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः २४

पदच्छेदः।

उत्सीदेयुः, इमे, लोकाः, न, कुर्याम्, कर्म, चेत्, अहम्, संकरस्य, च, कर्ता, स्याम्, उपहन्याम्, इमाः, प्रजाः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

चेत्=अगर
अहम्=मैं
कर्म=कर्म को
नकुर्याम्=न करूं तो
इमे=ये
लोकाः=लोग
उत्सीदेयुः=नष्टहोजावेंगे

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
संकरस्य=वर्णसंकर का
कर्ता=कर्ता
स्याम्=म होऊं
+च=और
इमाःप्रजाः=इन प्रजाओंको
उपहन्याम्=नाशकरूं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! यदि मैं कर्मों को न करूं तो मेरे अनुसारी होकर संपूर्णलोग भी कर्मों को नहीं करेंगे, और सब कर्मों के अधिकारी नष्ट होजावेंगे, और वर्णसंकर भी हो जावेंगे, तब उस

का कर्ता भी मैंही होऊंगा, और वर्णसंकर द्वारा संपूर्ण प्रजा का नाशक भी मैंही होऊंगा ॥ २४ ॥

मूलम् ।

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्याद्विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् २५

पदच्छेदः ।

सक्ताः, कर्मणि, अविद्वांसः, यथा, कुर्वन्ति, भारत, कुर्यात्, विद्वान्, तथा, असक्तः, चिकीर्षुः, लोकसंग्रहम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

भारत=हे अर्जुन !
यथा=जैसे
अविद्वांसः=मूर्खलोग
सक्ताः=फल की इच्छा करते हुये
कर्मणि=कर्म में
कुर्वन्ति=प्रवृत्त होते हैं
तथा=वैसेही

अन्वयः शब्दार्थ

विद्वान्=ज्ञानी पुरुष
असक्तः=फलकीइच्छासेरहित होता हुआ और
लोकसंग्रहम्=लोक संग्रहको
चिकीर्षुः=चाहता हुआ
कुर्यात्=कर्म को करे

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जैसे अज्ञानी पुरुष फलमें रागकर और अपने को कर्ता मानकर

कर्मों को करते हैं, वैसे ज्ञानी पुरुष नहीं करते हैं, किंतु फल राग और कर्तृत्व बुद्धि को त्याग करके लोकसंग्रह के लिये वे कर्मों को करते हैं, इसलिये ज्ञानवान् की कर्म करने में कोई क्षति नहीं है, और अज्ञानीकी क्षति है, और मुमुक्षु पुरुष भी कर्म के फल में राग और कर्तृत्व बुद्धि को त्यागकर कर्म करता है, इस लिये उसकी भी क्षति नहीं है, क्योंकि कर्म के फल में राग और कर्तृत्व बुद्धिही बन्धन का हेतुहै. और राग का और कर्तृत्व बुद्धि का जो अभाव है वही मोक्षका कारण है ॥ २५ ॥

मूलम् ।

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।
योजयेत् सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन् २६

पदच्छेदः ।

न, बुद्धिभेदम्, जनयेत्, अज्ञानाम्, कर्मसङ्गिनाम्, योजयेत्, सर्वकर्माणि, विद्वान्, युक्तः, समाचरन् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
+ च	और
कर्मसङ्गिनाम्	कर्म में है प्रीतिजिनकी ऐसे
अज्ञानाम्	मूर्खों की
बुद्धिभेदम्	बुद्धि के भेदको
न जनयेत्	न उत्पन्न करे
+ परन्तु	बल्कि

विद्वान्=विवेकी पुरुष
युक्तः=अपने आत्मस्वरूपमेंसावधान होकर
सर्वकर्माणि=सब कर्मों को
समाचरन्=करता हुआ
योजयेत्=अज्ञानियों को कर्म में प्रेरणा केर

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं, कि हे अर्जुन ! जिसका कर्तृत्व में अभिनिवेश है और फलकी जिसको अभिलाषा है, उसकी ऐसी बुद्धि होती है कि मैं इस कर्म को करता हूं, और इसके फलको भोगूंगा, इस प्रकार के अज्ञानीपुरुष की बुद्धि को कर्मों से ज्ञानवान् पुरुष न हटावे अर्थात् उसको ऐसा न उपदेश करे कि आत्मा अकर्ता है, और फल नाशवान् है, किन्तु उस अज्ञानी की बुद्धि को कर्मों में श्रद्धासहित प्रेरे और आपभी समाहितचित्त होकर लोकसंग्रह के लिये कर्मों को करे, यदि ज्ञानी पुरुष अज्ञानियों की श्रद्धा को कर्मों में न उत्पन्न करे, और आप भी लोकसंग्रह के लिये कर्मों को न करे तो सबलोक नष्ट भ्रष्ट होजावेंगे ॥ २६ ॥

मूलम् ।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते २७

पदच्छेदः।

प्रकृतेः, क्रियमाणानि, गुणैः, कर्माणि, सर्वशः, अहङ्कारविमूढात्मा, कर्ता, अहम्, इति, मन्यते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
प्रकृतेः	प्रकृति के	कर्ता	कर्ता हूं
गुणैः	गुणों करके	इति	ऐसा
सर्वशः	सब प्रकार से	अहङ्कार-विमूढात्मा	अहङ्कारी मूर्ख पुरुष
कर्माणि	कर्म	मन्यते	मानता है
क्रियमाणानि	किये जाते हैं		
अहम्	मैं		

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ! ज्ञानी अज्ञानी दोनों के लिये कर्मों का अनुष्ठान तो तुल्य ही है, परन्तु कर्तृत्वादिकों के अध्यास और अनध्यास करके ज्ञानी की अज्ञानी से जो विशेषता है उसको मैं दिखाता हूं, मिथ्या अज्ञानरूपी जो परमेश्वरकी माया है, वही माया कार्यरूप इन्द्रियों करके परिणतता को प्राप्त हुई है, उन इन्द्रियोंकरकेही वैदिक, लौकिक कर्म सब किये जाते हैं, और आत्मा का जो देहादिक इन्द्रियों के साथ तादात्म्य अध्यास होरहा है, उस अध्यास के विवेचन करने में मन असमर्थ है, और अज्ञान करके आवृत हुआ जीव देह इन्द्रियादिकों के कर्मों का कर्ता अपने को

मानताहै, और इसी कारण जन्ममृत्युरूप संसारको प्राप्त होता है, और ज्ञानवान् अपने में कर्तापनेका अभाव मानता है, इसीकारण वह जन्म मरणको नहीं प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

मूलम्।

तत्त्ववित्त महाबाहो गणाकर्मविभागयोः ।
गुणागुणेषु वर्तन्ते इति मत्वा न सज्जते २८

पदच्छेदः।

तत्त्ववित्, तु, महाबाहो, गुणकर्मविभागयोः, गुणाः, गुणेषु, वर्तन्ते, इति, मत्वा, न, सज्जते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

गुणाः=इन्द्रियां
गुणेषु=विषयों में
वर्तन्ते=बर्तती हैं
इति=ऐसा
मत्वा=मानकर
तत्त्ववित्=तत्त्वज्ञानी

अन्वयः शब्दार्थ

महाबाहो=हे अर्जुन !
गुणकर्म-विभागयोः=गुण और कर्म के विभाग म
न सज्जते=प्रीति नहीं करता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे गुडाकेश! विद्वान्ही इन्द्रियों और कर्मों के विभागको जानता है, जितने देह

इन्द्रियादिक गुण हैं वे सब अहंकारकेही आश्रित हैं, क्योंकि उनके व्यापार अनेकहैं, और आत्मा उनसे अलग है, संपूर्ण जड़ विकारियों का प्रकाशक है, और उनके विभागोंका कर्ता भी है, आत्मा जड़ का प्रकाशक है और जड़ प्रकाश्य है, इसीसे विद्वान् इन्द्रियों द्वारा विषयों में बर्तता भी है पर विकार को नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि वह आत्मा को निर्विकार असङ्ग जानता है, और गुणों को यानी विषयों को विकारी जानता है, और मूढ़ ऐसा नहीं जानता है, इसलिये वह विकार को प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

मूलम् ।

प्रकृतेर्गुणसम्मूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदोमन्दान्कृत्स्नविन्नविचालयेत्२९

पदच्छेदः ।

प्रकृतेः, गुणसम्मूढाः, सज्जन्ते, गुणकर्मसु, तान्, अकृत्स्नविदः, मन्दान्, कृत्स्नवित्, न, विचालयेत् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
प्रकृतेः=	प्रकृति क	ये=	जो
गुणसम्मूढाः=	गुण करके मोहकोप्राप्त हुये पुरुष	गुणकर्मसु=	बुद्धि इन्द्रिय आदिकों के कर्मों में

सज्जन्ते=आसक्त हो रहे हैं

तान्=तिन

अकृत्स्नविदः=अल्पमति मूर्खों को

कृत्स्नवित्=सर्वज्ञपुरुष याने तत्त्ववेत्ता

न विचालयेत्=कर्मसे चलायमान न करे याने नहटावे

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ! माया के कार्य इन्द्रियों के व्यापार में जो मूढ़ पुरुष अध्यास करके आत्मा का व्यापार मानता है उसी का नाम कर्मसङ्गी है, वही मन्द मत्त अशुद्धचित्तवाला है, क्योंकि देहादिकों में उसी की आत्मबुद्धि होरही है, वह आत्मज्ञान का अधिकारी नहीं है, इसवास्ते विद्वान् उसकी कर्मविषयक श्रद्धा को कभी नहीं हटाता है॥ २९॥

मूलम्।

मयिसर्वाणिकर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममोभूत्वा युध्यस्वविगतज्वरः ३०

पदच्छेदः।

मयि, सर्वाणि, कर्माणि, संन्यस्य, अध्यात्मचेतसा, निराशीः, निर्ममः, भूत्वा, युध्यस्व, विगतज्वरः॥

अन्वयः	शब्दार्थ
अध्यात्मचेतसा	विवेकादिकों करके
मयि	मुझमें
सर्वाणि	संपूर्ण
कर्माणि	कर्मों को
संन्यस्य	अर्पण करके

अन्वयः	शब्दार्थ
निराशीः	आशारहित
निर्ममः	ममतारहित
विगतज्वरः	शोकरहित
भूत्वा	होकर
युध्यस्व	तू युद्ध को कर

भावार्थ।

अर्जुन कहता है कि, हे भगवन्! मुमुक्षु को किस प्रकार कर्म करना चाहिये, भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! मुझ सर्वज्ञ ईश्वर में संपूर्ण श्रौतस्मार्त कर्मों को समर्पण करके ऐसा कहे कि मैं ईश्वर के अधीन हूं, ईश्वर के अर्थ भृत्यवत् सदैव मैं कर्मों को करता हूं, हे अर्जुन! तुमभी इस रीति से मुझ ईश्वरप्रीत्यर्थ कर्मों को करो ॥ ३० ॥

मूलम्।

येमेमतमिदंनित्यमनुतिष्ठन्तिमानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपिकर्मभिः ३१

पदच्छेदः।

ये, मे, मतम्, इदम्, नित्यम्, अनुतिष्ठन्ति, मानवाः, श्रद्धावन्तः, अनसूयन्तः, मुच्यन्ते, ते, अपि, कर्मभिः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
ये	जो	नित्यम्	निरन्तर
श्रद्धावन्तः	श्रद्धावान्	अनुतिष्ठन्ति	अनुष्ठान करते हैं
अनसूयन्तः	ईर्ष्यारहित	ते	वे
मानवाः	मनुष्य	अपि	भी
मे	मेरे	कर्मभिः	कर्म के बन्धनसे
इदम्	इस	मुच्यन्ते	छूट जाते हैं
मतम्	मतको		

भावार्थ।

भगवान् फिर कहते हैं कि, हे अर्जुन! जो कर्माधिकारी पुरुष मेरे इस मत के अनुसार सदैव चलते हैं, और मुझमें अनसूया यानी दोषबुद्धि को नहीं करते हैं, और मेरे परायण होकर मुझमें ही श्रद्धा को करते हैं, वेभी अन्तःकरण की शुद्धिद्वारा आत्मज्ञान को प्राप्त होकर कर्मरूपी बन्धन से छूट जाते हैं॥ ३१॥

मूलम्।

येत्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्तिमेमतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान् विद्धि नष्टानचेतसः ३२

पदच्छेदः।

ये, तु, एतत्, अभ्यसूयन्तः, न, अनुतिष्ठन्ति, मे,

मतम्, सर्वज्ञानविमूढान्, तान्, विद्धि, नष्टान्, अचेतसः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तु=और
ये=जो
अभ्यसूयन्तः=निन्दा करते हुये
एतत्=इस
मे=मेरे
मतम्=मतको
न अनुतिष्ठन्ति=नहीं अनुष्ठान करते हैं

अन्वयः शब्दार्थ

तान्=उनको
सर्वज्ञानविमढान्=संपूर्ण ज्ञान से मूढ़
+ च=और
अचेतसः=बुद्धिरहित
नष्टान्=भ्रष्ट
विद्धि=जानतू

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे कुन्ती के पुत्र! जो मन्दमति नास्तिकबुद्धिवाले श्रद्धा से हीन होकर इस मेरे मत में दोषों को उद्भावन कर के नहीं प्रवृत्त होते हैं, उनको ईश्वर के सगुण निर्गुण गुणों का ज्ञान कदापि नहीं होता है, और वे पुरुषार्थ से भ्रष्ट हो जाते हैं ॥ ३२ ॥

मूलम्।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिंयान्तिभूतानि निग्रहः किं करिष्यति, ३३

पदच्छेदः ।

सदृशम्, चेष्टते, स्वस्याः, प्रकृतेः, ज्ञान्वान्, अपि, प्रकृतिम्, यान्ति, भूतानि, निग्रहः, किम्, करिष्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
स्वस्याः	अपने	भूतानि	सब प्राणी
प्रकृतेः	स्वभाव के	प्रकृतिम्	अपने स्वभावको
सदृशम्	अनुसार	यान्ति	प्राप्त होते हैं
ज्ञानवान्	ज्ञानी	निग्रहः	निग्रह
अपि	भी	किम्	क्या
चेष्टते	चेष्टाकरताहै	करिष्यति	करेगा

भावार्थ ।

अर्जुन कहता है कि, हे भगवन्! राजा की आज्ञा के उल्लङ्घन करने में जीवों को भय होता है, और इसी कारण वे राजाकी आज्ञा को उल्लङ्घन नहीं करते हैं, तुम्ह ईश्वर की आज्ञा के उल्लङ्घन करने में उनको भय क्यों नहीं होता है, जो उनको भय होता तो आपके मतके अनुसार क्यों नहीं चलते हैं ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! पूर्व जन्मों के संस्कार जो

धर्माऽधर्मादिकों को विषय करनेवाले हैं वे संस्कार वर्तमान जन्म में फल देने को प्रकट होते हैं, और उन संस्कारों के अनुसारही जीवोंका स्वभाव होता है, वह स्वभाव सबसे बलवान् है, उसके अनुसारही सब जीव चेष्टा करते हैं, जो विद्वान् गुण दोषों के जानने वाले हैं, वे भी अपने स्वभाव के अनुसारही चेष्टा करते हैं, यदि मूढ़बुद्धिवाले भी स्वभाव के अनुसार ही चेष्टा करें तो क्या आश्चर्य है, पुरुषार्थ के सिद्ध करने में और उसके क्षय में भी प्रकृतिही कारण है, जबकि सब जीव अपने अपने स्वभाव के अनुसारही चेष्टा करते हैं, तब फिर चाहे राजा की आज्ञा हो या मेरी आज्ञा हो, उस के उल्लङ्घन करने में क्या आश्चर्य है, स्वभाव के वशसे ही पाप पुण्य में सब जीव प्रवृत्त होते हैं, इसी से मेरी आज्ञा कोभी उल्लङ्घन करते हैं ॥ ३३ ॥

मूलम् ।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौव्यवस्थितौ ।
तयोर्नवशमागच्छेत्तौह्यस्यपरिपन्थिनौ ३४

पदच्छेदः ।

इन्द्रियस्य, इन्द्रियस्य, अर्थे, रागद्वेषौ, व्यवस्थितौ, तयोः, न, वशम्, आगच्छेत्, तौ, हि, अस्य, परिपन्थिनौ ॥

अन्वयः शब्दार्थ

इन्द्रियस्य इन्द्रियस्य अर्थे=प्रत्येक इन्द्रियों के विषय में
रागद्वेषौ=राग और द्वेष
व्यवस्थितौ=स्थित हैं
तयोः=इन दोनों के
वशम्=वशको
न=नहीं

अन्वयः शब्दार्थ

आगच्छेत्=प्राप्त होवे
हि=क्योंकि
अस्य=इस पुरुष के याने मुमुक्षु के लिये
तौ=वे दोनों राग द्वेष
परिपन्थिनौ=चोर हैं

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ जबकि सब पुरुष अपनी प्रकृति के अनुसार ही कार्य करते हैं, तब विधिशास्त्र और मोक्षविधायक शास्त्र सब व्यर्थ होजावेंगे, क्योंकि प्रकृति का तो विपर्यय होवेगा नहीं ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! संपूर्ण इन्द्रियों के जो विषय हैं, उनमें राग द्वेष स्थित रहते हैं, अर्थात् चाहे वह शास्त्रविहित हो या निषिद्धहो, जो अपने अनुकूल है, उसमें तो राग होता है, और जो अपने प्रतिकूल है, उसमें द्वेष होताहै, यानी इष्टसाधनता ज्ञान राग का हेतु है, और अनिष्टसाधनता ज्ञान द्वेषका हेतु है, यह विषय मेरे इष्टका साधन है, ऐसा ज्ञान जिस विषय में होगा, उसमें अवश्य राग होगा, जैसे सुन्दर स्त्री सुन्दर

भोजनादिकों में इष्टसाधन का ज्ञान होता है, उनमें पुरुषों का रागभी होता है, और विषसर्पादिकों में अनिष्टसाधनता का ज्ञान होता है, ये मेरे शत्रुहैं वे मेरे इष्टजातक साधन नहीं हैं, इसलिये उनमें द्वेषही होता है, और राग द्वेष को अग्रणी करके प्रकृतिनिषिद्ध भक्षणादिकों में प्रवृत्ति और नित्यकर्मादिकों में निवृत्ति भी करादेती है, और शास्त्रने निषिद्ध कर्म को अनर्थ का हेतु और विहित कर्म को अभीष्ट का हेतु बोधन किया है, इन दोनों को निश्चय करके आस्तिकपुरुष शास्त्र अनुसार प्रवृत्त होता है, ये राग द्वेष पुरुष के शत्रु हैं और मोक्षमार्ग के भी विरोधी हैं यानी विघ्नकारी हैं, परन्तु शास्त्रीय ज्ञान को प्राप्त होकर पुरुष उनका उच्छेदन करसक्ता है, इसलिये हे अर्जुन ! तुम भी शास्त्रीय ज्ञान करके इन का उच्छेदन करो ॥ ३४ ॥

मूलम् ।

श्रेयान्स्वधर्मोविगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मेनिधनंश्रेयः परधर्मोभयावहः ३५

पदच्छेदः ।

श्रेयान्, स्वधर्मः, विगुणः, परधर्मात्, स्वनुष्ठितात्, स्वधर्मे, निधनम्, श्रेयः, परधर्मः, भयावहः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
विगुणः	=गुणरहितभी	स्वधर्मः	=अपना धर्म

श्रेयान्=श्रेष्ठ है
स्वनुष्ठितात्=अच्छे प्रकार अनुष्ठान किये हुये
परधर्मात्=दूसरे के धर्म से
+ च=और
स्वधर्मे=अपने धर्म में
निधनम्=मरना
श्रेयः=श्रेष्ठ है
परधर्मः=दूसरे का धर्म
भयावहः=भय का देने वाला है

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ हे प्रभो ! यदि स्वाभाविक प्रकृति राग द्वेषादिकों का हेतु है, तब फिर मुझे युद्ध करने में क्यों योजना करते हो, भिक्षा अशनादिकों का उपदेश मुझे क्यों नहीं करते हो, और स्वाभाविक प्रकृति को त्याग करके शास्त्रीय कर्म का उपदेश क्यों करते हो ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! श्रुति ने वर्णाश्रमाभिमानीके प्रति जो धर्म कहा है वही धर्म वर्णाश्रमाभिमानी को कर्तव्य है, यदि स्वधर्म किञ्चित् किसी अङ्ग करके न्यून भी हो तबभी वह दूसरों के धर्मों से श्रेष्ठहै, स्वधर्म में स्थित होकर मरना भी उत्तम है, क्योंकि पर के धर्म में स्थित होकर मरना भयदायक है, स्वधर्मही इसलोक और परलोक में यशको प्राप्त करनेवाला है, इसलिये शास्त्र के तात्पर्य के जाननेवालों को उचित है कि स्वधर्म मेंही स्थित रहें ॥ ३५ ॥

मूलम् ।

अर्जुन उवाच–

अथकेनप्रयुक्तोऽयं पापंचरतिपूरुषः ।
अनिच्छन्नपिवार्ष्णेय बलादिवनियोजितः ३६

पदच्छेदः ।

अथ, केन, प्रयुक्तः, अयम्, पापम्, चरति, पूरुषः, अनिच्छन्, अपि, वार्ष्णेय, बलात्, इव, नियोजितः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अथ=इसके अनन्तर
इव=मानो
केन=किसी करके
प्रयुक्तः=प्रेरा हुआ
बलात्=ज़बरदस्ती से
नियोजितः=खिंचा हुआ
अयम्=यह

अन्वयः शब्दार्थ

पूरुषः=पुरुष
वार्ष्णेय=हे कृष्ण !
अनिच्छन्=नहीं चाहता हुआ
अपि=भी
पापम्=पापको
चरति=करता है

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ अर्जुन कहता है कि हे भगवन् ! पूर्व आपने विषयों के चिन्तन को अनर्थ का मूलकारण कहा, अब आप राग द्वेष को अनर्थ का मूलकारण कहते हैं तो इससे साबित होता है कि अनर्थ के मूलकारण बहुत हैं, उनके दूर करने में बड़ा परिश्रम

होगा, इसलिये एकको सब अनर्थों का मूलकारण कहना चाहिये, फिर अर्जुन कहता है कि, हे वार्ष्णेय ! किस करके यह पुरुष प्रेरित हुआ २ निषिद्ध कर्मोंका आचरण करता है, यदि पुरुष को अनर्थ करने की इच्छा नहीं भी है तब भी कोई इसको अनर्थ में जोड़ देता है, जैसे राजा का भृत्य कार्य करने की इच्छा नहीं भी करता है, परन्तु राजा उसको कार्य में जोड़ देताहै, वैसेही कौन है जो पुरुष को अनिष्ट कर्मों में जोड़देता है आप कृपा करके कहिये ॥ ३६ ॥

मूलम् ।

श्रीभगवानुवाच-

कामएषक्रोधएष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनोमहापाप्मा विद्ध्येनमिहवैरिणम् ३७

पदच्छेदः ।

कामः, एषः, क्रोधः, एषः, रजोगुणसमुद्भवः, महाशनः, महापाप्मा, विद्धि, एनम्, इह, वैरिणम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
रजोगुणसमुद्भवः	= रजोगुण से उत्पन्न हुआ	महाशनः	= यह बड़ा भोजन का करनेवाला है याने इसकी तृप्ति कदापि होती नहीं है
एषः	= यह		
कामः	= कामही		
क्रोधः	= क्रोध है		

+च=और
महापाप्मा=बड़ा पापी है
इह=इस संसार में

एनम्=इसको
वैरिणम्=शत्रु
विद्धि=तू जान

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! यह काम है जो अनर्थों में जोड़ता है इसी कामको तुम वैरी जानो, यह काम अत्यन्त दुःसह है, बलात्कारसे यह पुरुषको अनर्थ में प्रवृत्त करताहै, अर्थात् संपूर्ण अनर्थोंकी प्राप्तिका हेतु यह कामही है, इसी वास्ते यह सबका महान् शत्रु है, काम नाम इच्छा का है, जब पुरुष को किसी वस्तु की प्राप्तिकी इच्छा होती है, और बीच में कोई उस इच्छा को प्रतिबन्ध करता है, तब इच्छाकी पूर्ति न होने से क्रोध उत्पन्न होता है, और रजोगुणसे कामकी उत्पत्ति होती है, यह काम साम दाम दण्ड भेद चारों करके वश में नहीं होता है, क्योंकि इसकी पूर्ति किसीप्रकार से भी नहीं होती है, जितने कि पृथिवीपर हिरण्य, पशु आदिक उत्तम उत्तम पदार्थ हैं, उनके प्राप्त होने पर भी इसकी पूर्ति कदापि नहीं होती है, उसी काम करके प्रेरित हुआ जीव महान् पापों में प्रवृत्त होता है, इसलिये संसारमें तुम काम को ही वैरी जानो ॥ ३७ ॥

मूलम् ।

धूमेनाव्रियतेवह्निर्यथादर्शोमलेन च ।
यथोल्बेनावृतोगर्भस्तथातेनेदमावृतम् ३८

पदच्छेदः ।

धूमेन, आव्रियते, वह्निः, यथा, आदर्शः, मलेन, च, यथा, उल्बेन, आवृतः, गर्भः, तथा, तेन, इदम्, आवृतम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यथा=जैसे
वह्निः=अग्नि
धूमेन=धूम से
आव्रियते=आच्छादित है
च=और
यथा=जैसे
मलेन=मल से
आदर्शः=दर्पण
+आव्रियते=आच्छादित है
+ च=और

अन्वयः शब्दार्थ

यथा=जैसे
उल्बेन=झिल्ली से
गर्भः=गर्भाशय
आवृतः=ढका है
तथा=वैसेही
तेन=उस करके याने काम करके
इदम्=यह ज्ञान
आवृतम्=आच्छादित है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि हे पार्थ ! यह जो काम है सो मनकी एक वृत्ति है, इस स्थूलशरीर की उत्पत्ति के पूर्व इच्छारूपी वृत्ति से मन रहित होता है, अर्थात् उस काल में मनकी स्थूलवृत्ति नहीं होती है, किन्तु

अतिसूक्ष्मवृत्ति होती है, और जिस काल में स्थूल शरीर उत्पन्न होता है, तब भी मन सूक्ष्म होता है, पर ज्यों ज्यों शरीर बढ़ता जाता है त्यों त्यों मन भी इच्छारूपी वृत्ति के सहित बढ़ता जाता है, और इच्छारूपी वृत्तिके सहित स्थूल होता जाता है, जब युवा अवस्था में विषयों को मन चिन्तन करता है तब मन स्थूलतर होता है, और विषयभोगकाल में वृत्ति के सहित मन स्थूलतम होजाता है, और जैसे अप्रकाशरूप धूम करके अग्नि आच्छादित होकर साफ़ नहीं दिखलाई देता है, और जैसे मलयुक्त दर्पण प्रतिबिम्बको ग्रहण नहीं करता है, और जैसे जरायु करके आच्छादि गर्भ स्वरूप करके प्रतीत नहीं होता है वैसेही काम करके आच्छादित हुआ हुआ आत्मा भी अपने प्रकाशको नहीं प्रकाश करता है ॥ ३८ ॥

मूलम्।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनोनित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ३९

पदच्छेदः।

आवृतम्, ज्ञानम्, एतेन, ज्ञानिनः, नित्यवैरिणा, कामरूपेण, कौन्तेय, दुष्पूरेण, अनलेन, च ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

नित्यवैरिणा=नित्य वैरी है जो

च=और

दुष्पूरेण=दुःख से पूर्ति है जिसकी

अनलेन=अग्निरूप है जो ऐसे

अन्वयः **शब्दार्थ**

एतेन=इस

कामरूपेण=कामस्वरूप करके

ज्ञानिनः=ज्ञानी का

ज्ञानम्=ज्ञान

कौन्तेय=हे अर्जुन !

आवृतम्=आच्छादित है

भावार्थ।

हे अर्जुन ! इसी काम करके पुरुषों का ज्ञान आच्छादित है, और यह तत्त्वज्ञानियोंका तो नित्य वैरी है, अज्ञानी इसको भोगकालमें मित्र की तरह देखते हैं पर जब उसके कार्य से दुःखित होते हैं तब उसको शत्रुकी तरह देखते हैं, और ज्ञानी तो उसको भोग कालमें भी शत्रुकी तरह देखते हैं, क्योंकि ज्ञानी ऐसा जानते हैं कि इसी काम यानी इच्छा अथवा तृष्णा करके पुरुष अनर्थ को प्राप्त होता है, और जैसे हविः करके अग्नि शान्तिको नहीं प्राप्त होती है वैसेही यह काम भी कभी भोगों करके तृप्तिको नहीं प्राप्त होता है, इसलिये यह काम सदैव मारने योग्य है ॥ ३९ ॥

मूलम् ।

इन्द्रियाणिमनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येषज्ञानमावृत्यदेहिनम् ४०

पदच्छेदः ।

इन्द्रियाणि, मनः, बुद्धिः, अस्य, अधिष्ठानम्, उच्यते, एतैः, विमोहयति, एषः, ज्ञानम्, आवृत्य, देहिनम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
इन्द्रियाणि	इन्द्रियां	एतैः	इन करके यानेइन्द्रिय मन बुद्धि करके
मनः	मन		
+ च	और		
बुद्धिः	बुद्धि		
अस्य	इस कामके	ज्ञानम्	ज्ञानको
अधिष्ठानम्	रहने का स्थान	आवृत्य	आच्छादित कर
उच्यते	कहे जाते हैं	देहिनम्	जीवको
एषः	यह याने काम	विमोहयति	मोहित करता है

भावार्थ ।

हे कौन्तेय ! प्रथम पुरुषको उचित है कि शत्रुके निवास स्थानको जाने, क्योंकि विना निवासस्थान के जाने शत्रुका पकड़ना कठिन है, इसलिये शत्रु के निवासस्थान को जानकर उसको वशमें करने का

उद्योग करना चाहिये, कामका अधिष्ठान यानी रहने का स्थान सब इन्द्रियां मन और बुद्धि हैं, और ये सब इन्द्रियांही शब्दादिक विषयों के ग्राहक हैं, अर्थात् संकल्परूप मन, और निश्चयरूप बुद्धि, और इन्द्रियां ये सब काम के निवास करने के स्थान हैं, वह काम अपने आश्रय इन्द्रिय आदिकों के व्यापारों करके पुरुष के विवेकज्ञानको आच्छादन करके पुरुष को मोहन करता है, हे अर्जुन ! जितने देहाभिमानी मूर्ख हैं वे सब काम करके मोहित होरहे हैं ॥ ४० ॥

मूलम्।

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ४१

पदच्छेदः।

तस्मात्, त्वम्, इन्द्रियाणि, आदौ, नियम्य, भरतर्षभ, पाप्मानम्, प्रजहि, हि, एनम्, ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तस्मात्=इस लिये
हि=निश्चय करके
त्वम्=तू
आदौ=पहिलेही से

अन्वयः शब्दार्थ

इन्द्रियाणि=इन्द्रियों को
नियम्य=रोक कर
भरतर्षभ=हे अर्जुन !
एनम्=इस

पाप्मानम्=पापी
ज्ञानविज्ञाननाशनम्=ज्ञान और विज्ञानकेनाशकरनेवाले कामको
प्रजहि=जीत

भावार्थ।

हे प्रियमित्र! जिस कारण वह कामरूपी शत्रु इन्द्रियों के आश्रित होकर जीवों को मोहन करता है और ज्ञानविज्ञान अथवा परोक्षज्ञान और अपरोक्षज्ञानका नाशक है, उसी कारण, हे भरतर्षभ! तुम प्रथम इन्द्रियों को अपने वशमें करके इस काम को जय करो ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन्! जिस काल में ज्ञान के सहित विज्ञान उत्पन्न होता है उसी कालमें कार्य के सहित अज्ञान का नाश होजाता है तब फिर काम की उत्पत्तिमात्र से ज्ञान विज्ञान का नाश कैसे होसक्ता है, ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि यद्यपि काम ज्ञान विज्ञान को नाश नहीं करसक्ता है, तब भी यह काम विश्वास करने के योग्य नहीं है, क्योंकि जीवन्मुक्ति में यह बाधा अवश्य करता है, और मुमुक्षुवों को भी आत्मज्ञानकी प्राप्ति में बाधा करता है, इसलिये इस का मारनाही उचित है ॥ ४१ ॥

मूलम् ।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेर्यः परतस्तु सः ४२

पदच्छेदः ।

इन्द्रियाणि, पराणि, आहुः, इन्द्रियेभ्यः, परम्, मनः, मनसः, तु, परा, बुद्धिः, बुद्धेः, यः, परतः, तु, सः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
इन्द्रियाणि=	इन्द्रियों को स्थूल देह से	परा=	श्रेष्ठ
पराणि=	श्रेष्ठ	बुद्धिः=	बुद्धि है और
आहुः=	कहते हैं	बुद्धेः=	बुद्धि से
इन्द्रियेभ्यः=	इन्द्रियों से	यः=	जो
परम्=	श्रेष्ठ	परतः=	श्रेष्ठ है
मनः=	मन है	+ तत्=	सो
तु=	और	सः=	वह है याने आत्मा है
मनसः=	मन से		

भावार्थ ।

हे सौम्य ! स्थूल जड़ परिच्छिन्न बाह्य शरीर से इन्द्रियां परे हैं यानी सूक्ष्म हैं, और मन इन्द्रियों का प्रेरक होने से इन्द्रियों से परे है यानी सूक्ष्म है, और मन से बुद्धि सूक्ष्म है, उस बुद्धि से भी सूक्ष्म द्रष्टा आत्मा

है, उस आत्मा को, जोकि अविद्या करके आवृत है, यह काम मोहन करता है ॥ ४२ ॥

मूलम्।

एवं बुद्धेः परंबुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ४३

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगोनाम
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः।

एवम्, बुद्धेः, परम्, बुद्ध्वा, संस्तभ्य, आत्मानम्, आत्मना, जहि, शत्रुम्, महाबाहो, कामरूपम्, दुरासदम् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

एवम्=इस प्रकार
बुद्धेः=बुद्धि से
परम्=आत्मा को
बुद्ध्वा=जानकर
+ च=और
आत्मानम्=मन को
आत्मना=बुद्धि से
संस्तभ्य=रोक कर

अन्वयः **शब्दार्थ**

महाबाहो=हे अर्जुन !
दुरासदम्=दुःख से प्राप्त होने योग्य
कामरूपम्=कामरूपी
शत्रुम्=शत्रु को
जहि=जीत तू याने मार

भावार्थ।

पूर्व कथन किया हुआ जो सबसे अति सूक्ष्म आत्मा है, उसको विद्वान् साक्षात्कार करके और उसी में मनको स्थिर करके कामरूपी शत्रु को सर्व प्रकार से जय करे अर्थात् सहित मूलकारण अविद्या के उस शत्रु का नाश करे॥ ४३॥

तीसरा अध्याय समाप्त॥

चौथा अध्याय।

मूलम्।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवेप्राहमनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् १

पदच्छेदः।

इमम्, विवस्वते, योगम्, प्रोक्तवान्, अहम्, अव्ययम्, विवस्वान्, मनवे, प्राह, मनुः, इक्ष्वाकवे, अब्रवीत्॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

इमम्=इस
अव्ययम्=अविनाशी
योगम्=योग को
अहम्=मैं
विवस्वते=सूर्य से
प्रोक्तवान्=कहता भया
विवस्वान्=सूर्य

अन्वयः **शब्दार्थ**

मनवे=मनु से
प्राह=कहता भया
+ च=और
मनुः=मनु
इक्ष्वाकवे=इक्ष्वाकु से
अब्रवीत्=कहता भया

भावार्थ ।

पूर्व दो अध्यायों में साध्य साधनरूप करके भगवान् ने दो प्रकार का योग कहा है, अर्थात् कर्मयोग को ज्ञानयोग का साधन, और ज्ञानयोग को कर्मयोग का साध्य कहा है, अब परंपरा करके भगवान् ज्ञानयोग की स्तुति को करते हैं, और कहते हैं कि सर्ग के आदि काल में मैंने विवस्वान् यानी सूर्य के प्रति जिस ज्ञानयोगको कथन किया था सो यही ज्ञानयोग है, यह अव्यय फलवाला होने से अविनाशी है, इसको विवस्वान् ने अपने पुत्र मनुके प्रति कथन किया, और मनुने अपने पुत्र इक्ष्वाकु के प्रति कथन किया ॥ १ ॥

मूलम् ।

एवं परंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
सकालेनेह महता योगो नष्टः परंतप २

पदच्छेदः ।

एवम्, परंपराप्राप्तम्, इमम्, राजर्षयः, विदुः, सः, कालेन, इह, महता, योगः, नष्टः, परंतप ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
एवम्=	इस प्रकार	इमम्=	इस योगको
परंपराप्राप्तम्=	एक दूसरे से प्राप्तहोते हुये	राजर्षयः=	राजर्षि
		विदुः=	जानते भये
		सः=	वह

योगः=योग
इह=इस संसार में
परंतप=हे अर्जुन !
महता=बहुत

कालेन=काल व्यतीत होने के कारण से
नष्टः=लुप्त होगया है

भावार्थ।

हे अर्जुन! आदित्यसे लेकर गुरु शिष्य संवादद्वारा इस ज्ञानयोग को सब राजऋषि प्राप्त होते भये, फिर जब कुछ धर्म की न्यूनता हुई तब यह ज्ञानयोग भूतल में अजितेन्द्रिय, दुर्बल, भोगों में लम्पट और कामादिकों करके तिरस्कृत पुरुषों को प्राप्त होकर विच्छिन्न संप्रदायवाला होताभया ॥ २ ॥

मूलम्।

स एवायं मया तेऽद्य योगःप्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसिमेसखाचेति रहस्यंह्येतदुत्तमम् ३

पदच्छेदः।

सः, एव, अयम्, मया, ते, अद्य, योगः, प्रोक्तः, पुरातनः, भक्तः, असि, मे, सखा, च, इति, रहस्यम्, हि, एतत्, उत्तमम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
सः एव=वही
अयम्=यह

अन्वयः शब्दार्थ
पुरातनः=प्राचीन
योगः=योग

च=और
एतत्=यह
उत्तमम्=श्रेष्ठ
रहस्यम्=गोपनीय
+ ज्ञानम्=ज्ञान
अद्य=आज
मया=मुझ करके
इति=इस प्रकार

ते=तेरे लिये
प्रोक्तः=कहा गया है
हि=क्योंकि
मे=मेरा
भक्तः=भक्त
असि=तू है
+ च=और
सखा असि=सखा है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उसी प्राचीन ज्ञानयोग को अब मैंने तेरे प्रति कहा है, क्योंकि तू मेरा प्यारा सखा और भक्त है, हे मित्र ! इस ज्ञानयोगको तुम गोपनीय रक्खो, क्योंकि यह ज्ञानयोग अति उत्तम है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अर्जुन उवाच-

अपरंभवतोजन्म परंजन्मविवस्वतः ।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौप्रोक्तवानिति ४

पदच्छेदः ।

अपरम्, भवतः, जन्म, परम्, जन्म, विवस्वतः, कथम्, एतत्, विजानीयाम्, त्वम्, आदौ, प्रोक्तवान्, इति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

भवतः=आपका
जन्म=जन्म
अपरम्=पीछे है
विवस्वतः=सूर्य का
जन्म=जन्म
परम्=पहिले है
कथम्=कैसे

अन्वयः शब्दार्थ

एतत्=इसको
विजानीयाम्=जानू म कि
त्वम्=आप
आदौ=पहिले
इति=इस प्रकार
प्रोक्तवान्=कहते भये

भावार्थ ।

अर्जुन कहता हैं कि हे भगवन्! आपका जन्म इदानींकाल में वसुदेव के गृह बिषे हुआ है, और आदित्य का जन्म सृष्टिके आदि काल में हुआ है, इस कारण आदित्य के प्रति आपके ज्ञानयोग का कथन नहीं बनता है, आप कैसे कहते हैं कि मैंने आदित्य के प्रति पूर्व कहा था ॥ ४ ॥

मूलम् ।

श्रीभगवानुवाच–

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ५

पदच्छेदः ।

बहूनि, मे, व्यतीतानि, जन्मानि, तव, च, अर्जुन,

तानि, अहम्, वेद, सर्वाणि, न, त्वम्, वेत्थ, परन्तप ॥

अन्वयः शब्दार्थ

मे=मेरे
बहूनि=बहुतेरे
जन्मानि=जन्म
व्यतीतानि=व्यतीत हुये ह
च=और
तव=तेरे भी
अर्जुन=हे अर्जुन !

अन्वयः शब्दार्थ

तानि=उन
सर्वाणि=सबको
अहम्=मैं
वेद=जानता हूं
त्वम्=तू
परन्तप=हे अर्जुन !
न=नहीं
वेत्थ=जानता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि हे पार्थ! हमारे और तुम्हारे बहुत से जन्म व्यतीत हुये हैं, उन सब जन्मों को मैं जानता हूं, क्योंकि मैं सर्वज्ञ ईश्वर हूं, और तू उन जन्मों को नहीं जानता है, क्योंकि तू अल्पज्ञ जीव है, तुम्हारे जन्म कर्मों के आधीन होते हैं, इसी वास्ते तुम्हारे शरीर भी सब जन्मों में पाञ्चभौतिक हुये हैं, और हमारे जन्म कर्मों के आधीन नहीं हैं, इसीवास्ते हमारे सब मायिक शरीर हुये हैं, जीव ईश्वर का इतना ही भेद है, जीव कर्मों के बन्धन में है, ईश्वर कर्मों के बन्धन में नहीं है, जीवका भोग कर्मों के आधीन है,

इसीवास्ते जीव परतन्त्र है, ईश्वर कर्मों के आधीन नहीं है, इसीवास्ते वह स्वतन्त्र है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अजोपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ६

पदच्छेदः ।

अजः, अपि, सन्, अव्ययात्मा, भूतानाम्, ईश्वरः, अपि, सन्, प्रकृतिम्, स्वाम्, अधिष्ठाय, सम्भवामि, आत्ममायया ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अजः=अज
अव्ययात्मा=अविनाशी
सन्=होता हुआ
अपि=भी
+ च=और
भूतानाम्=प्राणियों का
ईश्वरः=ईश्वर
अपि=भी

अन्वयः शब्दार्थ

सन्=होता हुआ
स्वाम्=अपनी
प्रकृतिम्=प्रकृति को
अधिष्ठाय=बस करके
आत्ममायया=अपनी माया के द्वार।
सम्भवामि=उत्पन्न होता हूं

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ जीवों को धर्माऽधर्मादिकों का सम्बन्ध होने से जन्मादिक भी उनकोही होते हैं, और ईश्वर को

धर्माऽधर्म के सम्बन्धका अभाव होने से जन्मादिक ईश्वरके नहीं होते हैं तो फिर आप कैसे कहते हैं कि हमारे भी बहुतसे जन्म हुये हैं॥ उत्तर॥ भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! जीवसे नवीन देहके सम्बन्ध का नाम जन्म है, और जीवसे उत्पन्न हुये देह के नाश का नाम मरण है, उन दोनों के सम्बन्ध से मैं रहित हूं, परन्तु विचित्र अनेक शक्तियोंवाली जो माया है उस माया को अपने आधीन करके लोकों के अनुग्रह के लिये मैं प्रकट होता हूं, इतर जीवों की तरह मेरा जन्म नहीं है, क्योंकि वास्तव में मैं अज हूं यानी जन्म मरण से रहित हूं॥६॥

मूलम्।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ७

पदच्छेदः।

यदा, यदा, हि, धर्मस्य, ग्लानिः, भवति, भारत, अभ्युत्थानम्, अधर्मस्य, तदा, आत्मानम्, सृजामि, अहम्॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
हि	क्योंकि	ग्लानिः	हानि
भारत	हे अर्जुन!	भवति	होती है
यदा यदा	जब जब	+ च	और
धर्मस्य	धर्म की	अधर्मस्य	अधर्म की

अभ्युत्थानम्=उत्पत्ति
+ भवति=होती है
तदा=तब तब
अहम्=मैं

आत्मानम्=अपने को
सृजामि=उत्पन्न करताहूं

भावार्थ ।

अर्जुन कहता है कि हे महाराज ! जब जन्म मरणादिकों से आप रहित हैं, तब फिर आप जीव की नाईं क्यों व्यवहार करते हैं ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! दो प्रकार का धर्म है, एक वैदिक, दूसरा लौकिक, उन दोनों प्रकार के धर्मों की जिस काल में हानि होती है, और अनर्थकारी अधर्म की उन्नति होती है तब मैं अपने आत्मा को मायिक शरीर करके प्रकट करता हूं ॥ ७ ॥

मूलम् ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ८

पदच्छेदः ।

परित्राणाय, साधूनाम्, विनाशाय, च, दुष्कृताम्, धर्मसंस्थापनार्थाय, संभवामि, युगे, युगे ॥

अन्वयः शब्दार्थ
साधूनाम्=साधुओं के

अन्वयः शब्दार्थ
परित्राणाय=रक्षाके लिये

च=और
दुष्कृताम्=पापियों के
विनाशाय=नाश के लिये
+ च=और

धर्मसंस्थापनार्थाय=धर्म स्थापन करनेकेलिये
युगेयुगे=हरएकयुगमें
सम्भवामि=मैं पैदा होता हूं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि जो वेदमार्ग में स्थित महात्मा साधु हैं, उनके धर्मकी हानि होने पर उनकी रक्षा के लिये और वर्धमान दुष्ट वेदमार्ग के विरोधी जो पापी हैं उनके नाश के लिये और वेदमार्ग की पालना के लिये हर एक युग में मैं अवतार को लेता हूं॥ ८॥

मूलम्।

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ९

पदच्छेदः।

जन्म, कर्म, च, मे, दिव्यम्, एवम्, यः, वेत्ति, तत्त्वतः, त्यक्त्वा, देहम्, पुनः, जन्म, न, एति, माम्, एति, सः, अर्जुन॥

अन्वयः **शब्दार्थ**
मे=मेरे
दिव्यम्=अलौकिक

अन्वयः **शब्दार्थ**
जन्म=जन्म
च=और

कर्म=कर्म को
एवम्=इस प्रकार
यः=जो
तत्त्वतः=यथार्थ
वेत्ति=जानता है
सः=वह
देहम्=देह को
त्यक्त्वा=त्याग करके
पुनः=फिर
जन्म=जन्म को
न एति=नहीं प्राप्त होता है
+परन्तु=परन्तु
माम्=मुझ को
एति=प्राप्त होता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि नित्य शुद्धरूप जो मैं हूं, और मेरा जो जन्म है, वह एक लीलामात्र है, क्योंकि धर्मकी स्थापना करके जगत् का पालन करना मुझ ईश्वरका कर्म है, मेरे जन्म कर्म अन्य पुरुषों की तरह नहीं हैं, जो पुरुष मेरे जन्मादिकों को अलौकिक जानता है, वहभी जन्म-मरण को फिर नहीं प्राप्त होता है, किंतु मुझकोही वह प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

मूलम्।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः १०

पदच्छेदः।

वीतरागभयक्रोधाः, मन्मयाः, माम्, उपाश्रिताः, बहवः, ज्ञानतपसा, पूताः, मद्भावम्, आगताः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
वीतरागभयक्रोधाः	दूर हो गया है राग भय क्रोध जिनका
मन्मयाः	मेरे म तत्पर हैं जो
माम्	मुझको

अन्वयः	शब्दार्थ
उपाश्रिताः	आसरा किये हुये हैं जो ऐसे
बहवः	बहुत मनुष्य
ज्ञानतपसा	ज्ञानरूपीतप करके
पूताः	पवित्र हुये
मद्भावम्	मेरे भावको
आगताः	प्राप्त हुये ह

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे प्रियदर्शन ! दूर होगया है राग, द्वेष और भय जिसका ऐसा जो शुद्ध सत्त्व विराग वाला पुरुष है, वह तत्पद त्वंपद के अर्थ को अभेद जान करके मुझको ही अपना अन्तर आत्मा साक्षात्कार करके मेरीही शरणको यानी मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है, और संपूर्ण कर्मों के ध्वंसक ज्ञानरूपी तप करके पवित्र हो अज्ञान को जिसने नाश कर दिया है वह भी मुझकोही प्राप्त होता है ॥ १० ॥

मूलम्।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवतन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ११

पदच्छेदः ।

य, यथा, माम्, प्रपद्यन्ते, तान्, तथा, एव, भजामि, अहम्, मम, वर्त्म, अनुवर्तन्ते, मनुष्याः, पार्थ, सर्वशः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

पार्थ=हे अर्जुन !
ये=जो मनुष्य
माम्=मुझको
यथा=जिसप्रकारसे
प्रपद्यन्ते=भजते हैं
अहम्=मैं
तान्=उनको

अन्वयः शब्दार्थ

तथाएव=उसीप्रकारसे
भजामि=भजता हूं
मनुष्याः=लोग
सर्वशः=सब प्रकार
मम=मेरे
वर्त्म=मार्ग को
अनुवतन्ते=बर्तते हैं

भावार्थ ।

अर्जुन कहता है कि हे भगवन् ! जो ज्ञानरूपी तप करके पवित्र होजाते हैं उनको ही यदि आप अपने में प्राप्त करते हैं इतरों को नहीं करते हैं तो जीवों की तरह आपमें भी विषमदृष्टि सिद्ध हुई ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि हे पार्थ ! दुःखी, अर्थी, मुमुक्षु, ज्ञानी इन में से जो सकामता करके अथवा निष्कामता करके मेरा भजन करते हैं, उनको मैं उसी तरह से फलको देता हूं, यानी दुःखी के दुःख को नाश करताहूं, अर्थी को धन देता हूं, मुमुक्षुको ज्ञान देताहूं, ज्ञानी को मोक्ष

देताहूं, और हे अर्जुन! दो मार्ग मैंने जीवों के कल्याण के लिये बनाये हैं, एक कर्ममार्ग है दूसरा ज्ञानमार्ग है जिस मार्ग से जैसी मेरी उपासना करता है वैसाही मैं उसको फल देताहूं, इसलिये मेरे में विषमदृष्टि का दोष नहीं आताहै ॥ ११ ॥

मूलम्।

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा १२

पदच्छेदः।

काङ्क्षन्तः, कर्मणाम्, सिद्धिम्, यजन्ते, इह, देवताः, क्षिप्रं, हि, मानुषे, लोके, सिद्धिः, भवति, कर्मजा ॥

अन्वयः शब्दार्थ

कर्मणाम्=कर्मों की
सिद्धिम्=सिद्धि के
काङ्क्षन्तः=चाहने वाले मनुष्य
इह=इस संसारमें
देवताः=देवताओं को
यजन्ते=पूजते हैं
हि=क्योंकि

अन्वयः शब्दार्थ

मानुषेलोके=मनुष्य लोक में
कर्मजा=कर्म से उत्पत्ति है जिसकी ऐसी
सिद्धिः=सिद्धि
क्षिप्रम्=शीघ्र
भवति=प्राप्त होती है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि हे सौम्य! जो पुरुष नष्टबुद्धि वाले हैं यानी कर्मोंके फलकी इच्छावाले हैं, वे इन्द्र और अग्नि आदिक देवताओं का पूजन करते हैं, क्योंकि वे देवता उनको शीघ्रही ऐहिकफल देते हैं, और जो मोक्षकी इच्छावाले हैं वे निष्काम होकर मेरा भजन अन्तःकरण की शुद्धिके लिये करते हैं, क्योंकि विना अन्तःकरणकी शुद्धि के ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती है १२॥

मूलम्।

चातर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् १३

पदच्छेदः।

चातुर्वर्ण्यम्, मया, सृष्टम्, गुणकर्मविभागशः, तस्य, कर्तारम्, अपि, माम्, विद्धि, अकर्तारम्, अव्ययम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
गुणकर्मविभागशः	गुण और कर्म के विभाग के कारण
मया	मुझ करके
चातुर्वर्ण्यम्	चारों वर्ण

अन्वयः	शब्दार्थ
सृष्टम्	बनाये गये हैं
माम्	मुझ
अकर्तारम्	अकर्ता
+ च	और
अव्ययम्	अविनाशी को

तस्य=उनका	अपि=भी
कर्तारम्=कर्ता	विद्धि=जान तू

भावार्थ।

प्रश्न ॥ जीवों के स्वभाव विलक्षण क्यों हैं, कोई देवताओंको भजते हैं, और कोई आपको भजते हैं ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि गुणों की विलक्षणता से स्वभावों की भी विलक्षणता है, और गुणकर्म के विभाग से ब्राह्मणादि चारों वर्ण मैंने रचे हैं, सत्त्वगुणप्रधान ब्राह्मण बनाये गये हैं, और शमादिक उनके कर्म रचे गये हैं, और रजोगुणप्रधान क्षत्रिय रचेगये हैं, शौर्यादिक उनके कर्म हैं, और रज तम प्रधान गुणवाले वैश्य हैं, कृषि आदिक उनके कर्म रचेगये हैं, तमोगुणप्रधान शूद्र बनाये गये हैं, परिचर्यादिक उनके कर्म हैं, इस प्रकार विषम सृष्टि का कर्ता और अकर्ता मुझे ही तुम जानो ॥ १३ ॥

मूलम्।

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बद्ध्यते १४

पदच्छेदः।

न, माम्, कर्माणि, लिम्पन्ति, न, मे, कर्मफले, स्पृहा, इति, माम्, यः, अभिजानाति, कर्मभिः, न, सः, बद्ध्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

कर्माणि=कम
माम्=मुझको
न लिम्पन्ति=नहीं स्पर्श करते ह
+ च=और
मे=मेरी
स्पृहा=इच्छा
कर्मफले=कर्मके फलमें
न=नहीं है

अन्वयः शब्दार्थ

इति=इस प्रकार
माम्=मुझको
यः=जो पुरुष
अभिजानाति=जानता है
सः=वह
कर्मभिः=कर्म करके
नबद्धयते=बन्धायमान नहीं होता है

भावार्थ।

पूर्व वाक्य करके भगवान् ने अपने को कर्तृत्व का निवारण किया, अब इस वाक्य करके अपने को भोक्तृत्व का भी निवारण करते हैं, और कहते हैं कि हे पार्थ! अहंकार सहित जो कर्म है वहही बन्धन का हेतु है, अहंकार रहित जो कर्म है वह बन्धन का हेतु नहीं है, इसी वास्ते जगत् का रचनारूपी कर्म मुझ को बन्धायमान नहीं कर सक्ता है, और सकामी को ही अहंकार कर्म के करने का हेतु होता है, निष्कामी को नहीं होता है, और मैं आप्तकाम हूं, इसलिये कर्म मुझको बन्धनका हेतु नहीं है, जो अपने को कर्म का कर्ता मानता है वही कर्म के फलका भोक्ता होता है, जो

अपने को कर्ता नहीं मानता है अर्थात् कर्तृत्वपने के अभिमान से रहित है, वह कर्म के फलका भोक्ता भी नहीं होसक्ता है, जो पुरुष मुझ ईश्वर को अकर्ता अभोक्ता जानता है, वह भी कर्म के बन्धन से रहित रहता है १४॥

मूलम् ।

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् १५

पदच्छेदः ।

एवम्, ज्ञात्वा, कृतम्, कर्म, पूर्वैः, अपि, मुमुक्षुभिः, कुरु, कर्म, एव, तस्मात्, त्वम्, पूर्वैः, पूर्वतरम्, कृतम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
पूर्वैःमुमुक्षुभिः	= पूर्वकाल के मुमुक्षु पुरुषों करके	पूर्वैः	= पूर्वमनुष्योंकरके
कर्म	= कर्म	पूर्वतरम्	= पूर्वकाल में
कृतम्	= किये गये हैं	कृतम्	= किये हुये
तस्मात्	= इसलिये	कर्म	= कर्म को
एवम्	= इस प्रकार	त्वम् अपि	= तू भी
ज्ञात्वा	= जान करके	एव	= निश्चय करके
		कुरु	= कर

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि आत्मा को अकर्ता, कर्म और उसके फल से अलेप विचार करके पूर्वले मुमुक्षुवों ने

अन्तःकरण की शुद्धिके लिये कर्म किये हैं, और पूर्वले युगों में जनकादिक ज्ञानियोंने भी लोककी मर्यादा के लिये कर्म किये हैं, अतएव ज्ञानी और मुमुक्षु दोनों को कर्म कर्तव्य है इसलिये तुमभी हे अर्जुन! कर्मों को ही करो ॥ १५ ॥

मूलम् ।

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्मप्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् १६

पदच्छेदः ।

किम्, कर्म, किम्, अकर्म, इति, कवयः, अपि, अत्र, मोहिताः, तत्, ते, कर्म, प्रवक्ष्यामि, यत्, ज्ञात्वा, मोक्ष्यसे, अशुभात् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

कर्म=कर्म
किम्=क्या है
अकर्म=अकर्म
किम्=क्या है
कवयः=कविलोग
अपि=भी
अत्र=इस विषय में
मोहिताः=मोहित होरहे हैं यानी नहीं जानते हैं

अन्वयः शब्दार्थ

तत्=उस
इति=ऐसे
कर्म=कर्म को
ते=तेरेलिये
प्रवक्ष्यामि=म कहूंगा
यत्=जिसको
ज्ञात्वा=जान करके
अशुभात्=दुःखरूपी संसार से
मोक्ष्यसे=तू छूट जायगा

भावार्थ।

प्रश्न ॥ कर्म अकर्म के विषय में किसी को संशय है वा नहीं ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि हे पार्थ ! जैसे नौका में स्थित पुरुष को नौकाके चलने से किनारे वाले क्रियारहित वृक्षों में चलनक्रिया का भ्रम होता है, और दूर गमन करते हुये पुरुष में आगमन का भ्रम होता है वैसेही कर्म और अकर्म के विषय में पण्डित लोग भी मोह यानी भ्रम को प्राप्त होते हैं, उस कर्म और अकर्म के स्वरूप को मैं तुम्हारे प्रति कहूंगा, जिसको जानकर तुम संसार से मुक्त होजावोगे ॥ १६ ॥

मूलम्।

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः १७

पदच्छेदः।

कर्मणः, हि, अपि, बोद्धव्यम्, बोद्धव्यम्, च, विकर्मणः, अकर्मणः, च, बोद्धव्यम्, गहना, कर्मणः, गतिः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
कर्मणः	कर्म का स्वरूप	अपि	भी
बोद्धव्यम्	जानने योग्य है	बोद्धव्यम्	जाननेयोग्यहै
च	और	च	और
विकर्मणः	निषिद्ध कर्म का स्वरूप	अकर्मणः	अकर्म का स्वरूप भी

बोद्धव्यम्=जाननेयोग्य है
हि=क्योंकि
कर्मणः=कर्म की
गतिः=गति
गहना=कठिन है

भावार्थ।

अर्जुन कहता है कि हे भगवन्! देह इन्द्रियादिकों के व्यापारों का नाम कर्म है, और उनके व्यापारों के अभाव का नाम अकर्म है, फिर इसमें आप क्या कहेंगे ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! शास्त्रविहित कर्म, और शास्त्रनिषिद्धकर्म और विकर्म कर्म का जानना योग्य है, क्योंकि कर्म, अकर्म, विकर्म का स्वरूप जानना बड़ा कठिन है, जो तुमने जान रक्खा है वह नहीं है ॥ १७ ॥

मूलम्।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् १८

पदच्छेदः।

कर्मणि, अकर्म, यः, पश्येत्, अकर्मणि, च, कर्म, यः, सः, बुद्धिमान्, मनुष्येषु, सः, युक्तः, कृत्स्नकर्मकृत् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
कर्मणि=कर्म में
अकर्म=अकर्म को

अन्वयः शब्दार्थ
यः=जो
पश्येत्=देखता है

च=और
अकर्मणि=अकर्म में
कर्म=कर्म को
यः=जो
+पश्येत्=देखता है
सः=वह
मनुष्येषु=मनुष्यों में

बुद्धिमान्=बुद्धिमान् है
+च=और
सः=वह
कृत्स्नकर्मकृत्=सम्पूर्ण कर्मों का करने वाला
युक्तः=योगी है

भावार्थ।

अर्जुन कहता है कि हे महाराज ! आप कृपा करके कर्मोंके तत्त्वको मेरे प्रति कहिये ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि जैसे नौकामें स्थित पुरुष को किनारे के चलनक्रियारहित वृक्षोंमें चलन क्रिया भ्रम करके प्रतीत होती है वैसेही देह इन्द्रियों के व्यापाररूप क्रियाके होते भी आत्माको जो अकर्म देखता है यानी क्रिया से रहित देखता है, और अकर्म आत्मा में देह इन्द्रियादिकों को जो कल्पित देखता है, अथवा दृश्यजडप्रपञ्च जितना कुछ है उसमें सत्तास्फूर्ति देनेवाले आत्माकोही अकर्म यानी अकर्ता देखता है, और अकर्म आत्मा में जो दृश्य माया के कार्यप्रपञ्च को कल्पित कर्मरूप करके देखता है वही मनुष्यों में बुद्धिमान्है, और युक्त यानी योगके फल को प्राप्त है, उसीने मानो सब कर्मोंको करलिया है ॥ १८ ॥

मूलम् ।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः १९

पदच्छेदः ।

यस्य, सर्वे, समारम्भाः, कामसंकल्पवर्जिताः, ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम्, तम्, आहुः, पण्डितम्, बुधाः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

यस्य=जिसके
सर्वे=सम्पूर्ण
समारम्भाः=कार्य
कामसंकल्पवर्जिताः=कामनाऔर संकल्प से रहित हैं
+च=और

अन्वयः **शब्दार्थ**

ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम्=ज्ञानरूपी अग्नि करके दग्ध किया है कर्म को जिसने
तम्=उसको
बुधाः=बुद्धिमान् लोग
पण्डितम्=पण्डित
आहुः=कहते हैं

भावार्थ ।

सम्यक् ज्ञानवान् को कर्मका सम्बन्ध नहीं होता है, इस वार्त्ता को भगवान् अब कहते हैं, जिस विद्वान् के सम्पूर्ण लौकिक और वैदिक कर्मका आरम्भ फल अहंकार से रहित है, और शरीर के निर्वाहमात्र का

जिसको संग्रह है, और ज्ञानरूपी अग्नि करके दग्ध होगये हैं संपूर्ण कर्म जिसके उसको पण्डित लोग ब्रह्मविद् कहते हैं ॥ १९ ॥

मूलम्।

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित् करोति सः २०

पदच्छेदः।

त्यक्त्वा, कर्मफलासङ्गम्, नित्यतृप्तः, निराश्रयः, कर्मणि, अभिप्रवृत्तः, अपि, न, एव, किञ्चित्, करोति, सः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

कर्मफलासङ्गम्=कर्म के फल की इच्छाको
त्यक्त्वा=त्याग करके
नित्यतृप्तः=निजानन्दमें प्राप्त है जो
+च=और
निराश्रयः=आश्रयरहित है जो

अन्वयः शब्दार्थ

सः=वह
कर्मणि=कर्म में
अपि=भी
अभिप्रवृत्तः=प्रवृत्त होता हुआ
किञ्चित् एव=कुछ भी
नकरोति=नहीं करताहै

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! यथार्थ ज्ञानके उत्पन्न होनेपर विद्वान् को कुछ भी कर्तव्य नहीं रहता

है, जिस विद्वान् की इच्छा संपूर्ण कर्मोंके फलसे निवृत्त होगई है और देहादिकों में जिसका अहंकार निवृत्त होगया है वह लोकदृष्टि में कर्मों को करताभी है परन्तु अपनी दृष्टि से वह कर्मोंको नहीं करता है, क्योंकि उसने अपने आत्माको अकर्ता जाना है, और अपने परमानन्दस्वरूप आत्मा में स्थितहै ॥ २० ॥

मूलम् ।

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् २१

पदच्छेदः ।

निराशीः, यतचित्तात्मा, त्यक्तसर्वपरिग्रहः, शारीरम्, केवलम्, कर्म, कुर्वन्, न, आप्नोति, किल्बिषम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
निराशीः	आशारहित है जो
+ च	और
यतचित्तात्मा	जीताहै अन्तःकरण और शरीरकोजिसने
त्यक्तसर्वपरिग्रहः	त्याग किया है संपूर्ण परिवार यानी भोगोंके सामग्री को जिसने
सः	वह पुरुष

केवलम्=केवल
शारीरम्=शरीर सम्बन्धी
कर्म=कर्म को
कुर्वन्=करता हुआ
किल्बिषम्=पापको
न आप्नोति=नहीं प्राप्त होता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! जब कि अत्यन्त विक्षेपकारक कर्मों के साथ ज्ञानवान् का सम्बन्ध नहीं होसक्ता है तब फिर भिक्षाटनादिकों के साथ ब्रह्मवित्का सम्बन्ध कैसे होसक्ता है, किन्तु कदापि नहीं होसक्ता है, और दूर होगई है कर्मों के फल में तृष्णा जिसकी और वशमें करलियाहै सहित इन्द्रियों के देह को जिसने और अत्यन्त वैराग्य से त्यागदिया है भोगकी सामग्री जिसने ऐसा विद्वान्भी यदि प्रारब्धवश से शरीर यात्रा के लिये भिक्षाटनादिकों को करे, तबभी वह संसारचक्रको फिर प्राप्त नहीं होताहै॥ २१॥

मूलम्।

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते २२

पदच्छेदः।

यदृच्छालाभसन्तुष्टः, द्वन्द्वातीतः, विमत्सरः, समः, सिद्धौ, असिद्धौ, च, कृत्वा, अपि, न, निबध्यते॥

अन्वयः	शब्दार्थ
यदृच्छालाभसन्तुष्टः	विना मांगे हुये लाभ में सन्तुष्ट है जो
द्वन्द्वातीतः	द्वन्द्व याने सुख और दुःख से रहितहै जो
विमत्सरः	दूर होगया है अभिमान जिसका
सिद्धौअसिद्धौ	सिद्धि और असिद्धियाने प्राप्त औरअप्राप्त वस्तु में
समः	सम है जो
कृत्वाअपि	कर्मों को करके भी
+सः	वह पुरुष
ननिबध्यते	नहीं बन्धन को प्राप्त होता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि हे सौम्य ! जो यति विना मांगने और विना यत्न भिक्षा आदिकों के लाभ से सन्तुष्ट है, और अपने परिश्रम विना शीतोष्णादिकों करके पीड़ित होकरके भी जिसका चित्त क्षोभ को नहीं प्राप्त होता है, और जीवमात्र में जिसका वैरभाव नहीं है; और शरीर की स्थिति के हेतुओं के लाभालाभ में भी जिसकी बुद्धि विकार को नहीं प्राप्त

होती है, वह शरीरयात्रा के लिये भिक्षाटनादिकों को करताहुआ भी बन्धन को नहीं प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

मूलम्।

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते २३

पदच्छेदः।

गतसङ्गस्य, मुक्तस्य, ज्ञानावस्थितचेतसः, यज्ञाय, आचरतः, कर्म, समग्रम्, प्रविलीयते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
गतसङ्गस्य=	दूर होगई है कामना जिसकी	ज्ञानावस्थितचेतसः=	ज्ञानमें स्थित है चित्त जिसका ऐसे
		यज्ञाय=	विष्णुप्रीत्यर्थ
मुक्तस्य=	धर्म और अधर्म से छूटा हुआ है जो	आचरतः=	कर्मकरनेवालेका
		समग्रम्=	संपूर्ण
		कर्म=	कर्म
+च=	और	प्रविलीयते=	लीन होजाताहै

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि हे कौन्तेय! जो गृहस्थाश्रमी ज्ञानी कर्मों के फलमें आसक्त नहीं है, और आत्मज्ञान करके जिसका मन स्थिरहै, और लोकोंकी

प्रवृत्तिके लिये कर्मों को जो करताहै, या विष्णुप्रीत्यर्थ कर्मोंको करता है, उस विद्वान्के भी संपूर्ण कर्म नष्ट होजाते हैं ॥ २३ ॥

मूलम् ।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना २४

पदच्छेदः ।

ब्रह्मार्पणम्, ब्रह्महविः, ब्रह्माग्नौ, ब्रह्मणा, हुतम्, ब्रह्म, एव, तेन, गन्तव्यम्, ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
ब्रह्मार्पणम्=	जिस करके आहुति अर्पणकियाजाय यानी स्रुवा आदि ब्रह्म हैं
ब्रह्महविः=	होमद्रव्य ब्रह्म है
ब्रह्माग्नौ=	ब्रह्मरूपी अग्नि में
ब्रह्मणा=	ब्रह्म करके
हुतम्=	हवन किया गया है जो
+ तत्=	वह
ब्रह्मएव=	ब्रह्मही है
तेन=	उस
ब्रह्मकर्मसमाधिना=	ब्रह्मकर्ममेंहैसमाधि जिसकी ऐसेंपुरुषकरके
ब्रह्म=	ब्रह्म
गन्तव्यम्=	प्राप्त होने योग्य है

भावार्थ।

जिस करके आहुति अग्नि में दीजावे वह भी ब्रह्म है, स्रुवा करके अग्नि में आहुति दीजाती है, इसलिये वह स्रुवा भी ब्रह्म है और जो हवि घृत चरु आदिकों की बनाई जाती है वह भी ब्रह्मही है, और जिस अग्नि में हवि दीजाती है वह अग्नि भी ब्रह्म है, और हवनकर्ता भी ब्रह्म है, और हवन भी ब्रह्मही है, और हविका त्यागरूपी कर्म भी ब्रह्मही है, उस ब्रह्मरूप समाधि करके हवनकर्ता को ब्रह्मही गन्तव्य है ॥ २४ ॥

मूलम्।

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति २५

पदच्छेदः।

दैवम्, एव, अपरे, यज्ञम्, योगिनः, पर्युपासते, ब्रह्माग्ना, अपरे, यज्ञम्, यज्ञेन, एव, उपजुह्वति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अपरे=कोई
योगिनः=योगी
दैवम्=देवसंबन्धी
यज्ञम् एव=यज्ञकोही
पर्युपासते=उपासना करते हैं

अन्वयः शब्दार्थ

अपरे=और कोई
ब्रह्माग्नौ=ब्रह्मरूपी अग्नि में
यज्ञम्=अपने आत्माको
यज्ञेनएव=अपने आतमा करके
उपजुह्वति=हवन करते हैं

भावार्थ।

पूर्व वाक्य करके भगवान् ने आत्मज्ञानी के यज्ञ का निरूपण किया है, अब उसकी स्तुति के लिये और और यज्ञों का निरूपण करते हैं, और कहते हैं कि जे कोई कर्मी हैं वे दैवयज्ञको करते हैं, इन्द्रादिक देवताओं का जिस यज्ञ में पूजन किया जाता है उसका नाम दैवयज्ञ है, और जे कोई मुमुक्षु हैं वे तत्पदका अर्थ जो शुद्धचेतन है वही एक अग्नि है, उसमें त्वंपद का अर्थ जो शुद्ध जीवात्मा है उसको अभेद भावना करके हवन करते हैं ॥ २५ ॥

मूलम्।

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन् विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति २६

पदच्छेदः।

श्रोत्रादीनि, इन्द्रियाणि, अन्ये, संयमाग्निषु, जुह्वति, शब्दादीन्, विषयान्, अन्ये, इन्द्रियाग्निषु, जुह्वति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अन्ये	और कोई	संयमाग्निषु	संयमरूपी अग्नि में
श्रोत्रादीनि	श्रोत्रादि	जुह्वति	हवन करते हैं
इन्द्रियाणि	इन्द्रियों को		

अन्ये=और कोई
शब्दादीन्=शब्द स्पर्शादि
विषयान्=विषयों को
इन्द्रियाग्निषु=इन्द्रियरूपी अग्निमें
जुह्वति=हवन करते हैं

भावार्थ।

और जो पतञ्जलि के मतवाले हैं, उनमें से कोई प्रत्याहारपरायण होकर श्रोत्रादि इन्द्रियों को विषयों से हटा कर संयमरूपी अग्नि में हवन करते हैं, और कोई धारणा ध्यान की सिद्धि के लिये सम्पूर्ण इन्द्रियों को भोगों से हटाकर अपने आत्मा में हवन करते हैं और कोई गृहस्थ शब्दादिक विषयों को इन्द्रियरूपी अग्नि में हवन करते हैं ॥ २६ ॥

मूलम्।

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते २७

पदच्छेदः।

सर्वाणि, इन्द्रियकर्माणि, प्राणकर्माणि, च, अपरे, आत्मसंयमयोगाग्नौ, जुह्वति, ज्ञानदीपिते ॥

अन्वयः शब्दार्थ
अपरे=और कोई
सर्वाणि=सम्पूर्ण

अन्वयः शब्दार्थ
इन्द्रियकर्माणि=इन्द्रियों के कर्मों को

च=और
प्राणकर्माणि=प्राण के कर्मों को
ज्ञानदीपिते=ज्ञान करके प्रकाशमान

आत्मसंयमयोगाग्नौ=आत्मसंयमयोग रूपीअग्नि में
जुह्वति=हवन करते हैं

भावार्थ ।

और जो कोई राजमार्ग के सेवन करनेवाले हैं, जो निष्कामी हैं, वे संपूर्ण इन्द्रियों के कर्म जो दर्शन स्पर्शन आदिक हैं, और संपूर्ण प्राणों के कर्म जो आकुञ्चनादि हैं, उनको आत्मसंयमरूपी जो योग अर्थात् निर्विकल्प समाधिरूपी अग्नि है, उसमें हवन करते हैं, वह अग्नि ज्ञानरूपी तेज करके प्रकाशमान है ॥ २७ ॥

मूलम् ।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः २८

पदच्छेदः ।

द्रव्ययज्ञाः, तपोयज्ञाः, योगयज्ञाः, तथा, अपरे, स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः, च, यतयः, संशितव्रताः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
अपरे=और कोई
द्रव्ययज्ञाः=द्रव्ययज्ञ के करनेवाले

अन्वयः शब्दार्थ
+ अपरे=कोई
तपोयज्ञाः=तपयज्ञ के करनेवाले

+ अपरे=कोई
योगयज्ञाः=योगयज्ञके करनेवाले
च=और
+ अपरे=कोई
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः=वेद का पाठ रूपी यज्ञ और शास्त्रों के अर्थ का विचार रूपी ज्ञान यज्ञ के करनेवाले

+ च=और
+ अपरे=कोई
यतयः=यतीपुरुष
संशितव्रताः=तीव्र व्रत और ब्रह्मचर्य यज्ञके करनेवाले हैं

भावार्थ।

पूर्व तीन श्लोकों करके भगवान् ने पांच यज्ञों का निरूपण किया है, अब एक श्लोक करके छः यज्ञों का निरूपण करते हैं, और कहते हैं कि, हे पार्थ ! शास्त्रविधि से अग्नि में द्रव्य का त्याग किया है जिन्होंने यानी शुभ पात्रवाले को द्रव्य दिया है जिन्होंने वह द्रव्ययज्ञवाले कहेजाते हैं १ और कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतरूप तप है यज्ञ जिन तपस्वियों का वे तपयज्ञवाले कहे जाते हैं २ और चित्तकी वृत्तिका निरोधरूप है यज्ञ जिनका वे योगी योगयज्ञवाले कहे जाते हैं ३ और

वेदका अभ्यासरूप है यज्ञ जिनका वे स्वाध्याययज्ञवाले कहे जातेहैं ४ और शास्त्रका अर्थ यानी सिद्धान्त अथवा जीव ब्रह्मकी ऐक्यताका ज्ञानरूपी यज्ञ है जिनका वे ज्ञानयज्ञवाले कहे जाते हैं ५ तीक्ष्णहैं व्रत यानी नियम जिन यतियों के वे तीक्ष्णव्रतरूपी यज्ञवाले कहे जाते हैं ६ ये छः प्रकारके यज्ञ कहे हैं ॥ २८ ॥

मूलम् ।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः २९

पदच्छेदः ।

अपाने, जुह्वति, प्राणम्, प्राणे, अपानम्, तथा, अपरे, प्राणापानगतीः, रुद्ध्वा, प्राणायामपरायणाः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

अपरे=कोई

प्राणापानगतीः=प्राण और अपानकी गतिको

रुद्ध्वा=रोक करके

+ च=और

प्राणायामपरायणाः=प्राणायाम में तत्पर होतेहुये

अन्वयः **शब्दार्थ**

अपाने=अपानवायु में

प्राणम्=प्राणवायु को

तथा=और

प्राणे=प्राणवायु में

अपानम्=अपान वायु को

जुह्वति=हवन करते हैं

+ अपरे=कोई

योगयज्ञाः=योगयज्ञके करनेवाले

च=और

+ अपरे=कोई

स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः=वेद का पाठ रूपी यज्ञ और शास्त्रों के अर्थ का विचार रूपी ज्ञान यज्ञ के करनेवाले

+ च=और

+ अपरे=कोई

यतयः=यतीपुरुष

संशितव्रताः=तीव्र व्रत और ब्रह्मचर्य यज्ञके करनेवाले हैं

भावार्थ ।

पूर्व तीन श्लोकों करके भगवान् ने पांच यज्ञों का निरूपण किया है, अब एक श्लोक करके छः यज्ञों का निरूपण करते हैं, और कहते हैं कि, हे पार्थ ! शास्त्रविधि से अग्नि में द्रव्य का त्याग किया है जिन्होंने यानी शुभ पात्रवाले को द्रव्य दिया है जिन्होंने वह द्रव्ययज्ञवाले कहेजाते हैं १ और कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतरूप तप है यज्ञ जिन तपस्वियों का वे तपयज्ञवाले कहे जाते हैं २ और चित्तकी वृत्तिका निरोधरूप है यज्ञ जिनका वे योगी योगयज्ञवाले कहे जाते हैं ३ और

वेदका अभ्यासरूप है यज्ञ जिनका वे स्वाध्याययज्ञवाले कहे जातेहैं ४ और शास्त्रका अर्थ यानी सिद्धान्त अथवा जीव ब्रह्मकी ऐक्यताका ज्ञानरूपी यज्ञ है जिनका वे ज्ञानयज्ञवाले कहे जाते हैं ५ तीक्ष्णहैं व्रत यानी नियम जिन यतियों के वे तीक्ष्णव्रतरूपी यज्ञवाले कहे जाते हैं ६ ये छः प्रकारके यज्ञ कहे हैं ॥ २८ ॥

मूलम् ।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः २९

पदच्छेदः ।

अपाने, जुह्वति, प्राणम्, प्राणे, अपानम्, तथा, अपरे, प्राणापानगतीः, रुद्ध्वा, प्राणायामपरायणाः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अपरे=कोई
प्राणापानगतीः=प्राण और अपानकी गतिको
रुद्ध्वा=रोक करके
+ च=और
प्राणायामपरायणाः=प्राणायाम में तत्पर होतेहुये

अन्वयः शब्दार्थ

अपाने=अपानवायु में
प्राणम्=प्राणवायु को
तथा=और
प्राणे=प्राणवायु में
अपानम्=अपान वायु को
जुह्वति=हवन करते हैं

भावार्थ ।

अब डेढ़ श्लोक में चार प्रकार के प्राणायाम को भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! कोई योगी अपानवृत्ति में प्राणवृत्तिको हवन करते हैं, अर्थात् सदैव वह पूरक नामक प्राणायाम को करते हैं, और कोई प्राणवृत्तिमें अपानवृत्तिको हवन करते हैं यानी रेचकनामक प्राणायामको करते हैं, और कोई प्राण अपान की गति को रोककर कुम्भकनामक प्राणायाम को करतेहैं ॥२९॥

मूलम् ।

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ३०

पदच्छेदः ।

अपरे, नियताहाराः, प्राणान्, प्राणेषु, जुह्वति, सर्वे, अपि, एते, यज्ञविदः, यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
अपरे	कोई योगी
नियताहाराः	तुले हुये भोजनके करनेवाले
प्राणान्	इन्द्रियों को
प्राणेषु	प्राणवायु में
जुह्वति	हवन यानी लयकरते हैं
यज्ञक्षपितकल्मषाः	यज्ञकरके नाश कर दियाहै पाप को जिन्होंने ऐसे

एते=ये
सर्वेंअपि=सबही

यज्ञविदः=यज्ञके जाननेवाले हैं

भावार्थ।

और कोई योगी नियत यानी तुलेहुये आहार करनेवाले ज्ञानेन्द्रियों को और कर्मेन्द्रियों को निग्रह करके प्राणवायु में लय करते हैं, अब पूर्वोक्त यज्ञों के फल को भगवान् कहते हैं कि, सम्पूर्ण यज्ञोंके जाननेवाले जे हैं और यज्ञों को करते भी हैं उनके सब पाप नष्ट होजाते हैं ॥ ३० ॥

मूलम्।

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ३१

पदच्छेदः।

यज्ञशिष्टामृतभुजः, यान्ति, ब्रह्म, सनातनम्, न, अयम्, लोकः, अस्ति, अयज्ञस्य, कुतः, अन्यः, कुरुसत्तम ॥

अन्वयः शब्दार्थ
+ च=और
यज्ञशिष्टामृतभुजः=यज्ञशेषरूपी अमृत को भक्षण करनेवाले

अन्वयः शब्दार्थ
सनातनम्=सनातन
ब्रह्म=ब्रह्मको
यान्ति=प्राप्त होते हैं
कुरुसत्तम=हे कौरवों में उत्तम, अर्जुन !

अयज्ञस्य=यज्ञ न करने वाले को
अयम्=यह
लोकः=लोक
न अस्ति=नहीं है तो
कुतः=कहां से
अन्यः=दूसरा लोक होगा

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! यज्ञके करने के पीछे यज्ञका बचाहुआ जो अमृतरूपी अन्न है, उसको जो भक्षण करते हैं, वे दुःखरूपी संसार से मुक्त होजाते हैं, और जो कोई पूर्वोक्त यज्ञों में से किसी एक यज्ञको भी नहीं करते हैं, उनको न यह लोक है और न परलोक है, क्योंकि उनको न इस लोकमें और न परलोक में सुखकी प्राप्ति होती है॥ ३१॥

मूलम्।

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान् विद्धितान् सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ३२

पदच्छेदः।

एवम्, बहुविधाः, यज्ञाः, वितताः, ब्रह्मणः, मुखे, कर्मजान्, विद्धि, तान्, सर्वान्, एवम्, ज्ञात्वा, विमोक्ष्यसे॥

अन्वयः शब्दार्थ
एवम्=इसतरह
बहुविधाः=बहुत प्रकार के

अन्वयः शब्दार्थ
यज्ञाः=यज्ञ
वितताः=विस्तरित हैं

ब्रह्मणः=वेदके
मुखे=मुखसे
तान्=उन
सर्वान्=सबों को
कर्मजान्=कर्मकरके उत्पन्नहुआ

विद्धि=जान तू
+ च=और
एवम्=इसप्रकार
ज्ञात्वा=जानकरके
विमोक्ष्यसे=संसारसे तू मुक्त होजायगा

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! बहुत प्रकारके यज्ञ वेदद्वारा विस्तार को प्राप्त हुये हैं, उन संपूर्ण यज्ञोंकी उत्पत्ति कायिक, वाचिक, मानसिक कर्मों से ही होती है, आत्मा से किसी यज्ञकी उत्पत्ति नहीं होती है, क्योंकि आत्मा क्रियारहितहै, और यज्ञ सब क्रियारूपहैं, क्रियाकी उत्पत्ति क्रियावाले सेही होती है, सो क्रियावाले सब देहादिक हैं, आत्मा नहीं है, ऐसा जानकर तुम संसाररूपी समुद्र से पार होजावोगे ॥ ३२ ॥

मूलम्।

श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ३३

पदच्छेदः।

श्रेयान्, द्रव्यमयात्, यज्ञात्, ज्ञानयज्ञः, परन्तप, सर्वम्, कर्म, अखिलम्, पार्थ, ज्ञाने, परिसमाप्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ
परन्तप=हे अर्जुन !
ज्ञानयज्ञः=ज्ञानयज्ञ
द्रव्यमयात्=द्रव्यमय
यज्ञात्=यज्ञसे
श्रेयान्=श्रेष्ठ है
+ हि=क्योंकि
सर्वम्=सब

अन्वयः शब्दार्थ
अखिलम्=सारा
कर्म=कर्म
पार्थ=हे अजुन !
ज्ञाने=ज्ञान में
परिसमाप्यते=समाप्त होता है

भावार्थ ।

अब भगवान् ज्ञानरूपी यज्ञकी स्तुति को करते हैं, और कहते हैं कि, हे अर्जुन ! द्रव्यरूपी साधन करके साध्य और ज्ञान से वर्जित संसाररूपी फलवाले द्रव्य यज्ञ से ज्ञानरूपी यज्ञ श्रेष्ठ है यानी उत्तम है, क्योंकि संपूर्ण वैदिक और स्मार्त कर्मोंका फल ज्ञानरूपी यज्ञ के करनेसे प्राप्त होताहै, इसलिये ज्ञानयज्ञही सब यज्ञों से श्रेष्ठ है ॥ ३३ ॥

मूलम् ।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ३४

पदच्छेदः ।

तत्, विद्धि, प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन, सेवया, उपदेक्ष्यन्ति, ते, ज्ञानम्, ज्ञानिनः, तत्त्वदर्शिनः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

तत्त्वदर्शिनः=तत्त्वदर्शी यानीश्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ
ज्ञानिनः=ज्ञानी
ते=तेरे लिये
ज्ञानम्=ज्ञानको
उपदेक्ष्यन्ति=उपदेश करेंगे

अन्वयः **शब्दार्थ**

तत्=उस ज्ञानको
प्रणिपातेन=प्रणाम करके
परिप्रश्नेन=प्रश्न करके
+ च=और
सेवया=सेवाकरके
विद्धि=ग्रहणकर

भावार्थ ।

पूर्वोक्त ज्ञानकी प्राप्ति के उपाय को भगवान् अब कहते हैं कि, हे अर्जुन ! ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मश्रोतृ आचार्य के समीप जाकर विधिपूर्वक भूमि पर दण्डवत् पतित होकरके और प्रणाम करके और उनकी सेवा करके उनसे तुम इन प्रश्नों को करो कि मैं कौन हूं, और मेरे को बन्ध कैसे हुआ है, और बन्ध से मैं कैसे मुक्त हूंगा, अविद्या क्या है, और विद्या क्या है, जब आचार्य तुम्हारी भक्ति और श्रद्धाको देखेंगे तब तुम्हारे प्रति वे तत्त्वदर्शी आचार्य ज्ञानको उपदेश करेंगे ॥ ३४ ॥

मूलम् ।

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ३५

पदच्छेदः।

यत्, ज्ञात्वा, न, पुनः, मोहम्, एवम्, यास्यसि, पाण्डव, येन, भूतानि, अशेषेण, द्रक्ष्यसि, आत्मनि, अथो, मयि ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

यत्=जिसको
ज्ञात्वा=जान करके
पुनः=फिर
एवम्=इस प्रकार
मोहम्=मोहको यानी अज्ञानको
न=नहीं
यास्यसि=प्राप्त होगा तू
+ च=और
पाण्डव=हे अर्जुन !

अन्वयः **शब्दार्थ**

येन=जिस करके
अशेषेण=सम्पूर्ण
भूतानि=प्राणियों को
आत्मनि=अपने में
द्रक्ष्यसि=और देखेगा तू
अथो=वैसेही
मयि=मेरेबिषेभी
+ भूतानि=सब प्राणियों को
+ द्रक्ष्यसि=देखेगा तू

भावार्थ।

भगवान् अब अर्जुन के प्रति आत्मज्ञान के फलको कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जब आचार्य तुमको आत्मज्ञान का उपदेश करेंगे, और तुम उनके उपदेश से ज्ञानको प्राप्त होवोगे तब फिर सम्बन्धियों के वियोगनिमित्तक जो तुमको मोह होरहा है वह नहीं होगा,

क्योंकि ज्ञान को प्राप्त होकर संपूर्ण भूतों को तुम अपने आत्मामें देखोगे, और मुझमें भी देखोगे, अद्वैत आत्मा में तुम्हारी भेदबुद्धि दूर होजावेगी, और जब तुम्हारा कार्य के सहित अज्ञान नष्ट होजावेगा तब तुम्हारा जगतूरूपी भ्रमभी मिटजावेगा ॥ ३५ ॥

मूलम् ।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ३६

पदच्छेदः ।

अपि, चेत्, असि, पापेभ्यः, सर्वेभ्यः, पापकृत्तमः, सर्वम्, ज्ञानप्लवेन, एव, वृजिनम्, सन्तरिष्यसि ॥

अन्वयः शब्दार्थ

चेत्=अगर
सर्वेभ्यः=सब
पापेभ्यः=पापियोंमें
अपि=भी
पापकृत्तमः=बड़ाभारी पापी
असि=तू है
+तर्हि=तो

अन्वयः शब्दार्थ

एव=भी
सर्वम्=सब
वृजिनम्=पापको
ज्ञानप्लवेन=ज्ञानरूपी नौका करके
सन्तरिष्यसि=तू पारहोजायगा

भावार्थ ।

भगवान् अब ज्ञानके माहात्म्य को कहते हैं कि,

हे अर्जुन ! यह ज्ञान कैसाहै कि जितनी वस्तु भूमिपर पवित्र करनेवाली हैं उन सबका यह पवित्र करने वाला है, यदि तुम अपने को सब पापियों से अधिक पापी मानते हो तो भी तुम ज्ञानरूपी नौका द्वारा दुस्तर पापरूपी समुद्र के पार होजावोगे ॥ ३६ ॥

मूलम् ।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ३७

पदच्छेदः ।

यथा, एधांसि, समिद्धः, अग्निः, भस्मसात्, कुरुते, अर्जुन, ज्ञानाग्निः, सर्वकर्माणि, भस्मसात्, कुरुते, तथा ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अर्जुन=हे अर्जुन !
यथा=जैसे
समिद्धः=प्रज्वलित
अग्निः=अग्नि
एधांसि=लकड़ियों को
भस्मसात्=राख
कुरुते=करती है

अन्वयः शब्दार्थ

तथा=वैसाही
ज्ञानाग्निः=ज्ञानरूपी अग्नि
सर्वकर्माणि=सम्पूर्ण कर्मों को
भस्मसात्=राख
कुरुते=करडालती है

भावार्थ ।

जैसे प्रज्वलित अग्नि सम्पूर्ण काष्ठों को भस्म कर

देती है वैसेही ज्ञानरूपी अग्नि सम्पूर्ण पुण्यपापरूपी कर्मों को भस्म करदेती है, प्रारब्धकर्म से अतिरिक्त ज्ञानवान् के सञ्चित आगामिकर्म सब ज्ञानरूपी अग्नि करके भस्म होजाते हैं, और प्रारब्धकर्म भोग देकर नष्ट होजाताहै, सब कर्मोंका हेतु अज्ञान है, उस अज्ञान के नाश होने पर उसका कार्य भी नष्ट हो जाताहै ॥ ३७ ॥

मूलम्।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ३८

पदच्छेदः।

न, हि, ज्ञानेन, सदृशम्, पवित्रम्, इह, विद्यते, तत्, स्वयम्, योगसंसिद्धः, कालेन, आत्मनि, विन्दति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
हि	क्योंकि	तत्	तिस ब्रह्मज्ञान को
ज्ञानेन	ज्ञानके	योगसंसिद्धः	योगसिद्धपुरुष
सदृशम्	तुल्य	स्वयम्	अपने
पवित्रम्	पवित्र	आत्मनि	आत्मा में
इह	इस मोक्ष मार्ग में	कालेन	काल पाकरके
न विद्यते	और कोई वस्तु नहीं है	विन्दति	प्राप्त होता है

भावार्थ ।

आत्मज्ञान के तुल्य और कोई वस्तु पवित्र इस लोक में नहीं है, और ज्ञानसे इतर अज्ञानका नाशक भी और कोई पदार्थ नहीं है ॥ प्रश्न ॥ यदि ज्ञानसे विना और कोई भी अज्ञानका नाशक नहीं है तब फिर शीघ्रही पुरुषोंको ज्ञान क्यों नहीं उत्पन्न होता है ॥ उत्तर ॥ बहुत काल करके किया हुआ जो निष्काम कर्मयोग है उस करके शुद्ध चित्तवाला मुमुक्षु आपही आप ज्ञानको प्राप्त होजाता है, इसवास्ते ज्ञानकी प्राप्ति के लिये सब पुरुषों को यत्न करना उचित है ॥ ३८ ॥

मूलम् ।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ३९

पदच्छेदः ।

श्रद्धावान्, लभते, ज्ञानम्, तत्परः, संयतेन्द्रियः, ज्ञानम्, लब्ध्वा, पराम्, शान्तिम्, अचिरेण, अधिगच्छति॥

अन्वयः शब्दार्थ

श्रद्धावान्=श्रद्धावाला है जो

अन्वयः शब्दार्थ

तत्परः=ब्रह्मविचार में तत्परहै जो

संयतेन्द्रियः=इन्द्रियों को जीता है जिसने
+ सः=वह
ज्ञानम्=ज्ञानको
लभते=प्राप्त होता है
+ च=और

ज्ञानम्=ज्ञानको
लब्ध्वा=पाकरके
परांशान्तिम्=परमशान्ति यानी मोक्षको
अचिरेण=शीघ्र
अधिगच्छति=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

गुरु और वेदान्तवाक्यों में विश्वासका नाम श्रद्धा है, ऐसा श्रद्धावाला जो पुरुष है वह ज्ञानको प्राप्त होता है यानी जो ज्ञानपरायण है और विषयों की तरफ़ से जिसने इन्द्रियों को हटालिया है वही ज्ञान को प्राप्त होता है, और ज्ञान को प्राप्त होकर फिर परमशान्ति को प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥

मूलम् ।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ४०

पदच्छेदः ।

अज्ञः, च, अश्रद्दधानः, च, संशयात्मा, विनश्यति, न, अयम्, लोकः, अस्ति, न, परः, न, सुखम्, संशयात्मनः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अज्ञः=अज्ञानी
च=और
अश्रद्दधानः=श्रद्धाहीन
च=और
संशयात्मा=संशय है अन्तःकरण में जिसके ऐसा पुरुष
विनश्यति=नाश को प्राप्त होता है

अन्वयः शब्दार्थ

+ च=और
संशयात्मनः=संदेह युक्त पुरुषको
न अयम्=न यह
लोकः=लोक
अस्ति=है
न=न
परः=परलोक है
+ च=और
न सुखम्=न सुख है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे सव्यसाचिन् ! जो शास्त्र के संस्कार से हीन और आत्मज्ञान से वर्जित है, उसका नाम अज्ञहै, और गुरु और वेदान्तवाक्यों में जिसका विश्वास नहीं है वह अश्रद्दधान कहाजाता है, और जिसके चित्त में ऐसा फुरता है कि शास्त्र जो कहता है वह सत्य है वा असत्य है वह संशयात्मा कहाजाता है, सो ये तीनों नाश को प्राप्त होते हैं, फिर तीनों में से अज्ञ और अश्रद्दधान का तो परलोकही बिगड़ता है, परन्तु संशयात्मा के तो दोनों लोक बिगड़ते हैं, क्योंकि

इस लोक में हरएक वार्ता में उसको सन्देह रहता है, इसलिये इस लोक का सुख उसको नहीं मिलता है, और परलोक का सुख तो उसको स्वप्न में भी नहीं प्राप्त होता है, इसी वास्ते संशयात्मा अतिपापी है ॥ ४० ॥

मूलम्।

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ४१

पदच्छेदः।

योगसंन्यस्तकर्माणम्, ज्ञानसंछिन्नसंशयम्, आत्मवन्तम्, न, कर्माणि, निबध्नन्ति, धनञ्जय ॥

अन्वयः शब्दार्थ

धनञ्जय=हे अर्जुन !

योगसंन्यस्तकर्माणम्=योग करके त्याग दिया है कर्म को जिसने

+ च=और

ज्ञानसंछिन्नसंशयम्=ज्ञान करके नाश किया है संशय को जिसने

अन्वयः शब्दार्थ

+ च=और

आत्मवन्तम्=प्रमादरहित है जो उस को

कर्माणि=कर्म

न निबध्नन्ति=नहीं बन्धन करते हैं

भावार्थ ।

समत्वरूपी बुद्धि करके अर्थात् सब जीवों में एक ही आत्माको सम देखने से त्याग कर दिया है संपूर्ण कर्म जिसने, और आत्मज्ञान करके छेदन करडाला है संपूर्ण संशय जिसने ऐसे आत्मनिष्ठावाले को हे धनञ्जय ! कर्म बन्धायमान नहीं करसक्ता है ॥ ४१ ॥

मूलम् ।

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ४२

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मब्रह्मार्पणयोगोनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मात्, अज्ञानसम्भूतम्, हृत्स्थम्, ज्ञानासिना, आत्मनः, छित्त्वा, एनम्, संशयम्, योगम्, आतिष्ठ, उत्तिष्ठ, भारत ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
भारत	=हे अर्जुन !	+ च	=और
तस्मात्	=इस कारण	हृत्स्थम्	=हृदय में स्थित हुये
अज्ञानसम्भूतम्	=अज्ञान से उत्पन्न हुये	आत्मनः	=अपने

एनम्=इस
संशयम्=संशय को
ज्ञानासिना=ज्ञानरूपी तलवारसे
छित्वा=काट करके
योगम्=कर्मयोग को
आतिष्ठ=कर
+ च=और
उत्तिष्ठ=उठखड़ा हो युद्धके लिये

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे भारत ! अज्ञान से उत्पन्न और हृदय में स्थित संशयको ज्ञानरूपी तलवार से छेदन करके तू ज्ञानयोग को आश्रयण कर और युद्ध के लिये उठखड़ा हो ॥ ४२ ॥

चौथा अध्याय समाप्त ॥

पांचवां अध्याय ।

मूलम् ।

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् १

पदच्छेदः ।

संन्यासम्, कर्मणाम्, कृष्ण, पुनः, योगम्, च, शंससि, यत्, श्रेयः, एतयोः, एकम्, तत्, मे, ब्रूहि, सुनिश्चितम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

कृष्ण=हे कृष्ण !
कर्मणाम्=कर्म के
संन्यासम्=त्याग को
च=और
पुनः=फिर
योगम्=कर्मयोगको
शंससि=तू कहता है
एतयोः=इन दोनोंमें से

अन्वयः शब्दार्थ

यत्=जो
श्रेयः=श्रेष्ठहै
तत्=उस
सुनिश्चितम्=निश्चय किये हुये
एकम्=एकको
मे=मेरे लिये
ब्रूहि=कह तू

भावार्थ।

हे अर्जुन ! कम और ज्ञान का समुच्चय नहीं बनता है, और न कर्म ज्ञानका विकल्पही बनता है, मैं कर्मों को करताहूं, इनके फल को मैं भोगूंगा, जिसकी ऐसी बुद्धि है, उसका कर्म मेंही अधिकार है, ज्ञान में नहीं, और मैं न कर्म करताहूं, और न कर्मका फल भोक्ता हूं, किन्तु असङ्ग सच्चिदानन्द रूप हूं जिसका ऐसा निश्चय है, उसका ज्ञानमेंही अधिकार है, कर्म में नहीं, परस्पर विरुद्ध धर्मवाला होने से और विरुद्ध फलवाला होने से दोनों का समुच्चय यानी एकही पुरुष करके कर्तृपना नहीं बनता है, और कर्म और ज्ञानका विकल्प भी नहीं होसक्ता है अर्थात् एकही पुरुष किसी काल में अज्ञानी होवे और किसी काल में

ज्ञानी होवे जब अज्ञानी होवे तब कर्म करे और जब ज्ञानी होवे तब कर्मोंका त्याग करे ऐसा नहीं होसक्ताहै, क्योंकि दोनों परस्पर विरोधी हैं, इसलिये विकल्प भी नहीं होसक्ता है, और आत्मज्ञान करके अज्ञानका बाध होता है, कर्मों करके नहीं होता है, और अज्ञान के बाध होजानेपर फिर कर्म करना बनता नहीं, क्योंकि कारण अज्ञान के अभाव होने से कार्य यानी कर्म का भी अभाव होजाता है, और ज्ञानी को कर्मों के फल की किञ्चित्भी आवश्यकता नहीं है, इसवास्ते भी ज्ञानी का कर्मों में अधिकार नहीं है, और यदि प्रारब्धकर्म के वश होकर ज्ञानी कर्मों को करे तब भी उसकी कोई हानि नहीं है, और कर्मोंके न करने में भी उसकी कोई क्षति नहीं है, और संन्यासी और ज्ञानी मुमुक्षु दोनों के लिये कर्मका त्यागही विधान किया है, क्योंकि विहित और निषिद्ध कर्मों के त्याग का नामही संन्यास है, जो संन्यासको लेकर फिर विहित निषिद्धकर्मों को करता है वह पतित होता है, और अज्ञानी मुमुक्षु चित्तकी शुद्धि के लिये निष्काम कर्मों को करे, जब चित्त शुद्ध होजावे तब कर्मों का त्याग करके श्रवण मननादिकोंको करे, ऐसा भगवान् का निश्चित मतहै, उसको न जानकर अर्जुन शङ्का करता है और कहता है कि, हे भगवन्! कर्मों के संन्यासको यानी त्याग को आपने कथन किया और

फिर कर्मयोगकोभी आप कहते हैं अर्थात् कर्मसंन्यास और कर्मयोग दोनों की श्लाघा को आप कहते हैं, हे कृष्ण ! इन दोनों में से जो श्रेयका करनेवाला हो, उसी को निश्चय करके मेरे प्रति कहिये ॥ १ ॥

मूलम्।

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते २

पदच्छेदः।

संन्यासः, कर्मयोगः, च, निःश्रेयसकरौ, उभौ, तयोः, तु, कर्मसंन्यासात्, कर्मयोगः, विशिष्यते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
संन्यासः	कर्मसंन्यास
च	और
कर्मयोगः	कर्मयोग
उभौ	दोनों
निःश्रेयसकरौ	अत्यन्त कल्याण करने वाले हैं
तु	तौभी
तयोः	उन दोनों में
कर्मसंन्यासात्	कर्मसंन्याससे
कर्मयोगः	कर्मयोग
विशिष्यते	श्रेष्ठ है

भावार्थ।

अर्जुन के प्रश्न का उत्तर भगवान् देते हैं और कहते हैं कि, हे पार्थ ! कर्मयोग और कर्मसंन्यास

दोनों श्रुतिसम्मत हैं, इसलिये दोनों कल्याण के कारक हैं, और दोनों ज्ञान की उत्पत्ति द्वारा परम्परा करके मोक्षके प्रति भी कारण हैं, और अशुद्ध अन्तःकरणवाले के प्रति अन्तःकरण की शुद्धि का कारण होनेसे कर्मसंन्यास से कर्मयोग श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

मूलम् ।

ज्ञेयः स नित्यः संन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात् प्रमुच्यते ३

पदच्छेदः ।

ज्ञेयः, सः, नित्यः, संन्यासी, यः, न, द्वेष्टि, न, काङ्क्षति, निर्द्वन्द्वः, हि, महाबाहो, सुखम्, बन्धात्, प्रमुच्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यः=जो
न द्वेष्टि=न द्वेषकरता है
+ च=और
न कांक्षति=न इच्छा करता है
सः=वह
नित्यः=नित्य
संन्यासी=संन्यासी
ज्ञेयः=जानने योग्यहै

अन्वयः शब्दार्थ

हि=क्योंकि
महाबाहो=हे दीर्घबाहु, अर्जुन !
निर्द्वन्द्वः=वह निर्द्वन्द्व पुरुष
सुखम्=सुखपूर्वक
बन्धात्=संसार से
प्रमुच्यते=छूटजाता है

भावार्थ।

हे अर्जुन ! जो कर्मयोगी कर्मों के साथ द्वेष नहीं करता है, और ईश्वराराधन कर्मों को करता हुआ स्वर्गादिक किञ्चित् फलकी भी इच्छा नहीं करता है, और अहंकार से रहित है यानी कर्म करने का अहंकार भी जिसको नहीं है उसको तुम नित्य संन्यासी जानो, जो द्वन्द्व से भी वर्जित है, यानी रागद्वेषरूपी द्वन्द्वसे रहित है, वह सुखपूर्वक संसाररूपी बन्धन से छूटजाता है ॥ ३ ॥

मूलम्।

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ४

पदच्छेदः।

सांख्ययोगौ, पृथक्, बालाः, प्रवदन्ति, न, पण्डिताः, एकम्, अपि, आस्थितः, सम्यक्, उभयोः, विन्दते, फलम्॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

बालाः=अज्ञानी पुरुष

सांख्ययोगौ=सांख्य और योग को यानी ज्ञानयोग और कर्मयोग को

अन्वयः **शब्दार्थ**

पृथक्=पृथक् पृथक् करके

प्रवदन्ति=कहते हैं

पण्डिताः=विद्वान्पुरुष

न प्रवदन्तिएवम्=ऐसा नहीं कहते हैं

एकम्=एक को
सम्यक्=अच्छे प्रकार
आस्थितः=धारण करता हुआ
+पुरुषः=पुरुष
उभयोः=दोनों के
फलम्=फलको
विन्दते=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ जो कर्मों का कर्ता है वह कर्मसंन्यासी कैसे होसक्ता है, क्योंकि कर्म और कर्मसंन्यास दोनों परस्पर विरोधी हैं, और इनका फल भी भिन्न भिन्न है, और इनका स्वरूप भी भिन्न भिन्न हैं, इसलिये दोनों श्रेयके कारक भी नहीं होसक्ते हैं ॥ उत्तर ॥ कर्मयोग और कर्मसंन्यासके फलको अज्ञानी पृथक् कथन करते हैं, पण्डित लोग अधिकारके अनुसार संन्यास और कर्मों के फल को पृथक् नहीं मानते हैं, क्योंकि दोनों में से एकको भी विधिपूर्वक आश्रयण करके पुरुष कल्याण को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

यत् सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ५

पदच्छेदः ।

यत्, सांख्यैः, प्राप्यते, स्थानम्, तत्, योगैः, अपि, गम्यते, एकम्, सांख्यम्, च, योगम्, च, यः, पश्यति, सः, पश्यति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यत्=जो
स्थानम्=स्थान
सांख्यैः=सांख्य यानी ज्ञान करके
प्राप्यते=प्राप्त किया जाता है
तत्=वही स्थान
योगैः=योग करके
अपि=भी
गम्यते=प्राप्त किया जाता है यानी प्राप्त होता है

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
यः=जो
सांख्यम्=सांख्य को
च=और
योगम्=योग को
एकम्=एक
पश्यति=देखता है
सः=वही
पश्यति=देखता है यानी समझता है

भावार्थ।

प्रश्न ॥ एक के करने से दोनों के फलको पुरुष कैसे प्राप्त होता है ॥ उत्तर ॥ जिसने पूर्वजन्म में निष्काम कर्मों का अनुष्ठान किया है, उन कर्मों के अनुष्ठान से उत्तर जन्म में वह शुद्ध अन्तःकरणवाला होकर श्रवणादिकों में प्रवृत्त होता है, और फिर आत्मज्ञान को प्राप्त होकर जिस मोक्षरूपी स्थान को वह प्राप्त होता है, उसी स्थान को ईश्वरार्पणबुद्धि करके कर्मों का

करनेवाला भी प्राप्त होता है, और चित्त की शुद्धिद्वारा संन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठा को भी प्राप्त होता है अतएव दोनों का फल एकही सिद्ध होता है जिन पुरुषों की जन्म सेही संन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठा देखने में आती है, उनके संन्यासरूपी लिङ्ग से पूर्वजन्म में निष्काम कर्म का अनुमान कियाजाता है यानी उन्होंने पूर्वजन्म में चित्त की शुद्धि के लिये निष्काम कर्म किये हैं, क्योंकि कारण से विना कार्य होता नहीं, चित्त की शुद्धि के विना कर्मों का संन्यास हो नहीं सक्ता है, और जिस पुरुष ने इसी जन्म में चित्त की शुद्धि के लिये कर्मों का अनुष्ठान किया है और चित्तशुद्धिद्वारा ज्ञान उसको नहीं हुआ उसको भविष्य जन्म में संन्यास और ज्ञान होने का अनुमान कियाजाता है, इसलिये अज्ञ ममुक्षु को प्रथम कर्मों का अनुष्ठान करना उचित है, त्याग करना उचित नहीं, कर्म करते करते जब चित्त की शुद्धि होजाय तब उसको तीव्र वैराग्य होगा, और तभी कर्म का त्याग उसको आपसे आप होजावेगा ॥ ५ ॥

मूलम्।

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति ६

पदच्छेदः ।

संन्यासः, तु, महाबाहो, दुःखम्, आप्तुम्, अयोगतः, योगयुक्तः, मुनिः, ब्रह्म, न, चिरेण, अधिगच्छति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
महाबाहो	=हे अर्जुन !	मुनिः	=ज्ञानी
संन्यासः	=कर्मसंन्यास	योगयुक्तः	=कर्मयोग से युक्त होता हुआ
तु	=तो	ब्रह्म	=ब्रह्मज्ञान को
अयोगतः	=योगरहितहोने के कारण	नचिरेण	=शीघ्र
दुःखम्	=दुःख	अधिगच्छति	=प्राप्त होता है
आप्तुम्	=प्राप्त करने के लिये है		

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ कर्म करने से पूर्वही कर्मों का संन्यास क्यों न किया जाय कर्म करके फिर कर्म का त्याग करना इसमें तो महान् गौरव होता है ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! चित्त की शुद्धिके विना जिसने कर्मों का त्याग किया है वह महान् दुःख को प्राप्त हुआहै अर्थात् चित्त की शुद्धि के विना कर्मों का त्याग दुःख का हेतु होता है, और ज्ञान की प्राप्ति भी उसको नहीं होती है, इसलिये वह भ्रष्ट होजाता है और जो

योग करके यानी निष्काम कर्मों के अनुष्ठान से युक्त होता है, वह चित्तकी शुद्धिद्वारा आत्मज्ञान को प्राप्त होकर संसारबन्धन से मुक्त होजाता है, और आत्मज्ञानवर्जित जो कर्मों का संन्यास है उससे कर्मयोग श्रेष्ठ है, इसलिये चित्तकी शुद्धिके विना कर्मों का त्याग करना उचित नहीं, और जो करता है उसको भगवान् ने पतित कहा है ॥ श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्ते उल्लङ्घ्य वर्तते ॥ आज्ञाभङ्गी ममद्वेषी मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः ॥ १ ॥ भगवान् कहते हैं कि श्रुति स्मृति ये दोनों मेरी आज्ञा हैं, जो पुरुष उनको उल्लङ्घन कर बर्तता है, वह मेरी आज्ञा का भङ्ग करनेवाला मेरा द्वेषी है, यदि वह मेरा भक्त भी है तब भी वह वैष्णव नहीं है ॥ ६ ॥

मूलम्।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ७

पदच्छेदः।

योगयुक्तः, विशुद्धात्मा, विजितात्मा, जितेन्द्रियः, सर्वभूतात्मभूतात्मा, कुर्वन्, अपि, न, लिप्यते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
योगयुक्तः=	योगयुक्तहै यानी कर्मयोगीहै जो
विशुद्धात्मा=	विशेष करके शुद्ध कियाहै अन्तःकरण को जिसने
विजितात्मा=	विशेषता से जीत लिया है आत्मा जिसने
+च=	और

अन्वयः	शब्दार्थ
जितेन्द्रियः=	जीताहै इन्द्रियोंको जिसने
सर्वभूतात्मभूतात्मा=	सब भूतों के आत्मा का आत्मा है जो
+सः=	वह
कुर्वन्अपि=	कर्मोंको करता हुआ भी
न लिप्यते=	कर्म के बन्धन में लिपायमान नहीं होता है

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ बन्धन का हेतु कर्म है, मोक्षका हेतु कर्म कैसे होसक्ता है ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! फलशक्ति से वर्जित ईश्वरार्पण कर्मका नामही कर्मयोग है, उस कर्मयोग करके युक्त शुद्धबुद्धिवाला जो पुरुष है, और अपने वशमें किया है देह और इन्द्रिय को जिसने और अपने आत्माकोही संपूर्ण

भूतों का आत्मा जाना है जिसने और अद्वैत में है निष्ठा जिसकी ऐसा वह कर्मों को करताहुआ भी कर्मों के फल के साथ लिपायमान नहीं होता है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यञ्छृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन् ८

पदच्छेदः ।

न, एव, किञ्चित्, करोमि, इति, युक्तः, मन्येत, तत्त्ववित्, पश्यन्, शृण्वन्, स्पृशन्, जिघ्रन्, अश्नन्, गच्छन्, स्वपन्, श्वसन् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तत्त्ववित्=तत्त्व का जाननेवाला
युक्तः=योगी
पश्यन्=देखता हुआ
शृण्वन्=सुनता हुआ
स्पृशन्=स्पर्श करता हुआ

अन्वयः शब्दार्थ

जिघ्रन्=सूंघता हुआ
अश्नन्=खाता हुआ
गच्छन्=चलता हुआ
स्वपन्=सोता हुआ
श्वसन्=श्वास लेता हुआ

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ ।

तत्त्ववित् जो ज्ञानी है, वह देह इन्द्रियादिकों करके

कर्मों को करता हुआ भी मैं कुछ नहीं करताहूं ऐसा मानता है, देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूंघता हुआ, भक्षण करता हुआ, चलता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ ॥ ८ ॥

मूलम् ।

प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ९

पदच्छेदः ।

प्रलपन्, विसृजन्, गृह्णन्, उन्मिषन्, निमिषन्, अपि, इन्द्रियाणि, इन्द्रियार्थेषु, वर्तन्ते, इति, धारयन् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

प्रलपन्=बोलता हुआ
विसृजन्=त्यागताहुआ
गृह्णन्=ग्रहण करता हुआ
उन्मिषन्=नेत्रों को खोलताहुआ
+ च=और
निमिषन्=नेत्रों को बंद करता हुआ

अन्वयः शब्दार्थ

+ च=और
धारयन्=स्मरण करता हुआ
इति=ऐसा
मन्येत=मानता है कि
इन्द्रियाणि=इन्द्रियां
इन्द्रियार्थेषु=इन्द्रियों के विषयों में
वर्तन्ते=बर्तती हैं

+च अहम्=और मैं
एव=निश्चयकरके
किञ्चित्अपि=कुछ भी
न करोमि=नहीं करताहूं

भावार्थ ।

बोलता हुआ, मल त्यागता हुआ, ग्रहण करता हुआ, आंखको खोलता और मूंदताहुआ ऐसा मानता है कि, इन्द्रिय जो हैं सो अपने अपने विषयों में बर्तती हैं, मैं कुछ भी नहीं करताहूं, किन्तु कर्तृत्व धर्म से पृथक् सच्चिदानन्दरूप हूं ॥ ९ ॥

मूलम् ।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रामिवाम्भसा १०

पदच्छेदः ।

ब्रह्मणि, आधाय, कर्माणि, सङ्गम्, त्यक्त्वा, करोति, यः, लिप्यते, न, सः, पापेन, पद्मपत्रम्, इव, अम्भसा ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यः=जो
सङ्गम्=फल की इच्छा को
त्यक्त्वा=त्याग करके
कर्माणि=कर्मों को

अन्वयः शब्दार्थ

ब्रह्मणि=ब्रह्म में
आधाय=अर्पण करके
करोति=करता है
सः=वह
पापेन=पाप से

न लिप्यते=नहीं लिपायमान होताहै
इव=जैसे
अम्भसा=जल करके
पद्मपत्रम्=कमलपत्र
+न लिप्यते=नहीं लिपायमान होता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे कौन्तेय ! जो कर्मों के फल में आसक्ति को त्याग करके और ईश्वर में कर्मों को समर्पण करके वैदिक और लौकिक कर्मों को करताहै, वह पुण्य पापरूपी कर्मों के साथ लिपायमान नहीं होता है, जैसे पद्म के पत्र पर फेंका हुआ जल उसके साथ लिपायमान नहीं होता है, वैसेही ईश्वर में अर्पण किये हुये कर्म कर्ता विषे लिपायमान नहीं होते हैं, किन्तु ईश्वरकी कृपासे कर्मकर्ता की बुद्धि शुद्ध होजाती है ॥ १० ॥

मूलम् ।

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ११

पदच्छेदः ।

कायेन, मनसा, बुद्ध्या, केवलैः, इन्द्रियैः, अपि, योगिनः, कर्म, कुर्वन्ति, सङ्गम्, त्यक्त्वा, आत्मशुद्धये ॥

अन्वयः शब्दार्थ
कायेन=काया करके
अन्वयः शब्दार्थ
मनसा=मन करके

बुद्ध्या=बुद्धि करके
+ च=और
केवलैः=केवल
इन्द्रियैः=इन्द्रियोंकरके
अपि=भी
योगिनः=योगीजन
सङ्गम्=फल की इच्छा को

त्यक्त्वा=त्याग करके
आत्मशुद्धये=अन्तःकरणकी शुद्धि के लिये
कर्म=कर्म को
कुर्वन्ति=करते हैं

भावार्थ ।

हे अर्जुन ! मुमुक्षुलोग शरीर करके, मन करके, इन्द्रियों करके फल की आसक्ति से रहित होकर अन्तःकरण की शुद्धि के लिये कर्मों को करते हैं ॥ ११ ॥

मूलम् ।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते १२

पदच्छेदः ।

युक्तः, कर्मफलम्, त्यक्त्वा, शान्तिम्, आप्नोति, नैष्ठिकीम्, अयुक्तः, कामकारेण, फले, सक्तः, निबध्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ
युक्तः=योगी
कर्मफलम्=कर्म के फल को

अन्वयः शब्दार्थ
त्यक्त्वा=त्याग करके
नैष्ठिकीम्=मोक्षरूपी

शान्तिम्=शान्ति को
आप्नोति=प्राप्त होता है
+ च=और
अयुक्तः=विषयीपुरुष
कामकारेण=काम की प्रेरणा से
फलेसक्तः=फल में आसक्त हुआ
निबध्यते=बन्धन को प्राप्त होताहै

भावार्थ।

प्रश्न ॥ कर्तापनेका अध्यास तो ज्ञानी और अज्ञानी दोनोंको कर्म करने में बराबरही है, तब फिर ज्ञानी मुक्त होता है, और अज्ञानी बन्धायमान होता है, इसमें क्या कारण है ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! कर्तृत्वपनेके अभिमानसे रहित होकर और फलकी इच्छाको त्यागकर ईश्वरार्पण बुद्धि करके जो कर्मों को करता है वह मुक्त होता है, यानी मोक्षरूपी शान्तिको प्राप्त होता है, और जो कामना करके युक्त होकर फलके लिये कर्मको करताहै वह बन्धायमान होताहै, इतनाही ज्ञानी अज्ञानी के कर्म करने में भेद है ॥ १२ ॥

मूलम्।

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् १३

पदच्छेदः।

सर्वकर्माणि, मनसा, संन्यस्य, आस्ते, सुखम्, वशी, नवद्वारे, पुरे, देही, न, एव, कुर्वन्, न, कारयन् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सर्वकर्माणि	सब कर्मों को	न	न
मनसा	मनसे	कारयन्	कराता हुआ
संन्यस्य	त्याग करके	नवद्वारे	नवद्वारवाले
वशी	जितेन्द्रिय	पुरे	नगर में यानी शरीर में
देही	पुरुष	सुखम्	सुखपूर्वक
न	न	एव	निश्चय करके
कुर्वन्	करता हुआ	आस्ते	बैठा है
+ च	और		

भावार्थ।

पूर्व भगवान्ने यह वार्ता कही है कि, कर्म के त्याग से अशुद्धबुद्धिवाले को कर्मयोग करना श्रेष्ठ है, अब भगवान् शुद्धबुद्धिवाले के प्रति कर्मों का संन्यास विधान करते हैं, और कहते हैं कि, हे अर्जुन! परिश्रम के कारण जो मन बुद्धि शरीर है उसके व्यापारों से रहित होकर शरीर इन्द्रियके संघात को जिसने अपने अधीन किया है और नवद्वारोंवाले शरीर में जो पथिक की तरह यानी मुसाफ़िर की तरह अहंकार से रहित

होकर रहता है, वह न कुछ करता है, और न किसी से कराता है ॥ प्रश्न ॥ देहादिकों के व्यापार अविद्या करके आत्मामें आरोपित हैं, और विद्या करके अविद्या का बाध होने से अविद्या के कार्य जो देहादिकों के व्यापार हैं, उनका भी बाध होना चाहिये, और आत्मा को अपने अर्पित व्यापार करके कर्तृता और कारयितृता होनी चाहिये ॥ उत्तर ॥ आत्मा देहमें अक्रिय होकर स्थित है न वह कुछ करता है और न करवाता है, जैसे आकाश में जो भ्रम करके नीलिमा प्रतीत होती है, उसके साथ आकाश का कोई भी सम्बन्ध नहीं है, वैसे आत्मा का भी कर्तृत्वादि धर्मों के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, अविद्या का तत्त्व ज्ञान करके नाश होने से आत्मा न करता है, और न करवाता है ॥ १३ ॥

मलम्।

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते १४

पदच्छेदः।

न, कर्तृत्वम्, न, कर्माणि, लोकस्य, सृजति, प्रभुः, न, कर्मफलसंयोगम्, स्वभावः, तु, प्रवर्तते ॥

अन्वयः शब्दार्थ
लोकस्य=जीवके
कर्तृत्वम्=देहेन्द्रियों के कार्य यानी धर्म को
+ च=और
कर्माणि=कर्म को
प्रभुः=ईश्वर
न सृजति=नहीं पैदा करताहै
+ च=और

अन्वयः शब्दार्थ
न=न
कर्मफलसंयोगम्=कर्मके फल के संयोग को
+ सृजति=उत्पन्न करता है
तु=परन्तु
स्वभावः=प्रकृति
+ इति=ऐसा
प्रवर्तते=बर्तती है यानी करती है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे प्रिय, मित्र, अर्जुन ! ईश्वर जीवों के कर्तृत्वको यानी तुम ऐसा करो या ऐसा न करो इसको नहीं रचताहै, और जीवोंके कर्मों को यानी मन्दिर आदिकों का जो बनाना है, उन कर्मों को भी नहीं रचताहै, और जीवों का जो कर्मों के फल के साथ सम्बन्ध है, उसको भी ईश्वर नहीं रचता है, और ईश्वर कर्मों के फल जीवों को भोगाता भी नहीं है, और न आपही भोक्ता है ॥ प्रश्न ॥ जबकि परमेश्वर न करता है और न करवाता है, तब फिर कौन करता या करवाताहै ॥ उत्तर ॥ स्वभावही करता,

करवाता है, स्वभाव नाम प्रकृति का है उसीको माया अविद्याभी कहते हैं, वही जीवोंको व्यवहार में प्रवृत्त करती कराती है ॥ प्रश्न ॥ प्रकृति जड़है वह कैसे प्रवृत्त करासक्की है जड़को तो प्रवृत्त कराने का ज्ञान नहीं होता है ॥ उत्तर ॥ जैसे चुम्बकपत्थर लोहे को चेष्टा करने की प्रेरणा नहीं करता है, परन्तु उसकी सत्तारूपी शक्ति से लोहा चेष्टा करता है, वैसे परमात्मा की सत्तासे प्रकृति करती कराती है, अथवा स्वभाव नाम अनादिकाल के संस्कारोंका है, वह संस्कारही चेतन की सत्ता पाकर व्यवहार को जीवों से करता, कराता है, ईश्वर वा आत्मा कुछ न करता है, न कराता है ॥ १४ ॥

मूलम् ।

नादत्ते कस्यचित् पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः १५

पदच्छेदः ।

न, आदत्ते, कस्यचित, पापम् न, च, एव, सुकृतम्, विभुः, अज्ञानेन, आवृतम, ज्ञानम्, तेन, मुह्यन्ति, जन्तवः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
विभुः=	ईश्वर	कस्यचित्=	किसी के
न=	न	पापम्=	पापको

आदत्ते=ग्रहण करता है
च=और
न=न
सुकृतम्=पुण्य को
एव=ही
+ आदत्ते=ग्रहण करता है
जन्तवः=जीव
तेन=उस
अज्ञानेन=अज्ञान करके
मुह्यन्ति=मोहित होते हैं
+ येन=जिस करके
ज्ञानम्=ज्ञान
आवृतम्=ढका हुआ है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! विभु जो परमेश्वर है, वह किसी जीव के पुण्य और पाप को ग्रहण नहीं करताहै, वास्तव से तो जीव को कर्तृत्व और ईश्वर को कारयितृत्व नहीं है अर्थात् जीवात्मा और ईश्वरात्मा दोनों असङ्ग निर्लेप हैं, और उपाधिकृत इनका भेद है, वास्तवसे भेद भी नहीं है, मिथ्या अज्ञान करके स्वप्रकाश परमानन्दरूप ज्ञानस्वरूप आत्मा आच्छादित होरहा है, और उसी अज्ञान करके सब जीव मोह को प्राप्त होते हैं॥ १५॥

मूलम्।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् १६

पदच्छेदः ।

ज्ञानेन, तु, तत्, अज्ञानम्, येषाम्, नाशितम्, आत्मनः, तेषाम्, आदित्यवत्, ज्ञानम्, प्रकाशयति, तत्, परम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तु=और
आत्मनः=आत्माके
ज्ञानेन=ज्ञानकरके
येषाम्=जिन पुरुषों का
तत्=यह
अज्ञानम्=अज्ञान

अन्वयः शब्दार्थ

नाशितम्=नाश हुआ है
तेषाम्=उनका
ज्ञानम्=ज्ञान
तत्=उस
परम्=परमात्माको
आदित्यवत्=सूर्यवत्
प्रकाशयति=प्रकाशता है

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ सब जीव तो अनादि अविद्या करके आवृत हैं, इनकी मुक्ति कैसे होगी ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जैसे रज्जु के ज्ञान करके रज्जु के अज्ञानरूपी भ्रम करके प्रतीयमान सर्प का बाध होजाताहै, वैसे गुरुउपदिष्ट वेदान्तवाक्यजन्य आत्मज्ञान करके आवरणविक्षेपशक्तिवाली अविद्याका भी बाध होजाता है, जिन पुरुषों का अज्ञान आत्मज्ञान करके बाध होगया है, उनको सूर्य की तरह ज्ञानस्वरूप आत्माका साक्षात्कार होजाताहै, और अज्ञानभावरूप

है, अभावरूप नहीं है, नैयायिक ज्ञान के अभाव को अज्ञान मानते हैं, उनका मानना ठीक नहीं है, क्योंकि अभाव में आवरण करने की सामर्थ्य नहीं होती है, इसलिये नैयायिक का मत त्यागने योग्य है ॥ १६ ॥

मूलम् ।

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः १७

पदच्छेदः ।

तद्बुद्धयः, तदात्मानः, तन्निष्ठाः, तत्परायणाः, गच्छन्ति, अपुनरावृत्तिम्, ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
तद्बुद्धयः=	उसी में यानी ब्रह्ममें है बुद्धि जिनकी
तदात्मानः=	ब्रह्म है जीव आत्मा जिनका
तन्निष्ठाः=	ब्रह्म ही में है निष्ठा जिनकी
+ च=	और
तत्परायणाः=	वही यानी ब्रह्म ही है परममार्ग जिनका
+ च=	और
ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः=	ज्ञान करके नाश कियाहै पापकोजिन्हों ने ऐसे पुरुष

अपुनरावृत्तिम्	मोक्ष को	गच्छन्ति	प्राप्त होते हैं

भावार्थ।

हे अर्जुन! अन्तर ज्ञानस्वरूप और प्रकाशस्वरूप आत्मा के साक्षात्कार होनेपर बाह्यवस्तुओं का त्याग होजाताहै, और फिर बुद्धि उस विद्वान् की आत्मा में ही स्थिर होजाती है, जिसकी बुद्धि आत्मा में स्थिर होगई है, और जो आत्मा में परायण होरहा है, और अपने आत्मा मेंही है निष्ठा जिसकी, आत्मा में ही हुई है स्थिति जिसकी अर्थात् जो निरन्तर श्रवण मननादिकों में ही तत्पर हैं, वे पुरुष अपुनरावृत्तिरूपी मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥

मूलम्।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः १८

पदच्छेदः।

विद्याविनयसम्पन्ने, ब्राह्मणे, गवि, हस्तिनि, शुनि, च, एव, श्वपाके, च, पण्डिताः, समदर्शिनः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
पण्डिताः	बुद्धिमान् पुरुष	विद्याविनयसम्पन्ने	विद्या और विनय संयुक्त

ब्राह्मणे=ब्राह्मण में
गवि=गौ में
च=और
हस्तिनि=हाथी में
शुनि=कूकर में

च=और
श्वपाके=चाण्डाल में
एव=भी
समदर्शिनः=तुल्य देखने वाले हैं

भावार्थ।

विदेहमुक्ति जो ज्ञानका फल है उसको पूर्ववाक्य करके भगवान् ने कहा है, अब इस वाक्य करके जीवन्मुक्त जो ज्ञानका फल है उसको कहते हैं, हे अर्जुन! जो विद्या और नम्रता करके युक्त ब्राह्मण है, उसमें और गौ में तथा हस्ती में और कूकर में तथा चाण्डाल में जो एकही आत्मा को समभाव करके देखता है, किसी में भी न्यून अधिक आत्मा को नहीं देखता है, वही पण्डित है यानी जीवन्मुक्त है, जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब गङ्गाजल में और कूप, तड़ागादिकों के जल में और दुर्गन्ध नालियों के जल में तथा सुरा में बराबरही पड़ता है, परन्तु उनके गुण दोष से सम्बन्ध नहीं रखता है, वैसेही चेतन ब्रह्मका प्रतिबिम्ब जोकि सब जीवों के अन्तःकरण में है, वह भी उनके गुण दोष के साथ सम्बन्ध नहीं रखता है, इसी प्रकार जीवन्मुक्त चेतन ब्रह्मको सब में असङ्ग सम देखता हुआ राग द्वेष से रहित होकर जीवन्मुक्ति के सुखको प्राप्त होता है ॥१८॥

मूलम्।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः १९

पदच्छेदः।

इह, एव, तैः, जितः, सर्गः, येषाम्, साम्ये, स्थितम्, मनः, निर्दोषम्, हि, समम्, ब्रह्म, तस्मात्, ब्रह्मणि, ते, स्थिताः॥

अन्वयः शब्दार्थ

येषाम्=जिनका
मनः=मन
साम्ये=समतामें
स्थितम्=स्थित है
तैः=उन्हीं करके
इहएव=इसी जन्म में
सर्गः=संसार
जितः=जीता भया है
हि=क्योंकि

अन्वयः शब्दार्थ

ब्रह्म=ईश्वर
निर्दोषम्=निर्दोष
+ च=और
समम्=सम है
तस्मात्=इसकारण
ब्रह्मणि=ब्रह्म में
ते=वे
स्थिताः=स्थित हैं

भावार्थ।

प्रश्न॥ मूर्ख और विद्वान् को सम देखना शास्त्रविरुद्ध है, क्योंकि ऐसा लिखा हैं कि, जो विद्वान् और मूर्ख को बराबर खिलाता है और बराबर पूजा देता है,

वह नरक का भागी होताहै ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! शास्त्र में जो मूर्ख और विद्वान् को सम देखने का निषेध कियाहै, वह व्यवहार को लेकर कियाहै, जो गृहस्थाश्रमी व्यवहारमें समता करता है, वह दोषका भागी होताहै, जीवन्मुक्त विद्वान् के लिये नहीं कहाहै, क्योंकि उसकी दृष्टिमें व्यवहार रहा नहीं है, केवल ब्रह्मदृष्टि उसकी है, इसलिये वह दोषका भागी नहीं है, जिनका मन सम ब्रह्ममें ही स्थित है, उन्होंने जीते जी इस द्वैत प्रपञ्च को जीतलिया है, क्योंकि उनकी दृष्टि में प्रपञ्च का बाध होगया है, इसलिये वे दोषके भागी नहीं होसक्ते हैं ॥ १९ ॥

मूलम्।

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत् प्राप्य वाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः २०

पदच्छेदः।

न, प्रहृष्येत्, प्रियम्, प्राप्य, न, उद्विजेत्, प्राप्य, वा, अप्रियम्, स्थिरबुद्धिः, असंमूढः, ब्रह्मवित्, ब्रह्मणि, स्थितः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

+ यः=जो
प्रियम्=प्रिय पदार्थ को
प्राप्य=पाकरके

अन्वयः शब्दार्थ

न=नहीं
प्रहृष्येत्=प्रसन्न होताहै
वा=और

अप्रियम्=अप्रिय पदार्थ को
प्य=पाकरके
न=नहीं
उद्विजेत्=खेद को पाताहै
+ च=और

स्थिरबुद्धिः=स्थिर है बुद्धि जिसकी ऐसा
असंमूढः=मोहवर्जित
ब्रह्मवित्=ब्रह्मज्ञानी
ब्रह्मणि=ब्रह्म में
स्थितः=स्थित है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जीवन्मुक्त के जो स्वाभाविक आचरण हैं, उनको मुमुक्षुलोग भी जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति के लिये धारण करें, जो प्रिय वस्तु को प्राप्त होकर हर्ष को प्राप्त नहीं होताहै, और जो अप्रिय वस्तुको प्राप्त होकर शोक को प्राप्त नहीं होता है, वही जीवन्मुक्त है, और अद्वैतदर्शी जीवन्मुक्तकी दृष्टि में ब्रह्मसे भिन्न कोई वस्तुही नहीं है, इसवास्ते उसके हर्ष विषाद का कोई कारण भी नहीं है, और जो अज्ञानी अन्योन्याध्यासवाला है, उसीको प्रिय अप्रिय वस्तु की प्राप्ति में हर्ष शोक होताहै, और मोह भी होता है, जीवन्मुक्त का अन्योन्याध्यास नष्ट होजाता है, इसी वास्ते उसको हर्ष शोकभी नहीं होताहै, और मोहभी नहीं होताहै, वह ब्रह्मबोधवाला जीवन्मुक्त समाधि के परिपाक से नित्यही ब्रह्ममें स्थित रहताहै ॥ २० ॥

मूलम् ।

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते २१

पदच्छेदः ।

बाह्यस्पर्शेषु, असक्तात्मा, विन्दति, आत्मनि, यत्, सुखम्, सः, ब्रह्मयोगयुक्तात्मा, सुखम्, अक्षय्यम्, अश्नुते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
बाह्यस्पर्शेषु	बाह्यविषयों में
असक्तात्मा	नहीं आसक्त है अन्तःकरण जिसका ऐसा पुरुष
यत्	जिस
सुखम्	सुख को
आत्मनि	अपने में
विन्दति	पाता है
सः	वहही
ब्रह्मयोगयुक्तात्मा	ज्ञानयोग से युक्त है मन जिसका ऐसा पुरुष
अक्षय्यम्	अक्षय
सुखम्	सुखको
अश्नुते	प्राप्त होता है

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ अनादि अध्यास से जन्य जो भोगों में प्रीति है, वह बड़ी बलवाली है, उस प्रीति को त्याग

करके उसकी ब्रह्ममें स्थिति कैसे होसक्ती है ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! बाह्य जो शब्दादिक भोग हैं, वे सब जड़ प्रकृति के धर्म हैं और नाशी हैं, उनमें जीवन्मुक्तकी आसक्ति नहीं रहती है, क्योंकि वह शुद्धचित्तवाला है, जो अज्ञानी अशुद्धचित्तवाला होता है, उसीकी बाह्य भोगों में आसक्ति और प्रीति होती है, जीवन्मुक्त बाह्य भोगों में तृष्णा को त्यागकर शान्तिरूपी सुखको प्राप्त होता है, पश्चात् वह ज्ञानयोग करके अक्षय नित्य सुखको प्राप्त होता है, ऐसा योगवाशिष्ठ में कहा है ॥ यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् । तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥ १ ॥ जितना काम सुख लोक में है और दिव्य सुख स्वर्ग में है, वह सुख उस सुख के सोलहवें हिस्से के बराबर नहीं होता है, जो सुख उस पुरुष को है, जिसकी तृष्णा नाश होगई है, इसलिये मुमुक्षुवों को उचित है कि, जीवन्मुक्ति के सुख के लिये तृष्णा का त्याग करें ॥ २१ ॥

मूलम् ।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः २२

पदच्छेदः ।

ये, हि, संस्पर्शजाः, भोगाः, दुःखयोनयः, एव, ते, आद्यन्तवन्तः, कौन्तेय, न, तेषु, रमते, बुधः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

हि=क्योंकि
ये=जो
संस्पर्शजा भोगाः=स्पर्शादि विषयजन्यभोग हैं
ते=वे
एव=निश्चय करके
दुःखयोनयः=दुःखके कारण हैं
+ च=और

अन्वयः शब्दार्थ

आद्यन्तवन्तः=आदि और अन्तवाले हैं यानीनाशवान् हैं
कौन्तेय=हे अर्जुन !
तेषु=उनविषयजन्य भोगों में
बुधः=विद्वान् पुरुष
न रमते=नहीं रमण करता है

भावार्थ।

अर्जुन कहता है कि, हे प्रभो ! प्रथम बाह्य विषयों में प्रीति का त्याग होवे, तब आत्मसुख का अनुभव होवे, और जो प्रथम आत्मसुख का अनुभव होलेवे, तब बाह्य विषयों में प्रीति का त्याग होवे, इसप्रकार अन्योन्याश्रय दोषके आनेसे दोनोंमें से एकभी सिद्ध नहीं होगा ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जिसप्रकार अन्योन्याश्रय दोष नहीं आता है, सो हम दिखाते हैं, बाह्य विषयों की प्रीति के त्याग में दोषदृष्टिही कारण है, इसलिये प्रथम दोषदृष्टि को करे, विषय इन्द्रियों के सम्बन्ध से जन्य जो क्षणिक सुख

है यानी सुख का अनुभव है, उसीका नाम इस लोक और परलोक में भोग है, वह भोग राग द्वेष करके भराहुआ है, इसलिये दुःखकाही वह कारण है, और विषय इन्द्रियों का जो संयोग है, वह उत्पत्ति नाश वाला है और जैसे स्वप्नके पदार्थ आदि अन्त में नहीं होते हैं, किन्तु बीचमें ही प्रतीत होते हैं, वैसेही यह भोग भी आदि अन्तरहित बीचमें प्रतीत होते हैं, जो वस्तु आदि में भी नहीं है, और अन्त में भी नहीं है, वह बीचमें भी नहीं होती है, किन्तु प्रतीतिमात्र है, इसवास्ते भोग सब क्षणिक और तुच्छ सुखके करने वाले हैं, इस संसार में वास्तवसे तो सुख का गन्धमात्रभी नहीं है, किन्तु यह संसार दुःखरूपही है, ऐसा जानकर विद्वान् भोगों में प्रथम प्रीति का त्याग करता है, तत्पश्चात् आत्मसुख को अनुभव करता है, इस लिये अन्योन्याश्रय दोष नहीं आता है ॥ २२ ॥

मूलम्।

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः २३

पदच्छेदः।

शक्नोति, इह, एव, यः, सोढुम्, प्राक्, शरीरविमोक्षणात्, कामक्रोधोद्भवम्, वेगम्, सः, युक्तः, सः, सुखी, नरः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यः=जो पुरुष
इहएव=इसी जन्म में
शरीरविमोक्षणात्=शरीर छूटनेसे
प्राक्=पहिले
कामक्रोधोद्भवम्=काम और क्रोधसे उत्पन्न हुये

अन्वयः शब्दार्थ

वेगम्=वेगको
सोढुम्=सहने को
शक्नोति=समर्थ होताहै
सः=वही पुरुष
युक्तः=योगी है
+ च=और
सः=वही
नरः=मनुष्य
सुखी=सुखी है

भावार्थ।

सम्पूर्ण अनर्थों का करनेवाला और श्रेयमार्ग में विघ्न डालनेवाला काम और क्रोधका वेग है, इस लिये मुमुक्षुवों को उचित है कि, यत्न करके प्रथम इसको हटावें, इसी वार्ता को भगवान् अब कहते हैं कि, हे अर्जुन! अनेक प्रकारके दृश्यमान और स्मर्यमाण तथा श्रूयमाण जो अपने अनुकूल भोग हैं, और उन भोगों में जो प्रीति है उसीका नाम तृष्णा और काम भी है, और वही काम जीवों के लिये सब अनर्थों का कारण भी है, और अपने प्रतिकूल भोगों में जो द्वेष है, उसी का नाम मन्यु और क्रोध भी है, इन दोनों का जो

वेग है, वह मोक्षमार्ग में अत्यन्त विघ्नकारक है, और चित्तको क्षोभ करनेवाला है, इस वास्ते लोक का भी विरोधी है, उस काम क्रोधके वेगको पुरुष शरीरपात होनेसे पूर्वही रोके और वैराग्य करके उस वेगके संहारने में समर्थ होवे, जो पुरुष उस वेग के सहन करने में समर्थ होता है, वही सुखी होता है, और जो उस वेग के सहन करने में समर्थ नहीं होता है, वह केवल मनुष्य शरीर को धारण करनेवाला है, वास्तव से वह पशुके तुल्यहै, पुरुषार्थ से वह पराङ्मुख है ॥ २३ ॥

मलम्।

योन्तःसुखोन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति २४

पदच्छेदः।

यः, अन्तःसुखः, अन्तरारामः, तथा, अन्तर्ज्योतिः, एव, यः, सः, योगी, ब्रह्मनिर्वाणम्, ब्रह्मभूतः, अधिगच्छति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अन्तःसुखः=	अन्तर है सुख जिस के और	अन्तरारामः=	अन्तर ही है आनन्द जिसकेऐसा

यः=जो
तथा=और
अन्तर्ज्योतिः=अभ्यन्तरहै दृष्टि जिसकी ऐसा
यः=जो
+ अस्ति=है

सः=वह
योगी=योगी
एव=निश्चय करके
ब्रह्मभूतः=ब्रह्मरूप होता हुआ
ब्रह्मनिर्वाणम्=मोक्ष को
अधिगच्छति=प्राप्त होता है

भावार्थ।

सम्पूर्ण आपदा के मलकारण जो काम और क्रोध हैं, उनके नाशको कहकर अब भगवान् ब्रह्मानन्द की प्राप्तिके उपायको कहते हैं, हे पार्थ ! अन्तर आत्मामें ही है सुख जिसका, अन्तर आत्मा में ही है क्रीड़ा जिसकी, अन्तर आत्मामें ही है विज्ञान जिसका, ऐसा समाहित चित्तवाला सच्चिदानन्द अद्वय ब्रह्मको ही प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

मूलम्।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः २५

पदच्छेदः।

लभन्ते, ब्रह्मनिर्वाणम्, ऋषयः, क्षीणकल्मषाः, छिन्नद्वैधाः, यतात्मानः, सर्वभूतहिते, रताः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
क्षीणकल्मषाः	नाश करदिया है पाप को जिन्हों ने
छिन्नद्वैधाः	नाश किया है संशय को जिन्हों ने
यतात्मानः	जीताहैअन्तःकरण को जिन्हों ने
सर्वभूतहितेरताः	सर्वभूतों के हितमें प्रीति है जिनकी ऐसे
ऋषयः	ऋषि
ब्रह्मनिर्वाणम्	मोक्षको
लभन्ते	प्राप्त होते हैं

भावार्थ।

भगवान् अब फिर ज्ञानके और साधनको कहते हैं कि, हे कौन्तेय! जिन पुरुषों के चित्तके मल प्रथम निष्काम कर्म करके क्षीण होगये हैं, और फिर वेही चित्त शुद्ध होनेपर आत्माके दर्शन में समर्थ हुये हैं, और आत्मविचार करके संशय जिनके सब दूर होगये हैं, और निदिध्यासन की दृढ़ता करके जिनका चित्त आत्मा में एकाग्र होरहा है, और अद्वैतदृष्टिसे जो संपूर्णभूतों में प्रीति करनेवाले हैं, और ज़ो जीवमात्र को भी नहीं सताते हैं, वे मोक्षकोही प्राप्त होते हैं ॥२५॥

मूलम्।

कामक्रोधविमुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् २६

पदच्छेदः।

कामक्रोधविमुक्तानाम्, यतीनाम्, यतचेतसाम्, अभितः, ब्रह्मनिर्वाणम्, वर्तते, विदितात्मनाम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
कामक्रोधविमुक्तानाम्	काम और क्रोध से रहित हैं जो	विदितात्मनाम्	जाना है आत्माको जिन्होंने ऐसे
		यतीनाम्	संन्यासियों को
यतचेतसाम्	रोका है मन को जिन्हों ने	अभितः	चारों तरफ़ से
		ब्रह्मनिर्वाणम्	मोक्ष
		वर्तते	बर्तता है यानी प्राप्त होता है
+ च	और		

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जिन्हों ने यत्न करके काम क्रोध का नाश करदिया है, अर्थात् जो काम क्रोध को उत्पन्नही नहीं होने देते हैं, और जो समाहित चित्त हैं, और जिन्होंने आत्मतत्त्व को

साक्षात्कार करलिया है, वे जीतेजी भी मुक्त हैं, और मरे पर भी मुक्त होते हैं ॥ २६ ॥

मूलम् ।

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ २७

पदच्छेदः ।

स्पर्शान्, कृत्वा, बहिः, बाह्यान्, चक्षुः, च, एव, अन्तरे, भ्रुवोः, प्राणापानौ, समौ, कृत्वा, नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥

अन्वयः शब्दार्थ

बाह्यान्=बाह्य
स्पर्शान्=स्पर्शादि विषयों को
बहिः=बाहर
कृत्वा=करके
च=और
भ्रुवोः=दोनों भवों के
अन्तरे=मध्यमें
ए =अच्छेप्रकार

अन्वयः शब्दार्थ

चक्षुः=नेत्रों को
कृत्वा=लगाकर
नासाभ्यन्तरचारिणौ=नासिका के भीतर फिरनेवाले
प्राणापानौ=प्राण अपान वायु को
समौ=बराबर
कृत्वा=करके

(इस श्लोकका सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ।

पूर्व भगवान् ने निष्कामकर्मों से चित्त की शुद्धि कही, फिर शुद्धचित्तवाले के प्रति कर्मों का त्यागपूर्वक श्रवणादिक कहा, और फिर श्रवणादिकों करके आत्मज्ञान की उत्पत्ति द्वारा मुक्ति कही, अब भगवान् ज्ञानका साधन जो ध्यानयोग है, उसको तीन श्लोकों में संक्षेप से कहते हैं कि, हे अर्जुन! बाह्यशब्दादिक विषयों को इन्द्रियद्वारा जो जीवों ने अन्तरबुद्धि में प्रवेश किया है, उनको वैराग्य और यत्नसे मुमुक्षु बाहर करे, यदि वे अन्तरबुद्धि में उत्पन्न होते तो हज़ारों उपायों से भी वे बाहर न होते, ये सब बाहर के विषय राग से अन्तरबुद्धि में प्रविष्ट हुये हैं, इसलिये वैराग्य करके उनको बाहर करे, और अर्धनिमीलन नेत्रों करके दोनों भ्रुवों के बीच में चक्षुको स्थित करे, अर्थात् कुम्भक करके प्राणायाम करे यानी प्राणों को रोके॥ २७॥

मूलम्।

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः २८

पदच्छेदः।

यतेन्द्रियमनोबुद्धिः, मुनिः, मोक्षपरायणः, विगतेच्छाभयक्रोधः, यः, सदा, मुक्तः, एव, सः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यतेन्द्रियमनोबुद्धिः	= जीता है इन्द्रिय मन और बुद्धि जिसने	विगतेच्छाभयक्रोधः	= दूरहोगया है इच्छाभयक्रोधजिसका ऐसा
		यः	=जो
		मुनिः	=मुनिहै
मोक्षपरायणः	= मोक्ष है परमगति जिसकी	सःएव	=सोही
		सदामुक्तः	=सदा मुक्तहै

भावार्थ।

जिस मुनिने विषयों को विष के तुल्य त्याग दिया है, और जिसके मन, बुद्धि और इन्द्रिय वशीभूत होगये हैं, और जो इच्छा आदिकों से रहित है, वह मुनि जीता हुआही मुक्त है ॥ २८॥

मूलम्।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति २९

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगोनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः।

भोक्तारम्, यज्ञतपसाम्, सर्वलोकमहेश्वरम्, सुहृदम्,

सर्वभूतानाम्, ज्ञात्वा, माम्, शान्तिम्, ऋच्छति ॥

अन्वयः शब्दार्थ
यज्ञतपसाम्=यज्ञ और तपका
भोक्तारम्=भोगनेवाला
सर्वलोकमहेश्वरम्=सम्पूर्णलोकों का महेश्वर
सर्वभूतानाम्=सर्वप्राणियों का

अन्वयः शब्दार्थ
सुहृदम्=मित्र
माम्=मुझको
ज्ञात्वा=जान करके
शान्तिम्=शान्तिको
+ मनुष्यः=मनुष्य
ऋच्छति=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

अर्जुन पूछता है कि, हे भगवन् ! इस प्रकार का योगवाला फिर क्या जानकर मुक्त होता है ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! सम्पूर्ण यज्ञों का कर्ता और भोक्ता जो ईश्वर है, और जो देवरूप करके पालक है, और जो ब्रह्मा आदिकों का भी नियन्ता है, और जो प्रत्युपकार की अपेक्षा न करके सब जीवों पर उपकार करता है, और जो सब प्राणियों के बुद्धिकी वृत्तिका साक्षी है, और जो सबको प्रकाश करता है, ऐसा मुझको जानकर योगी मोक्षकोही प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

पांचवां अध्याय समाप्त ॥

छठवां अध्याय ।

मूलम् ।

श्रीभगवानुवाच-

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः १

पदच्छेदः ।

अनाश्रितः, कर्मफलम्, कार्यम्, कर्म, करोति, यः, सः, संन्यासी, च, योगी, च, न, निरग्निः, न, च, अक्रियः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

यः=जो
कर्मफलम्=कर्मफल को
अनाश्रितः=नहीं आसरा करता हुआ
कार्यम्=करने योग्य
कर्म=कर्म को
करोति=करता है
सः=वह
संन्यासी=संन्यासी है
च=और
योगी=योगी है

अन्वयः **शब्दार्थ**

च=और
+ यः=जो
निरग्निः=अग्निहोत्र कर्म-रहित है
च=और
+ यः=जो
अक्रियः=तप दान कर्म-रहित है
+ सः=वह संन्यासी
न=नहीं है

भावार्थ।

पूर्व भगवान् ने सहित संन्यास के ज्ञानयोग को कहा, और चित्तकी शुद्धिके लिये निष्काम कर्मयोग को भी कहा, चित्त के शुद्ध होजानेपर भी यदि विक्षेप होजावे और उस करके मोक्षकी प्राप्ति न हो, तब उस मोक्षकी प्राप्ति के लिये और विक्षेपकी निवृत्ति के लिये भगवान् उपायान्तर को कहते हैं, और पञ्चम अध्याय के अन्त में जो सूत्ररूप करके भगवान् ने योग कहा है, उसी को अब छठे अध्याय में विस्तार करके कहते हैं॥ जो पुरुष फलकी कामना से रहित होकर श्रौत और स्मार्त कर्मोंको करता है, वह संन्यासयोग और ज्ञानयोग के फलको प्राप्त होताहै, और जो निरग्नि अक्रिय संन्यासाश्रम भोगी है, उसका भगवान् निषेध नहीं करते हैं, किंतु कामना का त्यागी जो कर्मी है, उसकी स्तुति करते हैं, जो फलकी अभिलाषात्यागी विष्णु के आराधन में तत्पर है, वही संन्यासी है, और वही फलका त्याग करनेवाला, और चित्तका निरोध करनेवाला है, और वही योगी और वही संन्यासी है, मूलमें जो निरग्नि पद है, वह संन्यासी का वाचक है, जो अग्निसाध्य कर्मों को नहीं करता है, वही संन्यासी है, अग्निके स्पर्श न करनेवाले का नाम संन्यासी नहीं है, और अक्रियपद योगी का वाचक है, जो बाह्य शरीर इन्द्रियादिकों की क्रिया से रहित हो, केवल अन्तर

चित्तका निरोध करता है, वही योगी है, दूसरा नहीं, और यद्यपि ऐसा कर्मी नहीं है, तथापि कामना के त्याग करने से उसकी स्तुति कीजाती है ॥ १ ॥

मूलम्।

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन २

पदच्छेदः।

यम्, संन्यासम्, इति, प्राहुः, योगम्, तम्, विद्धि, पाण्डव, न, हि, असंन्यस्तसंकल्पः, योगी, भवति, कः, चन ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
पाण्डव	हे अर्जुन !	असंन्यस्तसंकल्पः	नहीं त्याग कियाहै संकल्पको जिसने ऐसा
यम्	जिसको	कश्चन	कोई भी पुरुष
संन्यासम्	संन्यास	योगी	योगी
प्राहुः	कहते हैं	न भवति	नहीं होता है
तम्	उसीको		
योगम्इति	योग करके		
विद्धि	जान तू		
हि	क्योंकि		

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! कर्म और कर्मों के फल के त्याग को शास्त्र में संन्यास कहा है, और फल

की अभिलाषा और कर्तृत्व अभिमान को त्याग करके जो कर्म करता है, उसीको तुम योगी जानो, क्योंकि आत्मतत्त्व की प्राप्ति के साधन दोनों तुल्य हैं, और जिसने मनके संकल्प को नहीं त्यागा है, वह योगी कदापि नहीं होसक्ता है ॥ २ ॥

मूलम्।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ३

पदच्छेदः।

आरुरुक्षोः, मुनेः, योगम्, कर्म, कारणम्, उच्यते, योगारूढस्य, तस्य, एव, शमः, कारणम्, उच्यते ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

आरुरुक्षोः=ज्ञानयोग में आरूढ होने वाले
मुनेः=मुनिको
कर्मयोगम्=कर्म ही योग का
कारणम्=कारण
उच्यते=कहा जाता है
+ च=और

अन्वयः **शब्दार्थ**

तस्य=तिस
योगारूढस्य=ज्ञानयोग में आरूढहुए के
+चित्तशान्तये=चित्तकी शान्ति के लिये
शमः=शम
एव=ही
कारणम्=कारण
उच्यते=कहाजाता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! चित्तकी शुद्धि और वैराग्य की प्राप्ति के लिये मुमुक्षु को कर्म करना चाहिये, और जब कर्म करते करते चित्त शुद्ध होजावे, तब कर्मों को त्याग करना चाहिये ॥ ३ ॥

मूलम्।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ४

पदच्छेदः।

यदा, हि, न, इन्द्रियार्थेषु, न, कर्मसु, अनुषज्जते, सर्वसंकल्पसंन्यासी, योगारूढः, तदा, उच्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

हि=क्योंकि
यदा=जिस समय
इन्द्रियार्थेषु=शब्दादि विषयों म
+ च=और
कर्मसु=कमा मं
+ पुरुषः=पुरुष

अन्वयः शब्दार्थ

न अनुषज्जते=नहीं आसक्त होता है
तदा=उस समय
+ सः=वह पुरुष
सर्वसंकल्पसंन्यासी=सबसंकल्पों का त्याग करनेवाला
योगारूढः=योगारूढ
उच्यते=कहाजाता है

भावार्थ।

जिस काल में पुरुषकी बुद्धि कर्मों से और कर्मों के

फलसे विरक्त होजावे, और वह पुरुष आत्माको अकर्ता, अभोक्ता जान लेवे, और भोगों से चित्त हट जावे, और संपूर्ण कामना का त्याग होजावे, उस काल में पुरुष योगारूढ कहा जाता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ५

पदच्छेदः ।

उद्धरेत्, आत्मना, आत्मानम्, न, आत्मानम्, अवसादयेत्, आत्मा, एव, हि, आत्मनः, बन्धुः, आत्मा, एव, रिपुः, आत्मनः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

आत्मना=आत्मा करके
आत्मानम्=आत्मा को
उद्धरेत्=उद्धार करे
+ च=और
आत्मानम्=आत्मा को
न अवसादयेत्=नीचे के लोक में यानी अधोगति को न लेजावे
हि=क्योंकि

अन्वयः शब्दार्थ

आत्मा=आत्मा
एव=ही
आत्मनः=आत्मा का
बन्धुः=मित्र है
+ च=और
आत्मा=आत्मा
एव=ही
आत्मनः=आत्मा का
रिपुः=शत्रु है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे सौम्य ! संसाररूपी कीच में निमग्न आत्माको वैराग्यादिकों के द्वारा उद्धार करे, और विषयों में आसक्ति को त्याग करके समाधि में चित्त को आरूढ करे, और जीव ब्रह्मकी एकता के ज्ञान करके शान्ति को आश्रयण करे, और रागद्वेषादिकों करके व्याकुल करनेवाला जो घोर संसार है, उसमें आत्मा को पतन न करे, और जो कोई संसाररूपी बन्ध से अपने आत्मा को मोक्ष करता है, वही आत्मा का हितकारी है, और कोई दूसरा बन्धु उसको बन्ध से छुड़ाने में समर्थ नहीं है, अपना आत्मा ही अपना हितकारी है, और अपना आत्मा ही शत्रु है, इसलिये तुम आपही अपने आत्मा का उद्धार करो ॥ ५ ॥

मूलम्।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनैवात्मात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ६

पदच्छेदः।

बन्धुः, आत्मा, आत्मनः, तस्य, येन, एव, आत्मा, आत्मना, जितः, अनात्मनः, तु, शत्रुत्वे, वर्तेत, आत्मा, एव, शत्रुवत् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तस्यएव=उसी
आत्मनः=जीवात्माका
आत्मा=आत्मा
बन्धुः=मित्र है
येन=जिस
आत्मना=जीवात्माकरके
आत्मा=आत्मा
जितः=जीतागया है
तु=और

अन्वयः शब्दार्थ

अनात्मनः=नहीं जीता है आत्माको जिसने ऐसे पुरुष का
आत्मा=आत्मा
शत्रुवत्=वैरिवत्
शत्रुत्वे=शत्रुभाव में
एव=निश्चय करके
वर्तेत=बर्तता है

भावार्थ।

हे अर्जुन ! जिसने कार्यकारण संघात को यानी देह इन्द्रियादिकों को अपने वशमें करलिया है, और विषयों में जो आसक्ति है उसको विवेकबुद्धि करके दूर करदिया है, वही अपने आत्मा का बन्धु है, और जिसने विषयों में आसक्ति से कार्यकारणरूपी संघात को अपने वशमें नहीं करलिया है, वही अपने आत्मा का शत्रु है ॥ ६ ॥

मूलम्।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ७

पदच्छेदः।

जितात्मनः, प्रशान्तस्य, परमात्मा, समाहितः, शीतोष्णसुखदुःखेषु, तथा, मानापमानयोः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
जितात्मनः	=जीताहै आत्मा को जिसने
+ **च**	=और
प्रशान्तस्य	=भलीप्रकार शान्त हुआ है जो ऐसे पुरुष को
परमात्मा समाहितः	=परमात्मा समाहित है यानी आत्मा करकेबर्तताहै
+ **च**	=और
+ **सःएव**	=वही
शीतोष्णसुखदुःखेषु	=सर्दी गर्मी सुख और दुःख में
तथा	=तथा
मानापमानयोः	=मान और अपमान में
+ **समः**	=सम है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! शीतोष्णादिक जो कि विक्षेप के कारण हैं, उनसे जो दुःखित है पर समत्व बुद्धिका त्याग नहीं किया है, क्योंकि उसने आत्मतत्त्व का निराकरण किया है, और संपूर्ण इन्द्रियों को जिसने जीतलिया है, और राग द्वेष जिस

के नष्ट होगये हैं, और जिसका चित्त शान्त है, उसी की समाधि में आत्मा स्वप्रकाश होकर प्रकाशमान होता है, अन्य को नहीं, इसलिये मुनि को शान्तचित्त होना चाहिये ॥ ७ ॥

मूलम् ।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ८

पदच्छेदः ।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा, कूटस्थः, विजितेन्द्रियः, युक्तः, इति, उच्यते, योगी, समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा=	ज्ञान और विज्ञानकरके तृप्त है आत्माजिसका
+ च=	और
कूटस्थः=	कूटवत् स्थित है जो यानी निर्विकार है
विजितेन्द्रियः=	जीताहै इन्द्रियों को जिसने
+ च=	और
समलोष्टाश्मकाञ्चनः=	तुल्य है मिट्टी पत्थर और सोनाजिसको ऐसा
योगी=	योगी
युक्तः इति=	योगारूढयानी समाहित चित्तवाला
उच्यते=	कहा जाता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! शास्त्रोक्त आत्मतत्त्व का ज्ञान औपदेशिक गुरुसेही होता है, और असंदिग्ध तथा विपर्ययरहित ज्ञान अनुभवसेही होता है, और ज्ञान विज्ञान की प्राप्ति करके जिसका चित्त शान्ति को प्राप्त हुआ है, और भोगों के विद्यमान होने पर भी जिसका चित्त विकार को नहीं प्राप्त होता है, और संपूर्ण इन्द्रियों को जिसने भोगों से हटालिया है, और जिसकी बुद्धि ग्रहण, त्याग से रहित होगई है, और जिसने मृत्तिका, पाषाण, सुवर्ण को भी तुल्यही जाना है, वही योगारूढ कहा जाता है ॥ ८ ॥

मूलम्।

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ९

पदच्छेदः।

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु, साधुषु, अपि, च, पापेषु, समबुद्धिः, विशिष्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

सुहृत्=हित चाहने वालों में

मित्र=मित्रों में

अरि=शत्रुवों में

अन्वयः शब्दार्थ

उदासीन=उदासीनों में

मध्यस्थ=मध्यस्थों में

द्वेष्य=द्वेषकरनेवालों में

बन्धुषु=सम्बन्धियों में

साधुषु=साधुओं में यानी शास्त्रानुसार चलने वालों में
च=और
पापेषु=पापियों में
अपि=भी
समबुद्धिः=तुल्य है बुद्धि जिसकी ऐसा पुरुष
विशिष्यते=श्रेष्ठ है

भावार्थ।

हे अर्जुन ! प्रत्युपकार की इच्छा के विना जो उपकार करे उसका नाम सुहृद् है, और जो प्रत्युपकार की इच्छा से उपकार करे वा स्नेह करे वह मित्र है, जो पक्षपात से रहित होकर दोनों वादियों को देखता रहे किसीकी अच्छाई वा बुराई को न कहे उसका नाम उदासीन है, जो दोनों वादियों के हितकी कहे उसका नाम मध्यस्थ है, जो अपने को अप्रिय होवे वह द्वेष्य है यानी द्वेषका विषय है, और जो शास्त्रविहित कर्मों को करनेवाला है या जो पर के कार्य को सिद्ध करता है, उसका नाम साधु है, और जो शास्त्रकी मर्यादा को उल्लङ्घन करके बर्तता है, वह सर्वभक्षी है, उसका नाम पापी है, इन सबमें और दूसरों में जो समरूप करके आत्माको देखता है, वह श्रेष्ठ है यानी ज्ञानी है ॥ ९ ॥

मूलम्।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः १०

पदच्छेदः ।

योगी, युञ्जीत, सततम्, आत्मानम्, रहसि, स्थितः, एकाकी, यतचित्तात्मा, निराशीः, अपरिग्रहः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यतचित्तात्मा=	रोका है चित्त और शरीर को जिसने	योगी=	योगी
निराशीः=	छोड़दिया है आशा को जिसने	एकाकी=	अकेला
+ च=	और	रहसि=	एकान्त में
अपरिग्रहः=	त्यागदिया है परिवार को जिसने ऐसा	स्थितः=	बैठाहुआ
		सततम्=	निरन्तर
		आत्मानम्=	अपने आत्मा को यानी चित्त को
		युञ्जीत=	समाधि में स्थिर करे

भावार्थ ।

हे अर्जुन ! प्रथम आत्मतत्त्व को वेदान्तवाक्यों से श्रवण करे, फिर उत्तम युक्तियों से मनन करे, पश्चात् निदिध्यासन करे, फिर विक्षेपकारक संपूर्ण ममता को त्याग करके एकान्तदेश में चित्तको एकाग्र करे, जिसने अपने मन और इन्द्रियों को अपने वशमें कर-लिया है, वह अत्यन्त निश्चल होकर परम वैराग्य की दृढ़ता से इच्छा और तृष्णा से रहित होकर स्थित है १० ॥

मूलम् ।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ११

पदच्छेदः ।

शुचौ, देशे, प्रतिष्ठाप्य, स्थिरम्, आसनम्, आत्मनः, न, अत्युच्छ्रितम्, न, अतिनीचम्, चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
नात्युच्छ्रितम्	न बहुत ऊंचा है और
न अतिनीचम्	न बहुत नीचा है
चैलाजिनकुशोत्तरम्	वस्त्र मृगचर्म और कुशा है ऊपर जिसके ऐसे
आत्मनः	अपने
स्थिरम्	स्थिर
आसनम्	आसन को
शुचौ	पवित्र
देशे	देश में
प्रतिष्ठाप्य	स्थापित करके

(इस श्लोकका सम्बन्ध अगले श्लोकसे है)

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! वह पूर्वोक्त योगी पवित्र देश में अपने आसन को बिछावे, वह आसन न अतिऊंचा हो, और न अतिनीचा हो, किन्तु सम हो, उस आसन के नीचे कुशोंको बिछावे, उसके ऊपर

मृगचर्म को बिछावे, फिर उस पर कोमल वस्त्र को बिछावे ॥ ११ ॥

मूलम् ।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये १२

पदच्छेदः ।

तत्र, एकाग्रम्, मनः, कृत्वा, यतचित्तेन्द्रियकियः, उपविश्य, आसने, युञ्ज्यात्, योगम्, आत्मविशुद्धये ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

+ च=और
तत्र=उस
आसने=आसन में
उपविश्य=बैठ करके
+ च=और
मनः=मनको
एकाग्रम्=एकाग्र
कृत्वा=करके

अन्वयः **शब्दार्थ**

यतचित्तेन्द्रियक्रियः=रोकाहै चित्त और इन्द्रियों की क्रियाको जिसने ऐसा पुरुष
आत्मविशुद्धये=अन्तःकरणकी शुद्धि के लिये
योगम्=योगको
युञ्ज्यात्=अभ्यास करे

भावार्थ ।

हे अर्जुन ! उस आसन पर बैठकर योगी मन को सर्व ठौर से हटाकर संपूर्ण इन्द्रियों को और चित्तको

रोके, और पश्चात् समाधि का अभ्यास ब्रह्म साक्षात्कार की सिद्धिके लिये करे ॥ १२ ॥

मूलम्।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् १३

पदच्छेदः।

समम्, कायशिरोग्रीवम्, धारयन्, अचलम्, स्थिरः, संप्रेक्ष्य, नासिकाग्रम्, स्वम्, दिशः, च, अनवलोकयन् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
कायशिरोग्रीवम्	शरीर शिर और ग्रीवा को	स्वम्	अपने
समम्	सीधा	नासिकाग्रम्	नासिका के अग्रभागको
अचलम्	अचल यानी निष्कम्प	संप्रेक्ष्य	देखकर
धारयन्	धारता हुआ	च	और
स्थिरः	दृढ़ होकर	दिशः	दिशों को
		अनवलोकयन्	नहीं देखता हुआ

(इस श्लोकका सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ।

हे अर्जुन ! पूर्व कहे प्रकार आसन पर बैठकर शिर और ग्रीवा को सम करे यानी सीधा करे फिर शरीर को निश्चल करे यानी मूलाधारसे लेकर मूर्धपर्यन्त शरीर

को स्थिर करे, और निष्कम्प होता हुआ लय विक्षेप से रहित होकर नासिका के अग्रभाग में दृष्टि को स्थिर करे ॥ १३ ॥

मूलम् ।

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः १४

पदच्छेदः ।

प्रशान्तात्मा, विगतभीः, ब्रह्मचारिव्रते, स्थितः, मनः, संयम्य, मच्चित्तः, युक्तः, आसीत, मत्परः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
प्रशान्तात्मा=	शान्तहुआ है आत्मा जिसका
विगतभीः=	दूरहोगयाहै भय जिसका
ब्रह्मचारिव्रते=	ब्रह्मचर्य व्रतमें
स्थितः=	स्थित हुआ है जो
मच्चित्तः=	मेरे में है चित्त जिसका और
मत्परः=	मेरे परायण है जो ऐसा पुरुष
युक्तः=	समाहित होता हुआ
मनः=	मनको
संयम्य=	रोक करके
आसीत=	बैठे

भावार्थ ।

हे अर्जुन ! रागादि दोषों से और अध्यास से रहित

जो शान्तात्मा है, वह संशयों से रहित और भय से शून्य होता है, और ब्रह्मचर्य के विना स्त्रीआदिकों के देखने से चित्त दूषित होता है, इसलिये पुरुष ब्रह्मचर्य को आश्रयण करे, क्योंकि ब्रह्मचर्य करने से चित्त स्थिर होता है, और नारायण की भक्ति विना अद्वैत ब्रह्ममें मन निश्चल होनेको असमर्थ है, इस वास्ते प्रथम भक्ति करनी उचित है, जब मन निर्विषय होगा, तब वह आपसे आप स्थिर हो जायगा ॥ १४ ॥

मूलम् ।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति १५

पदच्छेदः ।

युञ्जन, एवम्, सदा, आत्मानम्, योगी, नियतमानसः, शान्तिम्, निर्वाणपरमाम्, मत्संस्थाम्, अधिगच्छति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
नियतमानसः	= समाहित चित्तवाला	निर्वाणपरमाम्	= उत्तम सुख वाली है जो
योगी	= योगी	+ च	= और
एवम्	= इसप्रकार	मत्संस्थाम्	= मेरे में स्थित है जो ऐसी
सदा	= निरन्तर	शान्तिम्	= शान्ति को
आत्मानम्	= अन्तःकरण को	अधिगच्छति	= प्राप्त होता है
युञ्जन्	= समाधानकरता हुआ		

भावार्थ।

हे सौम्य ! पूर्वोक्त रीति से जो मुनि योगाभ्यासपरायण है, वह वैराग्य और अभ्यास करके मन को समाहित करे, अभ्यास की दृढ़ता करके जिसने मन का निरोध करलिया है, उसके अन्तःकरण में आत्मज्ञान का प्रकाश होजाता है, और सहित कार्य के उस का अज्ञान नाश होजाता है, तत्पश्चात् वह मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

मूलम्।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन १६

पदच्छेदः।

न, अत्यश्नतः, तु, योगः, अस्ति, न, च, एकान्तम्, अनश्नतः, न, च, अतिस्वप्नशीलस्य, जाग्रतः, न, एव, च, अर्जुन ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

तु=और
अर्जुन=हे अर्जुन !
न=न
अत्यश्नतः=बहुत भोजन करनेवाले को
च=और

अन्वयः **शब्दार्थ**

न=न
एकान्तम्=अति
अनश्नतः=भूखे को
योगः=योग
अस्ति=प्राप्त होता है
च=और

न=न
अतिस्वप्नशीलस्य=बहुत सोनेवाले को
च=और
न=न

जाग्रतः=बहुत जागनेवाले को
एव=भी
+ योगः=योग
+ अस्ति=प्राप्त होता है

भावार्थ।

योगाभ्यासी के लिये आहारादिकों के संयम को भगवान् विधान करते हैं। हे अर्जुन! जो अन्न कोमलहै और शीघ्र पचनेवालाहै और देहका आधारमात्रहै, उसी अन्नको योगी भक्षण करे, जो स्वादिष्ट जानकर अन्नको अतिभक्षण करताहै, उसके अजीर्ण रोग होताहै, उसको योगाभ्यास में अधिकार नहीं है, और जो अतिअल्प आहार करता है, और जिसको क्षुधा हरवक्त बनी रहती है, उसको भी योग में अधिकार नहीं है, और जो निराहार रहता है, उसको भी योग में अधिकार नहीं है, क्योंकि उसका चित्त अन्न में ही लगा रहता है, जोकि योगाभ्यासी के लिये योग में आहार का नियम कहा है, उसका उल्लङ्घन कदापि न करे ॥ पूरयेदशनेनार्धं तृतीयमुदकेन तु। वायोः सञ्चारणार्थं तु चतुर्थमवशेषयेत् ॥ १ ॥ अर्ध उदर को अन्न करके पूर्ण करे, तीसरे भाग को जल करके पूर्ण करे, और वायु के सञ्चरणके लिये चतुर्थ भागको खाली छोड़ देवे ॥ १ ॥ और अतिसोनेवाले को तथा अति

जागनेवाले को भी योगाभ्यास में अधिकार नहीं है, क्योंकि ये दोनों आलसी और रोगी होते हैं ॥ १६ ॥

मूलम्।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा १७

पदच्छेदः।

युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य, कर्मसु, युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगः, भवति, दुःखहा ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

कर्मसु=कर्मों में
युक्तचेष्टस्य=युक्त है चेष्टा जिसकी
+ च=और
युक्ताहारविहारस्य=युक्तयानीतुला हुआ है आहार और विहार जिसका
+ च=और

अन्वयः **शब्दार्थ**

युक्तस्वप्नावबोधस्य=समयपर है सोना और जागना जिसका ऐसे का
योगः=योग
दुःखहा=दुःखका हरने वाला
भवति=होता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे सव्यसाचिन् ! युक्ति सहित जिसका आहार यानी भोजन है, और युक्ति सहितही जिसका विहार यानी चलना है, और युक्ति

सहितही जिसका जागना और सोना है, उसके दुःखों को योग नाश करता है और योगशास्त्र में कहा भी है ॥ अत्राहारार्थं कर्म कुर्यादनिन्द्यं कुर्यादाहारं प्राणसंधारणार्थम् । प्राणाः संधार्यास्तत्त्वजिज्ञासनार्थं तत्त्वं जिज्ञास्यं येन भूयो न दुःखम् ॥ १ ॥ अन्न की शुद्धि के लिये अनिन्दित कर्मों को करे, और आहार को प्राणों के धारण के लिये करे, और प्राणों का धारण यानी निरोध आत्मतत्त्वकी जिज्ञासाके लिये करे, ताकि फिर दुःखको प्राप्त न होवे ॥ १ ॥ रजन्या मध्यमौ यामौ कुर्यान्निद्रां न चान्यदा । विना प्रयोजनं चेष्टां न कुर्याद्धस्तपादयोः ॥ २ ॥ रात्रि के मध्य के दो पहर निद्रा को करे, पहिले और पिछले पहरमें न सोवे और विना प्रयोजनके हस्तपादकी चेष्टाको भी न करे ॥ २ ॥ मिता निद्रा मिता वाणी यस्य भागवतस्य च । योगस्तस्य सकार्यस्याज्ञानस्य स्याद्विनाशकृत् ॥ ३ ॥ जिसकी परिमित निद्रा है और परिमित जिसकी वाणी है सहित कार्य के उसके अज्ञानका योग नाशक होता है ॥ १७ ॥

मूलम् ।

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा १८

पदच्छेदः ।

यदा, विनियतम, चित्तम्, आत्मनि, एव, अवतिष्ठते,

निःस्पृहः, सर्वकामेभ्यः, युक्तः, इति, उच्यते, तदा ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यदा=जिसकालमें
विनियतम्=भली प्रकार निरोध हुआ
चित्तम्=मन
आत्मनिएव=आत्मामें ही
अवतिष्ठते=ठहरता है
+च=और
सर्वकामेभ्यः=सम्पूर्ण कामों से

अन्वयः शब्दार्थ

निःस्पृहः=इच्छारहित होता है
तदा=उस समय
+सः=वह पुरुष
युक्तः=युक्त योगी
इति=करके
उच्यते=कहा जाता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जिस कालमें योगी का चित्त शुद्ध होकर आत्मामें स्थिर होजाता है, और संपूर्ण इच्छासे रहित होकर भोगों में तृष्णा से रहित होजाता है, उस कालमें वह योगी युक्त कहा जाता है ॥ १८ ॥

मूलम्।

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः १९

पदच्छेदः।

यथा, दीपः, निवातस्थः, न, इङ्गते, सा, उपमा, स्मृता, योगिनः, यतचित्तस्य, युञ्जतः, योगम, आत्मनः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

यथा=जैसे

दीपः=दीपक

निवातस्थः=वायुरहित स्थित हुआ

न=नहीं

इङ्गते=हिलता है

सा=वह

उपमा=उपमा

अन्वयः **शब्दार्थ**

योगम्=योग को

युञ्जतः=अभ्यासकरते हुये

यतचित्तस्य=चित्तके रोकने वाले

योगिनः=योगी के

आत्मनः=चित्तकी

स्मृता=समझी गई है

भावार्थ ।

जैसे निर्वात देशमें अर्थात् जिस स्थानमें वायु नहीं प्रतीत होती है, उस स्थानमें दीपककी शिखा निश्चल स्थिर रहती है, हिलती जुलती नहीं है, वैसे योगमें जुड़ेहुये योगी का चित्त आत्मा में क्रिया से रहित होकर स्थिर रहता है ॥ १९ ॥

मूलम् ।

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
तत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति २०

पदच्छेदः ।

यत्र, उपरसते, चित्तम्, निरुद्धम्, योगसेवया, तत्र, च, एव, आत्मना, आत्मानम्, पश्यन्, आत्मनि, तुष्यति ॥

अन्वयः शब्दार्थ
च=और
यत्र=जिसकाल में
योगसेवया=योगके अनुष्ठान करके
निरुद्धम्=रुका हुआ
चित्तम्=मन
उपरमते=शान्त होता है
तत्र=उस काल में

अन्वयः शब्दार्थ
आत्मना=आत्मा करके
आत्मानम्=आत्मा को
पश्यन्=देखता हुआ
+ योगी=योगी
आत्मनि=आत्मा में
एव=ही
तुष्यति=संतुष्ट होता है

भावार्थ ।

भगवान् सामान्यरूप से योग का निरूपण करके अब विशेषरूप से समाधि का निरूपण करते हैं, और कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जिस कालमें योगाभ्यास की दृढ़तासे आत्मामें योगीका चित्त निरुद्ध होजाता है, और जिस कालमें वेदान्तवाक्यजन्य वृत्ति करके योगी समाधि में आत्माको देखताहै, उसीकाल अपने आत्मानन्द में ही तोषको प्राप्त होता है ॥ २० ॥

मूलम् ।

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः २१

पदच्छेदः ।

सुखम्, आत्यन्तिकम्, यत्, तत्, बुद्धिग्राह्यम्,

अतीन्द्रियम्, वेत्ति, यत्र, न, च, एव, अयम्, स्थितः, चलति, तत्त्वतः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

यत्=जो
सुखम्=सुख
आत्यन्तिकम्=अत्यन्त है
च=और
अतीन्द्रियम्=इन्द्रियों का विषय नहीं है
+च=और
बुद्धिग्राह्यम्=बुद्धिकरके ग्रहणके योग्य है
तत्=उस
+ सुखम्=सुखको

अन्वयः **शब्दार्थ**

यत्र=जब
अयम्=यह पुरुष
स्थितः=आत्मा में स्थित हुआ
तत्त्वतः=आत्मतत्त्व से
न=नहीं
चलति=चलायमान होता है
+ तदा=तब
एव=ही
वेत्ति=जानता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जो आत्यन्तिक सुख है यानी नित्य सुख है, और विषय इन्द्रिय के सम्बन्ध से जो उत्पन्न नहीं होता है, किन्तु केवल बुद्धि करके ही ग्राह्य है अर्थात् समाधि अवस्थामें ही जो सुख योगीको मिलता है, उस सुखमें स्थिर होकर योगी फिर चलायमान नहीं होता है ॥ २१ ॥

मूलम् ।

तं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते २२

पदच्छेदः ।

तम्, लब्ध्वा, च, अपरम्, लाभम्, मन्यते, न, अधिकम्, ततः, यस्मिन्, स्थितः, न, दुःखेन, गुरुणा, अपि, विचाल्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यस्मिन्=जिस काल में
+ पुरुषः=पुरुष
स्थितः=आत्मामें स्थित हुआ
गुरुणा=भारी
दुःखेन=दुःखसे
अपि=भी
न विचाल्यते=नहीं चलायमान होता है
च=और

अन्वयः शब्दार्थ

तम्=उस
लाभम्=लाभको यानी आत्मा में प्राप्त होने के लाभको
लब्ध्वा=पाकरके
अपरम्=दूसरे लाभको
ततः=उससे
अधिकम्=विशेष
न मन्यते=नहीं मानता है

भावार्थ ।

और जिस आत्मसुख को प्राप्त होकर योगी उससे और अधिक सुखके लाभको नहीं मानता है, और

जिस आत्मा में स्थिर होकर वह भारी दुःख करके भी चलायमान नहीं होता है, वही नित्य सुख है ॥२२॥

मूलम्।

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा २३

पदच्छेदः।

तम्, विद्यात्, दुःखसंयोगवियोगम्, योगसंज्ञितम्, सः, निश्चयेन, योक्तव्यः, योगः, अनिर्विण्णचेतसा ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तम्=उस
योगसंज्ञितम्=योगसंज्ञाको
दुःखसंयोगवियोगम्=दुःख के संयोग का नाशक
विद्यात्=जानै

अन्वयः शब्दार्थ

सः=वह
योगः=योग
निश्चयेन=निश्चय करके
अनिर्विण्णचेतसा=विरक्तचित्तवाले पुरुषों करके
योक्तव्यः=करनेयोग्य है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! चित्त का जो संयम यानी निरोध है, उसको ही तुम सम्पूर्ण दुःखों के संयोग का विघातक यानी नाशक जानो, और शास्त्र तथा आचार्य की वाणीको सत्य जानकर और

खेद से रहित होकर मन को योग में जोड़ो यानी योगका अभ्यास करो ॥ २३ ॥

मूलम्।

संकल्पप्रभवान् कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः २४

पदच्छेदः।

संकल्पप्रभवान्, कामान्, त्यक्त्वा, सर्वान्, अशेषतः, मनसा, एव, इन्द्रियग्रामम्, विनियम्य, समन्ततः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

सर्वान्=सब
संकल्पप्रभवान्=संकल्पजन्य
कामान्=कामनाओंको
अशेषतः=समूल
त्यक्त्वा=त्याग करके

अन्वयः शब्दार्थ

+ च=और
मनसाएव=मन करके ही
इन्द्रियग्रामम्=इन्द्रियों के समूहको
समन्ततः=सब तरफ़से
विनियम्य=रोक करके

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोकसे है)

भावार्थ।

यह संसार संपूर्ण आपदोंका मन्दिर है, ऐसा जानकर बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि विषवत् विषय-भोगों से उपराम होकर मनको श्रीकृष्णके पादारविन्द में प्रीतिवाला करे, पश्चात् शान्ति के दायक सद्गुरुको

प्राप्त होकर और उससे परब्रह्मके उपदेशको लेकर चित्तके निरोधरूपी योगका अभ्यास करे, यावत्पर्यन्त ब्रह्मानन्द में स्थित प्रतिष्ठाको मन न प्राप्त होवे, तावत्पर्यन्त आदरपूर्वक योगका अभ्यास करे, जिस काल में योगसिद्ध होजावेगा, उसी कालमें मुनि कृतकृत्यता को प्राप्त होगा, इस तात्पर्यको लेकर भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! यह वस्तु मुझको प्राप्त है, यह वस्तु मुझको प्राप्त होगी, इस प्रकारके संकल्पों से जन्य जो दृष्टभोगों में कामना है, उसका त्याग करके और संपूर्ण वासनाओं का त्याग करके और विषयों से इन्द्रियसमूहको हटाकर विवेकसे कामनाका नाश करताहुआ योग करके बुद्धिको युक्त करे ॥ २४ ॥

मूलम् ।

शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनःकृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् २५

पदच्छेदः ।

शनैः, शनैः, उपरमेत्, बुद्ध्या, धृतिगृहीतया, आत्मसंस्थम्, मनः, कृत्वा, न, किंचित्, अपि, चिन्तयेत् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
शनैःशनैः=धीरेधीरे
धृतिगृहीतया=धैर्य से युक्त
बुद्ध्या=बुद्धिकरके

अन्वयः शब्दार्थ
उपरमेत्=शान्तिको प्राप्तहोवे
+ च=और

मनः=मनको
आत्मसंस्थम्=आत्मा में स्थित
कृत्वा=करके
किंचित्=कुछभी
न चिन्तयेत्=न सोचे

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! गुरु करके उपदेश किया जो भोगों से उपरामता का मार्ग है, उस मार्ग करके शनैःशनैः भोगोंसे उपरामताको प्राप्त होवे, और धैर्यसे युक्त जो बुद्धि है उस करके मन को आत्मा में स्थिर करे, और आत्माकोही योगी सर्वरूप करके चिन्तन करे, आत्मा से अन्य अनात्मा का चिन्तन कदापि न करे, यही योगकी परमअवधि है ॥ २५ ॥

मूलम्।

यतो यतो निश्चलति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् २६

पदच्छेदः।

यतः, यतः, निश्चलति, मनः, चञ्चलम्, अस्थिरम्, ततः, ततः, नियम्य, एतत्, आत्मनि, एव, वशम्, नयेत् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
यतः यतः=जिसजिस शब्दादिविषयकरके

अन्वयः शब्दार्थ
चञ्चलम्=चञ्चल
+च=और
अस्थिरम्=अस्थिर

मनः=मन
निश्चलति=बाहरनिकलताहै
ततःततः=वहां वहां से
एतत्=इसको यानी मन को
नियम्य=खींचकर
आत्मनि एव=आत्माही में
वशम्=वश
नयेत्=करे यानी लगावे

भावार्थ।

यदि योगी का मन निरोधकाल में विक्षेपकारक बाह्यविषयों की ओर चलाजावे, तो उसी काल उनकी तरफ़से उसको हटाकर अन्तरात्मामें ही लगावे, क्योंकि मनका जो बाह्यविषयों की तरफ़ जाना है, यही संपूर्ण दुःखोंकी अवधि है, और जो मनका अन्तरात्माकी तरफ़ लगना है, यही संपूर्ण सुखोंकी अवधि है, इसलिये विचार करके विद्वान् योगी मन को निरन्तर आत्माकी तरफ़ लगावे ॥ २६ ॥

मूलम्।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् २७

पदच्छेदः।

प्रशान्तमनसम्, हि, एनम्, योगिनम्, सुखम्, उत्तमम्, उपैति, शान्तरजसम्, ब्रह्मभूतम्, अकल्मषम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
प्रशान्तमनसम्=शान्त हुआ है मन जिसका
शान्तरजसम्=शान्त हुई है रजोगुण वृत्ति जिसकी
ब्रह्मभूतम्=ब्रह्मरूप है जो
+ च=और

अन्वयः शब्दार्थ
अकल्मषम्=पापरहित है जो ऐसे
एनम्=इस
योगिनम्=योगी को
उत्तमम्=उत्तम
सुखम्=सुख
हि=निश्चय करके
उपैति=प्राप्त होता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! योगाभ्यास के बल से योगी का चित्त आत्मा में शान्ति को प्राप्त होता है, और जिस योगी का मन रज तम विक्षेपक मलों से और धर्माधर्मादिक कल्मषों से शान्त वृत्तिवाला होजाता है, और सम्यक् आत्मतत्त्व को वह जान लेता है, और दृश्य प्रपञ्च जिसकी दृष्टिका गोचर नहीं रहता है, किन्तु आत्मतत्त्वही सर्वत्र जिसकी दृष्टिका गोचर होता है, उसी योगी को उत्तम सुखकी प्राप्ति होती है, अन्य को नहीं होती है ॥ २७ ॥

मूलम्।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते २८

पदच्छेदः।

युञ्जन्, एवम्, सदा, आत्मानम्, योगी, विगतकल्मषः, सुखेन, ब्रह्मसंस्पर्शम्, अत्यन्तम्, सुखम्, अश्नुते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
विगतकल्मषः	छूटगया है पाप जिसका ऐसा
योगी	योगी
एवम्	इसप्रकार से
सदा	निरन्तर
सुखेन	सुखसे
आत्मानम्	चित्तको
युञ्जन्	वश करता हुआ
ब्रह्मसंस्पर्शम्	ब्रह्मकास्पर्श है जिसमें ऐसे
अत्यन्तम्	अत्यन्त
सुखम्	सुखको
अश्नुते	भोगता है यानी प्राप्त होता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जिस योगी का मन नित्यही योग में युक्त है, और संसार के हेतु जो धर्मादिक हैं, उनसे जिसका मन रहित है, और अभ्यास करके जिसका मन अति निर्मल होगया है, वह योगी अपरिच्छिन्न ब्रह्म सुखको प्राप्त होता है अर्थात् ब्रह्मरूप होकर निश्चल स्थिर होजाताहै ॥२८॥

मूलम्।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः २९

पदच्छेदः।

सर्वभूतस्थम्, आत्मानम्, सर्वभूतानि, च, आत्मनि, ईक्षते, योगयुक्तात्मा, सर्वत्र, समदर्शनः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**
योगयुक्तात्मा=समाहित चित्तवाला
समदर्शनः=समदर्शी पुरुष
सर्वभूतस्थम्=सब भूतों में स्थित ऐसा
आत्मानम्=अपने को

अन्वयः **शब्दार्थ**
च=और
सर्वभूतानि=सब प्राणियों को
आत्मनि=अपने में स्थित
सर्वत्र=सब जगह
ईक्षते=देखता है

भावार्थ।

योग की सिद्धिका फल जो सर्वत्र ब्रह्मदृष्टि कही है, उसीको दिखाते हैं, ब्रह्मासे ले स्थावरपर्यन्त संपूर्ण भूतों को जो पुरुष चिद्घन आत्मरूप करके देखता है, और मिथ्या जड़ दुःखरूप शरीरादिकों से विवेचन करके जो साक्षी प्रत्यगात्माकोही देखता है, और साक्षी में संपूर्ण भूतों को माया करके जो कल्पित देखता है, अर्थात् सर्वत्रही जिसकी समदृष्टि है, ऐसा जो योगी है, वह ब्रह्मकोही देखता, अन्य को नहीं देखता है ॥ २९ ॥

मूलम्।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ३०

पदच्छेदः।

यः, माम्, पश्यति, सर्वत्र, सर्वम्, च, मयि, पश्यति, तस्य, अहम्, न, प्रणश्यामि, सः, च, मे, न, प्रणश्यति ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

यः=जो
माम्=मुझको
सर्वत्र=सब जगह
पश्यति=देखता है
च=और
मयि=मुझ में
सर्वम्=सबको
पश्यति=देखता है
तस्य=उसका
अहम्=मैं

अन्वयः **शब्दार्थ**

न प्रणश्यामि=अविषय नहीं होताहूं यानी वह मुझको देखताहै
च=और
सः=वह
मे=मेरा
न प्रणश्यति=अविषय नहीं होता है यानी मैं उसको देखताहूं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जो योगी संपूर्ण जगत् का कारण मुझ ईश्वर कोही सबमें व्यापक देखताहै, उस योगी के परोक्षज्ञान का विषय मैं नहीं होताहूं, किन्तु उसके अपरोक्षज्ञान का विषय मैं होता हूं, और वह मेरे परोक्षज्ञान का विषय नहीं होता है, किन्तु सदैव मेरे अपरोक्षज्ञान का विषय होताहै ॥३०॥

मूलम्।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ३१

पदच्छेदः।

सर्वभूतस्थितम्, यः, माम्, भजति, एकत्वम्, आस्थितः, सर्वथा, वर्तमानः, अपि, सः, योगी, मयि, वर्तते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यः=जो
एकत्वम्=समता यानी ज्ञानको
आस्थितः=आश्रय करता हुआ
माम्=मुझको
सर्वभूतस्थितम्=सर्व भूतों में स्थित हुआ
भजति=भजता है

अन्वयः शब्दार्थ

सः=वह
योगी=योगी
वर्तमानः=व्यवहार करता हुआ
अपि=भी
सर्वथा=सबप्रकार से
मयि=मुझमें
वर्तते=स्थित है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! ब्रह्मासे आदि लेकर जितने प्राणीमात्र हैं, सब में जो एक ही भेद त्याग करके निर्विशेष चिदानन्दको ही स्थित देखता है, वह “अहं ब्रह्मास्मि” इस वाक्यजन्य ज्ञानरूपी

चक्षु करके अद्वैत आत्माको ही साक्षात्कार करता है, वह शीघ्रही अविद्या और अविद्या के कार्य को त्याग कर कृतकृत्य होकर मुक्त में ही बर्तता है यानी जीवन्मुक्त होजाता है ॥ ३१ ॥

मूलम् ।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ३२

पदच्छेदः ।

आत्मौपम्येन, सर्वत्र, समम्, पश्यति, यः, अर्जुन, सुखम्, वा, यदि, वा, दुःखम्, सः, योगी, परमः, मतः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अर्जुन	हे अर्जुन !	दुःखम्	दुःखको
यः	जो पुरुष	समम्	बराबर
सर्वत्र	सब जगह	पश्यति	देखता है
आत्मौपम्येन	अपने अनुसार	सः	वह
सुखम्	सुखको	योगी	योगी
यदिवा वा	अथवा	परमः	श्रेष्ठ
		मतः	मानागया है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! चार प्रकार के प्राणियों में सुख और दुःख को जो अपने तुल्य देखता

है, जैसे मुझको सुख अनुकूल है और इष्टका साधन है, वैसेही सब प्राणियों को सुख अनुकूल है और इष्टका साधन है, और जैसे मुझको दुःख प्रतिकूल है और मेरे अनिष्टका साधन है, वैसेही सब प्राणियों को भी दुःख प्रतिकूल है और उनके भी अनिष्ट का साधन है, ऐसा जानकर वह किसी को भी दुःख नहीं देता है, किन्तु सबको सुखही देता है ऐसा जो योगी है, वह मुझको प्रिय है ॥ ३२ ॥

मूलम् ।

अर्जुन उवाच-

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहंनपश्यामिचञ्चलत्वात्स्थितिंस्थिराम् ३३

पदच्छेदः ।

यः, अयम्, योगः, त्वया, प्रोक्तः, साम्येन, मधुसूदन, एतस्य, अहम्, न, पश्यामि, चञ्चलत्वात्, स्थितिम्, स्थिराम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

मधुसूदन=हे कृष्ण !
यः=जो
अयम्=यह
योगः=योग
त्वया=तुझ करके

अन्वयः शब्दार्थ

साम्येन=समदृष्टिपूर्वक
प्रोक्तः=कहागया है
एतस्य=उंसके
स्थिराम्=निश्चल
स्थितिम्=स्थिति को

चञ्चलत्वात् = मनके चञ्चल होने से

अहम्=मैं
नपश्यामि=नहीं देखताहूं

भावार्थ।

भगवान् ने पूर्व जो योग कहा है, उसको अतिकठिन जानकर अर्जुन प्रश्न करता है कि, हे भगवन्! जो आपने सर्वत्र समतारूपी योगको कहा है, इस योग की दीर्घकालतक स्थितिको मैं नहीं देखताहूं, क्योंकि मन बड़ा चञ्चल है, इसका चिरकालतक स्थिर होजाना अतिकठिन है ॥ ३३ ॥

मूलम्।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ३४

पदच्छेदः।

चञ्चलम्, हि, मनः, कृष्ण, प्रमाथि, बलवत्, दृढम्, तस्य, अहम्, निग्रहम्, मन्ये, वायोः, इव, सुदुष्करम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

हि=क्योंकि
कृष्ण=हे कृष्ण!
मनः=मन
चञ्चलम्=चपल है
प्रमाथि=इन्द्रिय और शरीर का मथन करनेवाला है

अन्वयः शब्दार्थ

बलवत्=बलवान् है
दृढम्=विषयों की वासना में दृढ है
तस्य=उसके
निग्रहम्=निरोधको
वायोः=वायु के निरोधके

इव=समान
सुदुष्करम्=अत्यन्त कठिन
अहम्=मैं
मन्ये=मानताहूं

भावार्थ ।

हे कृष्ण ! मन बड़ा चञ्चलहै, इन्द्रिय और शरीर को मथन करनेवालाहै, किसी उपाय करकेभी इसका निरोध नहीं होसक्ता है, क्योंकि यह मन बड़ा दृढ़है, किसीसे इसका भेदनभी नहीं होसक्ता है, इसका निरोध करना वायुसेभी अतिकठिन मैं मानताहूं ॥ ३४ ॥

मूलम् ।

श्रीभगवानुवाच–

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ३५

पदच्छेदः ।

असंशयम्, महाबाहो, मनः, दुर्निग्रहम्, चलम्, अभ्यासेन, तु, कौन्तेय, वैराग्येण, च, गृह्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

महाबाहो=हे अर्जुन !
मनः=मन
असंशयम्=निस्संदेह
दुर्निग्रहम्=दुःख करके वश करनेयोग्य है

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
चलम्=चञ्चल है
तु=परन्तु
कौन्तेय=हे कुन्ती के पुत्र !

अभ्यासेन=अभ्यास करके
+ च=और
वैराग्येण=वैराग्य करके
गृह्यते=रोका जाता है

भावार्थ।

अर्जुनके प्रश्नको सुनकर भगवान् उत्तर देते हैं कि, हे अर्जुन ! सत्य है, यह मन बड़ा चञ्चल और दुःखदायी है, परन्तु तुम बड़े बलवान् हो, तुम उसके रोकने में समर्थ होसक्ते हो, अभ्यास व शुद्ध वैराग्य से मनका निग्रह होसक्ता है, अभ्यास नाम पुनः पुनः बाह्यविषयों की तरफ़से मनको हटाकर अन्तर आत्मा की तरफ़ लगानेका है, और वैराग्य नाम पुनः पुनः दृष्टादृष्टविषयों में दोषदर्शनका है, इन दोनों करकेही मन का निग्रह होसक्ता है, अन्य उपाय करके नहीं होसक्ता है ॥ ३५ ॥

मूलम्।

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप्य इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ३६

पदच्छेदः।

असंयतात्मना, योगः, दुष्प्राप्यः, इति, मे, मतिः, वश्यात्मना, तु, यतता, शक्यः, अवाप्तुम्, उपायतः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
असंयतात्मना = नहीं जीता है मनको जिसने ऐसे पुरुष करके

अन्वयः शब्दार्थ
योगः=योग
दुष्प्राप्यः=प्राप्त होने को कठिन है

तु=परन्तु
वश्यात्मना=वश किया है मनको जिसने ऐसे
यतता=यत्नकरनेवाले पुरुष करके
उपायतः=उपाय से
अवाप्तुम्=प्राप्त होने को
शक्यः=योग्य है
इति=ऐसी
मे=मेरी
मतिः=समझ है

भावार्थ।

जिसका मन अभ्यास और वैराग्य करके वश नहीं कियागया है, उसको योगकी प्राप्ति अतिकठिन है, और जिसने शुद्ध वैराग्य करके वासनाका क्षय करदिया है, और मन को स्वाधीन करलिया है, वह पुरुष चित्तको चञ्चल करनेवाले कर्मोंको त्याग करके योग को प्राप्त होजाता है ॥ ३६ ॥

मूलम्।

अर्जुन उवाच-

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ३७

पदच्छेदः।

अयतिः, श्रद्धया, उपेतः, योगात्, चलितमानसः, अप्राप्य, योगसंसिद्धिम्, काम्, गतिम्, कृष्ण, गच्छति॥

अन्वयः	शब्दार्थ
कृष्ण	हे कृष्ण !
अयतिः	जो यत्नहीन है
+ परन्तु	परन्तु
श्रद्धया	श्रद्धा करके
उपेतः	युक्त है
+ च	और
योगात्	योग से

अन्वयः	शब्दार्थ
चलितमानसः	चलितहोगया हैं मन जिसका ऐसा पुरुष
योगसंसिद्धिम्	योगासिद्धि को
अप्राप्य	न प्राप्त होकर
काम्	किस
गतिम्	गतिको
गच्छति	प्राप्त होता है

भावार्थ।

अर्जुन कहता है कि, हे भगवन् ! जिस मुमुक्षु ने योगाभ्यास में प्रवृत्त होकर संपूर्ण कर्मोंका त्याग करदिया हैं, और मोक्षका साधन जो आत्मज्ञान है, उसको वह प्राप्त हुआ नहीं, पर योगमार्ग से उसकी बुद्धि चलायमान होगई है, और अभ्यास की शिथिलतासे बीचमेंही उसके प्राणोंका त्याग होगया, तो हे अच्युत! वह किस गतिको प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥

मूलम्।

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ३८

पदच्छेदः ।

कच्चित्, न, उभयविभ्रष्टः, छिन्नाभ्रम्, इव, नश्यति, अप्रतिष्ठः, महाबाहो, विमूढः, ब्रह्मणः, पथि ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

महाबाहो=हे कृष्ण !
ब्रह्मणः=ब्रह्मके
पथि=मार्ग में
विमूढः=मूढ है जो
+ च=और
अप्रतिष्ठः=आश्रयरहित है जो
+ च=और

अन्वयः **शब्दार्थ**

उभयविभ्रष्टः=दोनों मार्ग से भ्रष्टहुआ है जो
कच्चित्=क्या
+ सः=वह
छिन्नाभ्रम् इव=फटेहुये बादल के समान
नश्यति=नष्ट होजाता है
न=अथवा नहीं

भावार्थ ।

जैसे अकेला बादल आकाश के बीचमें ही नष्ट होजाताहै, वैसेही क्या शिथिल प्रयत्नवाला योगाभ्यासी भी कर्ममार्ग से और योगमार्ग से भ्रष्ट होकर बीचमें ही नष्ट होजाता है, जब वह ज्ञान के मार्गमें भी विमूढ है, और कर्म के त्याग करदेने से कर्ममार्ग से भी भ्रष्ट है, तो आश्रयरहित होकर वह किस गतिको प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥

मूलम्।

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ३९

पदच्छेदः।

एतत्, मे, संशयम्, कृष्ण, छेत्तुम्, अर्हसि, अशेषतः, त्वदन्यः, संशयस्य, अस्य, छेत्ता, न, हि, उपपद्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

कृष्ण=हे कृष्ण !
एतत्=इस
मे=मेरे
संशयम्=संदेहको
अशेषतः=परिपूर्णता से
छेत्तुम्=काटने के लिये
अर्हसि=योग्य है तू
हि=क्योंकि

अन्वयः शब्दार्थ

त्वदन्यः=तुझ से दूसरा कोई
अस्य=इस
संशयस्य=संदेहका
छेत्ता=काटनेवाला
न उपपद्यते=नहीं मालूम होता है

भावार्थ।

अर्जुन कहताहै कि, हे भगवन्! इस मेरे संशय को दूर करने के योग्य आपही हो, तुझ ईश्वरके विना और कोई देवता, मनुष्य या ऋषि, मुनि मेरे संशय के दूर करने में समर्थ नहीं हैं, अतएव आपही मेरे संशय को दूर करो ॥ ३९ ॥

मूलम् ।

श्रीभगवानुवाच-

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
नहिकल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ४०

पदच्छेदः ।

पार्थ, न, एव, इह, न, अमुत्र, विनाशः, तस्य, विद्यते, न, हि, कल्याणकृत्, कः + चित्, दुर्गतिम्, तात, गच्छति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

पार्थ=हे अर्जुन !
न=न
एवइह=इसीसंसार में
+ च=और
न अमुत्र=न परलोकमें
तस्य=उसकायानी योगभ्रष्टका
विनाशः=नाश
विद्यते=होता है

अन्वयः शब्दार्थ

हि=क्योंकि
तात=हे मित्र !
कल्याण-कृत्=कल्याण का करने वाला यानीशुभकर्म करने वाला
कश्चित्=कोई भी
दुर्गतिम्=दुर्गतिको
न गच्छति=नहींप्राप्तहोता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! जो मुमुक्षु श्रवणादिकों को करता है, और चित्त की वृत्तिके निरोध करने में समर्थ है, और वैराग्य करके युक्तहै, यदि वह

शिथिलप्रयत्न से बीचमेंही प्राणोंका त्याग करदेता है, तो वह इस लोक अथवा परलोक में नाशको नहीं प्राप्त होताहै, और न वह किसी के निन्दाके योग्य होता है, ऐसा जो कल्याणकारी पुरुष है, वह कभी भी दुर्गतिको नहीं प्राप्त होताहै ॥ ४० ॥

मूलम् ।

प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ४१

पदच्छेदः ।

प्राप्य, पुण्यकृतान्, लोकान्, उषित्वा, शाश्वतीः, समाः, शुचीनाम्, श्रीमताम्, गेहे, योगभ्रष्टः, अभिजायते ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**
योगभ्रष्टः=योगभ्रष्टहुआ पुरुष
पुण्यकृतान्=पुण्यकारी
लोकान्=लोकोंको
प्राप्य=प्राप्त होकरके
+ च=और
शाश्वतीः=बहुत

अन्वयः **शब्दार्थ**
समाः=वर्षोंतक
उषित्वा=रहकरके
+ पुनः=फिर
शुचीनाम्=पवित्र
श्रीमताम्=ऐश्वर्यवानों के
गेहे=घर में
अभिजायते=पैदा होता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! जो योगमार्ग में

प्रवृत्त होकर बीचमेंही मरजाताहै, वह अश्वमेधादिकों के करनेवालों के लोकों को प्राप्त होताहै, करोड़ वर्ष वहां पर निवास करके पश्चात् पवित्रकुल में धनी व राजाओं के घर में जाकर जन्म लेता है ॥ ४१ ॥

मूलम् ।

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ४२

पदच्छेदः ।

अथवा, योगिनाम्, एव, कुले, भवति, धीमताम्, एतत्, हि, दुर्लभतरम्, लोके, जन्म, यत्, ईदृशम् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

अथवा=या
धीमताम्=बुद्धिमान्
योगिनाम्=योगियों के
कुले=कुल में
एव=निश्चय करके
भवति=पैदा होता है
हि=क्योंकि
ईदृशम्=ऐसा

अन्वयः **शब्दार्थ**

यत्=जो
एतत्=यह
जन्म=जन्म है
तत्=सो
लोके=इसलोक में
दुलभतरम्=अत्यन्तदुर्लभ है

भावार्थ ।

वैराग्यादिगुणों की अधिकता होने से और वासना

के क्षय होने के कारण योगभ्रष्ट ब्रह्मज्ञानी दरिद्री ब्राह्मणोंके घर में जन्मको लेता है, ज्ञानियोंके कुल में जो जन्महै, सो तो दुर्लभ से भी दुर्लभ है ॥ ४२ ॥

मूलम् ।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदैहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ४३

पदच्छेदः ।

तत्र, तम्, बुद्धिसंयोगम्, लभते, पौर्वदैहिकम्, यतते, च, ततः, भूयः, संसिद्धौ, कुरुनन्दन ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
कुरुनन्दन	=हे कुरुनन्दन !	च	=और
तत्र	=उस कुलमें	ततः	=उसके बाद
तम्	=उस	भूयः	=फिर
पौर्वदैहिकम्	=पूर्वदेहसंबन्धी	संसिद्धौ	=योगसिद्धि में यानी मोक्ष के लिये
बुद्धिसंयोगम्	=ज्ञानयोगको	यतते	=यत्न करता है
लभते	=प्राप्त होता है		

भावार्थ ।

उन ज्ञानियों के कुलमें जन्म लेकर पूर्वजन्म के अभ्यास के संस्कारों करके फिर योग में अधिक यत्न

को करताहै, हे अर्जुन ! आत्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये तुम्हारा भी जन्म श्रीमानों के कुलमें हुआहै, तुमको भी विना परिश्रम के ज्ञानकी प्राप्ति होगी ॥ ४३ ॥

मूलम् ।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ४४

पदच्छेदः ।

पूर्वाभ्यासेन, तेन, एव, ह्रियते, हि, अवशः, अपि, सः, जिज्ञासुः, अपि, योगस्य, शब्दब्रह्म, अतिवर्तते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
सः	वह
अवशः	परवश होता हुआ
अपि	भी
तेनएव	उसी
पूर्वाभ्यासेन	पूर्वजन्मके योगाभ्यास करके
ह्रियते	योगकी तरफ खींचा जाताहै
हि	निःसंदेह
योगस्य	योगका
जिज्ञासुः	चाहनेवाला
अपि	भी
शब्दब्रह्म	कर्मफलको
अतिवर्तते	उल्लङ्घन करके बर्तता है

भावार्थ ।

वह पूर्वले जन्मों के संस्कारों के वशमें होकर योग

का अभ्यास करता है यानी पूर्बले संस्कार उसके मन को फिर फिर योगकी तरफ फेरलेते हैं यानी उसकी ज्ञान के साधनों में प्रवृत्ति करदेते हैं जिसने अल्पकाल भी ज्ञान योग का अभ्यास कियाहै, वह भी शब्दब्रह्म जो वेद है, उसकी आज्ञाको उल्लङ्घन कर जाता है और जो चिरकाल का अभ्यास करनेवाला है, उसके ऊपर वेदकी आज्ञा कैसे होसक्ती है यानी वैदिककर्म के फल उसको बन्धायमान नहीं करसक्ते हैं ॥ ४४ ॥

मूलम् ।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ४५

पदच्छेदः ।

प्रयत्नात्, यतमानः, तु, योगी, संशुद्धकिल्बिषः, अनेकजन्मसंसिद्धः, ततः, याति, पराम्, गतिम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
तु	फिर	अनेकजन्मसंसिद्धः	अनेकजन्मों में सिद्धहोता हुआ
संशुद्धकिल्बिषः	शुद्ध हुआ है पाप जिसका ऐसा	ततः	बादको
योगी	योगी	पराम्	श्रेष्ठ
यतमानः	यत्न करता हुआ	गतिम्	गतिको
प्रयत्नात्	यत्नसे	याति	प्राप्त होता है

भावार्थ ।

हे अर्जुन ! योगभ्रष्ट उत्तम ब्रह्मवेत्ताओं के कुल में जन्म लेकर और तत्त्वज्ञान का अधिकारी होकर और ज्ञान के साधनों में तत्पर होता हुआ आत्मज्ञान के लाभद्वारा संसाररूपी बन्धन से मुक्त होजाता है यानी पूर्वजन्म के यत्नसे भी अधिक यत्न करके सब पापरूपी मलों को धोकर आत्मतत्त्व के साक्षात् होनेपर मुक्त होजाता है ॥ ४५ ॥

मूलम् ।

तपस्विभ्योऽधिकोयोगीज्ञानिभ्योऽपिमतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिकोयोगी तस्माद्योगीभवार्जुन ४६

पदच्छेदः ।

तपस्विभ्यः, अधिकः, योगी, ज्ञानिभ्यः, अपि, मतः, अधिकः, कर्मिभ्यः, च, अधिकः, योगी, तस्मात्, योगी, भव, अर्जुन ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
योगी	योगाभ्यासी पुरुष	अधिकः	श्रेष्ठ है
तपस्विभ्यः	तपकरनेवाले पुरुषों से	च	और
		ज्ञानिभ्यः	शास्त्रों के ज्ञान वाले पुरुषों से

अपि=भी
अधिकः=विशेष श्रेष्ठ
मतः=मानागया है
+ च=और
कर्मिभ्यः=अग्निहोत्रादिककर्म करनेवालों से भी
योगी=योगाभ्यासी
अधिकः=अधिकश्रेष्ठ है
तस्मात्=इस लिये
अर्जुन=हे अर्जुन !
योगी=योगी
भव=हो तू

भावार्थ ।

भगवान् अब ज्ञानयोगकी स्तुति करते हैं, और कहते हैं कि, हे पार्थ ! संपूर्ण तपस्वियों से ज्ञानी योगी श्रेष्ठ है, और कर्मियोंसेभी श्रेष्ठहै, क्योंकि कर्मी अज्ञानी होते हैं, वे मोक्षके अधिकारी नहीं हैं, और परोक्ष ज्ञानियों से भी वे श्रेष्ठहैं, इसलिये हे अर्जुन ! तुम भी ज्ञानी योगी बनो ॥ ४६ ॥

मूलम् ।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ४७

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्मसं-
यमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

:o:

पदच्छेदः।

योगिनाम्, अपि, सर्वेषाम्, मद्गतेन, अन्तरात्मना, श्रद्धावान्, भजते, यः, माम्, सः, मे, युक्ततमः, मतः॥

अन्वयः शब्दार्थ

सर्वेषाम्=सब
योगिनाम्=योगियों में
अपि=भी
यः=जो
श्रद्धावान्=श्रद्धावान् पुरुष
मद्गतेन=मेरेमें प्रवेश हुये
अन्तरात्मना=अन्तःकरणकरके

अन्वयः शब्दार्थ

माम्=मुझको
भजते=भजता है
सः=वह
मे=मेरा
युक्ततमः=श्रेष्ठतम
मतः=मानागया है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ! जितने वसु रुद्रादिकों के भक्तहैं, उन सबों में मेरा भक्त श्रेष्ठ है, क्योंकि उसने मुझ वासुदेव कृष्ण में परमश्रद्धा करके चित्त को लगाया है, और अनन्यभक्ति करके मेराही चिन्तन करता है, यदि अन्य रुद्रादिकों की भक्ति में और मेरी भक्तिमें, परिश्रम तुल्यही है, तथापि फल में इतना भेद है कि, जो इतर देवताओं की भक्ति करते हैं, वे मरकर उन देवताओं के लोकों को प्राप्त होते हैं, और वहां पर चिरकाल विषयभोगों को भोगकर फिर

जन्ममरणरूपी संसार को प्राप्त होते हैं, और जो मेरे निर्गुण अथवा सगुणरूप के उपासक हैं, वे मरकर मेरे में ही लीन होते हैं, फिर जन्ममरणरूपी संसार को प्राप्त नहीं होते हैं ॥ ४७ ॥

छठवां अध्याय समाप्त ॥

सातवां अध्याय ।

मूलम् ।

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन् मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु १

पदच्छेदः ।

मयि, आसक्तमनाः, पार्थ, योगम्, युञ्जन्, मदाश्रयः, असंशयम्, समग्रम्, माम्, यथा, ज्ञास्यसि, तत्, शृणु ॥

अन्वयः शब्दार्थ

पार्थ=हे अर्जुन !
मयि=मेरे में
आसक्तमनाः=लगा है मन जिसका और
मदाश्रयः=मेराही है आश्रय जिसको ऐसा

अन्वयः शब्दार्थ

+ त्वम्=तू
योगम्=योगको
युञ्जन्=करता हुआ
असंशयम्=संशयरहित
माम्=मुझको
यथा=जिसप्रकार से

समग्रम्=संपूर्ण
ज्ञास्यसि=जानेगा
तत्=उसको
शृणु=सुन

भावार्थ ।

पूर्वले छह अध्यायों करके भगवान् ने त्वम्पद के अर्थ का निरूपण किया है, अब छह अध्यायों करके तत्पद के अर्थ का निरूपण करते हैं कि, हे सौम्य ! सब योगों में मेरा भक्तियोगही उत्तम है, और जिसपर मेरी कृपादृष्टि होती है, उसीको मैं अपना भक्तियोग देताहूं यानी उसके हृदय में मैं अपने भक्तियोग का प्रकाश करताहूं, और लोक में जो कुकर्मी हैं, वे दुष्टयोनियों में उत्पन्न होते हैं, और जो योगभ्रष्ट हैं, वे पवित्र कुलवाले धनियों के या ज्ञानियों के घरों में उत्पन्न होते हैं, और जिसको भक्तियोग की प्राप्ति हुई है, वह फिर जन्म मरणको नहीं प्राप्त होता है, अतएव सब पुरुषों को उचित है कि श्रद्धा करके भक्तियोग कोही आश्रयण करें, अर्जुन कहता है कि, हे भगवन् ! उस भक्तियोग का स्वरूप क्या है ? भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! अन्य विषयों से मनको हटाकर मुझ ईश्वरमेंही लगाने का नाम, भक्तियोग है, हे अर्जुन ! संशय से रहित होकर जिसप्रकार तू मुझको सर्वरूप करके जान लेवे, उसको मैं तुम्हारे प्रति कहताहूं, तुम सुनो ॥ १ ॥

मूलम् ।

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते २

पदच्छेदः ।

ज्ञानम्, ते, अहम्, सविज्ञानम्, इदम्, वक्ष्यामि, अशेषतः, यत्, ज्ञात्वा, न, इह, भूयः, अन्यत, ज्ञातव्यम्, अवशिष्यते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहम्	मैं	यत्	जिसको
सविज्ञानम्	अनुभव सहित	ज्ञात्वा	जानकर
		भूयः	फिर
इदम्	इस	अन्यत्	और कुछ
ज्ञानम्	ज्ञानको	ज्ञातव्यम्	जानने योग्य
अशेषतः	समग्र	इह	इस संसार में
ते	तेरेलिये	न	नहीं
वक्ष्यामि	कहूंगा	अवशिष्यते	बाकी रहता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! सहित विज्ञान के जो ज्ञान है, उसको भी मैं तुम्हारे प्रति कहूंगा,

जिस ज्ञान को प्राप्त होकर फिर तुमको कुछभी जानने योग्य नहीं रहेगा ॥ २ ॥

मूलम् ।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ३

पदच्छेदः ।

मनुष्याणाम्, सहस्रेषु, कः+चित्, यतति, सिद्धये, यतताम्, अपि, सिद्धानाम्, कः + चित, माम्, वेत्ति, तत्त्वतः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

सहस्रेषु=हजारों
मनुष्याणाम्=मनुष्यों में
कश्चित्=कोई एक
सिद्धये=सिद्धि के लिये
यतति=यत्नकरता है
+ च=और

अन्वयः शब्दार्थ

यतताम्=यत्न करनेवाले
सिद्धानाम्=सिद्ध पुरुषों में
अपि=भी
कश्चित्=कोई एक
तत्त्वतः=यथार्थ
माम्=मुझको
वेत्ति=जानता है

भावार्थ ।

हे अर्जुन ! मेरी कृपा विना वह ज्ञान दुर्लभ है, क्योंकि सहस्रों कर्मयोग और ज्ञानयोग के करनेवालों के मध्य में कोई एक विवेकी चित्त की शुद्धिद्वारा मोक्ष

की प्राप्ति के लिये यत्न करताहै, और जो चित्तकी शुद्धि के लिये यत्न करते हैं, उनमें भी कोई एक पुरुष यथार्थ रूप करके मेरे स्वरूपको जानताहै अर्थात् यथार्थ ज्ञान करके मेरे स्वरूपको साक्षात्कार करता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ४

पदच्छेदः ।

भूमिः, आपः, अनलः, वायुः, खम्, मनः, बुद्धिः, एव, च, अहंकारः, इति, इयम्, मे, भिन्ना, प्रकृतिः, अष्टधा ॥

अन्वयः शब्दार्थ

भूमिः=पृथिवी
आपः=जल
अनलः=अग्नि
वायुः=वायु
खम्=आकाश
मनः=मन
बुद्धिः=बुद्धि
च एव=और

अन्वयः शब्दार्थ

अहंकारः=अहंकार
इति=ऐसी
इयम्=यह
मे=मेरी
भिन्ना=भिन्न भिन्न
अष्टधा=आठप्रकारकी
प्रकृतिः=माया है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! भूमि, जल, तेज,

वायु, आकाश और मन तथा बुद्धि और अहंकार इन आठ प्रकारके भेदों करके मेरी प्रकृति विभागको प्राप्त हुई है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूताम्महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ५

पदच्छेदः ।

अपरा, इयम्, इतः, तु, अन्याम्, प्रकृतिम्, विद्धि, मे, पराम्, जीवभूताम्, महाबाहो, यया, इदम्, धार्यते, जगत् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

महाबाहो=हे अर्जुन !
इयम्=यह प्रकृति
अपरा=अपरा यानी निकृष्ट है
इतः=इस प्रकृति से
अन्याम्=दूसरी
मे=मेरी
प्रकृतिम्=प्रकृतिको
जीवभूताम्=जो जीवरूप है

अन्वयः शब्दार्थ

तु=और
यया=जिसकरके
इदम्=यह
जगत्=जगत्
धार्यते=धारण किया जाता है
पराम्=श्रेष्ठ
विद्धि=जान तू

भावार्थ ।

आठ प्रकारके भेदवाली जो प्रकृति पूर्व कही है,

उसका नाम अपरा प्रकृति है, और इससे भिन्न दूसरी परा चेतनप्रकृति मेरी है, वही चेतनप्रकृति मेरा आत्मारूप है, और उसीको क्षेत्रज्ञरूप करकेभी कहते हैं, जिस क्षेत्रज्ञ चेतनप्रकृति ने सारे जगत् को धारण कर रक्खा है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ६

पदच्छेदः ।

एतद्योनीनि, भूतानि, सर्वाणि, इति, उपधारय, अहम्, कृत्स्नस्य, जगतः, प्रभवः, प्रलयः, तथा ॥

अन्वयः शब्दार्थ

एतद्योनीनि = प्रकृति से है उत्पत्ति जिनकी
इति=ऐसे
सर्वाणि=संपूर्ण
भूतानि=प्राणियों को
उपधारय=जानतू
+ च=और
अहम्=मैं

अन्वयः शब्दार्थ

कृत्स्नस्य=संपूर्ण
जगतः=संसारका
प्रभवः=उत्पन्नकर्ता
तथा=और
प्रलयः=प्रलयकर्ताहूं
+ इति=ऐसा
+ त्वम्=तू
+ विद्धि=जान

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! जितने संपूर्ण भूत हैं, सबका कारणीभूत यह मेरी चेतनप्रकृति है, और अनन्तशक्तिवाली जो माया है, वह माया उपाधि जिस ईश्वरकी है, वह ईश्वर मैंही हूं, और संपूर्ण कार्यवर्ग जगत्का कारण भी मैंहीहूं, और जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, नाश का कारण भी मैं हीहूं; मुझसे इतर और कोई नहीं है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ७

पदच्छेदः ।

मत्तः, परतरम्, न, अन्यत्, किञ्चित्, अस्ति, धनञ्जय, मयि, सर्वम्, इदम्, प्रोतम्, सूत्रे, मणिगणाः, इव ॥

अन्वयः शब्दार्थ

मत्तः=मुझसे
परतरम्=अत्यन्तश्रेष्ठ
अन्यत्=और
किञ्चित्=कुछ
न अस्ति=नहीं है

अन्वयः शब्दार्थ

धनञ्जय=हे अर्जुन !
मयि=मुझ में
इदम्=यह
सर्वम्=सब
प्रोतम्=गूंथाहुआ है

इव=जैसे
सूत्रे=सूत्र में
मणिगणाः=मणियों के समूह

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! मैंही जगत् की उत्पत्ति और स्थितिका कारणहूं, मुझ ईश्वर में सत्ता-स्फुरणरूप करके सब अनुस्यूत हैं, मुझसे भिन्न कोई भी वस्तु संसार में नहीं है, क्योंकि जो आरोपित वस्तु होती है, वह अधिष्ठान से भिन्न नहीं होती है, वैसेही मुझमें आरोपित जगत् भी मुझसे भिन्न नहीं है, और जैसे सूत्रमें मणियां पिरोई हुई सूत्रके ही आश्रित होती हैं, वैसेही सारा जगत् मुझमें पिरोया हुआ मेरेही आश्रित है, यह दृष्टान्त व्यवहार-दृष्टिको लेकरके है, और पूर्ववाला दृष्टान्त परमार्थदृष्टि को लेकरके है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ८

पदच्छेदः ।

रसः, अहम्, अप्सु, कौन्तेय, प्रभा, अस्मि, शशिसूर्ययोः, प्रणवः, सर्ववेदेषु, शब्दः, खे, पौरुषम्, नृषु ॥

अन्वयः शब्दार्थ

कौन्तेय=हे अर्जुन !
अप्सु=जलों में
रसः=रस
अहम्=मैंहूं
+च=और
शशिसूर्ययोः=चन्द्रमा और सूर्य में
प्रभा=कान्ति
अस्मि=मैंहूं
+च=और

अन्वयः शब्दार्थ

सर्ववेदेषु=सब वेदों में
प्रणवः=ॐकार
+अस्मि=मैंहूं
खे=आकाश में
शब्दः=शब्द
+अस्मि=मैंहूं
+च=और
नृषु=मनुष्यों में
पौरुषम्=पराक्रम
+अस्मि=मैंहूं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जलोंका सारभूत जो रस है, सो मैंहीहूं, अर्थात् रसरूप होकर सब जलों में मैंही अनुस्यूतहूं. और जल मुझमें अनुस्यूत हैं, और चन्द्रमा सूर्य में जो प्रकाश है सो मैंहूं, और मुझमें सूर्य चन्द्रमा अनुस्यूत हैं यानी ओतप्रोत हैं और वेदों में ॐकाररूप करके मैं अनुस्यूत हूं, और ॐकार में वेद अनुस्यूत हैं, और संपूर्ण पुरुषों में जो पुरुषार्थ है, सो मैंहीहूं अर्थात् संपूर्ण पुरुषों में पुरुषार्थ रूप करके मैं अनुस्यूतहूं और सब पुरुष मेरे में अनुस्यूत हैं ॥ ८ ॥

मूलम्।

पुण्यो गन्धः पृथिव्याञ्च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ९

पदच्छेदः।

पुण्यः, गन्धः, पृथिव्याम्, च, तेजः, च, अस्मि, विभावसौ, जीवनम्, सर्वभूतेषु, तपः, च, अस्मि, तपस्विषु ॥

अन्वयः शब्दार्थ

पृथिव्याम्=पृथिवी में
पुण्यः=उत्तम
गन्धः=गन्ध
च=और
विभावसौ=अग्नि में
तेजः=तेज
अस्मि= मैंहूं

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
सर्वभूतेषु=सब प्राणियों में
जीवनम्=जीव
च=और
तपस्विषु=तपस्यावालों में
तपः=तप
अस्मि=मैंहूं

भावार्थ।

और पृथिवी में जो पवित्र गन्ध है सो मैंहूं अर्थात् गन्धरूप होकर पृथिवी में मैं अनुस्यूतहूं, और पृथिवी मुझमें अनुस्यूत है, और अग्निमें तेजरूप करके मैं अनुस्यूत हूं, और अग्नि मुझमें अनुस्यूत है, और संपूर्ण भूतों का जीवनरूप करके मैं स्थितहूं अर्थात् प्राणों के धारण करनेवाली जो आयु है सो मैंही हूं,

उस आयुरूप मुझमें सब ओतप्रोत हैं, और तपस्वियों में जो तप है सो मैं हूं, और तपस्वी मुझमें ओतप्रोत हैं ॥ ९ ॥

मूलम्।

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् १०

पदच्छेदः।

बीजम्, माम्, सर्वभूतानाम्, विद्धि, पार्थ, सनातनम्, बुद्धिः, बुद्धिमताम्, अस्मि, तेजः, तेजस्विनाम्, अहम् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

पार्थ=हे अर्जुन!
सर्वभूतानाम्=सब भूतोंका
सनातनम्=सनातन
बीजम्=बीज
माम्=मुझको
विद्धि=जान तू
+ च=और
बुद्धिमताम्=बुद्धिमान् पुरुषों का

अन्वयः **शब्दार्थ**

+ अहम्=मैं
बुद्धिः=बुद्धि
अस्मि=हूं
+ च=और
तेजस्विनाम्=तेजधारी पुरुषों का
तेजः=तेज
अस्मि=मैं हूं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, ब्रह्मासे लेकर स्थावर पर्यन्त

संपूर्ण भूतों का अनादि बीजरूप कारण मैंही हूं, और संसार में जितने बुद्धिमान् हैं उनमें जो सत्य असत्य का विचार करनेवाली बुद्धि है सो मैंही हूं, और जिन तेजस्वियों के तेजसे लोग भयको प्राप्त होते हैं उनमें जो तेज है सो मैंही हूं ॥ १० ॥

मूलम् ।

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ११

पदच्छेदः ।

बलम्, बलवताम्, च, अहम्, कामरागविवर्जितम्, धर्माविरुद्धः, भूतेषु, कामः, अस्मि, भरतर्षभ ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
भरतर्षभ	हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ, अर्जुन!	+ अस्मि	हूं
कामरागविवर्जितम्	काम और राग से भिन्न	च	और
अहम्	मैं	भूतेषु	सबप्राणियों में
बलवताम्	बलीपुरुषों का	धर्माविरुद्धः	धर्मानुकूल
बलम्	बल	कामः	कामरूप यानी कन्दर्प
		अस्मि	मैं हूं

भावार्थ।

हे अर्जुन ! संपूर्ण बलियों में जो काम और राग से रहित बल है वह मैं हूं, और धर्मशास्त्र से अविरुद्ध जो काम है यानी इच्छा है सो मैं हूं, काम वह है जो इन्द्रियों का विषय नहीं है, और राग वह है जो इन्द्रियों का विषय है, केवल सत्य धर्म की कमाई से शरीरयात्राका निर्वाह करना काम है सो मैंहीहूं, अथवा धर्मशास्त्र का अविरोधी ऋतुकाल में स्वभार्या के साथ गमनरूप जो इच्छा है वह मैंही हूं ॥ ११ ॥

मूलम्।

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान् विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि १२

पदच्छेदः।

ये, च, एव, सात्त्विकाः, भावाः, राजसाः, तामसाः, च, ये, मत्तः, एव, इति, तान्, विद्धि, न, तु, अहम्, तेषु, ते, मयि ॥

अन्वयः शब्दार्थ

एव=निश्चयपूर्वक
ये=जो
सात्त्विकाः=सतोगुणवाले
भावाः=भाव हैं

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
ये=जो
राजसाः=रजोगुणवाले
च=और जो

तामसाः=तमोगुणवाले
+भावाः=भाव हैं
तान्=उनको
मत्तःएव=मुझसे ही पैदा हुये
इति=ऐसा
विद्धि=जान तू
तेषु=उनभावोंमें यानी उनके आधीन
अहम्=मैं
न=नहीं हूं
तु=परन्तु
ते=वे सब
मयि=मुझमें हैं यानी मेरे आधीन हैं

भावार्थ ।

जो चित्त के परिणाम विशेष शमादिक सात्त्विक भाव हैं, और जो हर्षादिक राजसभाव हैं, और जो मोहादिक तामसभाव हैं, उन सबकी उत्पत्ति मुझसेही है, और वे सब मेरेही आधीनहैं, और मैं उनके आधीन नहीं हूं, अर्थात् मुझसे वे भिन्न नहीं हैं, रज्जु-बिषे सर्प की तरह वे सब मुझमेंही कल्पितहैं ॥ १२ ॥

मूलम् ।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् १३

पदच्छेदः ।

त्रिभिः, गुणमयैः, भावैः, एभिः, सर्वम्, इदम्, जगत्, मोहितम्, न, अभिजानाति, माम्, एभ्यः, परम्, अव्ययम्॥

अन्वयः **शब्दार्थ**
एभिः=इन
त्रिभिः=तीनों
गुणमयैः=गुणवाले
भावैः=भावों करके
इदम्=यह
सर्वम्=संपूर्ण
जगत्=संसार यानी संसारी जीव

अन्वयः **शब्दार्थ**
मोहितम्=मोहित होता हुआ
माम्=मुझ
अव्ययम्=अविनाशी को
एभ्यः=इन गुणों से
परम्=परे यानी पृथक्
न=नहीं
अभिजानाति=जानता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जिस वास्ते राग, द्वेष और प्रमाद करके पुरुष पदार्थों में मोहित होरहे हैं, उसी कारण मेरे निर्गुण स्वरूप को नहीं जानते हैं, मेरा निर्गुण स्वरूप गुणों से रहित सर्व का अधिष्ठान सच्चिदानन्दरूप है, अपने अज्ञान करके पुरुष संसाररूपी चक्र में पड़े भ्रमते हैं ॥ १३ ॥

मूलम् ।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते १४

पदच्छेदः ।

दैवी, हि, एषा, गुणमयी, मम, माया, दुरत्यया, माम्, एव, ये, प्रपद्यन्ते, मायाम्, एताम्, तरन्ति, ते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

एषा=यह
दैवी=अलौकिक
गुणमयी=तीनों गुण वाली
मम=मेरी
माया=माया
हि=निःसंदेह
दुरत्यया=कठिन है
ये=जो

अन्वयः शब्दार्थ

माम्=मुझको
एव=निश्चयपूर्वक
प्रपद्यन्ते=चिन्तन करते हैं यानी भजते हैं
ते=वे
एताम्=इस
मायाम्=मायाको
तरन्ति=तरते हैं

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ अनादि सिद्ध जो त्रिगुण माया है, उस माया के गुणों करके संपूर्ण जगत् बन्धायमान होरहा है, उसकी मुक्ति किसप्रकार होगी ॥ उत्तर ॥ जिस माया करके लोक मोहित होरहा है, और स्वरूप को नहीं जानता है, वह माया दैवी कही जाती है, अर्थात् स्वयंप्रकाश देव के आश्रित है, और त्रिगुणात्मिकहै, अर्थात् तीनों गुणों की साम्य अवस्था का नाम माया है, और वह माया आवरण तथा विक्षेप शक्तिद्वयवाली है, और जड़ है, उसीका नाम प्रकृति अविद्या अज्ञान भी है, और मेरे साक्षात् होने विना जीव उस के तरने को अशक्य है, अर्जुन कहता है कि, हे भगवन्!

जिसप्रकार जीवोंको आप साक्षात्कार होवें सो कहिये, भगवान् कहते हैं कि, हे मित्र ! जो मुझको माया का नियन्ता जानकर सदैवही मेरा चिन्तन करते हैं, वे मेरे प्रेमरूपी समुद्र में मग्न होकर और माया के गुणों को त्याग करके संसारसमुद्र से तरजाते हैं ॥ १४ ॥

मूलम् ।

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययाऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः १५

पदच्छेदः ।

न, माम्, दुष्कृतिनः, मूढाः, प्रपद्यन्ते, नराधमाः, मायया, अपहृतज्ञानाः, आसुरम्, भावम्, आश्रिताः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

दुष्कृतिनः=दूषित हैं कर्म जिनके
मूढाः=मूर्ख हैं जो
नराधमाः=नरों में अधम हैं जो
मायया=माया करके
अपहृतज्ञानाः=हत हुआ है ज्ञान जिनका
+ च=और
आसुरम्=असुरसम्बन्धी
भावम्=भाव को
आश्रिताः=आसरा किये हैं जो ऐसे पुरुष
माम्=मुझको
न प्रपद्यन्ते=नहीं प्राप्त होते हैं

भावार्थ ।

कर्म और योगादिक जो साधन हैं, वे हरिकी भक्ति

की अपेक्षा करते हैं, विना भक्तिके फल नहीं देसक्ते हैं, और हरि की भक्ति, विना कर्म और योग के फल को देसक्ती है, और हरिकी भक्ति के विना जो जो पुरुष कठिन साधनों को करता है वे सब वृथाही हैं, भगवान् कहते हैं कि, मेरे स्वरूपज्ञान के विना पुरुष भोगों में लम्पट होकर पाप के आचार में प्रवृत्त होजाते हैं, इसी वास्ते उनका शास्त्र में अधिकार नहीं रहता है, वे असुरभाव को प्राप्त होकर पशु आदिकों के तुल्यही होजाते हैं ॥ १५ ॥

मूलम् ।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोर्ज़ुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ १६

पदच्छेदः ।

चतुर्विधाः, भजन्ते, माम्, जनाः, सुकृतिनः, अर्जुन, आर्तः, जिज्ञासुः, अर्थार्थी, ज्ञानी, च, भरतर्षभ ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अर्जुन=हे अर्जुन !
चतुर्विधाः=चार प्रकार के
सुकृतिनः=पुण्यात्मा
जनाः=मनुष्य
माम्=मुझको

अन्वयः शब्दार्थ

भजन्ते=भजते हैं
भरतर्षभ=हे अर्जुन ! वे चारप्रकारके पुरुष ये हैं
आर्तः=दुःखी

जिज्ञासुः=ज्ञानकीइच्छावाला
अर्थार्थी=कामनावाला
च=और
ज्ञानी=ब्रह्मवित्

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! चार प्रकार के पुरुष मेरा भजन करते हैं–एक आर्त यानी जो दुःखी है वह अपने दुःखकी निवृत्ति के लिये मेरा भजन करताहै जैसे गजेन्द्रादिकों ने किया है, दूसरा धनका अर्थी जैसे सुदामा मेरा भक्त हुआ है, तीसरा जिज्ञासु जैसे उद्धव मेरा भक्त हुआ है, चौथा ज्ञानी जैसे विदुर मेरा भक्त हुआ है ॥ १६ ॥

मूलम् ।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः १७

पदच्छेदः ।

तेषाम्, ज्ञानी, नित्ययुक्तः, एकभक्तिः, विशिष्यते, प्रियः, हि, ज्ञानिनः, अत्यर्थम, अहम्, सः, च, मम, प्रियः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
नित्ययुक्तः=नित्ययुक्त है जो
एकभक्तिः=एक में है भक्ति जिसकी ऐसा
ज्ञानी=ज्ञानी पुरुष

अन्वयः शब्दार्थ
तेषाम्=तिनमें
विशिष्यते=श्रेष्ठ है
हि=क्योंकि
ज्ञानिनः=ज्ञानीका

अहम्=मैं
अत्यर्थम्=अत्यन्त
प्रियः=प्याराहूं
च=और
सः=वह
मम=मेरा
प्रियः=प्यारा है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे मित्र ! उन चार प्रकार के भक्तों मेंसे ज्ञानी भक्त मेरा अति उत्तम और प्यारा है, क्योंकि उसका चित्त अन्तरात्मा जो मैंहूं, मुझमें ही जुड़ाहुआ है, इसीवास्ते ज्ञानी मुझको अतिशय करके प्याराहै, और मैं ज्ञानीको अतिशय करके प्याराहूं॥१७॥

मूलम् ।

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितःसहि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् १८

पदच्छेदः ।

उदाराः, सर्वे, एव, एते, ज्ञानी, तु, आत्मा, एव, मे, मतम्, आस्थितः, सः, हि, युक्तात्मा, माम्, एव, अनुत्तमाम्, गतिम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
एते=ये
सर्वेएव=सबही

अन्वयः शब्दार्थ
उदाराः=श्रेष्ठ हैं
ज्ञानी=ज्ञानी

तु=तो
मे=मेरा
आत्माएव=आत्माही
मतम्=मानागया है
हि=क्योंकि
सः=वह
युक्तात्मा=योगी
माम् एव=मुझही को
आस्थितः=आश्रय करता हुआ
अनुत्तमाम्=अत्यन्त श्रेष्ठ
गतिम्=गतिको
+आप्नोति=प्राप्त होता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, ये जो चार प्रकार के भक्त कहे हैं, उनमें जो दुःखी और अर्थार्थी भक्त हैं, वे यद्यपि सकामी भी हैं तब भी वे मुझको प्रिय हैं, क्योंकि वे पूर्वले जन्मों के पुण्यों के पुञ्जों करके मेरे भजन में लगे हैं, इसलिये ये भी उत्तम हैं और मुझको प्रिय हैं, और ज्ञानी तो मेरा आत्माही है, वह मुझसे भिन्न नहीं है, क्योंकि वह मुझमें ही समाहित मन होकर स्थित है ॥ १८ ॥

मूलम्।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः १९

पदच्छेदः।

बहूनाम्, जन्मनाम्, अन्ते, ज्ञानवान्, माम्, प्रपद्यते, वासुदेवः, सर्वम्, इति, सः, महात्मा, सुदुर्लभः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

बहूनाम्=अनेक
जन्मनाम्=जन्मों के
अन्ते=अन्तमें
ज्ञानवान्=ज्ञानी पुरुष
माम्=मुझको
प्रपद्यते=प्राप्त होता है
सर्वम्=सर्वमूर्ति

अन्वयः शब्दार्थ

वासुदेवः=वासुदेवरूप है
इति=ऐसा अनुभव करनेवाला
सः=वह
महात्मा=महात्मा
सुदुर्लभः=अतिदुर्लभ है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! जब अनेक जन्मों के पुण्यों का पुञ्ज उदय होता है तब अन्त के जन्म में ज्ञानकी प्राप्ति होती है, फिर उस अन्त के जन्म में ज्ञानवान् मुझको प्राप्त होता है और वह संपूर्ण जगत् को वासुदेवरूप जानता है ऐसा महात्मा ज्ञानी दुर्लभ है ॥ १९ ॥

मूलम् ।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया २०

पदच्छेदः ।

कामैः, तैः, तैः, हृतज्ञानाः, प्रपद्यन्ते, अन्यदेवताः, तम्, तम्, नियमम्, आस्थाय, प्रकृत्या, नियताः, स्वया ॥

अन्वयः शब्दार्थ

स्वया=अपनी
प्रकृत्या=प्रकृति से
नियताः=प्रेरे हुये
तम् तम्=उस उस
नियमम्=नियमको
आस्थाय=आश्रय करके
तैः तैः=उन उन

अन्वयः शब्दार्थ

कामैः=कामना करके
हृतज्ञानाः=आत्मज्ञानसे भ्रष्टहुये पुरुष
अन्यदेवताः=अन्यदेवताओं को
प्रपद्यन्ते=प्राप्त होते हैं

भावार्थ ।

और जो क्षुद्रदेवताओं के भक्त हैं, वे पुनः पुनः जन्म मरणरूपी फलकोही प्राप्त होते हैं, क्योंकि उनमें पुत्र पशु आदिकों की कामना भरी है, उन कामनाओं की प्राप्ति के लिये क्षुद्रदेवताओं की उपासनाको और तद्विषयकव्रतों कोही वे धारण करते हैं और कामना करके उनके चित्त वञ्चित होरहे हैं ॥ २० ॥

मूलम् ।

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् २१

पदच्छेदः ।

यः, यः, याम्, याम्, तनुम्, भक्तः, श्रद्धया, अर्चितुम्, इच्छति, तस्य, तस्य, अचलाम्, श्रद्धाम्, ताम्, एव, विदधामि, अहम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
यःयः=जो जो	तस्यतस्य=उस उसके
भक्तः=भक्त	ताम्=उस
याम्याम्=जिस जिस	श्रद्धाम्=श्रद्धाको
तनुम्=मूर्तिको	अचलाम्=अचल
श्रद्धया=श्रद्धा करके	अहम्=मैं
अर्चितुम्=पूजन करनेको	एव=ही
इच्छति=इच्छा करता है	विदधामि=करताहूं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे प्रियमित्र! जो सकामी पुरुष जिस देवता की मूर्ति को पूर्वजन्मों के अभ्यास करके सदा पूजन करने की इच्छा करता है, उस सकामी की अचल श्रद्धा को मैं उसी देवता बिषे दृढ़ करता हूं, अपनी भक्ति में उसकी श्रद्धा को मैं दृढ़ नहीं करताहूं, क्योंकि मेरी भक्तिमें उसका अधिकार नहीं है, नानाप्रकार की कामना करके उसका चित्त हत होरहा है ॥ २१ ॥

मूलम्।

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततःकामान् मयैव विहितान् हितान् २२

पदच्छेदः।

सः, तया, श्रद्धया, युक्तः, तस्य, आराधनम्, ईहते,

लभते, च, ततः, कामान्, मया, एव, विहितान्, हितान् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

सः=वह पुरुष
तया=उस
श्रद्धया=श्रद्धा करके
युक्तः=युक्त हुआ
तस्य=उस देवताके
आराधनम्=आराधन को यानी सेवाको
ईहते=इच्छाकरता है

अन्वयः **शब्दार्थ**

च=और
ततः=इसीकारण से
मया एव=मुझही करके
विहितान्=रचे हुये
हितान्=इच्छित
कामान्=कामनाओं को
लभते=प्राप्त होता है

भावार्थ।

हे अर्जुन ! जो सकामी पुरुष जिस देवतामें श्रद्धा करके युक्त होताहै, उसी देवताकी पूजाको करता है, और उस देवता करके ईप्सित कामना को प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

मूलम्।

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि २३

पदच्छेदः।

अन्तवत्, तु, फलम्, तेषाम्, तत्, भवति, अल्पमेधसाम्, देवान्, देवयजः, यान्ति, मद्भक्ताः, यान्ति, माम्, अपि ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तेषाम्=उन
अल्पमेधसाम्=अल्प बुद्धिवालों का
तत्=वह
फलम्=फल
अन्तवत्=नाशवान्
भवति=होता है
देवयजः=देवताओं के पूजनेवाले

अन्वयः शब्दार्थ

देवान्=देवताओं को
यान्ति=प्राप्त होते हैं
तु=और
मद्भक्ताः=मेरे भक्त
माम्=मुझको
अपि=ही
यान्ति=प्राप्त होते हैं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे प्रियदर्शन ! यद्यपि सब देवता मेरेही शरीर हैं और उनका पूजन भी मेराही पूजन है, परन्तु देवता में फल देने की सामर्थ्य नहीं है, मैंही अन्तर्यामीरूप होकर फल को देता हूं, देवता के पूजन में और मेरे पूजन में इतना भेद है कि, जो मेरे भक्त हैं और जो देवताओं के भक्त हैं, उन दोनों का फल पृथक् पृथक् होता है, मेरे भक्तको नित्य फल होता है, क्योंकि उसको विवेक है और देवताओं के भक्तको अनित्य फल होताहै, क्योंकि उसको विवेक नहीं है, इसी वास्ते देवताओं के भक्त अल्पबुद्धिवाले हैं, उनको फल भी तुच्छही मिलता है, और मेरे भक्त

को अविनाशी फल मिलता है, देवताओं के भक्त मर कर नाशी देवताओं को प्राप्त होते हैं और जो मेरे भक्त हैं, उनको इस लोकका सुख तो आपसे आपही प्राप्त होताहै, और उपासना के परिपाक होने पर वे शरीर त्याग पश्चात् मेरे स्वरूपको प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥

मूलम्।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् २४

पदच्छेदः।

अव्यक्तम्, व्यक्तिम्, आपन्नम्, मन्यन्ते, माम्, अबुद्धयः, परम्, भावम्, अजानन्तः, मम, अव्ययम्, अनुत्तमम्॥

अन्वयः शब्दार्थ
मम=मेरे
अव्ययम्=अविनाशी
अनुत्तमम्=सर्वोत्तम
परम्=श्रेष्ठ
भावम्=भावको
अजानन्तः=नहीं जानते हुये

अन्वयः शब्दार्थ
अबुद्धयः=मूर्खपुरुष
माम्=मुझ
अव्यक्तम्=अव्यक्तको
व्यक्तिम्=व्यक्तिको
आपन्नम्=प्राप्त हुआ
मन्यन्ते=मानते हैं

भावार्थ।

प्रश्न॥ यदि सबसे उत्तम फल आपके भजनकाही है तो फिर सबलोग आपकाही भजन क्यों नहीं करते

हैं ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जो अज्ञानी पुरुष हैं, वे मेरे अव्यक्त निर्गुण स्वरूपको जो सर्वका कारणरूप है नहीं जानते, किन्तु ऐसा जानते हैं कि, वसुदेवके गृह में मनुष्यादिकों की तरह मैं उत्पन्न हुआहूं, और एक मनुष्यमात्रहूं, क्योंकि उनको विवेक नहीं है, वे मूढ़ अज्ञानी मूर्ख हैं, विचारको आश्रयण करके मेरे परमानन्द चिद्घनरूपको नहीं जानते हैं, इसी कारण वे बार बार संसारसमुद्र में भ्रमतेही रहते हैं ॥ २४ ॥

मूलम् ।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् २५

पदच्छेदः ।

न, अहम्, प्रकाशः, सर्वस्य, योगमायासमावृतः, मूढः, अयम्, न, अभिजानाति, लोकः, माम्, अजम्, अव्ययम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
अहम्	=मैं
योगमाया-समावृतः	=योगमाया से ढका हुआ
सर्वस्य	=सबको
न प्रकाशः	=प्रकाशरूप नहीं होताहूं
+तस्मात्-कारणात्	=इसीकारण
अयम्	=यह
मूढः	=मूर्ख
लोकः	=मनुष्य
माम्	=मुझको

अजम्=अज
अव्ययम्=अविनाशी
न अभिजानाति=नहीं जानता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! मैं अपने निर्गुण सच्चिदानन्दरूप करके सबको प्रकाशमान नहीं होता हूं, किन्तु कोई एक जो मेरा अनन्यभक्त है, उसीके हृदय में मैं अपने स्वरूप को प्रकाशमान करता हूं, और जो मूढ़ अज्ञानीजन हैं, वे मेरे अज अव्यक्तरूप को नहीं जानते हैं, क्योंकि मेरी माया करके इनके हृदय आच्छादित होरहे हैं ॥ २५ ॥

मूलम् ।

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मान्तु वेद न कश्चन २६

पदच्छेदः ।

वेद, अहम्, समतीतानि, वर्तमानानि, च, अर्जुन, भविष्याणि, च, भूतानि, माम्, तु, वेद, न, कः + चन ॥

अन्वयः शब्दार्थ
अर्जुन=हे अर्जुन !
अहम्=मैं
समतीतानि=भूत
च=और

अन्वयः शब्दार्थ
वर्तमानानि=वर्तमान
च=और
भविष्याणि=भविष्य
भूतानि=प्राणियोंको

वेद=जानताहूं
तु=परन्तु
कश्चन=कोई भी
माम्=मुझको
न=नहीं
वेद=जानता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, जैसे इन्द्रजाल की माया इन्द्रजाली को मोहन नहीं करती है, वैसेही मुझ ईश्वरकी माया मुझको मोहन नहीं करती है, मैं लोकों को अपनी माया करके मोहन करताहुआ भी भूत, भविष्यत्, वर्तमानके सब भूतोंको जानताहूं, इसीवास्ते मेरा नाम मायावी भी है और मेरी कृपाके विना कोई भी मुझको नहीं जानसक्ता है, जिसपर मेरी कृपादृष्टि होती है, वही मुझको जानता है, विना अनन्यभक्ति के मेरी कृपादृष्टि नहीं होती है, इसीवास्ते भक्तिहीन मूढ़बुद्धिवाले मेरे स्वरूप को नहीं जानते हैं ॥ २६ ॥

मूलम्।

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप २७

पदच्छेदः।

इच्छाद्वेषसमुत्थेन, द्वन्द्वमोहेन, भारत, सर्वभूतानि, सम्मोहम्, सर्गे, यान्ति, परन्तप ॥

अन्वयः शब्दार्थ
भारत=हे अर्जुन !
परन्तप=हे श्रेष्ठ तप करनेवाले !
इच्छाद्वेषसमुत्थेन=रागद्वेष से उत्पन्न हुये

अन्वयः शब्दार्थ
द्वन्द्वमोहेन=द्वन्द्वमोह करके
सर्वभूतानि=सब प्राणी
सर्गे=उत्पन्न होतेही
सम्मोहम्=अज्ञानको
यान्ति=प्राप्त होते हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे गुडाकेश ! इच्छा रागद्वेषादिकों करके उत्पन्न हुआ जो मोह है उस करके अहं सुखी अहं दुःखी इस द्वन्द्व करके संपूर्ण भूत मोह को प्राप्त होते हैं और स्थूल देहको प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥

मूलम्।

येषामन्तर्गतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः २८

पदच्छेदः।

येषाम्, अन्तर्गतम्, पापम्, जनानाम्, पुण्यकर्मणाम्, ते, द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः, भजन्ते, माम्, दृढव्रताः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
येषाम्=जिन
पुण्यकर्मणाम्=पुण्यकारी

अन्वयः शब्दार्थ
जनानाम्=पुरुषोंका
पापम्=पाप
अन्तर्गतम्=नाश हुआ है

ते=वे
द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः=द्वन्द्वमोह से छूटे हुये
दृढव्रताः=दृढ़व्रतवाले
माम्=मुझको
भजन्ते=भजते हैं

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ यदि सब प्राणी मोहको ही प्राप्त होते हैं तब फिर जो तुमको भजते हैं, वे क्यों मोहको नहीं प्राप्त होते हैं, वेभी तो सर्व के अन्तर्गतही हैं ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे सौम्य ! अनेक जन्मों के पुण्यों के पुञ्ज करके जिनके पाप समाप्त होगये हैं, वे द्वन्द्वमोह से रहित होकर आदरपूर्वक मेरा भजन करते हैं ॥ २८ ॥

मूलम् ।

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् २९

पदच्छेदः ।

जरामरणमोक्षाय, माम्, आश्रित्य, यतन्ति, ये, ते, ब्रह्म, तत्, विदुः, कृत्स्नम्, अध्यात्मम्, कर्म, च, अखिलम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
ये	जो लोग
माम्	मुझको
आश्रित्य	आश्रय करके
जरामरणमोक्षाय	जरा और मरण से छूटने के लिये

यतन्ति=यतन करते हैं
ते=वे पुरुष
तत् ब्रह्म=उस ब्रह्मको
च=और
कृत्स्नम्=संपूर्ण
अध्यात्मम्=अध्यात्म विद्या को
+ च=और
अखिलम्=संपूर्ण
कर्म=कर्म को
विदुः=जानते हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! संसाररूपी दुःख के उच्छेदन के लिये जो संसार को दुःखरूप जानकर वैराग्य को प्राप्त होते हैं, वे मुझ वासुदेव सगुणमूर्ति का ध्यान करते हैं, और इतर कर्त्तव्यता को त्याग करके मेरे शरण को प्राप्त होते हैं और जरामरण से छूटने के लिये वे अतियत्न करते हैं, वेही मायाके अधिष्ठान निर्गुण ब्रह्मको जानते हैं, और साकल्यरूपता करके जानते हैं, और वही आध्यात्मिक को जानते हैं, और वही संपूर्ण कर्मों को भी जानते हैं ॥ २९ ॥

मूलम्।

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञञ्च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्मुक्तचेतसः ३०

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

साधिभूताधिदैवम्, माम्, साधियज्ञम्, च, ये, विदुः, प्रयाणकाले, अपि, च, माम्, ते, विदुः, मुक्तचेतसः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

ये=जो
माम्=मुझको
साधिभूताधिदैवम्=सहित अधिभूत और अधिदैव के
च=और
साधियज्ञम्=सहित यज्ञके
विदुः=जानते हैं

अन्वयः शब्दार्थ

ते=वे
मुक्तचेतसः=समाहितचित्तवाले पुरुष
माम्=मुझको
प्रयाणकाले=मरणसमय
अपि=भी
विदुः=जानते हैं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे सौम्य ! जो अधिभूत अधिदैवके सहित मेरा चिन्तन करते हैं और अधियज्ञके सहित मेरा चिन्तन करते हैं, वे पूर्वले जन्मों के संस्कारोंकी पाटवता से प्राणों के त्यागकाल में अत्यन्त व्यग्रतामें भी मेरी अनुग्रहसे वे मुझको ही चिन्तन करते हैं, इसलिये वही कृतार्थ होते हैं, इतर नहीं ॥ ३० ॥

सातवां अध्याय समाप्त ।

आठवां अध्याय ।

—:०:—

मूलम् ।

अर्जुन उवाच-

किन्तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतञ्च किम्प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते १

पदच्छेदः ।

किम्, तत्, ब्रह्म, किम्, अध्यात्मम्, किम्, कर्म, पुरुषोत्तम, अधिभूतम्, च, किम्, प्रोक्तम्, अधिदैवम्, किम्, उच्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

पुरुषोत्तम=हे उत्तमपुरुष !
तत्=वह
ब्रह्म=ब्रह्म
किम्=क्या है
अध्यात्मम्=अध्यात्म
किम्=क्या है
कर्म=कर्म
किम्=क्या है

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
अधिभूतम्=अधिभूत
किम्=क्या
प्रोक्तम्=कहागया है
+ च=और
अधिदैवम्=अधिदैव
किम्=क्या
उच्यते=कहाजाता है

भावार्थ ।

सप्तम अध्यायके अन्त में भगवान् ने सात पदार्थों को सूत्ररूप करके कहाहै, उन्हीं सात पदार्थों की टीका

रूप करके अष्टम अध्यायको भगवान् कहते हैं और उन सात पदार्थों के अर्थ जानने के लिये अर्जुन प्रश्न करता है (१) हे भगवन्! जो आपने ज्ञेयरूप करके ब्रह्मको कहा है सो क्या आपने सोपाधिक ब्रह्मको कहा है अथवा निरुपाधिक ब्रह्मको कहा है (२) जो आपने आध्यात्मिक करके कहा है सो श्रोत्रादि करणग्राम का नाम आध्यात्मिक है अथवा प्रत्यक्चेतनका नाम आध्यात्मिक है (३) और जो आपने कर्म कहा है वह यज्ञादिक कर्म है अथवा और कोई कर्म है (४) और जो आपने अधिभूत कहा है सो क्या अधिभूत पद करके पांचों भूतोंका कार्य ग्रहण करना चाहिये या कि यावत् मायिक कार्य जातिका ग्रहण करना चाहिये (५) और जो आपने अधिदैव पद कहा है सो क्या उस पद करके देवता का ध्यान लेना या सूर्यमण्डल में स्थित पुरुषका ध्यान करना चाहिये ॥ १ ॥

मूलम्।

अधियज्ञः कथं कोत्र देहेऽस्मिन् मधुसूदन।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोसि नियतात्मभिः २

पदच्छेदः।

अधियज्ञः, कथम्, कः, अत्र, देहे, अस्मिन्, मधुसूदन, प्रयाणकाले, च, कथम्, ज्ञेयः, असि, नियतात्मभिः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

मधुसूदन=हे कृष्ण !
अस्मिन्=इस
देहे=देह में
कः=कौन
अधियज्ञः=यज्ञ का स्वामी है
च=और
अत्र=इस देहमें

अन्वयः शब्दार्थ

प्रयाणकाले=मरणसमय
नियतात्मभिः=समाहित चित्तवालों करके
कथम्=किसप्रकार
ज्ञेयः असि=जानने योग्य है तू

भावार्थ।

(६) हे मधुसूदन ! अधियज्ञ करके किसी एक देवताविशेषका ग्रहण करना चाहिये या परब्रह्म का ग्रहण करना चाहिये, और वह अधियज्ञ किसप्रकार करके चिन्तनीय है यानी तादात्म्यता करके या अत्यन्त भेद करके चिन्तनीय है, और वह इसी देह में रहता है या देहसे बाहर कहीं और रहता है (७) मृत्युकालमें जबकि सब इन्द्रियग्राम व्यग्र होजाती हैं और चित्तकी स्थिरताकाभी अभाव होजाता है, तब कैसे तुम्हारा ध्यान होसक्ता है, इस मेरे संदेह को आप कृपा करके दूर कीजिये ॥ २ ॥

मूलम्।

श्रीभगवानुवाच-

अक्षरं परमं ब्रह्म स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ३

पदच्छेदः ।

अक्षरम्, परमम्, ब्रह्म, स्वभावः, अध्यात्मम्, उच्यते, भूतभावोद्भवकरः, विसर्गः, कर्मसंज्ञितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
परमम्	परम	भूतभावोद्भवकरः	प्राणियों की उत्पत्ति का उत्पन्न करने वाला
ब्रह्म	ब्रह्म	विसर्गः	यज्ञविषय दान यानी होमद्रव्य
अक्षरम्	अविनाशी	कर्मसंज्ञितः	कर्मसंज्ञक
उच्यते	कहा जाता है	+ उच्यते	कहा जाता है
स्वभावः	जीवरूप		
अध्यात्मम्	अन्तःकरण का स्वामी		
+ उच्यते	कहा जाता है		

भावार्थ ।

अर्जुन के प्रश्नके उत्तरको भगवान् क्रमसे कहते हैं कि, हे पार्थ ! ब्रह्मपद करके निरुपाधिक ब्रह्मका मैंने

कथन किया है जो स्वयं प्रकाश चेतन है वही देह देह के प्रति अन्तरात्मारूप करके स्थित है, और स्वभावपद करके स्वस्वरूप प्रत्यक् चेतनही आध्यात्मिक शब्द कहाहै इन्द्रियग्राम नहीं, और कर्मशब्द करके यज्ञ होमादिक कर्म कहा है, और देवताको निमित्त करके जो पुरोडाशादि वस्तु का अग्नि में त्याग किया जाता है, वही संपूर्ण भूतों की उत्पत्ति का कारण यागादि कर्म है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ४

पदच्छेदः ।

अधिभूतम्, क्षरः, भावः, पुरुषः, च, अधिदैवतम्, अधियज्ञः, अहम्, एव, अत्र, देहे, देहभृताम्, वर ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
देहभृतांवर	=हे देहधारियों में श्रेष्ठ !	पुरुषः	=देहरूपी पुर में रहनेवाला पुरुष
अधिभूतम्	=अधिभूत	अधिदैवतम्	=अधिदैवत है
क्षरः भावः	=नाशवान् भाव वाला है	च	=और
च	=और		

अधियज्ञः=अधियज्ञ
अहम् एव=मैंही
अत्र=इस
देहे=देहबिषे
+ अस्मि=स्थित हूं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! जितना प्राणीमात्रहै, वह सब उत्पत्तिवाला मायिक है, और उसी को अधिभूत पद करके कहा है, और उसीका नाम विनाशीभाव है, हे देहधारियों में श्रेष्ठ, अर्जुन! संपूर्ण शरीरों में जो रहे वह पुरुषहै, वही हिरण्यगर्भ है, वही सूर्यमण्डलमें स्थित अधिदैवत है, वही संपूर्ण प्राणियों की इन्द्रियों का अनुग्राहक है यानी उनपर अनुग्रह करनेवाला हैं, और जो यज्ञोंबिषे रहे वही अधियज्ञ है, वह मैंही हूं, मैंही प्रतिशरीर बिषे स्थितहूं ॥ ४ ॥

मूलम्।

अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ५

पदच्छेदः।

अन्तकाले, च, माम्, एव, स्मरन्, मुक्त्वा, कलेवरम्, यः, प्रयाति, सः, मद्भावम्, याति, न, अस्ति, अत्र, संशयः॥

अन्वयः शब्दार्थ अन्वयः शब्दार्थ

च=और
अन्तकाले=अन्तसमय

यः=जो
माम्=मुझको
स्मरन्=यादकरताहुआ
कलेवरम्=शरीरको
मुक्त्वा=छोड़कर
प्रयाति=मरता है
सः=वह
एव=ही
मद्भावम्=मेरे भावको
याति=प्राप्त होता है
अत्र=इसबिषे
संशयः=संदेह
न अस्ति=नहीं है

भावार्थ।

भगवान् अब सप्तम प्रश्नके उत्तर को कहते हैं कि, हे अर्जुन ! अन्तकाल में अर्थात् मरणकाल में जब कि इन्द्रिय सब व्यग्र होजाती हैं, उस काल में जो मेरे सगुण अथवा निर्गुणरूप का स्मरण करता है, वह उसी मेरे रूपको प्राप्त होता है अर्थात् सगुणरूप का ध्यान करनेवाला ब्रह्मलोक को प्राप्त होकर ब्रह्माके साथ मुक्त होजाता है, और निर्गुणरूपका उपासक इसी जन्म में ब्रह्मबिषे लीन होजाता है ॥ ५ ॥

मूलम्।

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ६

पदच्छेदः।

यम्, यम्, वा, अपि, स्मरन्, भावम्,त्यजति, अन्ते, कलेवरम्, तम्, तम्, एव, एति, कौन्तेय, सदा, तद्भावभावितः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

वा अपि=और
कौन्तेय=हे अर्जुन !
अन्ते=अन्तसमय
यम्‌यम्=जिसजिस
भावम्=भाव यानी देवता को
+ सः=वह
स्मरन्=याद करता हुआ

अन्वयः शब्दार्थ

कलेवरम्=शरीरको
त्यजति=त्यागता है
सदा=निरन्तर
तद्भाव-भावितः=उस देवता को स्मरणकरताहुआ
तम् तम्=उसी उसी देवताको
एव=ही
एति= प्राप्त होता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! केवल मद्गोचर ही यह नियम नहीं है, किंतु सर्वविषयक यह नियम है कि, जिस जिस देवताविशेष का अन्तकाल में पुरुष स्मरण करके अपने शरीर को त्यागता है उसी उसी देवताविशेष को वह प्राप्त होताहै, क्योंकि उसी देवता विशेष की उपासना करके उसका चित्त वासित है अर्थात् उसी देवता की उपासना की वासना उसके चित्तमें भरी हुई है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयः ७

पदच्छेदः ।

तस्मात्, सर्वेषु, कालेषु, माम्, अनुस्मर, युध्य, च, मयि, अर्पितमनोबुद्धिः, माम्, एव, एष्यसि, असंशयः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

तस्मात्=इसलिये
सर्वेषुकालेषु=सब कालों में
माम्=मुझको
अनुस्मर=स्मरण कर
च=और
युध्य=युद्धकर
मयि=मेरे में

अन्वयः **शब्दार्थ**

अर्पित-मनोबुद्धिः=अर्पण कियाहै मन और बुद्धि जिसने ऐसा तू
माम्=मुझको
एव=ही
असंशयम्=निस्संदेह
एष्यसि=प्राप्त होगा

भावार्थ ।

इसलिये तू मद्विषयक भावना की उत्पत्ति की सिद्धिके लिये पहिले से ही मुझ हरिका स्मरण कर और मुझमें ही अपने मन, बुद्धिको समर्पण करके जब तू मेरा स्मरण करेगा तब निश्चय करके मुझको ही तू प्राप्त होवेगा, इसमें संशय नहीं है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ८

पदच्छेदः ।

अभ्यासयोगयुक्तेन, चेतसा, न, अन्यगामिना, परमम्, पुरुषम्, दिव्यम्, याति, पार्थ, अनुचिन्तयन् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

पार्थ=हे अर्जुन !

अभ्यासयोगयुक्तेन=अभ्यास और योगकरकेयुक्त

न अन्यगामिना=नहीं दूसरी जगह गया है जो ऐसे

चेतसा=चित्त करके

अन्वयः शब्दार्थ

अनुचिन्तयन्=स्मरण करता हुआ

दिव्यम्=अलौकिक

परमम्=उत्तम

पुरुषम्=पुरुषको

याति=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

अर्जुन के सात प्रश्नों के उत्तर को कहकर अब भगवान् भगवत् चिन्तन के फलको कहते हैं कि, हे अर्जुन ! भगवत् के चिन्तनका अभ्यासरूप जो योग है, उस योग करके युक्त जिनके चित्त हैं अर्थात् जिनके चित्त भगवत् से अन्यगामी नहीं हैं, ऐसे उपासक मुमुक्षु परम दिव्य पुरुषको ही प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

मूलम् ।

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनु-

स्मरेद्यः । सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ९

पदच्छेदः ।

कविम्, पुराणम्, अनुशासितारम्, अणोः, अणीयांसम्, अनुस्मरेत्, यः, सर्वस्य, धातारम्, अचिन्त्यरूपम्, आदित्यवर्णम्, तमसः, परस्तात् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
कविम्	=सर्वज्ञ है जो	अचिन्त्यरूपम्	=नहीं ख्यालमें आता है जो
पुराणम्	=पहिलेसे है जो	आदित्यवर्णम्	=सूर्यवत् है रूप जिसका
अनुशासितारम्	=शिक्षा देनेवाला है जो	तमसः	=अन्धकारयानी अज्ञान से
अणोरणीयांसम्	=सूक्ष्म से सूक्ष्म है जो	परस्तात्	=परे है जो ऐसेको
सर्वस्य	=सबका	यः	=जो पुरुष
धातारम्	=धारण करने वाला है जो	अनुस्मरेत्	=स्मरण करे

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ ।

भगवान् फिर चिन्तन करने योग्य ब्रह्मको नाना विशेषणों करके कथन करते हैं–कैसा वह ब्रह्म है ॥

कविम् ॥ क्रान्तदर्शी यानी सर्वज्ञ है जो ॥ पुराणम् ॥ अनादिकाल का है जो ॥ अनुशासितारम् ॥ सारे जगत्का नियन्ता है जो ॥ अणोरणीयांसम् ॥ सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है जो ॥ सर्वस्य धातारम् ॥ सम्पूर्ण जगत्का धारण करनेवाला है जो ॥ अचिन्त्यरूपम् ॥ नहीं ख़्याल में आता है जो ॥ आदित्यवर्णम् ॥ सूर्य की तरह सम्पूर्ण जगत्का प्रकाशक है जो ॥ तमसः परस्तात् ॥ अज्ञानसे भी परे है जो, ऐसे ब्रह्मका स्मरण जो पुरुष करता है ॥ ९ ॥

मूलम्।

प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव। भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् १०

पदच्छेदः।

प्रयाणकाले, मनसा, अचलेन, भक्त्या, युक्तः, योगबलेन, च, एव, भ्रुवोः, मध्ये, प्राणम्, आवेश्य, सम्यक्, सः, तम्, परम्, पुरुषम्, उपैति, दिव्यम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

एव=तो
सः=वह
प्रयाणकाले=अन्तकाल में

अन्वयः शब्दार्थ

अचलेन=स्थिर
मनसा=मन करके
च=और
योगबलेन=योगबल करके

+ च=और
भक्त्या=भक्ति से
युक्तः=युक्त होता हुआ
प्राणम्=प्राणको
भ्रुवोः=भौंहों के
मध्ये=बीच में
सम्यक्=भलीप्रकार से
आवेश्य=ठहरा करके
तम्=उस
परम्=श्रेष्ठ
दिव्यम्=दिव्य
पुरुषम्=पुरुषको
उपैति=प्राप्त होता है

भावार्थ।

और मरणकाल में अतिभक्ति करके युक्त होकर और योगबलसे दोनों भौंहों के मध्यमें सम्यक् प्राणों को स्थिर करके पूर्वोक्त गुणों करके युक्त परमात्माका जो चिन्तन करता है, वह उसी दिव्य अलौकिक पुरुष को प्राप्त होता है ॥ १० ॥

मूलम्।

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ११

पदच्छेदः।

यत्, अक्षरम्, वेदविदः, वदन्ति, विशन्ति, यत्, यतयः, वीतरागाः, यत्, इच्छन्तः, ब्रह्मचर्यम्, चरन्ति, तत्, ते, पदम्, संग्रहेण, प्रवक्ष्ये ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

यत्=जिसको
वेदविदः=वेदकेजाननेवाले
अक्षरम्=अक्षर
वदन्ति=कहते हैं
+ च=और
यत्=जिसमें
वीतरागाः=विगतराग
यतयः=यतीलोग
विशन्ति=प्रवेश करते हैं
+ च=और

अन्वयः **शब्दार्थ**

यत्=जिसको
इच्छन्तः=इच्छाकरते हुये पुरुष
ब्रह्मचर्यम्=ब्रह्मचर्यको
चरन्ति=धारण करते हैं
तत्पदम्=उस पदको
ते=तेरेलिये
संग्रहेण=संक्षेपसे
प्रवक्ष्ये=कहूंगा

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! वेदके वेत्तालोग जिस ब्रह्मको अक्षर यानी अविनाशी कहते हैं, और वीतराग यती पुरुष मरकर जिसमें लयको प्राप्त होते हैं, और जिसकी प्राप्तिकी इच्छा करके नैष्ठिक ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य को धारण करते हैं, उस पदको मैं तुम्हारे प्रति संक्षेपसे कहूंगा ॥ ११ ॥

मूलम् ।

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनःप्राणमास्थितोयोगधारणाम् १२

पदच्छेदः।

सर्वद्वाराणि, संयम्य, मनः, हृदि, निरुध्य, च, मूर्ध्नि, आधाय, आत्मनः, प्राणम्, आस्थितः, योगधारणाम्॥

अन्वयः शब्दार्थ

सर्वद्वाराणि=सब द्वारों को
संयम्य=रोक करके
च=और
मनः=मनको
हृदि=हृदयमें
निरुध्य=रख करके
+ च=और

अन्वयः शब्दार्थ

मर्ध्नि=मस्तक में
आत्मनः=अपने
प्राणम्=प्राणोंको
आधाय=धारण करके
योगधारणाम्=योगधारणा में
आस्थितः=स्थितहोता हुआ

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोकसे है)

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे मित्र! सम्पूर्ण इन्द्रियों के द्वारों को रोक करके और भोगों में दोषदृष्टि रख करके, वैराग्य और अभ्यासके बलसे मनकी वृत्तिका निरोध करके और योग की क्रियाद्वारा प्राणों को दोनों भौंहों के बीच में स्थापन करके, योगधारणा में स्थित होवे॥ १२॥

मूलम्।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् १३

पदच्छेदः।

ॐम्, इति, एकाक्षरम्, ब्रह्म, व्याहरन्, माम्, अनुस्मरन्, यः, प्रयाति, त्यजन्, देहम्, सः, याति, परमाम्, गतिम्॥

अन्वयः शब्दार्थ

यः=जो
ॐम्=ॐम्
इति=ऐसा
एकाक्षरम्=एकाक्षर
ब्रह्म=ब्रह्मको
व्याहरन्=उच्चस्वर से उच्चारण करताहुआ
+ च=और
माम्=मुझको

अन्वयः शब्दार्थ

अनुस्मरन्=याद करता हुआ
+ च=और
देहम्=देहको
त्यजन्=त्यागता हुआ
प्रयाति=जाता है
सः=वह
परमाम्=श्रेष्ठ
गतिम्=गतिको
याति=प्राप्त होता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे सौम्य! सर्वत्र व्यापक जो ब्रह्म है, उसका वाचक जो ॐकार शब्द है, उस को भलीप्रकार स्मरण करताहुआ मूर्धनी नाडी द्वारा प्राणों का त्याग करके जो धीर योगी गमन करताहै, वह देवयान मार्ग करके ब्रह्मलोक में प्राप्त होकर ब्रह्माके साथ भोगों को भोगकर फिर ब्रह्माके साथ मुक्त होजाता है॥ १३॥

मूलम्।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः १४

पदच्छेदः।

अनन्यचेताः, सततम्, यः, माम्, स्मरति, नित्यशः, तस्य, अहम्, सुलभः, पार्थ, नित्ययुक्तस्य, योगिनः॥

अन्वयः शब्दार्थ

अनन्यचेताः=नहीं है दूसरे में चित्त जिसका ऐसा
यः=जो
माम्=मुझको
सततम्=निरन्तर
+ च=और
नित्यशः=प्रतिदिन

अन्वयः शब्दार्थ

स्मरति=याद करता है
पार्थ=हे अर्जुन!
तस्य=उस
नित्ययुक्तस्य=नित्ययुक्त
योगिनः=योगी को
अहम्=मैं
सुलभः=सुलभ प्राप्त हूं

भावार्थ।

भगवान् कहतेहैं कि,हे पार्थ! मेरेही में है वृत्ति जिसकी और तुच्छ देवताओं में नहीं है चित्त जिसका, उसीका नाम अनन्यचेता है, सो ऐसा अनन्यचित्तवाला यावत्पर्यन्त जीता है मेराही स्मरण करताहै, और जब वह अपनी इच्छा करके अथवा पराधीनता करके देहका

त्याग करताहै तब उसको मैं अनायाससेही प्राप्त होताहूं, और इतरोंको मैं अतिकष्ट से भी नहीं प्राप्त होताहूं ॥ १४ ॥

मूलम् ।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः १५

पदच्छेदः ।

माम्, उपेत्य, पुनः, जन्म, दुःखालयम्, अशाश्वतम्, न, आप्नुवन्ति, महात्मानः, संसिद्धिम्, परमाम्, गताः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
परमाम्	उत्तम
संसिद्धिम्	संसिद्धिको
गताः	प्राप्त हुये
महात्मानः	महात्मा पुरुष
माम्	मुझको
उपेत्य	प्राप्त होकर
पुनः	फिर
दुःखालयम्	दुःखोंका घर है जो
+च	और
अशाश्वतम्	अनित्य है जो ऐसे
जन्म	जन्मको
न आप्नुवन्ति	नहीं प्राप्त होते हैं

भावार्थ ।

हे अर्जुन ! जो मुमुक्षु हैं, वे मेरे स्वरूप को प्राप्त होकर फिर दुःखरूपी देह को नहीं प्राप्त होते हैं,

और जो शुद्ध अन्तःकरणवाले महात्मा ज्ञानी हैं, वे जीते जीहीं सबसे उत्कृष्ट जो जीवन्मुक्ति है उसको प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥

मूलम्।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते १६

पदच्छेदः।

आब्रह्मभुवनात्, लोकाः, पुनरावर्तिनः, अर्जुन, माम्, उपेत्य, तु, कौन्तेय, पुनः, जन्म, न, विद्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ
अर्जुन=हे अर्जुन !
आब्रह्मभुवनात्=ब्रह्मलोकसे लेकर
लोकाः=सब लोक
पुनरावर्तिनः=पुनर्जन्मवाले हैं
कौन्तेय=हे अर्जुन !

अन्वयः शब्दार्थ
माम्=मुझको
उपेत्य=प्राप्तहोकर
पुनः=फिर
जन्म=जन्मको
तु=कभी
न विद्यते=नहीं प्राप्त होता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! जो परमेश्वर की शरण को प्राप्त हुये हैं, उनको आत्मज्ञान की प्राप्तिद्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है, और जो परमेश्वर से

विमुख हैं, उनकी संसार में पुनरावृत्ति होती है, और ब्रह्मलोकपर्यन्त जितने लोक हैं यानी भोगकी भूमि हैं, उन सब लोकों में वे कर्मों करके पुनरावृत्तिको प्राप्त होते हैं, और जो मुझको प्राप्त हुये हैं, हे कौन्तेय! वे पुनरावृत्ति को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥

मूलम्।

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः १७

पदच्छेदः।

सहस्रयुगपर्यन्तम्, अहः, यत्, ब्रह्मणः, विदुः, रात्रिम्, युगसहस्रान्ताम्, ते, अहोरात्रविदः, जनाः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

+ ये=जो
अहोरात्रविदः=दिन और रात्रिके जाननेवाले यानी गणित करनेवाले
जनाः=लोग
+ सन्ति=हैं
ते=वे
यत्=जो
ब्रह्मणः=ब्रह्माका

अन्वयः **शब्दार्थ**

अहः=एक दिन है
+ तत्=उसको
सहस्रयुगपर्यन्तम्=हज़ार युगके बराबर
+ च=और
+ ब्रह्मणः=ब्रह्मा की
रात्रिम्=एक रातको
युगसहस्रान्ताम्=हज़ार युगके बराबर
विदुः=जानते हैं

भावार्थ।

हे अर्जुन ! एकहज़ार युगोंकी चौकड़ीका व्यतीत होना ब्रह्माके एकदिनके बराबर है अर्थात् चारों युग जब एकहज़ार दफ़ा व्यतीत होते हैं, तब उतना काल ब्रह्माका एक दिन है, ऐसा कालके गणित करनेवाले मानते हैं, और उतनेही काल के परिमाण वाले ब्रह्माकी रात्रि मानते हैं ॥ १७ ॥

मूलम्।

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके १८

पदच्छेदः।

अव्यक्तात्, व्यक्तयः, सर्वाः, प्रभवन्ति, अहरागमे, रात्र्यागमे, प्रलीयन्ते, तत्र, एव, अव्यक्तसंज्ञके ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

अहरागमे=ब्रह्माके दिनके उदय होनेपर
सर्वाः=संपूर्ण
व्यक्तयः=भूत
अव्यक्तात्=कारण ब्रह्मसे यानी ब्रह्माकी निद्राअवस्था से
प्रभवन्ति=प्रकट होते हैं

अन्वयः **शब्दार्थ**

+ च=और
रात्र्यागमे=ब्रह्माकी रात्रि के आने पर
तत्र एव=उसही
अव्यक्तसंज्ञके=कारण ब्रह्ममें यानी ब्रह्मा की स्वापावस्था में
प्रलीयन्ते=लय होजाते हैं

भावार्थ ।

हे अर्जुन ! ब्रह्माके दिनके उदय होनेपर कारणरूप अव्यक्तसे यानी माया से संपूर्ण भूतोंकी व्यक्तियां प्रकट होती हैं, और फिर ब्रह्माकी रात्रिके आनेपर उसी कारणरूप अव्यक्त में सब भूतोंकी व्यक्तियां लीन होजाती हैं ॥ १८ ॥

मूलम् ।

भूतग्रामः स एवायं भूत्वाभूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे १९

पदच्छेदः ।

भूतग्रामः, सः, एव, अयम्, भूत्वा, भूत्वा, प्रलीयते, रात्र्यागमे, अवशः, पार्थ, प्रभवति, अहरागमे ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अयम्=यह
भूतग्रामः=भूतोंका समूह
भूत्वाभूत्वा=हो होकर
रात्र्यागमे=रात्रि के आनेपर
प्रलीयते=लय होजाताहै

अन्वयः शब्दार्थ

सः एव=सोई
पार्थ=हे अर्जुन !
अहरागमे=दिनके आनेपर
अवशः=परवश हुआ
प्रभवति=प्रकट होता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! पूर्वकालमें जो

भूतोंका समूह उत्पन्न होकर ब्रह्माकी रात्रि में लीन होजाता है, वही फिर उत्तरकल्प अर्थात् ब्रह्मा के दिन होनेपर उत्पन्न होताहै, तात्पर्य यह है कि, ब्रह्माके दिनमें सृष्टियां उत्पन्न होती रहती हैं, और ब्रह्मा की रात्रि में लीन होती रहती हैं, ऐसा चक्र सदा चलताही रहता है ॥ १९ ॥

मूलम्।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति २०

पदच्छेदः।

परः, तस्मात्, तु, भावः, अन्यः, अव्यक्तः, अव्यक्तात्, सनातनः, यः, सः, सर्वेषु, भूतेषु, नश्यत्सु, न, विनश्यति॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
तु=परन्तु	भावः=भाव है
तस्मात्=उस	सः=सो
अव्यक्तात्=प्रकृति से	अन्यः=विलक्षणहोताहुआ
यः=जो	सर्वेषु=सब
परः=परे	भूतेषु=प्राणियों के
सनातनः=सनातन	नश्यत्सु=नाश होनेपर
अव्यक्तः=इन्द्रियगोचर परमात्मा	न=नहीं
	विनश्यति=नाश होता है

भावार्थ।

जो भगवद्भक्ति से हीन हैं, उनको भगवान् ने पुनः पुनः जन्म मरणादिक दिखलाया है, और जो भगवद्भक्ति में निष्ठावाले हैं, उनको संसारका अभाव दिखलाया है, भगवान् कहते हैं कि, संपूर्ण चराचर जगत् का कारण जो माया है उसका भी जो कारणहै "न तस्य प्रतिमाऽस्ति" उसकी यानी परमात्मा की कोई भी मूर्ति नहीं है, इस श्रुतिप्रमाणसे वह मूर्ति से रहित अव्यक्त है, और इन्द्रियोंका भी अविषय है, क्योंकि रूपादिकों से रहित है, जो रूपादिवाला होता है, वही इन्द्रियों का विषय होताहै, और कल्पित होता है और जो कारण है वही संपूर्ण कार्यों में अनुगत है, यानी व्यापक है, और नित्य है, क्योंकि संपूर्ण भूतों के नाश होने पर भी उसका नाश नहीं होता है, और भूतों की उत्पत्ति होने से उसकी उत्पत्ति नहीं होती है, इसीसे वह विचारशक्तिसे बाहर है ॥ २० ॥

मूलम्।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम २१

पदच्छेदः।

अव्यक्तः, अक्षरः, इति, उक्तः, तम्, आहुः, परमाम्, गतिम्, यम्, प्राप्य, न, निवर्तन्ते, तत्, धाम, परमम्, मम॥

अन्वयः शब्दार्थ

+ यः=जो
अव्यक्तः=अव्यक्त
अक्षरः=अक्षर
इति=करके
उक्तः=कहागया है
तम्=उसको
परमाम्=परम
गतिम्=गति
आहुः=कहते हैं

अन्वयः शब्दार्थ

यम्=जिसको
प्राप्य=प्राप्त होकरके
न=नहीं
निवर्तन्ते=लौटते हैं
तत्=सोई
मम=मेरा
परमम्=उत्तम
धाम=धामहै

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! श्रुति स्मृतियों में जो भाव पदार्थ अक्षर और अव्यक्त कथन किया है, और फिर जिसको प्राप्त होकर लोग पुनः जन्मको नहीं प्राप्त होते हैं, वह मैंहूं, और मेराही स्वरूप है ॥ २१ ॥

मूलम्।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् २२

पदच्छेदः।

पुरुषः, सः, परः, पार्थ, भक्त्या, लभ्यः, तु, अनन्यया, यस्य, अन्तःस्थानि, भूतानि, येन, सर्वम्, इदम्, ततम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यस्य=जिसके
अन्तःस्थानि=अन्तर्गत
भूतानि=संपूर्ण भूत
+ सन्ति=स्थित हैं
तु=और
येन=जिसकरके
सर्वम्=संपूर्ण
इदम्=यह जगत्
ततम्=व्याप्त है

अन्वयः शब्दार्थ

पार्थ=हे अर्जुन!
सः=वह
परः=उत्तम
पुरुषः=पुरुष
अनन्यया=अनन्य
भक्त्या=भक्तिकरके
लभ्यः=प्राप्त होने योग्य है

भावार्थ।

हे अर्जुन! परमात्मा की प्राप्ति का साधन मुख्य मेरी भक्तिही है और प्रेमरूपी भक्ति करके अथवा ज्ञानरूपी भक्ति करके मैं लभ्य होताहूं, और करोड़ों कर्मों करकेभी मैं लभ्य नहीं होता हूं॥ २२॥

मूलम्।

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिञ्चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ २३

पदच्छेदः।

यत्र, काले, तु, अनावृत्तिम्, आवृत्तिम्, च, एव, योगिनः, प्रयाताः, यान्ति, तम्, कालम्, वक्ष्यामि, भरतर्षभ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

तु=और
यत्र=जिस
काले= मार्ग में
प्रयाताः=गयेहुये
योगिनः=योगीलोग
अनावृत्तिम्=अनावृत्ति
च=और

अन्वयः **शब्दार्थ**

आवृत्तिम्=आवृत्तिको
एव=निश्चयकरके
यान्ति=प्राप्त होते हैं
तम्=उस
कालम्=मार्गको
भरतर्षभ=हे अर्जुन !
वक्ष्यामि=मैं कहूंगा

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जिस मार्गको जाते हुये योगीजन पुनरावृत्तिको नहीं प्राप्त होते हैं, और जिस मार्गको जाकर पुनरावृत्तिको प्राप्त होते हैं, उन दोनों मार्गोंको हे भरतवंशमें श्रेष्ठ ! मैं तुम्हारे प्रति कहूंगा ॥ २३ ॥

मूलम्।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः २४

पदच्छेदः।

अग्निः, ज्योतिः, अहः, शुक्लः, षण्मासाः, उत्तरायणम्, तत्र, प्रयाताः, गच्छन्ति, ब्रह्म, ब्रह्मविदः, जनाः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अग्निः=अग्निका स्वामी पहिला मार्ग है

ज्योतिः=तेजका स्वामी दूसरा मार्ग है यानी उसके आगे है

अहः=दिनकाअभिमानी देवता तीसरा मार्ग है यानी उससे आगे है

शुक्लः=शुक्लपक्षका स्वामी चौथा मार्गहै यानी उससे आगे है

अन्वयः शब्दार्थ

षण्मासाः उत्तरायणम्=षण्मास उत्तरायण का स्वामी पञ्चम मार्ग है यानीउस से आगे है

तत्र=उसमार्ग में

प्रयाताः=पहुँचेहुये

ब्रह्मविदः=ब्रह्मज्ञानी

जनाः=पुरुष

ब्रह्म=ब्रह्मको

गच्छन्ति=प्राप्त होते हैं

भावार्थ।

अग्नि और ज्योति जो मूलमें दो शब्द हैं, उन दोनों करके अर्चि अभिमानी देवताका ग्रहण है, और दिन अभिमानी जो देवताहै, शुक्लपक्ष अभिमानी जो देवता है, षण्मास उत्तरायण अभिमानी जो देवताहै, ये सब देवता अपने अपने मार्ग से योगीको यानी अपने उपासक को क्रम से ब्रह्मलोक में प्राप्त करते हैं, परन्तु ब्रह्मज्ञानी इन मार्गों में नहीं जाता है, वह

शरीर त्यागतेही ब्रह्म में लय होजाता है ॥ २४ ॥

मूलम्।

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते २५

पदच्छेदः।

धूमः, रात्रिः, तथा, कृष्णः, षण्मासाः, दक्षिणायनम्, तत्र, चान्द्रमसम्, ज्योतिः, योगी, प्राप्य, निवर्तते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
तथा	वैसेही
धूमः	धूमाभिमानी देवता का लोक है जो
रात्रिः	रात्र्यभिमानी देवता का लोक है जो
कृष्णः	कृष्णपक्षाभिमानी देवता का लोक है जो
षण्मासाः	छह मास
दक्षिणायनम्	दक्षिणायन अभिमानी देवता का लोक है जो
तत्र	उसमें
योगी	अग्निहोत्रादि कर्मों का करनेवाला
चान्द्रमसम्	चन्द्रमा सम्बन्धी
ज्योतिः	स्वर्गलोक को
प्राप्य	प्राप्त होकरके
निवर्तते	लौटआता है

भावार्थ ।

धूम और रात्रि अभिमानी जो देवताहै, कृष्णपक्ष अभिमानी जो देवता है, और षणमास दक्षिणायन अभिमानी जो देवता है, इन सब देवताओं का उपासक दक्षिणायनमार्ग होकर चन्द्रलोकको जाता है, और वहांपर भोगों को भोगकर फिर इसी लोकमें लौट आता है ॥ २५ ॥

मूलम् ।

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्यययावर्तते पुनः २६

पदच्छेदः ।

शुक्लकृष्णे, गती, हि, एते, जगतः, शाश्वते, मते, एकया, याति, अनावृत्तिम्, अन्यया, आवर्तते, पुनः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

हि=क्योंकि
शुक्लकृष्णे=शुक्ल और कृष्ण
एते=ये दोनों
जगतः=संसारके
गती=मार्ग
शाश्वते=अनादि
मते=मानेगये हैं

अन्वयः **शब्दार्थ**

एकया=एक करके
अनावृत्तिम्=अनावृत्तियानी मोक्षको
याति=प्राप्त होता है
+ च=और
अन्यया=दूसरे करके
पुनः=फिर
आवर्तते=लौटआताहै

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! शुक्ल और कृष्ण ये दो मार्ग संसारके अनादिसिद्ध हैं, क्योंकि संसार भी अनादि है, दोनों में से जो शुक्लमार्ग में जाते हैं, वे लौटकर नहीं आते हैं, और जो कृष्णमार्ग में जाते हैं वे लौटकर आते हैं॥ २६ ॥

मलम्।

नैते सृती पार्थ जानन् योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन २७

पदच्छेदः।

न, एते, सृती, पार्थ, जानन्, योगी, मुह्यति, कः, चन, तस्मात्, सर्वेषु, कालेषु, योगयुक्तः, भव, अर्जुन ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अर्जुन=हे अर्जुन !
कश्चन=कोई एकबिरला
योगी=यती यानी ज्ञानी योगी
एते=इनदोनों
सृती=मार्गोंको
जानन्=जानताहुआ
न=नहीं

अन्वयः शब्दार्थ

मुह्यति=मोह को प्राप्त होता है
तस्मात्=इसलिये
पार्थ=हे अर्जुन !
सर्वेषु=सब
कालेषु=कालों बिषे
योगयुक्तः=योगयुक्त
भव=हो तू

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! जो योगी इन दोनों मार्गों को जानता है वह फिर मोहको प्राप्त नहीं होता है, इसी कारण हे अर्जुन ! तूभी सर्वदाकाल योग करके युक्त हो यानी निरन्तर मेरे बिषे चित्तको एकाग्र कर ॥ २७ ॥

मूलम् ।

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् । अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् २८

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽक्षरब्रह्म
योगो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

वेदेषु, यज्ञेषु, तपःसु, च, एव, दानेषु, यत्, पुण्यफलम्, प्रदिष्टम्, अत्येति, तत्, सर्वम्, इदम्, विदित्वा, योगी, परम्, स्थानम्, उपैति, च, आद्यम् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**
वेदेषु=वेदों में

अन्वयः **शब्दार्थ**
यज्ञेषु=यज्ञों में

तपःसु=तपों में
च=और
दानेषु=दान देने में
एव=भी
यत्=जो
पुण्यफलम्=पुण्यफल
प्रदिष्टम्=कहाहै
तत्=उस
सर्वम्=सबको
इदम्=इसप्रकार
विदित्वा=जानकरके
योगी=योगी
अत्येति=उल्लङ्घनकर जाता है
च=और
आद्यम्=अनादि
परम्=उत्तम
स्थानम्=स्थानको
उपैति=प्राप्त होता है

भावार्थ।

भगवान् योग में श्रद्धाकी वृद्धि के लिये योग की स्तुति करते हैं और कहते हैं कि, हे पार्थ! वेदों में कहे जो व्रत हैं उनके धारण करनेसे जो फल होता है, और यज्ञों के करने से जो फल होता है, और तप के करने से जो फल होता है, वे सब फल अपने आत्माको ब्रह्मरूप करके जानने सेही होते हैं॥ २८॥

आठवां अध्याय समाप्त॥

नव अध्याय।

मूलम्।

श्रीभगवानुवाच-

इदन्तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् १

पदच्छेदः।

इदम्,तु, ते, गुह्यतमम्, प्रवक्ष्यामि, अनसूयवे, ज्ञानम्, विज्ञानसहितम्, यत, ज्ञात्वा, मोक्ष्यसे, अशुभात् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

इदम्=इस
गुह्यतमम्=अत्यन्तगोपनीय
विज्ञानसहितम्=अनुभव सहित
ज्ञानम्=ज्ञानको
ते=तुझ
अनसूयवे=ईर्षारहित के लिये

अन्वयः शब्दार्थ

प्रवक्ष्यामि=मैं कहूंगा
यत्=जिसको
ज्ञात्वा=जान करके
+ त्वम्=तू
तु=निस्संदेह
अशुभात्=अशुभ से यानीसंसार बन्धन से
मोक्ष्यसे=मुक्त होगा

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ! यह जो शब्द-

प्रमाणिक ज्ञान है अर्थात् शब्दही है प्रमाण जिसमें ऐसा जो ज्ञान है वह ज्ञान अतिशय करके गुह्य है अर्थात् गोपनीय है, उस ज्ञानको विज्ञान के सहित अर्थात् अपरोक्षज्ञान के सहित मैं तुम्हारे प्रति कहूंगा, क्योंकि तुम अनसूयुहो, गुणोंमें दोषके आरोपण करने का नाम अनसूया है, तुम ऐसे नहीं हो अर्थात् तुम को ऐसा नहीं फुरता है, कि मैं बार बार तेरे आगे अपनेही माहात्म्य को कहताहूं, इसलिये मैं तुम्हारे प्रति उस ज्ञानको कहूंगा जिस को प्राप्त होकर तुम संसारबन्धन से छूट जावोगे ॥ १ ॥

मूलम्।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् २

पदच्छेदः।

राजविद्या, राजगुह्यम्, पवित्रम्, इदम्, उत्तमम्, प्रत्यक्षावगमम्, धर्म्यम्, सुसुखम्, कर्तुम्, अव्ययम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

इदम्=यह ब्रह्मज्ञान
राजविद्या=विद्याओं में राजा है
राजगुह्यम्=गुप्तपदार्थों का राजा है

अन्वयः शब्दार्थ

पवित्रम्=शुद्ध है
उत्तमम्=श्रेष्ठ है
प्रत्यक्षावगमम्=प्रत्यक्ष फल वाला है
धर्म्यम्=धर्मयुक्त है

सुसुखम्=सुखपूर्वक
कर्तुम्=करनेयोग्य है
+ च=और
अव्ययम्=अविनाशी है

भावार्थ ।

भगवान् ज्ञान की स्तुति करते हैं—वह ज्ञान कैसा है ॥ राजविद्या ॥ सब विद्याओंका राजा है, अविद्या का नाशकहै, इसी ज्ञान करके ब्रह्मविद्या प्रकाशमान होती है, इस वास्ते यह ज्ञान संपूर्ण सारपदार्थों का भी सार है, और अनन्त जन्मों के पुण्यों करके भी प्राप्त होने को अतिदुर्लभ है, और करोड़ों जन्मों के पापकर्मोंका हेतु जो अविद्या है, उसका नाशक होने से भावरूप है, और जितने तीर्थादिक पृथिवी पर पवित्र हैं, उनका भी पवित्र करने वाला है, और अतीन्द्रिय धर्मादिकों की तरह इसमें किसीको संशय भी नहीं है और प्रत्यक्षही इसका फल है, क्योंकि ज्ञान के प्राप्त होतेही पुरुष ऐसा कहता है कि मैंने अब आत्मा को जानाहै, और अज्ञान मेरा नष्ट होगया है, इसीवास्ते यह साक्षी प्रत्यक्ष है, और करोड़ों जन्मों के पुण्यों करके प्राप्त होनेसे धर्म भी कहाजाता है, और गुरु उपदिष्ट-मार्ग करके सुख नहीं प्राप्त होने के योग्य हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ३

पदच्छेदः ।

अश्रद्दधानाः, पुरुषाः, धर्मस्य, अस्य, परन्तप, अप्राप्य, माम्, निवर्तन्ते, मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥

अन्वयः शब्दार्थ
परन्तप=हे अर्जुन !
अस्य=इस
धर्मस्य=धर्म के
अश्रद्दधानाः=श्रद्धा रहित
पुरुषाः=पुरुष

अन्वयः शब्दार्थ
माम्=मुझको
अप्राप्य=नहीं पाकरके
मृत्युसंसारवर्त्मनि=मृत्युरूपी संसार के मार्ग में
निवर्तन्ते=लौटआते हैं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जो संसार में नास्तिक हैं, और जिनको आत्मज्ञान में और उसके साधनों में और धर्मों के फल में श्रद्धा नहीं है, और जो आसुरीसम्पदा में आरूढ़ हैं, और जो वेदको स्वतः प्रमाण नहीं मानते हैं, उनको मेरी भेदभक्ति भी दुर्लभ है, अभेदभक्ति को कौन कहे वह मुझ को न प्राप्त होकर वारंवार नरक की यातना को प्राप्त होते हैं, और संसारचक्र में पुनः पुनः भ्रमते ही रहते हैं, इसलिये उनका संग सर्वथा त्यागने ही योग्यहै ॥ ३ ॥

मूलम् ।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ४

पदच्छेदः।

मया, ततम्, इदम्, सर्वम्, जगत्, अव्यक्तमूर्तिना, मत्स्थानि, सर्वभूतानि, न, च, अहम्, तेषु, अवस्थितः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मया	मुझ	च	और
अव्यक्तमूर्तिना	निराकार करके	सर्वभूतानि	सबप्राणी
		मत्स्थानि	मुझमेंस्थितहैं
इदम्	यह	अहम्	मैं
सर्वम्	संपूर्ण	तेषु	उनमें
जगत्	संसार	न	नहीं
ततम्	व्याप्त है	अवस्थितः	स्थितहूं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! संपूर्ण भूत और भूतों का कार्यरूप जितना जगत् है, वह सब मुझ अधिष्ठानरूप चेतन करकेही व्याप्त है॥ प्रश्न॥ हे मित्र! तुझ परिच्छिन्न मूर्तिमान् करके कैसे सब जगत् व्याप्त है॥ उत्तर॥ सब इन्द्रियों से अतीत अपरिच्छिन्न जो मेरा प्रकाशस्वरूप है उस मेरे स्वरूप करके जगत् व्याप्त है, और संपूर्ण स्थावर जङ्गमरूप भूत मेरेही आश्रित हैं, जैसे कल्पित सर्प रज्जुके आश्रित होता है वैसेही कल्पित जगत् भी मेरेही आश्रित है, मैं उसके आश्रित नहीं हूं, जैसे कल्पित वस्तुके गुण दोषों के

साथ अधिष्ठान का लेप नहीं होताहै, वैसे मेरे साथ भी कल्पित जगत् के गुण दोषों का सम्बन्ध नहीं है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ५

पदच्छेदः ।

न, मत्स्थानि, भूतानि, पश्य, मे, योगम्, ऐश्वरम्, भूतभृत् , च, भूतस्थः, मम, आत्मा, भूतभावनः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

न=न
भूतानि=सब भूत
मत्स्थानि=मुझमेंस्थित हैं
च=और
न=न
अहम्=मै
भूतस्थः=भूतोंमेंस्थित हूं
मे=मेरे
योगम्=योगमाया को

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
ऐश्वरम्=ईश्वरताको
पश्य=देख तू
मम=मेरा
आत्मा=आत्मा
भूतभृत्=प्राणियोंका धारण करनेवाला
+ च=और
भूतभावनः=भूतोंका उत्पन्नकरनेवाला है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे सौम्य ! मुझमें अध्यस्त जो भूत हैं, वे वास्तवसे मुझमें नहीं हैं, जैसे आकाश में स्थित सूर्य के जल का भूतलके कम्पादिकों के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है, केवल प्रतीतमात्र है, हे अर्जुन ! तू प्राकृत बुद्धिको त्याग करके मेरे प्रभाव को देख, मैं किसीका भी आधेय नहींहूं, और न मैं किसीका आधारहूं, तब भी मैं सब में हूं, और सब मेरे में हैं, यही मेरी मायाहै, और जिसकारण मैं संपूर्ण भूतोंको भरण व धारण करताहूं इसी से मैं भूतभृत् हूं, और जिस कारण मैं भूतोंको उत्पन्न करता हूं इसी से मैं भूतभावन भी हूं, वास्तव से मेरा भूतों के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ६

पदच्छेदः ।

यथा, आकाशस्थितः, नित्यम्, वायुः, सर्वत्रगः, महान्, तथा, सर्वाणि, भूतानि, मत्स्थानि, इति, उपधारय ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यथा=जैसे

महान्=बलवान्

अन्वयः शब्दार्थ

सर्वत्रगः=सर्वत्र फिरनेवाला

वायुः=वायु
नित्यम्=निरन्तर
आकाश-स्थितः=आकाश में स्थित है
तथा=वैसेही
सर्वाणि=सम्पूर्ण
भूतानि=प्राणी
मत्स्थानि=मुझमें स्थितहैं
इति=इसप्रकार
उपधारय=निश्चय करके जान तू

भावार्थ ।

अब भगवान् आकाश का दृष्टान्त देकर परमात्मा और जगत् के अध्यारोप्यभाव को कहते हैं कि, हे पार्थ ! जैसे असंग स्वभाववाले आकाश में स्थित हुआ वायु सदैव चलनक्रियावाला रहता है, और आकाशके साथ कुछभी सम्बन्ध नहीं रखता है, वैसेही असंग चिद्रूप आत्मा में सम्बन्ध के विनाही सब आकाशादिक भूत स्थित रहते हैं ॥ ६ ॥

मूलम्।

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ७

पदच्छेदः।

सर्वभूतानि, कौन्तेय, प्रकृतिम्, यान्ति, मामिकाम्, कल्पक्षये, पुनः, तानि, कल्पादौ, विसृजामि, अहम् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

कौन्तेय=हे अर्जुन !
कल्पक्षये=कल्पके नाश होनेपर
सर्वभूतानि=सब प्राणी
मामिकाम्=मेरी
प्रकृतिम्=प्रकृतिको
यान्ति=प्राप्त होते हैं

अन्वयः **शब्दार्थ**

+ च=और
तानि=उन्हींको
कल्पादौ=कल्प के आदिमें
अहम्=मैं
पुनः=फिर
विसृजामि=पैदा करता हूं

भावार्थ।

पूर्ववाक्य करके भगवान् ने सृष्टिकी उत्पत्ति और स्थिति में अपने सम्बन्ध के अभावको कहा है, अब प्रलयकाल में भी अपने स्वरूप को असंग दिखलाते हैं, हे कौन्तेय ! संपूर्ण भूत प्रलयकाल में मेरी मायारूपी प्रकृति में लयको प्राप्त होते हैं और सृष्टिकाल में विभाग करके मैं उन्हीं संपूर्ण भूतादिकोंको उत्पन्न करताहूं ॥ ७ ॥

मूलम्।

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ८

पदच्छेदः।

प्रकृतिम्, स्वाम्, अवष्टभ्य, विसृजामि, पुनः, पुनः, भूतग्रामम्, इमम्, कृत्स्नम्, अवशम्, प्रकृतेः, वशात् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

स्वाम्=अपनी
प्रकृतिम्=प्रकृतिको
अवष्टभ्य=वश करके
इमम्=इस
कृत्स्नम्=संपूर्ण
प्रकृतेः=प्रकृति के

अन्वयः शब्दार्थ

वशात्=वश से
अवशम्=परवश हुये
भूतग्रामम्=भूतसमूहों को
पुनःपुनः=फिरफिर
विसृजामि=मैं पैदा करता हूं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! अपनी मायारूपी अनिर्वचनीय प्रकृति को आश्रयण करके इन भूतों के समुदाय को अवश्यही प्रकृति के सकाश से मैं वारंवार उत्पन्न करताहूं ॥ ८ ॥

मूलम्।

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ९

पदच्छेदः।

न, च, माम्, तानि, कर्माणि, निबध्नन्ति, धनञ्जय उदासीनवत्, आसीनम्, असक्तम्, तेषु, कर्मसु ॥

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
धनञ्जय= हे अर्जुन!
माम्=मुझ

अन्वयः शब्दार्थ

उदासीनवत्=उदासीनवत्
तेषु=उन

कर्मसु=कर्मों में

असक्तम्=आसक्ति रहित यानी फलकीइच्छा से रहित

आसीनम्=बैठे हुये को

तानि=वे

कर्माणि=कर्म

न=नहा

निबध्नन्ति=बांधते हैं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे धनञ्जय ! जगत् की उत्पत्ति और नाशरूप जो कर्म हैं, वे मुझको बन्धायमान नहीं करसक्ते हैं, क्योंकि मैं उदासीनवत् उन कर्मों में आसक्ति से रहित रहताहूं ॥ ९ ॥

मूलम् ।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते १०

पदच्छेदः ।

मया, अध्यक्षेण, प्रकृतिः, सूयते, सचराचरम्, हेतुना, अनेन, कौन्तेय, जगत्, विपरिवर्तते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

प्रकृतिः=माया

मया=मुझ

अध्यक्षेण=निमित्तकारण करके

अन्वयः शब्दार्थ

सचराचरम्=चर और अचर जगत् को

सूयते=पैदा करती है

+ च=और

कौन्तेय=हे अर्जुन !
अनेन=इसी
हेतुना=कारण करके
जगत्=संसार
विपरिवर्तते=वारंवार उत्पन्न होता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! मुझ अध्यक्ष करके यानी अविक्रियात्मा करके प्रकृति संपूर्ण चर अचरको उत्पन्न करती है और हे कौन्तेय ! इसी हेतु से जगत् पुनः पुनः उत्पत्ति नाशको प्राप्त होताहै ॥ १० ॥

मूलम्।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ११

पदच्छेदः।

अवजानन्ति, मास्, मूढाः, मानुषीम्, तनुम्, आश्रितम्, परम्, भावम्, अजानन्तः, मम, भूतमहेश्वरम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
मम=मेरे
परम्=श्रेष्ठ
भावम्=भावको
अजानन्तः=नहीं जानते हुये
मूढाः=अज्ञानी
माम्=मुझ
मानुषीम्=मनुष्यसम्बंधी

अन्वयः शब्दार्थ
तनुम्=शरीर
आश्रितम्=धारण कियेहुयेको
भूतमहेश्वरम्=भूतों का ईश्वर
अवजानन्ति=नहीं जानते हैं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे धनञ्जय ! जो मूढ़ अज्ञानी जीव हैं, वे मुझको मनुष्य शरीरवाला जानते हैं, मेरे परमभाव को यानी नित्य शुद्ध आनन्दघनरूप को नहीं जानते हैं, मैं सब भूतोंका ईश्वरहूं ऐसा मुझ को नहीं जानते हैं इसी से वे वारंवार जन्मते मरते रहते हैं ॥ ११ ॥

मूलम् ।

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीञ्चैव प्रकृतिं मोहनीं श्रिताः १२

पदच्छेदः ।

मोघाशाः, मोघकर्माणः, मोघज्ञानाः, विचेतसः, राक्षसीम्, आसुरीम्, च, एव, प्रकृतिम्, मोहनीम्, श्रिताः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

मोघाशाः=निष्फल है आशा जिन की
मोघकर्माणः=निष्फल हैं कर्म जिनके
मोघज्ञानाः=निष्फल हैं ज्ञान जिनके
च=और

अन्वयः **शब्दार्थ**

राक्षसीम्=राक्षसी
आसुरीम्=आसुरी
मोहनीम्=मोहन करने वाली
प्रकृतिम्=प्रकृतिको
एव=निश्चय करके
श्रिताः=आश्रय किये हुये हैं जो ऐसे

विचेतसः=भ्रान्त चित्त वाले लोग यानी मूर्ख
+माम्=मुझको
+अवजानन्ति=नहीं जानते हैं

भावार्थ ।

हे धनञ्जय ! जो नास्तिक अनीश्वरवादी हैं, उनके सब मनोरथ व्यर्थ हैं, और जो मीमांसक अनीश्वरवादी हैं उनके अग्निहोत्रादिक सब कर्म भी व्यर्थ हैं, और उनके कुतर्कजन्य सब ज्ञान भी व्यर्थ हैं, क्योंकि ईश्वरकी निन्दा करके उनके चित्त नष्ट हुये हैं, और वे राक्षसी, आसुरी, मोहनी प्रकृति को आश्रयण करनेवाले हैं, जो भगवत् से विमुख हैं उनके सब कर्म ज्ञानादिक भी व्यर्थ हैं ॥ १२ ॥

मूलम् ।

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् १३

पदच्छेदः ।

महात्मानः, तु, माम्, पार्थ, दैवीम्, प्रकृतिम्, आश्रिताः, भजन्ति, अनन्यमनसः, ज्ञात्वा, भूतादिम्, अव्ययम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
तु	=और	अनन्यमनसः	=नहीं है दूसरे में चित्तजिनकाऐसे
पार्थ	=हे अर्जुन !		

महात्मानः=महात्मा पुरुष
दैवीम्=देवसम्बन्धी
प्रकृतिम्=स्वभावको
आश्रिताः=शरण किये हुये
भूतादिम्=भूतों का आदि
+ च=और
अव्ययम्=अविनाशी
ज्ञात्वा=जानकरके
माम्=मुझको
भजन्ति=भजते हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे मित्र ! जो परमेश्वर के शरणको प्राप्त हुये हैं वेही महात्मा हैं, क्योंकि वे मेरी दैवीप्रकृति को आश्रयण करनेवाले हैं, अनेक जन्मों के पुण्यों करके जिनकी बुद्धि शुद्ध होगई है वे ही कामनासे रहित हुये हैं, और वे अनन्यमन हो कर मेरा भजन करते हैं, और मुझको ही जगत् का ईश्वर जानते हैं ॥ १३ ॥

मूलम् ।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते १४

पदच्छेदः ।

सततम्, कीर्तयन्तः, माम्, यतन्तः, च, दृढव्रताः, नमस्यन्तः, च, माम्, भक्त्या, नित्ययुक्ताः, उपासते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

नित्ययुक्ताः=समाहित चित्त वाले
च=और
दृढव्रताः=दृढ प्रतिज्ञा वाले
सततम्=निरन्तर
भक्त्या=भक्ति से
माम्=मुझको
कीर्तयन्तः=कीर्तनकरतेहुये

अन्वयः शब्दार्थ

नमस्यन्तः=नमस्कार करते हुये
च=और
यतन्तः=यत्न करते हुये
माम्=मुझको
उपासते=उपासते हैं यानी मेरी उपासना करते हैं

भावार्थ।

प्रश्न ॥ वे महात्मा किस रीतिसे आपका भजन करते हैं ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, वे वैराग्यपूर्वक ब्रह्मनैष्ठिक ब्रह्मश्रोत्रिय गुरुको प्राप्त होकर, वेदान्तवाक्यों का निरन्तर विचार करके, ॐकारका जप करके और यम नियमादिकों करके दृढ़व्रत धारणकर मेरा भजन करते हैं, और मुझ वासुदेवकोही पुनः पुनः नमस्कार करते हैं, और प्रेमभक्ति करके अर्थात् परमप्रेम से युक्त हुये मुझको ही वारंवार स्मरण करते हैं ॥ १४ ॥

मूलम्।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् १५

पदच्छेदः ।

ज्ञानयज्ञेन, च, अपि, अन्ये, यजन्तः, माम्, उपासते, एकत्वेन, पृथक्त्वेन, बहुधा, विश्वतोमुखम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
अन्ये	कोई पुरुष
एकत्वेन	एकत्व
ज्ञानयज्ञेन	ज्ञान यज्ञ करके
यजन्तः	भजते हुये
माम्	मुझको
उपासते	उपासनाकरतेहैं
+ अन्ये	कोई
पृथक्त्वेन	पृथग्भाव करके
+ उपासते	उपासना करते हैं
अपि च	और
+ अन्ये	कोई
बहुधा	बहुत प्रकारसे
विश्वतोमुखम्	विराट्रूप को
+ उपासते	उपासनाकरते हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे सौम्य ! कोई ज्ञानरूपी यज्ञ करके अर्थात् अहंग्रह उपासना करके मेरा भजन करते हैं, और कोई एकत्वरूप करके यानी अभेदभावना करके मेरा चिन्तन करते हैं, और कोई भेदभावना करके मेरा चिन्तन करते हैं, और कोई विराट् रूप करके मेरा चिन्तन करते हैं ॥ १५ ॥

मूलम् ।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् १६

पदच्छेदः।

अहम्, क्रतुः, अहम्, यज्ञः, स्वधा, अहम्, अहम्, औषधम्, मन्त्रः, अहम्, अहम्, एव, आज्यम्, अहम्, अग्निः, अहम्, हुतम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

क्रतुः=श्रौतयज्ञ
अहम्=मैं हूं
यज्ञः=स्मार्तयज्ञ
अहम्=मैं हूं
स्वधा=पितृनिमित्त द्रव्य जो हवनमें दिया जाता है सो
अहम्=मैं हूं
मन्त्रः=मन्त्र

अन्वयः शब्दार्थ

अहम्=मैं हूं
आज्यम्=घृत
अहम् एव=मैं हूं
अग्निः=अग्नि
अहम्=मैं हूं
हुतम्=होमद्रव्य
अहम्=मैं हूं
औषधम्=औषध
अहम्=मैं हूं

भावार्थ।

हे पुरुषों में श्रेष्ठ अर्जुन ! मैं श्रुतिप्रतिपाद्य जो अग्निष्टोमादिक यज्ञ हैं, और स्मृतिप्रतिपाद्य जो वैश्वदेवादिक यज्ञ हैं, सो मैंही हूं और पितरों के प्रति दीयमान जो अन्न स्वधाशब्द करके है वह स्वधारूप भी मैंही हूं, और प्राणियों करके जो अन्न भक्षण किया जाता है वह अन्न भी मैंही हूं, और जिन मन्त्रों करके

हवि दीजाती है वह मन्त्ररूप भी मैंही हूं, और घृतादिकों करके जो देवताओं प्रति हवि दीजाती है वह हविरूप भी मैंही हूं, और यज्ञों में जो आहवनीयादि रूप तीन अग्नियां हैं वे भी मैंही हूं और हुत जो हवन है वह हवनरूप भी मैंही हूं ॥ १६ ॥

मूलम् ।

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च १७

पदच्छेदः ।

पिता, अहम्, अस्य, जगतः, माता, धाता, पितामहः, वेद्यम्, पवित्रम्, ॐकारः, ऋक्, साम, यजुः, एव, च ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

अस्य=इस
जगतः=जगत् का
माता=माता
पिता=पिता
च=और
पितामहः=पितामह
अहम्=मैं हूं
+ च=और

अन्वयः **शब्दार्थ**

धाता={विधाता यानी कर्म फल का विधान करने वाला
एव=भी
+ अहम्=मैं हूं
वेद्यम्=जानने योग्य
पवित्रम्=शुद्ध
ॐकारः=प्रणव

+ अहम्=मैं हूं
+ च=और
ऋक्=ऋक्
साम=साम
यजुः=यजुर्वेद
+ अहमेव=मैं ही हूं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! संपूर्ण जगत् का पिता मैंही हूं, और उत्तम साधनों करके पोषण करने वाला भी मैं ही हूं, और कर्मों के फलका पितामह भी मैंही हूं, और जाननेयोग्य पवित्र शुद्धिका हेतु भी मैंही हूं, और ज्ञानका साधन जो ॐकार है वह भी मैंही हूं, और ऋग्, साम, यजु ये तीन वेद भी मैंही हूं ॥ १७ ॥

मूलम्।

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृद् ।
प्रभवः प्रलयःस्थानं निधानं बीजमव्ययम् १८

पदच्छेदः।

गतिः, भर्ता, प्रभुः, साक्षी, निवासः, शरणम्, सुहृद्, प्रभवः, प्रलयः, स्थानम्, निधानम्, बीजम्, अव्ययम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
+ अहम्=मैं
गतिः=प्राप्तिरूप कर्म फल हूं
अन्वयः शब्दार्थ
भर्ता=पालन करने वाला हूं
प्रभुः=स्वामी हूं

साक्षी=साक्षी हूं
निवासः=भोगस्थान हूं
शरणम्=रक्षा करने वाला हूं
सुहृत्=निष्प्रयोजन हित करने वाला हूं

प्रभवः=उत्पत्तिरूप हूं
प्रलयः=प्रलयरूप हूं
स्थानम्=स्थानरूप हूं
निधानम्=आधाररूप हूं
अव्ययम्=अविनाशी
बीजम्=बीज हूं

भावार्थ।

और गति यानी कर्मों का फल भी मैंही हूं, और उत्तम साधनों करके पोषण करनेवाला भी मैंही हूं, और प्रभु यानी सबका स्वामी भी मैंही हूं, और शुभ अशुभ कर्मों का द्रष्टा भी मैंही हूं, और सबका भोगस्थान भी मैंही हूं, और शरण भी मैंही हूं, अर्थात् दुःखियों का दुःख दूर करनेवाला भी मैंही हूं, और सबका सुहृद्द भी मैंही हूं, और उत्पत्ति, स्थिति, लय का स्थान भी मैंही हूं, और सब वस्तुवों का आधार भी मैंही हूं, फिर भी मैं नाशसे रहित भी हूं॥ १८॥

मूलम् ।

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतञ्चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन १९

पदच्छेदः ।

तपामि, अहम्, अहम्, वषम्, निगृह्णामि, उत्सृजामि,

च, अमृतम्, च, एव, मृत्युः, च, सत्, असत्, च, अहम्, अर्जुन ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अर्जुन=हे अर्जुन !
अहम्=मैं
तपामि=संसार को तपाता हूं
च=और
अहम्=मैं
वर्षम्=वृष्टिको
उत्सृजामि=उत्पन्न करताहूं
च=और

अन्वयः शब्दार्थ

निगृह्णामि=खींचलेता हूं
च=और
अमृतम्=जीवनरूप
मृत्युः=मृत्युरूप
च=और
सत्=स्थूलरूप
असत्=सूक्ष्मरूप
अहम्एव=मैंही हूं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे धनञ्जय ! मैंही ज्येष्ठ आषाढ़ में सूर्यरूप होकर भूमिको तपाताहूं, और भूमि से रसरूप जलको खींचकर किरणों द्वारा वर्षाऋतु में वर्षा करताहूं, और देवताओं का अमृतरूप, मनुष्यों का जविनरूप और संपूर्ण प्राणियों का मृत्युरूप भी मैंही हूं, और जितना स्थूल सूक्ष्मरूप करके दिखाई पड़ता है वह सब मैंही हूं ॥ १६ ॥

मूलम्।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा

स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते । ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-मश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान् २०

पदच्छेदः ।

त्रैविद्याः, माम्, सोमपाः, पूतपापाः, यज्ञैः, इष्ट्वा, स्वर्गतिम्, प्रार्थयन्ते, ते, पुण्यम्, आसाद्य, सुरेन्द्रलोकम्, अश्नन्ति, दिव्यान्, दिवि, देवभोगान् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

त्रैविद्याः=तीनों वेदों के जाननेवाले
सोमपाः=अमृत के पीने वाले
पूतपापाः=शुद्ध हुये हैं पापों से जो ऐसे पुरुष
यज्ञैः=श्रौत और स्मार्त यज्ञों से
माम्=मुझको
इष्ट्वा=पूजन करके
स्वर्गतिम्=स्वर्ग की प्राप्ति का

अन्वयः **शब्दार्थ**

प्रार्थयन्ते=चाहते हैं
+**च**=और
ते=वेही
पुण्यम्=पुण्यफल वाले
सुरेन्द्रलोकम्=इन्द्रलोक को
आसाद्य=प्राप्त होकरके
दिवि=स्वर्ग में
दिव्यान्=अलौकिक
देवभोगान्=देवसम्बन्धी भोगों को
अश्नन्ति=भोगते हैं

भावार्थ ।

तीन जो ऋग्, यजुः, साम विद्या हैं उनका नाम

त्रैविद्या है, उन तीनों विद्याओं के जाननेवाले अग्निष्टोमादिकों करके मुझ ईश्वर का जो पूजन करते हैं, और सोमवल्ली को पान करते हैं, और जो सोम के पान करने से पापों से पवित्र होजाते हैं, और जो ऐसे ही यज्ञों करके और मुझको पूजन करके स्वर्ग की प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं वे अपने पुण्य का फल जो स्वर्ग है उसको प्राप्त होकर स्वर्ग में दिव्य अलौकिक भोगों को भोगते हैं ॥ २० ॥

मूलम् ।

ते तम्भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये
मर्त्यलोकं विशन्ति। एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते २१

पदच्छेदः ।

ते, तम्, भुक्त्वा, स्वर्गलोकम्, विशालम्, क्षीणे, पुण्ये, मर्त्यलोकम्, विशन्ति, एवम्, त्रयीधर्मम्, अनुप्रपन्नाः, गतागतम्, कामकामाः, लभन्ते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

ते=वे
तम्=उस
विशालम्=बड़े
स्वर्गलोकम्=स्वर्गलोकको

अन्वयः शब्दार्थ

भुक्त्वा=भोग करके
पुण्ये क्षीणे=पुण्य के नाश होनेपर
मर्त्यलोकम्=भूलोकको

विशन्ति=प्राप्त होते हैं
एवम्=इसप्रकार
त्रयीधर्मम्=तीनों वेदों के कर्म को
अनुप्रपन्नाः=आचरण करते हुये
कामकामाः=कामना के चाहने वाले पुरुष
गतागतम्=आवागमनको
लभन्ते=प्राप्त होते हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! जो स्वर्गनिमित्तक यज्ञादिक कर्मोंको करते हैं, वे कर्मी स्वप्नके तुल्य स्वर्ग के भोगों को भोगकर फिर मर्त्यलोक में गर्भवासको प्राप्त होते हैं, और फिर वैदिककर्मों को करके पुनः स्वर्गलोक को प्राप्त होते हैं, और पुण्यों के क्षीण होनेपर फिर मर्त्यलोकको प्राप्त होते हैं, इसप्रकार संसारचक्र में भ्रमानेवाली कामनाको पुनः पुनः प्राप्त होतेही रहते हैं और इसीलिये संसारचक्र से कदापि निवृत्ति को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥

मूलम्।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् २२

पदच्छेदः।

अनन्याः, चिन्तयन्तः, माम्, ये, जनाः, पर्युपासते, तेषाम्, नित्याभियुक्तानाम्, योगक्षेमम्, वहामि, अहम् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

ये=जो
अनन्याः=दूसरे को नहीं माननेवाले
जनाः=लोग
माम्=मुझको
चिन्तयन्तः=चिन्तन करते हुये

अन्वयः **शब्दार्थ**

पर्युपासते=उपासनाकरतेहैं
तेषाम्=उन
नित्याभियुक्तानाम्=नित्य योग में जुड़ेहुवों के
योगक्षेमम्=योगक्षेम को
अहम्=मैं
वहामि=प्राप्त करता हूं

भावार्थ।

हे पार्थ ! जो निष्काम हैं, वे अनन्यचित्त होकर मेरी उपासना करते हैं, और वे जो नित्यही मुझमें जुड़े हैं और मुझकोही सर्वरूप करके देखते हैं उनके योगक्षेम को मैं प्राप्त करता हूं, और यद्यपि सब जीवों के योगक्षेम को मैंही करताहूं तथापि इतना भेद है कि, मनुष्य जब यत्न करते हैं तब मैं उनके योगक्षेम को करताहूं, पर जो मेरा अनन्यभक्त है उसके प्रयत्न के विनाही मैं उसके योगक्षेम को करताहूं ॥ २२ ॥

मूलम्।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् २३

पदच्छेदः।

ये, अपि, अन्यदेवताः, भक्ताः, यजन्ते, श्रद्धया,

अन्विताः, ते, अपि, माम्, एव, कौन्तेय, यजन्ति, अविधिपूर्वकम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
ये=जो	यजन्ते=सेवन करते हैं
भक्ताः=भक्तलोग	तेऽपि=वेभी
श्रद्धया=श्रद्धासे	कौन्तेय=हे अर्जुन !
अन्विताः=युक्त हुये	मामेव=मुझकोही
अन्यदेवताः=और देवताओं को	अविधिपूर्वकम्=विधिरहित
अपि=ही	यजन्ति=पूजते हैं

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ जबकि और भी सब देवता तुम्हारेही रूप हैं तब फिर उन देवताओं के उपासक संसार को क्यों प्राप्त होते हैं, और तुम्हारे उपासक मोक्षको क्यों प्राप्त होते हैं, सभी क्यों नहीं मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥

उत्तर ॥ जो भेददर्शी फलके लिये अन्य देवताओं का पूजन करते हैं, यद्यपि वेभी मेराही पूजन करते हैं, तथापि वे विधिराहित मेरा पूजन करते हैं, इसलिये वे जन्म मरणरूपी संसारको ही प्राप्त होते हैं, और जो अभेदभावना करके मेरा पूजन करते हैं वे विधिपूर्वक मेरा पूजन करते हैं इसलिये वे मोक्षको प्राप्त होते हैं, इतनाही दोनों में अन्तर है ॥ २३ ॥

मूलम्।

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते २४

पदच्छेदः।

अहम्, हि, सर्वयज्ञानाम्, भोक्ता, च, प्रभुः, एव, च, न, तु, माम्, अभिजानन्ति, तत्त्वेन, अतः, च्यवन्ति, ते ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

सर्वयज्ञानाम्=सब यज्ञों का
भोक्ता=भोगनेवाला
च=और
प्रभुः=प्रभु यानी कर्म फलका देने वाला
अहम् एव=मैंही हूं
च=और
तु=चूंकि

अन्वयः **शब्दार्थ**

ते=वे पुरुष
माम्=मुझको
तत्त्वेन=यथार्थ
न=नहीं
अभिजानन्ति=जानते हैं
अतः=इस कारण
हि=अवश्य
च्यवन्ति=स्वर्ग से गिरपड़ते हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे सौम्य ! मैंही संपूर्ण यज्ञों का आश्रयरूपहूं और मैंही स्वामी भी हूं, और मैंही सब यज्ञों का भोक्ता भी हूं, ऐसा जो मुझको जानते हैं, और जो सर्वेश्वर मुझकोही सब देवताओं में

देखते हैं वे धीरे धीरे मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥

मूलम् ।

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्

पदच्छेदः ।

यान्ति, देवव्रताः, देवान्, पितॄन्, यान्ति, पितृव्रताः, भूतानि, यान्ति, भूतेज्याः, यान्ति, मद्याजिनः, अपि, माम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
देवव्रताः	देवताओं के उपासक	भूतेज्याः	भूतों के पूजने वाले
देवान्	देवताओं को	भतानि	भूतों को
यान्ति	प्राप्त होते हैं	यान्ति	प्राप्त होते हैं
पितृव्रताः	पितरों के उपासक	मद्याजिनः	मेरे उपासक
पितॄन्	पितरों को	माम् अपि	मुझकोही
यान्ति	प्राप्त होते हैं	यान्ति	प्राप्त होते हैं

भावार्थ ।

हे कौन्तेय ! जो वसु रुद्रादि देवता सम्बन्धी व्रत और पूजन को करते हैं वे वसु रुद्रादिक देवताओं को प्राप्त होते हैं और जो श्रद्धा करके अग्निष्वात्तादि पितरों का पूजन करते हैं वे उन्हीं को प्राप्त होते हैं, और जो क्षुद्र देवता यक्ष राक्षस भूत प्रेतों का पूजन करते हैं वे उन्हीं भूत प्रेतादिकों को प्राप्त होते हैं,

और जो सब देवताओं में अभेदभावना करके मुझकोही देखते और पूजते हैं वे मुझकोही प्राप्त होते हैं, यद्यपि पूजा में परिश्रम तुल्य भी है तौभी वे क्षुद्र देवताओं को त्याग करके मेरा पूजन नहीं करते हैं, क्योंकि वे मन्दभागी कामना करके भरेहुये हैं ॥ २५ ॥

मूलम् ।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः २६

पदच्छेदः ।

पत्रम्, पुष्पम्, फलम्, तोयम्, यः, मे, भक्त्या, प्रयच्छति, तत्, अहम्, भक्त्युपहृतम्, अश्नामि, प्रयतात्मनः॥

अन्वयः शब्दार्थ

यः=जो कोई
पत्रम्=पत्र
पुष्पम्=पुष्प
फलम्=फल
+ च=और
तोयम्=जलको
मे=मेरेलिये
भक्त्या=भक्ति से
प्रयच्छति=अर्पण करता है

अन्वयः शब्दार्थ

+ तस्य=उस
प्रयतात्मनः=शुद्ध अन्तःकरणवाले के
तत्=उस
भक्त्युपहृतम्=भक्तिसे अर्पण किये हुये को
अहम्=मैं
अश्नामि=ग्रहण करताहूं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे मित्र ! पत्र, पुष्प और फल तथा जल और जो वस्तु विनाही यत्नके प्राप्त हो, इनमें से किसीको जो भक्ति सहित मुझे अर्पण करता है उसको मैं प्रेम से स्वीकार करताहूं ॥ २६ ॥

मूलम् ।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् २७

पदच्छेदः ।

यत, करोषि, यत्, अश्नासि, यत्, जुहोषि, ददासि, यत, यत्, तपस्यसि, कौन्तेय, तत्, कुरुष्व, मदर्पणम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

कौन्तेय=हे अर्जुन !
यत्=जो कुछ
करोषि=करता है तू
यत्=जो कुछ
अश्नासि=खाता है तू
यत्=जो कुछ
जुहोषि=हवन करता है तू

अन्वयः शब्दार्थ

यत्=जो कुछ
ददासि=देता है तू
+च=और
यत्=जो कुछ
तपस्यसि=तप करता है तू
तत्=उसको
मदर्पणम्=मेरे अर्पण
कुरुष्व=कर

भावार्थ।

हे कौन्तेय ! जो कुछ कि तू करता है, और अना-

यास से जो कुछ तुझको प्राप्त होताहै, और जो कुछ तू भक्षण करता है, और विधिपूर्वक श्रुतिस्मृतिप्रतिपादित जो तू हवन करता है, और अतिथियों के प्रति जो तू अन्नादिकों को देताहै, और जो तू तप करता है, उन सबको प्रीतिपूर्वक मुझे अर्पण कर अपने को उन कर्मोंका तू कर्ता मत मान, यही सर्वोत्तम अनायास से मेरा भजन है ॥ २७ ॥

मूलम् ।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि २८

पदच्छेदः ।

शुभाशुभफलैः, एवम्, मोक्ष्यसे, कर्मबन्धनैः, संन्यासयोगयुक्तात्मा, विमुक्तः, माम्, उपैष्यसि ॥

अन्वयः शब्दार्थ

एवम्=इस प्रकार से
शुभाशुभफलैः=शुभ और अशुभ फलवाले
कर्मबन्धनैः=कर्मबन्धन से
मोक्ष्यसे=छूटेगा तू
+च=और

अन्वयः शब्दार्थ

संन्यासयोगयुक्तात्मा=संन्यास योग करके युक्त है अन्तःकरण जिसका ऐसा तू
विमुक्तः=मुक्त होता हुआ
माम्=मुझको
उपैष्यसि=प्राप्त होगा

भावार्थ।

अब भगवान् भजन के फलको कहते हैं कि, हे अर्जुन! इष्ट अनिष्ट फलके देनेवाले जो कर्म हैं, उनके बन्धन से तू छूटजावेगा, और जो मुझ परमेश्वर में संपूर्ण कर्मों के समर्पण का नाम संन्यास है, उस संन्यासयोग करके तू युक्तात्मा होकर मुझको ही प्राप्त होवेगा ॥ २८ ॥

मूलम्।

समोहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् २९

पदच्छेदः।

समः, अहम्, सर्वभूतेषु, न, मे, द्वेष्यः, अस्ति, न, प्रियः, ये, भजन्ति, तु, माम्, भक्त्या, मयि, ते, तेषु, च, अपि, अहम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अहम्=मैं
सर्वभूतेषु=सब प्राणियोंमें
समः=तुल्यहूं
मे=मेरा
द्वेष्यः=शत्रु
तु=और
प्रियः=मित्र

अन्वयः शब्दार्थ

+ कश्चित्=कोई भी
न अस्ति=नहीं है
ये=जे मनुष्य
माम्=मुझको
भक्त्या=भक्ति से
भजन्ति=सेवन करते हैं
ते=वे

मयि=मुझ में
+ सन्ति=हैं
च=और
अहम्=मैं
अपि=भी
तेषु=उनमें
+ अस्मि=हूं

भावार्थ ।

अर्जुन कहता है कि, हे भगवन् ! यदि तुम अपने भक्तों के ऊपरही अनुग्रह करते हो, और देवताओं के भक्तोंके ऊपर अनुग्रह नहीं करतेहो, तो तुमभी राग द्वेष करके युक्त हो ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! मैं सब प्राणियों में सच्चिदानन्दरूप करके तुल्यही स्थितहूं यानी सबका साक्षी अन्तर्यामीरूप करके मैं सबके आवान्तर रहताहूं, इसी कारण मेरा किसीसे राग द्वेष नहीं है, जो प्रेमभक्ति करके सब कर्मोंको मुझे समर्पण करता है वह चित्तकी शुद्धिद्वारा आत्मज्ञान को प्राप्त होकर मुझ सच्चिदानन्द आत्मामेंही रहता है, जैसे अग्नि अपने से दूरस्थ पुरुष के तमको और शीतको दूर नहीं करसक्ती है, पर उसके साथ अग्निका द्वेष नहीं है, और जैसे अपने समीपवर्ती पुरुषके तमको अग्नि दूर करसक्ती है, पर उसके साथ अग्निका प्रेम नहीं है, वैसेही जो अनन्यचित्त होकर मेरा भजन करते हैं जिनके अतिसमीप मैं हूं, उनको मैं मोक्ष देताहूं और जो मुझको दूर जानकर मेरा भजन

नहीं करते हैं, वे मुझको न प्राप्त होकर संसार कोही वारंवार प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥

मूलम् ।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ३०

पदच्छेदः ।

अपि, चेत्, सुदुराचारः, भजते, माम्, अनन्यभाक्, साधुः, एव, सः, मन्तव्यः, सम्यक्, व्यवसितः, हि, सः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

चेत्=अगर
सः=वह
सुदुराचारः=अत्यन्तदुराचारी
अनन्यभाक्=दूसरे को नहीं भजनेवाला
+ च=और
सम्यक्-व्यवसितः=भली प्रकार आत्मा का निश्चय करनेवाला

अन्वयः **शब्दार्थ**

माम्=मुझको
हि=निश्चय करके
भजते=भजता है
अपि=तो
सः=वह
साधुः=साधु
एव=ही
मन्तव्यः=मानने योग्य है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! मेरी भक्तिका ऐसा माहात्म्य है कि जो अतिनिन्दित आचार

वाला अजामिलादिकों की तरह भी भाग्यके वशसे मुझको अनन्यमन होकर सेवता है, और पूर्व असाधु भी है, तौभी वह साधुही मानने के योग्य होता है, क्योंकि वह सुन्दर निश्चय चित्तवाला होकर मुझ ईश्वर की तरफ़ प्रवृत्त हुआ है ॥ ३० ॥

मूलम् ।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ३१

पदच्छेदः ।

क्षिप्रम्, भवति, धर्मात्मा, शश्वत्, शान्तिम्, निगच्छति, कौन्तेय, प्रतिजानीहि, न, मे, भक्तः, प्रणश्यति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

+च=और
+सः=वही पुरुष
धर्मात्मा=धर्मात्मा
क्षिप्रम्=शीघ्रही
भवति=होता है
+च=और
शश्वत्=निरन्तर
शान्तिम्=शान्तिको
निगच्छति=प्राप्त होता है

अन्वयः शब्दार्थ

कौन्तेय=हे अर्जुन !
प्रतिजानीहि=जान तू कि
मे=मेरा
भक्तः=भक्त
कदापि=कभी
न=नहीं
प्रणश्यति=नष्ट होता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे कौन्तेय ! जो मेरी कृपादृष्टि से और सम्यक् निश्चय से मेरे सम्मुख हुआ है वह दुराचारता को और पूर्वले पापों को त्याग करके मेरी भक्ति की महिमा से नित्य शान्ति को प्राप्त होताहै, और जिस कारण मेरी भक्तिका ऐसा माहात्म्य है उसी कारण, हे कौन्तेय ! तू निश्चय कर कि मुझ वासुदेवका भक्त कदापि नाशको नहीं प्राप्त होताहै ॥ ३१ ॥

मूलम् ।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियोवैश्यास्तथाशूद्रास्तेपियान्तिपरांगतिम् ३२

पदच्छेदः ।

माम्, हि, पार्थ, व्यपाश्रित्य, ये, अपि, स्युः, पापयोनयः, स्त्रियः, वैश्याः, तथा, शूद्राः, ते, अपि, यान्ति, पराम्, गतिम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
पार्थ=हे अर्जुन !
ये=जो
पापयोनयः=पापयोनि
स्त्रियः=स्त्रियां

अन्वयः शब्दार्थ
वैश्याः=बनिये
तथा=और
शूद्राः=शूद्र
अपि=भी

स्युः=होंवे
ते=वे सब
माम्=मुझको
व्यपाश्रित्य=आश्रय करके

हि=निस्सन्देह
पराम्=उत्तम
गतिम्=गतिको
यान्ति=प्राप्त होते हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! जो मेरी शरण को प्राप्त हुये हैं, चाहे वे पापीयोनि स्त्री, वैश्य अथवा शूद्र जातिवाले हों वे परम गतिको अवश्य प्रात हो जाते हैं और आगे भी हुये हैं ॥ ३२ ॥

मूलम्।

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ३३

पदच्छेदः।

किम्, पुनः, ब्राह्मणाः, पुण्याः, भक्ताः, राजर्षयः, तथा, अनित्यम्, असुखम्, लोकम्, इमम्, प्राप्य, भजस्व, माम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
किम्=क्या इसमें कहना है
पुनः=अगर

अन्वयः शब्दार्थ
पुण्याः=सुकर्मी
भक्ताः=भक्तियुक्त
ब्राह्मणाः=ब्राह्मण

तथा=और
राजषयः=राजर्षि
+ माम्=मुझको
+ गच्छेयुः=प्राप्तहों
इमम्=इस
अनित्यम्=नाशवान्

असुखम्=सुखरहित
लोकम्=शरीरको
प्राप्य=पाकरके
माम्=मुझको
भजस्व=भज तू

भावार्थ ।

जो सत् आचरणवाले ब्राह्मण उत्तम योनिवाले हैं और जो राजऋषि सूक्ष्मविचारवाले हैं, वे यदि मेरा भजन करके मोक्षको प्राप्त हों तो आश्चर्य क्या है, ऐसी मेरी भक्तिकी माहिमा जानकर तुम भी मेरा भजन करो ॥ ३३ ॥

मूलम् ।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ३४

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगोनाम नवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

मन्मनाः, भव, मद्भक्तः, मद्याजी, माम्, नमस्कुरु, माम्, एव, एष्यसि, युक्त्वा, एवम्, आत्मानम्, मत्परायणः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मन्मनाः	मेरे में है मन जिसका ऐसा	नमस्कुरु	नमस्कार कर तू
मद्भक्तः	मेरा भक्त	एवम्	इसप्रकार
+ च	और	आत्मानम्	मनको
मद्याजी	मेरा सेवक	युक्त्वा	लगा करके
भव	हो तू	मत्परायणः	मेरे परायण होता हुआ
माम्	मुझको	मामेव	मुझकोही
		एष्यसि	प्राप्त होगा तू

भावार्थ ।

अब किस प्रकार भजन करना चाहिये उसको भगवान् दिखलाते हैं, हे अर्जुन ! मुझ ईश्वरमेंही तू मन को लगा, मेराही पूजनकर, मुझको नमस्कार कर, और मेरीही शरण को प्राप्त हो, और मनको मेरे मेंही एकाग्रकर, ऐसा करने से तू मुझ प्रकाशस्वरूप सच्चिदानन्दको ही प्राप्त होवेगा ॥ ३४ ॥

नवां अध्याय समाप्त ॥

दशवां अध्याय

मूलम् ।

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।
यत्तेहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया १

पदच्छेदः ।

भूयः, एव, महाबाहो, शृणु, मे, परमम्, वचः, यत्, ते, अहम्, प्रीयमाणाय, वक्ष्यामि, हितकाम्यया ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

महाबाहो=हे दीर्घबाहु
भूयः=फिर
एव=भी
मे=मेरे
परमम्=श्रेष्ठ
वचः=वचनको
शृणु=सुन तू

अन्वयः **शब्दार्थ**

यत्=जिसको
ते=तुझ
प्रीयमाणाय=प्रसन्न चित्त के निमित्त
अहम्=मैं
हितकाम्यया=हितकी इच्छा से
वक्ष्यामि=कहूंगा

भावार्थ ।

अब मुमुक्षुवों के ध्यान करने के लिये भगवान् अपनी विभूतियोंका वर्णन करते हैं और कहते हैं कि, हे महाबाहु ! तू फिर मेरे वचनको सुन, तू मेरा अति प्यारा है, इसलिये मैं तेरे हितके लिये कहताहूं ॥ १ ॥

मूलम्।

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणाञ्च सर्वशः २

पदच्छेदः।

न, मे, विदुः, सुरगणाः, प्रभवम्, न, महर्षयः, अहम्, आदिः, हि, देवानाम्, महर्षीणाम्, च, सर्वशः ॥

अन्वयः शब्दाथ

मे=मेरी
प्रभवम्=उत्पत्ति को
सुरगणाः=देवतालोग
न=नहीं
च=और
महर्षयः=महर्षिलोग
न=नहीं

अन्वयः शब्दार्थ

विदुः=जानते हैं
हि=क्योंकि
अहम्=मैं
सर्वशः=सबप्रकारसे
देवानाम्=देवताओं का
+ च=और
महर्षीणाम्=महर्षियोंका
आदिः=आदिहूं

भावार्थ।

हे पार्थ ! मेरे प्रभाव को इन्द्रादिक देवता और भृगु आदिक महर्षि भी नहीं जानते हैं, क्योंकि मैं सब देवताओं और सब महर्षियों का आदिकारण हूं, मैं ही उनकी उत्पत्ति को करताहूं, और मैंही उनकी बुद्धिको प्रेरणा भी करता ॥ २ ॥

मूलम् ।

यो मामजमनादिञ्च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ३

पदच्छेदः ।

यः, माम्, अजम्, अनादिम्, च, वेत्ति, लोकमहेश्वरम्, असंमूढः, सः, मर्त्येषु, सर्वपापैः, प्रमुच्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यः=जो
माम्=मुझको
अजम्=अजन्मा
अनादिम्=अनादि
च=और
लोकमहेश्वरम्=लोकों का ईश्वर

अन्वयः शब्दार्थ

वेत्ति=जानता है
सः=वह
मर्त्येषु=मनुष्यों में
असंमूढः=बुद्धिमान् पुरुष
सर्वपापैः=सम्पूर्ण पापों से
प्रमुच्यते=छूटजाता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे धनञ्जय ! मैं अजन्मा हूं, और लोकों का ईश्वर भी हूं, मेरे दिव्य प्रभाव को जो कोई देवता अथवा सज्जन पुरुष जानता है वह मेरी अनुग्रहसे ही जानता है, विना मेरी कृपा के नहीं जानसक्ता है, मैंही सबका आदिकारण हूं, और अकारण भी हूं, और जो पुरुष मेरे स्वरूपको यथार्थ जानता है वह संपूर्ण पापों से छूट जाता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोभावो भयञ्चाभयमेव च ४

पदच्छेदः ।

बुद्धिः, ज्ञानम्, असंमोहः, क्षमा, सत्यम्, दमः, शमः, सुखम्, दुःखम्, भवः, अभावः, भयम्, च, अभयम्, एव, च ॥

अन्वयः शब्दार्थ

बुद्धिः= सत्य और असत्य वस्तुको विचार करनेवाली अन्तःकरण की शक्ति
ज्ञानम्= आत्माको निश्चयकरनेवाली वृत्ति
असंमोहः=अव्यग्रता
क्षमा=सहनशीलता
सत्यम्=सत्य
च=और

अन्वयः शब्दार्थ

दमः= इन्द्रियोंका विषयों से रोकना
शमः=मनका वश करना
सुखम्=आनन्द
दुःखम्=दुःख
भवः=उत्पत्ति
अभावः=नाश
भयम्=भय
च=और
अभयम्=अभय
एव=भी

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोकसे है)

भावार्थ ।

भगवान् अब अपने को सब लोकों का ईश्वररूप

करके वर्णन करते हैं, हे अर्जुन ! सूक्ष्मपदार्थों के जानने में और सत्य असत्यके निर्णय करने में जो अन्तःकरण की वृत्ति है उसीका नाम बुद्धिहै, आत्मा आदि सूक्ष्म पदार्थों में अभिज्ञताका नाम ज्ञान है, अनेक कार्यों के उपस्थित होनेपर भी व्यग्र न होने का नाम असंमोह है, निन्दा तथा ताड़नादिकों के होनेपर जो समत्वबुद्धि है उसीका नाम क्षमा है, प्रत्यक्षादि प्रमाणों करके जितना जाना जाता है उसी का नाम सत्य है, अपने अपने विषयों से इन्द्रियों के हटाने का नाम दम है, अन्तर मनके निग्रह करने का नाम शम है, चित्तके आह्लादका नाम सुख है, चित्तके सन्तापका नाम दुःखहै, त्रासका नाम भयहै, त्रासके अभावका नाम अभय है, जन्मका नाम भव है, और मरण का अथवा नाशका नाम अभाव है ॥ ४ ॥

मूलम्।

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ५

पदच्छेदः।

अहिंसा, समता, तुष्टिः, तपः, दानम्, यशः, अयशः, भवन्ति, भावाः, भूतानाम्, मत्तः, एव, पृथग्विधाः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहिंसा=	हिंसारहित	समता=	राग द्वेषरहित

तुष्टिः=सन्तोष
तपः=इन्द्रियोंकानिग्रह
दानम्=दान
यशः=कीर्ति
अयशः=अपकीर्ति
+एतानि=ये
+सर्वाणि=सब

भूतानाम्=भूतोंके
पृथग्विधाः=भिन्न भिन्न प्रकार के
भावाः=भाव
मत्तः=मुझी से
एव=निश्चयकरके
भवन्ति=उत्पन्न होते हैं

भावार्थ ।

जीवमात्रको न सतानेका नाम अहिंसाहै, रागद्वेषादिकों से रहित होजानेका नाम समता है, प्राप्त भोगों में बुद्धिकी तृप्ति का नाम तुष्टि है, शास्त्रीय मार्ग करके शरीर इन्द्रियादि के सुखाने का नाम तप है, अपनी सामर्थ्य के अनुसार सुपात्र के प्रति देने का नाम दान है, धर्मकरने से उत्पन्न हुई कीर्तिका नाम यशहै, अधर्म करने से उत्पन्न हुई अपकीर्ति का नाम अपयश है, ये सब बुद्धिआदिक भावकार्य मुझसेही उत्पन्न होते हैं॥५॥

मूलम् ।

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः६

पदच्छेदः ।

महर्षयः, सप्त, पूर्वे, चत्वारः, मनवः, तथा, मद्भावाः, मानसाः, जाताः, येषाम्, लोके, इमाः, प्रजाः॥

अन्वयः शब्दार्थ

पूर्वे=अगले
चत्वारः=चार सनक आदिक
महर्षयः=महर्षि
तथा=और
सप्त=सात
मनवः=सावर्णिआदि मनु

अन्वयः शब्दार्थ

मद्भावाः=मेराही है भाव जिनमें
+ च=और
येषाम्=जिनकी
लोके=संसारबिषे
इमाः=ये
प्रजाः=प्रजायें हैं
मानसाः=मेरेमनसे
जाताः=उत्पन्नहोतेभये

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! वेद और वेदके अर्थ के द्रष्टा जो महर्षिलोग सृष्टिके आदिकाल में उत्पन्न हुये हैं वे वेदकी संप्रदाय के प्रवर्तक हैं, और सावर्णि आदि जो मनु हैं, और चार जो सनकादिक ऋषि हैं, इन सबकी मुझ ईश्वरमेंही भावना है, और मुझ ईश्वर के ही चिन्तनमें परायण हैं, क्योंकि ये सब मुझ ईश्वरके संकल्पसेही उत्पन्नहुये हैं, योनिद्वारा ये उत्पन्न नहींहुये हैं, और इन्हींसे सब प्रजायें उत्पन्न हुई हैं ॥ ६ ॥

मूलम्।

एतां विभूतिं योगञ्च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकल्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ७

पदच्छेदः।

एताम्, विभूतिम्, योगम्, च, मम, यः, वेत्ति, तत्त्वतः, सः, अविकल्पेन, योगेन, युज्यते, न, अत्र, संशयः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

एताम्=इस
मम=मेरी
विभूतिम्=विभूतिको
च=और
योगम्=योगको
तत्त्वतः=यथार्थ
यः=जो
वेत्ति=जानता है

अन्वयः शब्दार्थ

सः=वह
अविकल्पेन=संकल्पविकल्प रहित
योगेन=योगसे
युज्यते=युक्तहोता है
अत्र=इसमें
संशयः=संशय
न= नहीं है

भावार्थ।

भगवान् अपने प्रभाव को कहकर अब उस प्रभाव के ज्ञान और फलको कहते हैं कि, हे पार्थ ! यह जो मैंने अपनी विभूति कही है, और जो परम ऐश्वर्यवान् अपना योग कहा है, सो जो इन दोनों के स्वरूप को यथार्थ जानताहै, वही संकल्पविकल्पसे रहित योगसे युक्त है, इसमें संशय नहीं है ॥ ७ ॥

मूलम्।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ८

पदच्छेदः।

अहम्, सर्वस्य, प्रभवः, मत्तः, सर्वम्, प्रवर्तते, इति, मत्वा, भजन्ते, माम्, बुधाः, भावसमन्विताः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

अहम्=मैं
सर्वस्य=सबके
प्रभवः=उत्पत्तिका कारण
+अस्मि=हूं
मत्तः=मुझसेही
सर्वम्=सब
प्रवर्तते=निकलते हैं

अन्वयः **शब्दार्थ**

इति=इसप्रकार
मत्वा=जानकरके
भावसमन्विताः=श्रद्धासम्पन्न होतेहुये
बुधाः=पण्डितलोग
माम्=मुझको
भजन्ते=सेवन करते हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! मैं ही सबका प्रभव यानी उत्पत्तिका स्थानहूं, मेरी सत्तासेही जगत् अपने अपने कार्य में प्रवृत्त होताहै, ऐसा जानकरके विद्वान्लोग प्रेमयुक्त मेरा भजन करते हैं ॥ ८ ॥

मूलम्।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ९

पदच्छेदः।

मच्चित्ताः, मद्गतप्राणाः, बोधयन्तः, परस्परम्,

कथयन्तः, च, माम्, नित्यम्, तुष्यन्ति, च, रमन्ति, च ॥

अन्वयः शब्दार्थ

मच्चित्ताः=मुझमें है चित्त जिनका

च=और

मद्गतप्राणाः=मेरेमें लगाहै प्राण जिनका ऐसे भक्त

परस्परम्=आपसमें

बोधयन्तः=विचारकरतेहुये

अन्वयः शब्दार्थ

च=और

नित्यम्=वारंवार

माम्=मेरेनिमित्त

कथयन्तः=कथन करतेहुये

तुष्यन्ति=सन्तुष्ट होते हैं

च=और

रमन्ति=आनन्दित होते हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! जिनका मुझ ईश्वरमेंही चित्त लगा है, और मुझमेंही इन्द्रियोंकी वृत्तियां लगी हैं, और मुझमेंही अर्पणहै जीवन जिनका, वे सन्तों की सभा में परस्पर मुझको ही श्रुतियों और युक्तियों करके बोधन करते हैं, और जो जिज्ञासु पुरुष हैं, वे परस्पर मुझकोही कथन करते हैं, और सन्तोष और मोदको प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

मूलम्।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते १०

पदच्छेदः।

तेषाम्, सततयुक्तानाम्, भजताम्, प्रीतिपूर्वकम्, ददामि, बुद्धियोगम्, तम्, येन, माम्, उपयान्ति, ते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तेषाम्=उन
सततयुक्तानाम्=निरन्तरयुक्त हुये
प्रीतिपूर्वकम्=प्रीतिपूर्वक
भजताम्=भजनेवालोंको
तम्=उस

अन्वयः शब्दार्थ

बुद्धियोगम्=बुद्धियोगको
ददामि=मैं देता हूं
येन=जिससे
ते=वे पुरुष
माम्=मुझको ही
उपयान्ति=प्राप्तहोते हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! जो उत्तम पुरुष यथोक्त प्रकार निरन्तर मेरा भजन करते हैं, और जिन्हों ने मुझ परमेश्वर में ही मनको एकाग्र किया है, उनको मैं पूर्वोक्त ज्ञानयोग देताहूं, और उस ज्ञानयोग करके वे मुझको ही प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

मूलम्।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ११

पदच्छेदः।

तेषाम्, एव, अनुकम्पार्थम्, अहम्, अज्ञानजम्,

तमः, नाशयामि, आत्मभावस्थः, ज्ञानदीपेन, भास्वता ॥

अन्वयः शब्दार्थ
तेषाम्=उनके
अनुकम्पार्थम्=हितके लिये
अहम्=मैं
आत्मभावस्थः=उनके अन्तःकरणमें स्थित होताहुआ
भास्वता=प्रकाशमान

अन्वयः शब्दार्थ
ज्ञानदीपेन=ज्ञानरूपी दीपक करके
अज्ञानजम्=अज्ञानसे उत्पन्नभये
तमः=अन्धकार को
एव=निःसन्देह
नाशयामि=नाशकरता हू

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! जो अनन्यचित्त होकर मेरा भजन करते हैं, उनके चित्तमें मैं स्वप्रकाश ज्ञानरूपी दीपक उत्पन्न करके उनके मिथ्याज्ञान को नाश कर देताहूं, जैसे विना दीपककी उत्पत्तिके अन्य साधनों करके अन्धकार की निवृत्ति नहीं होती है वैसे ही आत्मज्ञान से विना अन्यकर्मादिकों करके अज्ञानकी निवृत्ति नहीं होती है, इसवास्ते मैं उनके शुद्ध स्नेह करके युक्त राग द्वेष से रहित उनके चित्तमें स्थिर होकर ज्ञानरूपी दीपक करके उनके अज्ञानको नाश करदेता हूं ॥ ११ ॥

मूलम्।

अर्जुन उवाच-

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् १२

पदच्छेदः।

परम्, ब्रह्म, परम्, धाम, पवित्रम्, परमम्, भवान्, पुरुषम्, शाश्वतम्, दिव्यम्, आदिदेवम्, अजम्, विभुम्॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
+ अर्जुन उवाच	= अर्जुन कहता भया	परमम्	= श्रेष्ठ है
+ भगवन्	= हे भगवन्!	शाश्वतम्	= निरन्तर
भवान्	= तू	पुरुषम्	= पुरुष है
परम्ब्रह्म	= परमब्रह्म है	दिव्यम्	= दिव्य है
परम्	= उत्तम	आदिदेवम्	= प्रथम पुरुष है
धाम	= स्थान है	अजम्	= जन्मरहित है
पवित्रम्	= पवित्र है	विभुम्	= व्यापक है

भावार्थ।

भगवान् की अद्भुत उपमेय विभूति को सुनकर अर्जुन कहता है कि, हे महाराज ! अद्वैत परंब्रह्मरूप तुम्हीं हो, सबका आश्रयरूप भी तुम्हीं हो, तुम्हीं परमपवित्ररूप हो, शाश्वत हो, यानी सर्वदाकाल

एकरस हो, दिव्य हो, अलौकिक हो, आदिदेव हो, यानी सर्वका आदि कारण हो, जन्म से रहित हो, और सर्वगत हो ॥ १२ ॥

मूलम् ।

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयञ्चैव ब्रवीषि मे १३

पदच्छेदः ।

आहुः, त्वाम्, ऋषयः, सर्वे, देवर्षिः, नारदः, तथा, असितः, देवलः, व्यासः, स्वयम्, च, एव, ब्रवीषि, मे ॥

अन्वयः शब्दार्थ

+ ईदृशम्=ऐसेही
त्वाम्=तुझको
सर्वे=सब
ऋषयः=ऋषिलोग
च=और
देवर्षिः=देवर्षि
नारदः=नारद
तथा=और
असितः=असितमुनि
देवलः=देवलमुनि

अन्वयः शब्दार्थ

+ च=और
व्यासः=व्यासजी
आहुः=कहते हैं
+ च=और
स्वयम्=तू आप
एव=भी
मे=मुझ से
+ एवमेव=ऐसाही
ब्रवीषि=कहता है

भावार्थ ।

अर्जुन कहता है कि, हे महाराज ! ऐसेही वसिष्ठ

और देवर्षि नारद और असित तथा देवल और व्यास आदिक सब तुम्हारेकोही कथन करते हैं, और वैसेही तुम भी अपने गुणोंको मेरेप्रति कहते हो ॥१३॥

मूलम्।

सर्वमेतदृतम्मन्ये यन्मां वदसि केशव।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः १४

पदच्छेदः।

सर्वम्, एतत्, ऋतम्, मन्ये, यत्, माम्, वदसि, केशव, न, हि, ते, भगवन्, व्यक्तिम्, विदुः, देवाः, न, दानवाः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

केशव=हे केशव !
भगवन्=हे भगवन् !
यत्=जो कुछ
माम्=मुझसे
वदसि=तू कहता है
एतत्=उस
सर्वम्=सबको
ऋतम्=सत्य
मन्ये=मानताहूं

अन्वयः शब्दार्थ

हि=क्योंकि
ते=तेरे
व्यक्तिम्=स्वरूपको
देवाः=देवता
+ च=और
दानवाः=दैत्य कोई
न=नहीं
विदुः=जानते हैं

भावार्थ।

अर्जुन कहताहै कि, हे भगवन्! जो कुछ आपने

मेरे प्रति कथन किया है उसको मैं सत्य मानताहूं, हे केशव ! आप करके कथन कियेहुये में मुझको किञ्चित् भी शङ्का नहीं फुरती है, हे भगवन् ! तुम्हारे प्रभाव को देवता और दानव कोई भी नहीं जानते हैं ॥ १४ ॥

मूलम्।

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते १५

पदच्छेदः।

स्वयम्, एव, आत्मना, आत्मानम्, वेत्थ, त्वम्, पुरुषोत्तम, भूतभावन, भूतेश, देवदेव, जगत्पते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

भूतभावन=हे भूतों के उत्पन्न करने वाले !
भूतेश=हे भूतों के ईश्वर !
देवदेव=हे देवताओं के देवता !

अन्वयः शब्दार्थ

जगत्पते=हे जगत् के स्वामी !
पुरुषोत्तम=हे उत्तम पुरुष!
त्वम्=तू
स्वयम् एव=आपही
आत्मानम्=अपने को
आत्मना=अपने द्वारा
वेत्थ=जानता है

भावार्थ।

अर्जुन कहता है कि, हे पुरुषोत्तम! हे भूतोंके पालन करनेवाले ! हे भूतों के स्वामी ! हे सम्पूर्ण देवों के

देव ! हे जगत्पते ! आप अपने को जानते हो, अर्थात् गुरु आचार्यादिकों के उपदेशके विना आप अपने आत्मा को जानते हो, क्योंकि आपही संपूर्ण जगत् के गुरु हो, और कोई दूसरा आपके प्रभाव को नहीं जानता है ॥ १५ ॥

मूलम् ।

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वंव्याप्यतिष्ठसि १६

पदच्छेदः ।

वक्तुम्, अर्हसि, अशेषेण, दिव्याः, हि, आत्मविभूतयः, याभिः, विभूतिभिः, लोकान्, इमान्, त्वम्, व्याप्य, तिष्ठसि ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

हि=क्योंकि
याभिः=जिन
विभूतिभिः=विभूतियों करके
इमान्=इन
लोकान्=लोकों को
व्याप्य=आच्छादित करके
त्वम्=तू

अन्वयः **शब्दार्थ**

तिष्ठसि=स्थितहै
+ताः=उन
दिव्याः=दिव्य
आत्मविभूतयः=अपनी विभूतियोंकोयानी ऐश्वर्य को
अशेषेण=सब प्रकार से
वक्तुम्=कहने को
अर्हसि=योग्य है तू

भावार्थ ।

हे भगवन् ! आपकी विभूतियां पुरुषों करके जानने को अशक्य हैं, जिन विभूतियों करके आप इन लोकों को व्याप्य करके स्थित हो, वे विभूतियां आपके जानने को असमर्थ हैं, आप सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् हो, आप उन विभूतियोंको मेरे प्रति कथन करने के योग्य हो ॥ १६॥

मूलम् ।

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया १७

पदच्छेदः ।

कथम्, विद्याम्, अहम्, योगिन्, त्वाम्, सदा, परिचिन्तयन्, केषु, केषु, च, भावेषु, चिन्त्यः, असि, भगवन्, मया ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

योगिन्=हे योगीश्वर !
सदा=वारंवार
परिचिन्तयन्=विचारताहुआ
त्वाम्=तुझको
अहम्=मैं
कथम्=कैसे
विद्याम्=जानूं
च=और

अन्वयः **शब्दार्थ**

भगवन्=हे भगवन् !
केषु केषु=किन किन
भावेषु=भावों बिषे यानी पदार्थों में
मया=मुझ करके
चिन्त्यः=ध्यान करने योग्य
असि=है तू

भावार्थ ।

हे योगिन् ! आपको मैं सदैव चिन्तन करता हुआ कैसे आपकी विभूतियोंको जानूं, और किस किस जड़ वस्तु में मुझ करके आप चिन्तन करने के योग्य हो ॥ १७ ॥

मूलम् ।

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् १८

पदच्छेदः ।

विस्तरेण, आत्मनः, योगम्, विभूतिम्, च, जनार्दन, भूयः, कथय, तृप्तिः, हि, शृण्वतः, न, अस्ति, मे, अमृतम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

जनार्दन=हे प्राणियों के पालनेवाले !
विस्तरेण=विस्तारपूर्वक
आत्मनः=अपने
योगम्=योगको
च=और
विभूतिम्=विभूति को
भूयः=फिर
कथय=कह तू

अन्वयः शब्दार्थ

हि=क्योंकि
अमृतम्=अमृतरूप वचनको
शृण्वतः=सुनते हुये
मे=मेरी
तृप्तिः=तृप्ति
न=नहीं
अस्ति=होती है

भावार्थ ।

हे जनार्दन ! आप विस्तार सहित मेरे ध्यानप्रति अपने सर्वज्ञत्वादिक योग और ऐश्वर्यरूपी विभूति को कहिये, यानी जो पूर्व आपने सप्तम और नवम अध्याय में संक्षेप करके कही है, उसीको फिर विस्तार से कहिये क्योंकि आपही से संपूर्ण पुरुष भोग और मोक्षकी याचना करते हैं, मैं भी आपसेही याचना करताहूं ॥ प्रश्न ॥ पूर्व कथन कियेहुये को फिर क्यों श्रवण करने की तू इच्छा करताहै ॥ उत्तर ॥ श्रोत्र इन्द्रिय करके आपके वचनरूपी अमृत को जो मैं पान करताहूं, उस अमृत के पान करने से मेरी तृप्ति नहीं होती है, इस लिये मैं पुनः पुनः श्रवण करनेकी इच्छा करताहूं ॥१८॥

मूलम् ।

श्रीभगवानुवाच-

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतःकुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे १९

पदच्छेदः ।

हन्त, ते, कथयिष्यामि, दिव्याः, हि, आत्मविभूतयः, प्राधान्यतः, कुरुश्रेष्ठ, न, अस्ति, अन्तः, विस्तरस्य, मे ॥

अन्वयः शब्दार्थ
हन्त=बहुत अच्छा
ते=तेरेलिये

अन्वयः शब्दार्थ
प्राधान्यतः=प्रधान
दिव्याः=अलौकिक

आत्मविभूतयः=अपनी विभूतियों को
कथयिष्यामि=कहूंगा
कुरुश्रेष्ठ=हे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ !

हि=निश्चयपूर्वक
मे=मेरी विभूतियों के
विस्तरस्य=विस्तारका
अन्तः=अन्त
न=नहीं
अस्ति=है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जो तुमने प्रार्थना की है, उसको मैं पूर्ण करूंगा, तुम व्याकुलचित्त मत हो, हे कौरवों में श्रेष्ठ, अर्जुन ! यद्यपि मेरी विभूतियों का अन्त नहीं है, तथापि जो जो मेरी प्रधान विभूतियां हैं, उनको मैं तुम्हारे प्रति कहूंगा ॥ १९ ॥

मूलम् ।

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यञ्च भूतानामन्त एव च २०

पदच्छेदः ।

अहम्, आत्मा, गुडाकेश, सर्वभूताशयस्थितः, अहम्, आदिः, च, मध्यम्, च, भूतानाम्, अन्तः, एव, च ॥

अन्वयः शब्दार्थ
गुडाकेश=हे अर्जुन ! हे जितेन्द्रिय पुरुष !

अन्वयः शब्दार्थ
अहम्=मैं

सर्वभूताशयस्थितः=सब प्राणियों के अन्तःकरण बिषे स्थित होता हुआ
आत्मा=शुद्ध सच्चिदानन्दरूप परमात्मा हूं
च=और
अहम्=मैं
भूतानाम्=भूतोंका
आदिः=आदिहूं
च=और
मध्यम्=मध्यहूं
च=और
अन्तःएव=अन्तभी हूं

भावार्थ ।

हे अर्जुन ! सम्पूर्ण भूतों के अन्तःकरण में अन्तर्यामीरूप करके स्थित जो चिद्घन है, वह मैंही हूं इस प्रकार तुम ध्यान करो, हे गुडाकेश ! गुडाका नाम निद्रा का है, और ईश नाम जीतनेवाले का है, अर्जुन के वश निद्रा थी, इसलिये उसका नाम गुडाकेश था, यदि तुम पूर्वोक्त प्रकार ध्यान करने में असमर्थ हो तो ऐसा ध्यान करो कि मैंही सम्पूर्ण भूतोंका आदि, मध्य, अन्तहूं, अर्थात् उत्पत्ति, स्थिति, लय का कारणहूं ॥२०॥

मूलम् ।

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी २१

पदच्छेदः ।

आदित्यानाम्, अहम्, विष्णुः, ज्योतिषाम्, रविः,

अंशुमान्, मरीचिः, मरुताम्, अस्मि, नक्षत्राणाम्, अहम्, शशी ॥

अन्वयः — **शब्दार्थ**

आदित्यानाम्=आदित्यों में

अहम्=मैं

विष्णुः=विष्णु आदित्य हूं

ज्योतिषाम्=ज्योतियों में

अंशुमान्=प्रकाशमान किरण वाला

अन्वयः — **शब्दार्थ**

रविः=सूर्यहूं

मरुताम्=मरुतों में

मरीचिः=मरीचिनाम देवताहूं

नक्षत्राणाम्=नक्षत्रों में

शशी=चन्द्रमा

अहम्=मैं

अस्मि=हूं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, यदि पूर्वोक्त ध्यान करने में तू असमर्थ है, तब तुमको बाह्य स्थूल वस्तुवों का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये कि द्वादश आदित्यों के मध्य बिषे विष्णुनामवाला जो आदित्य है सो मैं हूं, और जितने ज्योतिवाले यानी प्रकाशवाले हैं उनमें से अंशुमान् रवि प्रकाश करनेवाला मैंही हूं, और सब वायुवों के बीच में मरीचि नामवाला वायु मैंही हूं, और सब नक्षत्रों का स्वामी जो चन्द्रमा है सो मैंही हूं ॥२१॥

मूलम् ।

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना २२

पदच्छेदः।

वेदानाम्, सामवेदः, अस्मि, देवानाम्, अस्मि, वासवः, इन्द्रियाणाम्, मनः, च, अस्मि, भूतानाम्, अस्मि, चेतना॥

अन्वयः शब्दार्थ

वेदानाम्=वेदों में
सामवेदः=सामवेद
अस्मि=हूं
देवानाम्=देवताओं में
वासवः=इन्द्र
अस्मि=हूं

अन्वयः शब्दार्थ

इन्द्रियाणाम्=इन्द्रियों में
मनः=मन
अस्मि=हूं
च=और
भूतानाम्=भूतों में
चेतना=चैतन्य
अस्मि=हूं

भावार्थ।

चारों वेदों के बीच गान में मधुर और अतिरमणीय सामवेद मैंही हूं, और सब देवताओं में इन्द्र मैंही हूं, और एकादश इन्द्रियों का प्रवर्तक मन मैंही हूं, और सम्पूर्ण प्राणियों में जो चेतनशक्ति है सो मैं ही हूं॥ २२॥

मूलम्।

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् २३

पदच्छेदः।

रुद्राणाम्, शंकरः, च, अस्मि, वित्तेशः, यक्षरक्षसाम्,

वसूनाम्, पावकः, च, अस्मि, मेरुः, शिखरिणाम्, अहम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
रुद्राणाम्=रुद्रों में
शंकरः=शंकर
अस्मि=हूं
यक्षरक्षसाम्=यक्षों और राक्षसों में
वित्तेशः=कुबेरहूं
वसूनाम्=वसुवों में

अन्वयः शब्दार्थ

पावकः=अग्निहूं
च=और
शिखरिणाम्=पर्वतों में
अहम्=मैं
मेरुः=सुमेरुपर्वत
अस्मि=हूं

भावार्थ ।

एकादशरुद्रों में शंकर मैं हूं, और यक्ष राक्षसों में वित्तेश यानी कुबेर मैं हूं, और आठ वसुवों में अग्नि मैं हूं, और ऊँचे शिखरवाले पर्वतों में सुमेरु पर्वत मैं हूं ॥ २३ ॥

मूलम् ।

पुरोधसाञ्च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः २४

पदच्छेदः ।

पुरोधसाम्, च, मुख्यम्, माम्, विद्धि, पार्थ, बृहस्पतिम्, सेनानीनाम्, अहम्, स्कन्दः, सरसाम्, अस्मि, सागरः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
च=और
पुरोधसाम्=पुरोहितों में
मुख्यम्=मुख्य
बृहस्पतिम्=बृहस्पति
माम्=मुझको
विद्धि=जान तू
पार्थ=हे पार्थ !

अन्वयः शब्दार्थ
सेनानीनाम्=सेनापतियोंमें
अहम्=मैं
स्कन्दः=स्वामिकार्त्तिकहूं
सरसाम्=जलाशयों में
सागरः=समुद्र
अस्मि=हूं

भावार्थ।

पुरोहितों के बीच इन्द्रका पुरोहित जो बृहस्पति है सो मैं हूं, हे पार्थ ! मुझको ही तू बृहस्पतिरूप करके जान, और सेनापतियों के मध्य देवताओं का सेनापति स्कन्द मैं हूं, और जलाशयों में समुद्र मैं हूं ॥ २४ ॥

मूलम्।

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः २५

पदच्छेदः।

महर्षीणाम्, भृगुः, अहम्, गिराम्, अस्मि, एकम्, अक्षरम्, यज्ञानाम्, जपयज्ञः, अस्मि, स्थावराणाम्, हिमालयः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
महर्षीणाम्=महर्षियों में
भृगुः=भृगु

अन्वयः शब्दार्थ
अहम्=मैं
अस्मि=हूं

गिराम्=वाणियों में
एकम्=एक
अक्षरम्=अक्षर ॐ
अस्मि=हूं
यज्ञानाम्=यज्ञों में
जपयज्ञः=जपरूप यज्ञ
+ अस्मि=हूं
स्थावराणाम्=अचरपदार्थों में
हिमालयः=हिमालय
+ अहम्=मैं
+ अस्मि=हूं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, सात जो महर्षि ब्राह्मण हैं, उनमें भृगु मैं हूं, और जितनी वाणी हैं उनके बीच एक अक्षर जो ॐकार है सो मैंही हूं, और जितने कि यज्ञ हैं, उनके मध्य हिंसा से रहित जपरूपी यज्ञ मैंही हूं, और स्थावरों के मध्य हिमालय पर्वत मैंही हूं ॥ २५ ॥

मूलम् ।

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः २६

पदच्छेदः ।

अश्वत्थः, सर्ववृक्षाणाम्, देवर्षीणाम्, च, नारदः, गन्धर्वाणाम्, चित्ररथः, सिद्धानाम्, कपिलः, मुनिः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
सर्ववृक्षाणाम्=सबवृक्षों में
+ अहम्=मैं

अन्वयः शब्दार्थ
अश्वत्थः=पीपलहूं
देवर्षीणाम्=देवर्षियों में

नारदः=नारद मुनि हूं
च=और
गन्धर्वाणाम्=गन्धर्वों में
चित्ररथः=चित्ररथहूं
सिद्धानाम्=सिद्धों में
कपिलः=कपिल
मुनिः=मुनि
+ अहम्=मैं
+ अस्मि=हूं

भावार्थ।

संपूर्ण वृक्षों और वनस्पतियों के मध्य पीपल मैंही हूं, और जो देवता होकर ऋषिभाव को प्राप्त हुये हैं, उनका नाम देवऋषि है सो देवऋषियों में नारद मैंही हूं, और देवताओं के आगे गान करनेवाले जो गन्धर्व हैं उनके मध्य चित्ररथ नामवाला गन्धर्व मैंही हूं, और जो विना प्रयत्न जन्मकाल से ही सिद्ध हुये हैं उनमें कपिलमुनि मैंही हूं ॥ २६ ॥

मूलम्।

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् २७

पदच्छेदः।

उच्चैःश्रवसम्, अश्वानाम्, विद्धि, माम्, अमृतोद्भवम्, ऐरावतम्, गजेन्द्राणाम्, नराणाम्, च, नराधिपम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
अश्वानाम्	घोड़ों में
अमृतोद्भवम्	अमृत से उत्पन्नहुआ
उच्चैःश्रवसम्	उच्चैःश्रवा घोड़ा
माम्	मुझको

विद्धि=जान तू
गजेन्द्राणाम्=हाथियों में
ऐरावतम्=ऐरावतहाथी
च=और

नराणाम्=मनुष्यों में
नराधिपम्=राजा
+ माम्=मुझको
+ विद्धि=जान तू

भावार्थ ।

अश्वों के बीच उच्चैःश्रवा नामक अश्व जो अमृतके मथनकाल में उत्पन्न हुआ है वह मैंही हूं, और हाथियों में ऐरावत नामवाला हाथी मैंही हूं, और मनुष्यों में राजा मैंही हूं ॥ २७ ॥

मूलम् ।

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पःसर्पाणामस्मि वासुकिः २८

पदच्छेदः ।

आयुधानाम्, अहम्, वज्रम्, धेनूनाम्, अस्मि, कामधुक्, प्रजनः, च, अस्मि, कन्दर्पः, सर्पाणाम्, अस्मि, वासुकिः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
आयुधानाम्=शस्त्रों में
अहम्=मैं
वज्रम्=वज्र हूं
धेनूनाम्=गौवों में
कामधुक्=कामधेनु गौ

अन्वयः शब्दार्थ
अस्मि=हूं
च=और
प्रजनः=प्रजाकीउत्पत्ति करनेवाला
कन्दर्पः=कामदेव

अस्मि=हूं
सर्पाणाम्=सर्पों में

वासुकिः=वासुकि सर्प
अस्मि=हूं

भावार्थ ।

आयुध नाम शस्त्र का है, उन शस्त्रों में वज्र जो दधीचि ऋषिकी अस्थियों से बना है वह मैंही हूं, और धेनुवों के मध्य कामना की दुहन करनेवाली वसिष्ठ की कामधेनु गौ मैंही हूं, और उत्पत्ति का कारण जो कामदेव है सो मैंही हूं, और सर्पों की जातियों में वासुकि नाम सर्प मैंही हूं ॥ २८ ॥

मूलम् ।

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् २९

पदच्छेदः ।

अनन्तः, च, अस्मि, नागानाम्, वरुणः, यादसाम्, अहम्, पितॄणाम्, अर्यमा, च, अस्मि, यमः, संयमताम्, अहम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
नागानाम्=नागों में
अनन्तः=शेषनाग
अहम्=मैं
अस्मि=हूं
च=और
यादसाम्=जलकेदेवताओंमें

अन्वयः शब्दार्थ
वरुणः=वरुण हूं
पितॄणाम्=पितरों में
अर्यमा=अर्यमा नामक पितृगण का राजाहूं
च=और

संयमताम्=दण्ड देनेवालोंमें	यमः=यमराज
अहम्=मैं	अस्मि=हूं

भावार्थ।

नागजातिवाले सर्पों के मध्य उनका राजा जो अनन्तनाग है सो मैंही हूं, और जितने कि जलचर जीव हैं उनका राजा वरुण मैंही हूं, और पितरों के मध्य उनका राजा अर्यमा नामक मैंही हूं ॥ २९ ॥

मूलम्।

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम्।
मृगाणाञ्च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ३०

पदच्छेदः।

प्रह्लादः, च, अस्मि, दैत्यानाम्, कालः, कलयताम्, अहम्, मृगाणाम्, च, मृगेन्द्रः, अहम, वैनतेयः, च, पक्षिणाम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
दैत्यानाम्=दैत्यों में	मृगाणाम्=मृगों में
प्रह्लादः=प्रह्लादहूं	मृगेन्द्रः=सिंह हूं
कलयताम्=गिनती करने वालों में	च=और
	पक्षिणाम्=पक्षियों में
अहम्=मैं	वैनतेयः=गरुड़
कालः=काल हूं	अहम्=मैं
च=और	अस्मि=हूं

भावार्थ।

दितिके वंशसे उत्पन्न हुये जो दैत्य हैं उनके मध्य प्रह्लाद मैंही हूं, और गणना करनेवालों में काल मैंही हूं, और मृगों में यानी पशुवों में मृगेन्द्र जो सिंह है, सो मैंही हूं, और पक्षियों के मध्य विनता का पुत्र गरुड़ मैंही हूं ॥ ३० ॥

मूलम्।

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ३१

पदच्छेदः।

पवनः, पवताम्, अस्मि, रामः, शस्त्रभृताम्, अहम्, झषाणाम्, मकरः, च, अस्मि, स्रोतसाम्, अस्मि, जाह्नवी ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

च=और
पवताम्=पवित्र करने वालों में
पवनः=पवन
अस्मि=मैं हूं
शस्त्रभृताम्=शस्त्र धारण करनेवालों में
रामः=राम

अन्वयः **शब्दार्थ**

अहम्=मैं हूं
झषाणाम्=जलके जन्तुओं में
मकरः=मगर
अस्मि=मैं हूं
स्रोतसाम्=नदियों में
जाह्नवी=गंगा
अस्मि=मैं हूं

भावार्थ ।

पवित्र करनेवालों में पवन जो वायु है सो मैंही हूं, और जो युद्ध में बड़े कुशल शस्त्रधारी हैं उनमें श्रीरामजी मैंही हूं, और मछलियों में मकर जातिवाली मछली मैंही हूं, और नदियों में जाह्नवी यानी श्रीगंगाजी मैंही हूं ॥ ३१ ॥

मूलम् ।

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ३२

पदच्छेदः ।

सर्गाणाम्, आदिः, अन्तः, च, मध्यम्, च, एव, अहम्, अर्जुन, अध्यात्मविद्या, विद्यानाम्, वादः, प्रवदताम्, अहम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अर्जुन=हे अर्जुन !
सर्गाणाम्=जगत् का
अहम् एव=मैंही
आदिः=आदि हूं
अन्तः=अन्त हूं
च=और
मध्यम्=मध्य हूं
विद्यानाम्=विद्याओं में

अन्वयः शब्दार्थ

अध्यात्मविद्या=अध्यात्मविद्या हूं
च=और
प्रवदताम्=वादविवाद करनेवालों में
अहम्=मैं
वादः=वाद हूं

भावार्थ।

जितनी जड़सृष्टि हैं उनका आदि, अन्त, मध्य, यानी उत्पत्ति, स्थिति, और लय का कारण मैंही हूं, और सब विद्याओं के बीच अध्यात्मविद्या जो मोक्ष का हेतु है वह मैंही हूं, और जो वाद जल्पवितण्डादिक हैं उनमें वाद मैंही हूं ॥ ३२ ॥

मूलम्।

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ३३

पदच्छेदः।

अक्षराणाम्, अकारः, अस्मि, द्वन्द्वः, सामासिकस्य, च, अहम्, एव, अक्षयः, कालः, धाता, अहम्, विश्वतोमुखः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

अक्षराणाम्=अक्षरों में
अकारः=अकार
अस्मि=मैं हूं
सामासिकस्य=समासों में
द्वन्द्वः=द्वन्द्व समास हूं
च=और
अहम्=मैं
एव=ही

अन्वयः **शब्दार्थ**

अक्षयः=अविनाशी
कालः=कालरूप हूं
अहम्=मैं
धाता=कर्म फल का देनेवाला हूं
+च=और
विश्वतोमुखः=विराट्रूप हूं

नोट (द्वन्द्व समास में दोनों पद प्रधान होते हैं जैसे रामकृष्णौ आगच्छतः)।

भावार्थ।

संपूर्ण वर्णों में अकार मैंही हूं, और समासों के मध्य द्वन्द्व समास मैंही हूं, कालका ज्ञाता मैंही हूं, और काल का भी काल मैंही हूं, और कर्मों के फलको विधान करनेवाला मैंही हूं, और विराट्रूप मैंही हूं ॥ ३३ ॥

मूलम्।

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम्।
कीर्तिःश्रीर्वाक्चनारीणांस्मृतिर्मेधाधृतिःक्षमा ३४

पदच्छेदः।

मृत्युः, सर्वहरः, च, अहम्, उद्भवः, च, भविष्यताम्, कीर्तिः, श्रीः, वाक्, च, नारीणाम्, स्मृतिः, मेधा, धृतिः, क्षमा ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अहम्=मैं
सर्वहरः=सबका हरनेवाला
मृत्युः=मृत्यु हूं
च=और
भविष्यताम्=श्रीमान् होनेवालों में

अन्वयः शब्दार्थ

उद्भवः=ऐश्वर्यकी प्राप्ति का कारण
+ अहम्=मैंही
+ अस्मि=हूं
च=और
नारीणाम्=स्त्रीवाचक शब्दों में

कीर्तिः=यश
श्रीः=शोभा
वाक्=वाणी
स्मृतिः=स्मरणशक्ति
मेधा=बुद्धि

धृतिः=धैर्य
+ च=और
क्षमा=सहनशीलता
+अहम्एव=मैंही
+ अस्मि=हूं

भावार्थ।

जितने संहार करनेवाले हैं उनके मध्य सर्व का संहारकर्ता मृत्यु मैंही हूं, और भावि कल्याणों का जो उत्कर्ष है सो मैंही हूं, और नारियों के मध्य कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, बुद्धि, धृति, क्षमा ये सात जो धर्म की पत्नी हैं सो मैंही हूं ॥ ३४ ॥

मूलम्।

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ३५

पदच्छेदः।

बृहत्साम, तथा, साम्नाम्, गायत्री, छन्दसाम्, अहम्, मासानाम्, मार्गशीर्षः, अहम्, ऋतूनाम्, कुसुमाकरः॥

अन्वयः शब्दार्थ
अहम्=मैं
साम्नाम्=सामवेद में
बृहत्साम=बृहत्साम ऋचाहूं
छन्दसाम्=छन्दों में

अन्वयः शब्दार्थ
गायत्री=गायत्री हूं
मासानाम्=महीनों में
मार्गशीर्षः=अगहन का महीना हूं

तथा=और	अहम्=मैं
ऋतूनाम्=ऋतुवों में	कुसुमाकरः=वसन्तऋतु हूं

भावार्थ ।

जो सामवेद गान किये जाते हैं उनमें बृहत्साम मैंही हूं, छन्दों के बीच गायत्रीछन्द मैंही हूं, और बारह महीनों के बीच मार्गशीर्ष का महीना मैंही हूं, और षट् ऋतुवों के बीच वसन्त ऋतु मैंही हूं ॥ ३५ ॥

मूलम् ।

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ३६

पदच्छेदः ।

द्यूतम्, छलयताम्, अस्मि, तेजः, तेजस्विनाम्, अहम्, जयः, अस्मि, व्यवसायः, अस्मि, सत्त्वम्, सत्त्ववताम्, अहम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
छलयताम्	छल करने वालों में	तेजः	तेजहूं
द्यूतम्	जुवा	+ जेतृणाम्	जीतनेवाले पुरुषों में
अहम्	मैं	जयः	जय
अस्मि	हूं	अस्मि	मैंहूं
तेजस्विनाम्	तेजधारियों में	+ व्यवसायिनाम्	उद्यम करने वाले पुरुषों में

व्यवसायः=उद्यम हूं
सत्त्ववताम्=सतोगुणी पुरुषों में
सत्त्वम्=सत्त्व
अहम्=मैं
अस्मि=हूं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि जो छल करके दूसरों को वञ्चन करते हैं उन छल करनेवालों में जो द्यूतरूप जुवा है सो मैंही हूं, अति उग्र प्रभाववाले तेजस्वियों में जो तेज है सो मैंही हूं, जितने जय करनेवाले हैं अर्थात् जीतनेवाले हैं उनमें जो जीतना है सो मैंही हूं, और जो व्यवसायी यानी उद्यम करनेवाले हैं उनमें व्यवसाय मैंही हूं, और जो सात्त्विक स्वभाववालों में धर्म ज्ञान वैराग्यरूप सत्त्वगुणका कार्य है सो मैंही हूं॥ ३६॥

मूलम्।

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशनाः कविः ३७

पदच्छेदः।

वृष्णीनाम्, वासुदेवः, अस्मि, पाण्डवानाम्, धनञ्जयः, मुनीनाम्, अपि, अहम्, व्यासः, कवीनाम्, उशनाः, कविः॥

अन्वयः **शब्दार्थ**
वृष्णीनाम्=यदुवंशियों में
वासुदेवः=वासुदेव

अन्वयः **शब्दार्थ**
अस्मि=हूं
पाण्डवानाम्=पाण्डवों में

धनञ्जयः=अर्जुन हूं
मुनीनाम्=मुनियों में
अहम्=मैं
व्यासः=व्यासहूं
अपि=और
कवीनाम्=कवियों में
उशनाः=शुक्राचार्य
कविः=कविहूं

भावार्थ ।

यादवों के बीच वासुदेव कृष्ण मैंही हूं, पांचों पाण्डवों में धनञ्जय अर्जुन मैंही हूं, मुनियों के बीच व्यास भगवान् मैंही हूं, और जितने कवि हैं अर्थात् जितने सूक्ष्म अर्थ के विचार करनेवाले हैं उनमें शुक्राचार्य मैंही हूं ॥ ३७ ॥

मूलम् ।

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ३८

पदच्छेदः ।

दण्डः, दमयताम, अस्मि, नीतिः, अस्मि, जिगीषताम्, मौनम्, च, एव, अस्मि, गुह्यानाम्, ज्ञानम्, ज्ञानवताम्, अहम् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**
दमयताम्=दण्ड देनेवालोंमें
दण्डः=दण्ड
अस्मि=हूं

अन्वयः **शब्दार्थ**
जिगीषताम्=जीत के चाहने वालों में
नीतिः=धर्म

अस्मि=हूं
गुह्यानाम्=गोप्यपदार्थों में
मौनम्=तूष्णीम्
अस्मि=हूं
च=और

ज्ञानवताम्=ज्ञानियों में
ज्ञानम्=ज्ञान
अहम्=मैं
एव=ही
अस्मि=हूं

भावार्थ ।

जितने दुष्टों को दण्ड देनेवाले हैं उनमें जो दण्ड है सो मैंही हूं, जो जयकी इच्छावाले हैं उनमें नीति मैंहूं, जितने गोप्य हैं यानी छिपाने योग्य हैं उनमें गोप्यका हेतु मौन मैंही हूं, और ज्ञानियों में जो ज्ञान है सो मैंही हूं ॥ ३८ ॥

मूलम् ।

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ३९

पदच्छेदः ।

यत्, च, अपि, सर्वभूतानाम्, बीजम्, तत्, अहम्, अर्जुन, न, तत्, अस्ति, विना, यत्, स्यात्, मया, भूतम्, चराचरम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
अर्जुन=हे अर्जुन !
अपि=निश्चयपूर्वक
यत्=जो

अन्वयः शब्दार्थ
सर्वभूतानाम्=सबप्राणियोंका
बीजम्=बीज है

तत्=सो
अहम्=मैं
+ अस्मि=हूं
च=और
यत्=जो
चराचरम्=चर और अचर
भूतम्=सृष्टि
विनामया=मेरे बग़ैर
स्यात्=होवे
तत्=सो
न=नहीं
अस्ति=होसक्ती है

भावार्थ ।

संपूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति का कारण जो मायोपाधिक चेतनहै सो मैंही हूं, हे अर्जुन ! मुझसे विना चर अचर भूत कोई भी नहीं है, सब मेराही रूप है ॥ ३९ ॥

मूलम् ।

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ४०

पदच्छेदः ।

न, अन्तः, अस्ति, मम, दिव्यानाम्, विभूतीनाम्, परन्तप, एषः, तु, उद्देशतः, प्रोक्तः, विभूतेः, विस्तरः, मया ॥

अन्वयः शब्दार्थ
परन्तप=हे परन्तप, अर्जुन !
मम=मेरी
दिव्यानाम्=दिव्य

अन्वयः शब्दार्थ
विभूतीनाम्=विभूतियों का
अन्तः=अन्त
न=नहीं

अस्ति=है
तु=पर
विभूतेः=विभूतियों का
एषः=यह
विस्तरः=विस्तार
उद्देशतः=संक्षेप से
मया=मुझ करके
प्रोक्तः=कहागया है

भावार्थ।

हे परन्तप, अर्जुन! मेरी दिव्य अलौकिक विभूतियों का अन्त नहीं है, मैंने तुम्हारे प्रति संक्षेप से विभूतियों का निरूपण किया है ॥ ४० ॥

मूलम्।

यद्यद्विभूतिमत्सर्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंशसम्भवम् ४१

पदच्छेदः।

यत्, यत्, विभूतिमत्, सर्वम्, श्रीमत्, ऊर्जितम्, एव, वा, तत्, तत्, एव, अवगच्छ, त्वम्, मम, तेजोंशसम्भवम् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

एव=निश्चयकरके
यत्यत्=जो जो
विभूतिमत्=ऐश्वर्यवान्
श्रीमत्=श्रीमान्
वा=अथवा
ऊर्जितम्=श्रेष्ठ है
तत्तत्=तिस तिस

अन्वयः **शब्दार्थ**

सर्वम्=सब को
मम=मेरे
तेजोंशसम्भवम्=तेजके अंश से उत्पन्न हुआ
एव=अवश्य
अवगच्छ=जान
त्वम्=तू

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! संसार में जो प्राणी ऐश्वर्य करके युक्त हैं, जो श्री लक्ष्मी करके युक्त हैं, और शोभा यानी कान्ति करके युक्त हैं उन सबको हे अर्जुन ! तू मेरे तेज करके उत्पन्न हुआ जान ॥ ४१ ॥

मूलम् ।

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञानेन तवाऽर्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ४२

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगोनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

अथवा, बहुना, एतेन, किम्, ज्ञानेन, तव, अर्जुन, विष्टभ्य, अहम्, इदम्, कृत्स्नम्, एकांशेन, स्थितः, जगत् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अथवा	परन्तु	अहम्	मैं
अर्जुन	हे अर्जुन !	इदम्	इस
एतेन	इस	कृत्स्नम्	संपूर्ण
बहुना	बहुत	जगत्	संसारको
ज्ञानेन	ज्ञान करके	एकांशेन	एक अंश से
तव	तुझको	विष्टभ्य	धारण करके
किम्	क्या प्रयोजन है	स्थितः	स्थित हूं

भावार्थ।

हे अर्जुन! बहुत कथन करने से क्या प्रयोजन है, मैं संपूर्ण जगत् को अपने एक अंशसे धारण करके स्थितहूं, मुझसे भिन्न इस जगत् में कुछभी नहीं है॥ ४२॥

दशवां अध्याय समाप्त॥

ग्यारहवां अध्याय।

मूलम्।

अर्जुन उवाच-

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम १

पदच्छेदः।

मदनुग्रहाय, परमम्, गुह्यम्, अध्यात्मसंज्ञितम्, यत्, त्वया, उक्तम्, वचः, तेन, मोहः, अयम्, विगतः, मम॥

अन्वयः	शब्दार्थ
अर्जुन उवाच	= अर्जुन कहता भया कि
मदनुग्रहाय	= मेरे अनुग्रह के लिये
परमम्	= उत्तम
गुह्यम्	= गुप्त
अध्यात्मसंज्ञितम्	= अध्यात्मनामक
यत्	= जो
वचः	= वाक्य
त्वया	= तुझकरके

उक्तम्=कहागया है	मम=मेरा
तेन=उस करके	मोहः=अज्ञान
अयम्=यह	विगतः=दूर होगया है

भावार्थ ।

पूर्बले अध्याय के अन्त में भगवान् ने अपनी विभूतियों का निरूपण किया है, और यह भी कहा कि मैंही अपने एक अंशसे सारे जगत् को व्याप्य करके स्थितहूं, भगवान् के विश्वरूप को श्रवण करके उसी रूपको साक्षात्कार करने की इच्छावाला हुआ। अर्जुन कहताहै कि हे भगवन् ! मेरे ऊपर कृपादृष्टि करके जो परमगुह्य आत्मा और अनात्मा के विवेक-विषयक वचन आपने कहा है, उस करके देहादिकों में अध्यासरूप जो मेरा मोह था, वह नष्ट होगया ॥ १ ॥

मूलम् ।

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् २

पदच्छेदः ।

भवाप्ययौ, हि, भूतानाम्, श्रुतौ, विस्तरशः, मया, त्वत्तः, कमलपत्राक्ष, माहात्म्यम्, अपि, च, अव्ययम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
हि=क्योंकि	कमलपत्राक्ष=हेकमलनयन !

त्वत्तः=तुझसे
भूतानाम्=भूतों के
भवाप्ययौ=उत्पत्ति और लय
विस्तरशः=विस्तारपूर्वक
मया=मुझकरके

श्रुतौ=सुनागया है
च=और
अव्ययम्=अक्षय
माहात्म्यम्=माहात्म्य
अपि=भी
+ श्रुतम्=सुनागया है

भावार्थ ।

हे कमलपत्राक्ष ! भूतों का जन्म और लय आपसे मैंने विस्तारपूर्वक श्रवण कियाहै, और विश्वसृष्ट्यादि के कर्तृत्व में जो आपका अविकारस्वरूप माहात्म्य है, वह भी मैंने आपसे श्रवण किया है ॥ २ ॥

मूलम् ।

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ३

पदच्छेदः ।

एवम्, एतत्, यथा, आत्थ, त्वम्, आत्मानम्, परमेश्वर, द्रष्टुम्, इच्छामि, ते, रूपम्, ऐश्वरम्, पुरुषोत्तम ॥

अन्वयः शब्दार्थ
परमेश्वर=हे भगवन् !
यथा=जैसे

अन्वयः शब्दार्थ
त्वम्=तू
आत्मानम्=अपने को

आत्थ=कहता है
एवम्=ऐसाही
एतत्=यह है
पुरुषोत्तम=हे पुरुषों में उत्तम !
ते=तेरे

ऐश्वरम्=ईश्वरसम्बन्धी यानीअलौकिक
रूपम्=रूप को
द्रष्टुम्=देखना
इच्छामि=चाहताहूं मैं

भावार्थ ।

अर्जुन कहता है कि, हे भगवन् ! जिस प्रकार आप अपने सोपाधिक, निरुपाधिक परम ऐश्वर्यरूप को कथन करते हो वह सब सत्य है, इस में किञ्चिन्मात्र संशय नहीं है, आपके वाक्य में मेरा पूर्ण विश्वास है पर तो भी मैं आपके ज्ञान ऐश्वर्यसंपन्न रूप को देखने की इच्छा करता हूं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ४

पदच्छेदः ।

मन्यसे, यदि, तत्, शक्यम्, मया, द्रष्टुम्, इति, प्रभो, योगेश्वर, ततः, मे, त्वम्, दर्शय, आत्मानम्, अव्ययम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

प्रभो=हे भगवन् !
योगेश्वर=हे योगेश्वर !
यदि=अगर
मया=मुझ करके
तत्=उसको
इति=इस प्रकार
द्रष्टुम्=देखना
शक्यम्=समर्थ

अन्वयः शब्दार्थ

मन्यसे=समझता है
ततः=तो
मे=मेरे लिये
त्वम्=तू
आत्मानम्=अपने
अव्ययम्=अविनाशी
+ रूपम्=रूप को
दर्शय=दिखला

भावार्थ।

हे प्रभो ! यदि आप ऐसा जानते हैं कि, मैं आपके ईश्वरसम्बन्धीरूप को देख सकूंगा तो हे योगेश्वर ! आप अपने अव्यक्तरूप को मुझे दिखाइये ॥ ४ ॥

मूलम्।

श्रीभगवानुवाच-

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ५

पदच्छेदः।

● पश्य, मे, पार्थ, रूपाणि, शतशः, अथ, सहस्रशः, नानाविधानि, दिव्यानि, नानावर्णाकृतीनि, च ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
अथ	अब
पार्थ	हे अर्जुन !
मे	मेरे
शतशः	सैकड़ों
च	और
सहस्रशः	हज़ारों
नानाविधानि	नानाप्रकार के
नानावर्णाकृतीनि	नाना रंगों की आकृतिवाले
दिव्यानि	अलौकिक
रूपाणि	रूपों को
पश्य	देख तू

भावार्थ।

इस प्रकार जब पूर्णभक्त अर्जुनने भगवान्से विश्वरूप देखने की प्रार्थना की, तब भगवान् अर्जुन के प्रति कहते हैं कि, हे पार्थ ! मेरे रूपके देखने के लिये तू सावधान हो, और मेरे असंख्य रूपों को जिनमें नानाप्रकार के नील पीतादिक वर्ण हैं, और नानाप्रकार के आकार विशेष हैं, तू देख ॥ ५ ॥

मूलम्।

पश्यादित्यान्वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ६

पदच्छेदः ।

पश्य, आदित्यान्, वसून्, रुद्रान्, अश्विनौ, मरुतः, तथा, बहूनि, अदृष्टपूर्वाणि, पश्य, आश्चर्याणि, भारत ॥

अन्वयः शब्दार्थ

भारत=हे अर्जुन !
आदित्यान्=बारह सूर्योंको
वसून्=आठ वसुवोंको
रुद्रान्=ग्यारह रुद्रोंको
अश्विनौ=दोनों अश्विनीकुमारों को
मरुतः=उंचासपवनोंको
पश्य=देख तू

अन्वयः शब्दार्थ

तथा=और
अदृष्टपूर्वाणि=पहले न देखे हुये
बहूनि=बहुतेरे
आश्चर्याणि=आश्चर्यों को
+ अपि=भी
पश्य=देख तू

भावार्थ ।

हे भारत ! बारह आदित्यों को तू मेरे मुखमें ही देख, आठ वसुवों को तू देख, ग्यारह रुद्रों को, और दोनों अश्विनीकुमारों को भी तू देख, और जो पूर्व तुमने नहीं देखा है, उन रूपों को भी तू देख ॥ ६ ॥

मूलम् ।

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ७

पदच्छेदः ।

इह, एकस्थम्, जगत्, कृत्स्नम्, पश्य, अद्य, सचराचरम्, मम, देहे, गुडाकेश, यत्, च, अन्यत्, द्रष्टुम्, इच्छसि ॥

अन्वयः शब्दार्थ

गुडाकेश=हे निद्राके वश करने वाले
अद्य=आज अभी
मम=मेरे
देहे=देह बिषे
सचराचरम्=चर और अचर
कृत्स्नम्=संपूर्ण
जगत्=जगत् को
इह=इसी जगह
एकस्थम्=इकट्ठाहुआ

अन्वयः शब्दार्थ

पश्य=देख तू
च=और
अन्यत्=इससे इतर यानी जय और पराजय को
यत्=जो
द्रष्टुम्=देखना
इच्छसि=चाहता है
+ तत एव=उसको भी
+ पश्य=तू देखले

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ! मेरे इस शरीर में संपूर्ण जगत् एक अवयव करके स्थित है, हे अर्जुन! यदि करोड़ों वर्ष तू मेरे शरीर में भ्रमता रहे, तब भी तू मेरे रूपको समग्र नहीं देख सकेगा, और विजय अविजय आदिकों को भी तू मेरे इसी शरीर में देखेगा॥ ७॥

मूलम्।

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ८

पदच्छेदः ।

न, तु, माम्, शक्यसे, द्रष्टुम्, अनेन, एव, स्वचक्षुषा, दिव्यम्, ददामि, ते, चक्षुः. पश्य, मे, योगम्, ऐश्वरम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तु=परन्तु
अनेन=इस
स्वचक्षुषा=अपने लौकिक नेत्रसे
माम्=मुझको
द्रष्टुम्=देखने को
एव=कभी
न=नहीं
शक्यसे=समर्थ है तू
ते=तेरे लिये

अन्वयः शब्दार्थ

दिव्यम्=अलौकिक
चक्षुः=नेत्र
ददामि=मैं देताहूं
+ अद्य=अब
मे=मेरे
योगम्=योग को
+ च=और
ऐश्वरम्=ऐश्वर्यको
पश्य=तू देख

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, इन अपने स्थूल नेत्रों से तू मेरे अलौकिक विश्वरूप को नहीं देख सकेगा, इसलिये मैं तुझे दिव्यचक्षु देताहूं, उन चक्षुवों करके तू मेरे असाधारणरूप को देख सकेगा ॥ ८ ॥

मूलम् ।

संजय उवाच-

एवमुक्त्वा ततो राजन् महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ९

पदच्छेदः ।

एवम्, उक्त्वा, ततः, राजन्, महायोगेश्वरः, हरिः, दर्शयामास, पार्थाय, परमम्, रूपम्, ऐश्वरम् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

संजय उवाच = संजय कहताहै कि
राजन्=हेराजाधृतराष्ट्र !
महायोगेश्वरः=महायोगेश्वर
हरिः=कृष्ण
एवम्=इसप्रकार
उक्त्वा=कहकर
ततः=तत्पश्चात्

अन्वयः **शब्दार्थ**

पार्थाय=अर्जुन के लिये
+आत्मानम्=अपने
परमम्=उत्तम
ऐश्वरम्=अद्भुत
रूपम्=रूपको
दर्शयामास=दिखाते भये

भावार्थ ।

संजय धृतराष्ट्र से कहता है कि, हे पृथ्वीनाथ ! योगेश्वर जो हरि हैं सो संपूर्ण आश्चर्यों का आश्रय और संपूर्ण ऐश्वर्यों करके युक्त अपने विश्वरूप को अर्जुन के प्रति दिखाते भये ॥ ९ ॥

मूलम् ।

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् १०

पदच्छेदः।

अनेकवक्त्रनयनम्, अनेकाद्भुतदर्शनम्, अनेकदिव्याभरणम्, दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अनेकवक्त्रनयनम्	= अनेकहैं मुख और नेत्र जिसमें	दिव्यानेकोद्यतायुधम्	= अनेक अलौकिक उठे हुये हैं शस्त्र जिसमें
अनेकाद्भुतदर्शनम्	= अनेक अद्भुत दर्शनहैं जिसमें	+ एवम् रूपम्	= ऐसे अपने रूप को
अनेकदिव्याभरणम्	= अनेक अलौकिक हैं आभूषण जिसमें	+ दर्शयामास	= दिखाते भये

भावार्थ।

संजय कहता है कि, हे राजन्! अनेक प्रकार के मुख हैं जिसमें, अनेक प्रकार के नेत्र हैं जिसमें, अनेक प्रकार के अद्भुत शरीरों का दर्शन है जिसमें, अनेक प्रकार के हैं दिव्य भूषण जिनमें, और अनेक प्रकार के शस्त्र हैं हाथों में उद्यत जिनके, ऐसे रूप को अर्जुन के प्रति श्रीकृष्ण दिखाते भये ॥ १० ॥

मूलम्।

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ११

पदच्छेदः।

दिव्यमाल्याम्बरधरम्, दिव्यगन्धानुलेपनम्, सर्वाश्चर्यमयम्, देवम्, अनन्तम्, विश्वतोमुखम्॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
दिव्यमाल्याम्बरधरम्	अलौकिक माला और वस्त्र धारण किया हुआ है जिसमें	देवम्	प्रकाशमान
		अनन्तम्	अपार है जो
		+ च	और
		विश्वतोमुखम्	चारोंतरफ़ हैं मुख जिसमें
दिव्यगन्धानुलेपनम्	अलौकिक गन्ध लेपन किया हुआ है जिसमें	+ एवम् रूपम्	ऐसे रूप को
		+ केशवः	केशव
सर्वाश्चर्यमयम्	सर्व आश्चर्यमय	+ दर्शयामास	दिखाते भये

भावार्थ।

संजय कहता है हे राजन्! जिसमें अनेक अलौकिक माला और वस्त्र धारण किया हुआ है, जिसमें

अलौकिक सुगन्ध लेपन कियाहुआ है, जो प्रकाशमान और आश्चर्ययुक्त अपार है, और जिसके चारों तरफ़ मुखहैं, उस रूपको अर्जुनप्रति भगवान् दिखाते भये ११॥

मूलम् ।

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाःसदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः १२

पदच्छेदः ।

दिवि, सूर्यसहस्रस्य, भवेत्, युगपत, उत्थिता, यदि, भाः, सदृशी, सा, स्यात, भासः, तस्य, महात्मनः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

यदि=अगर
दिवि=आकाशमें
सूर्यसहस्रस्य=हज़ारों सूर्यों की
भाः=प्रभा
युगपत=एकहीबार
उत्थिता=उदित
भवेत्=होवे
सा=सो

अन्वयः **शब्दार्थ**

तस्य=उस
महात्मनः=परमात्मा के
भासः=कान्तिके
सदृशी=तुल्य
स्यात्=हो
+साकथं संभवति=यह क्योंकर होसक्ता है यानी नहीं हो सक्ता है

भावार्थ ।

यदि आकाश बिषे एक कालमेंही हज़ारों सूर्यों

का समूह उदय होवे तो उन सबके प्रभाव मिलकर उस विश्वरूप के सादृश्य हो ऐसा असम्भव है ॥१२॥

मूलम्।

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा १३

पदच्छेदः।

तत्र, एकस्थम्, जगत्, कृत्स्नम्, प्रविभक्तम्, अनेकधा, अपश्यत्, देवदेवस्य, शरीरे, पाण्डवः, तदा ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

तदा=उस समय
पाण्डवः=अर्जुन
अनेकधा=अनेकप्रकारके
प्रविभक्तम्=पृथक् पृथक्
तत्र=उस
एकस्थम्=एक जगह में स्थित हुये
कृत्स्नम्=संपूर्ण

अन्वयः **शब्दार्थ**

जगत्=जगत् को
देवदेवस्य=देवताओं के देवता यानी भगवान् विश्वरूप के
शरीरे=शरीर बिषे
अपश्यत्=देखताभया

भावार्थ।

हे राजन्! अर्जुन भगवान् के उसी मुख बिषे संपूर्ण जगत् को जो अनेक विभागों को प्राप्त है, और

जो पृथक् पृथक् देव मनुष्यादि आकारों करके भिन्न भिन्न अद्भुत रूपों से पूर्ण है, देखता भया ॥ १३ ॥

मूलम्।

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत १४

पदच्छेदः।

ततः, सः, विस्मयाविष्टः, हृष्टरोमा, धनञ्जयः, प्रणम्य, शिरसा, देवम्, कृताञ्जलिः, अभाषत ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
ततः	उसके पीछे	धनञ्जयः	अर्जुन
सः	वह	कृताञ्जलिः	हाथ जोड़े हुये
विस्मयाविष्टः	विस्मय युक्त	देवम्	भगवान् को
हृष्टरोमा	पुलकित रोमवाला	शिरसा	शिरसे
		प्रणम्य	प्रणामकरके
		अभाषत	बोलता भया

भावार्थ।

हे राजन्! भगवान् के उस विश्वरूप को देखकर अर्जुन विस्मय को प्राप्त होताहुआ और हृष्टरोमाञ्च होताहुआ विश्वरूप हरिको शिर नवाकर और हाथ जोड़ करके प्रणाम करताभया और कहताभया ॥१४॥

मूलम् ।

अर्जुन उवाच-

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान् । ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् १५

पदच्छेदः ।

पश्यामि, देवान्, तव, देव, देहे, सर्वान्, तथा, भूतविशेषसंघान्, ब्रह्माणम्, ईशम्, कमलासनस्थम्, ऋषीन्, च, सर्वान्, उरगान्, च, दिव्यान् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

देव=हे भगवन् !
तव=तेरे
देहे=देहविषे
सर्वान्=सब
देवान्=देवताओं के
भूतविशेषसंघान्=भूतों के विशेष समुदायों को
तथा=और
कमलासनस्थम्=कमलासन पर बैठे हुये

अन्वयः शब्दार्थ

ईशम्=सबके स्वामी
ब्रह्माणम्=ब्रह्माको
च=और
ऋषीन्=मुनियों को
च=और
सर्वान्=सब
दिव्यान्=अलौकिक
उरगान्=नागों को
पश्यामि=देखता हूं मैं

भावार्थ।

हे महाराज! जो आपका अदृश्यरूप है, जिसको कोई भी देखने को समर्थ नहीं है, उस आपके रूपको आप करके दिये हुये नेत्रोंद्वारा मैं साक्षात् देख रहाहूं, हे देव! आपके इसी देह में मैं संपूर्ण देवताओं को देखरहा हूं, और स्थावर जङ्गमादिक जो भूतों के समूह हैं, उनको भी मैं देखरहाहूं, और कमलासन में स्थित सबके स्वामी ब्रह्मा को भी मैं देख रहाहूं, और संपूर्ण वसिष्ठादिक ऋषियों को मैं देख रहाहूं, और वासुकि प्रभृति दिव्यसर्पों को भी देख रहाहूं ॥ १५ ॥

मूलम्।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् । नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप १६

पदच्छेदः।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम्, पश्यामि, त्वाम्, सर्वतः, अनन्तरूपम्, न, अन्तम्, न, मध्यम्, न, पुनः, तव, आदिम्, पश्यामि, विश्वेश्वर, विश्वरूप ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
विश्वेश्वर=हे जगत्पते !		विश्वरूप=हे विराट्रूप !	

तव=तेरे
आदिम्=आदिको
मध्यम्=मध्यको
च=और
अन्तम्=अन्तको
न=नहीं
पश्यामि=देखताहूं मैं
सर्वतः=चारों तरफ़से
अनन्तरूपम्=अनेक रूप वाला
+ च=और
पुनः=फिर
अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम्=अनेकभुजा, उदर, मुख, और आंख वाला
त्वाम्=तुझको
पश्यामि=देखता हूं मैं

भावार्थ ।

हे भगवन् ! ऐसे आपके विश्वरूप को मैं देखताहूं जिसमें अनेक भुजा हैं, अनेक उदर हैं, अनेक मुख हैं, अनेक नेत्र हैं, आपका रूप सर्वत्र व्यापक है, और आपके इस विश्वरूप का न आदि है, न अन्त है, न मध्य है ॥ १६ ॥

मूलम् ।

किरीटिनं गदिनं चक्रिणञ्च तेजोराशिं सर्वतो
दीप्तिमन्तम् । पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दी-
प्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् १७

पदच्छेदः ।

किरीटिनम्, गदिनम्, चक्रिणम्, च, तेजोराशिम्,

सर्वतः, दीप्तिमन्तम्, पश्यामि, त्वाम्, दुर्निरीक्ष्यम्, समन्तात्, दीप्तानलार्कद्युतिम्, अप्रमेयम् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

किरीटिनम्=मुकुटवाला
गदिनम्=गदावाला
चक्रिणम्=चक्रवाला
च=और
तेजोराशिम्=तेज पुञ्जवाला
सर्वतः=सबतरफ़ से
दीप्तिमन्तम्=प्रकाशमान
+ च=और
समन्तात्=चारोंओर से

अन्वयः **शब्दार्थ**

दीप्तानलार्कद्युतिम्=प्रज्वलित अग्नि और तेजमय सूर्य की तरह
दुर्निरीक्ष्यम्=दुःख करके भी देखने को अशक्य
अप्रमेयम्=प्रमाण रहित
त्वाम्=तुझको
पश्यामि=देखताहूं मैं

भावार्थ।

अर्जुन कहता है कि, हे भगवन् ! आपका विश्वरूप गदा, किरीट, और चक्र धारण किये है, सर्व ओर से प्रकाश करके युक्त है, ऐसे अति अद्भुत आपके रूप को मैं देखता हूं, विना दिव्य नेत्रों के ऐसे आपके रूपके देखने को लोग अशक्य हैं, आपका यह रूप सर्व ओर से अग्नि सूर्यादिकों की तरह प्रकाश करके युक्त है ॥ १७ ॥

मूलम्।

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्। त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे १८

पदच्छेदः।

त्वम्, अक्षरम्, परमम्, वेदितव्यम्, त्वम्, अस्य, विश्वस्य, परम्, निधानम्, त्वम्, अव्ययः, शाश्वतधर्मगोप्ता, सनातनः, त्वम्, पुरुषः, मतः, मे॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
त्वम्=	तू	त्वम्=	तू
परमम्=	परम	अव्ययः=	अविनाशी है
अक्षरम्=	अविनाशी परब्रह्म है	शाश्वतधर्मगोप्ता=	नित्य धर्म का पालन करनेवालाहै
+ च=	और	+ च=	और
वेदितव्यम्=	जानने योग्यहै	त्वम्=	तू
त्वम्=	तू	सनातनः=	नित्य
अस्य=	इस	पुरुषः=	पुरुष
विश्वस्य=	विश्वका	मे=	मुझ करके
परम्=	श्रेष्ठ	मतः=	माना गया है
निधानम्=	स्थानहै		

भावार्थ।

अर्जुन अब भगवान् की स्तुति करता है, हे महा-

राज ! आपही अक्षर परब्रह्मरूप मुमुक्षुओं करके जानने योग्य हैं, और आपही संपूर्ण जगत् के आश्रयरूप हैं, आपही अव्ययरूप भी हैं यानी नित्य हैं, और आपही सब पुरुषों में उत्तम भी हैं ॥ १८ ॥

मूलम् ।

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् । पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् १९

पदच्छेदः ।

अनादिमध्यान्तम्, अनन्तवीर्यम्, अनन्तबाहुम्, शशिसूर्यनेत्रम्, पश्यामि, त्वाम्, दीप्तहुताशवक्त्रम, स्वतेजसा, विश्वम्, इदम्, तपन्तम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
अनादिमध्यान्तम्	= नहीं है आदि मध्य और अन्त जिसका
अनन्तवीर्यम्	= अनन्त है पराक्रम जिसका
अनन्तबाहुम्	= अनन्त हैं भुजा जिसकी
शशिसूर्यनेत्रम्	= चन्द्र सूर्य हैं नेत्र जिसके
दीप्तहुताशवक्त्रम्	= प्रज्वलित अग्नि के तुल्य मुख है जिसका
स्वतेजसा	= अपने तेज से
इदम्	= इस
विश्वम्	= जगत् को

तपन्तम्=तपाते हुये ऐसा

त्वाम्=तुझको

पश्यामि=मैं देखता हूं

भावार्थ ।

अर्जुन कहता है कि, हे भगवन् ! न आदि है, न मध्य है और न अन्त है जिसमें, अनन्त हैं वीर्य और पराक्रम जिसमें, और अनन्त हैं भुजा जिसमें, और चन्द्र सूर्य हैं नेत्र जिसके, और प्रचण्ड अग्नि के समान तेज करके संपूर्ण विश्व को तपारहा है जो, ऐसा जो आपका विश्वरूप है उसको मैं देखता हूं ॥ १९ ॥

मूलम् ।

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः । दृष्ट्वाऽद्भुतंरूपमिदं तवोग्रं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् २०

पदच्छेदः ।

द्यावापृथिव्योः, इदम, अन्तरम्, हि, व्याप्तम्, त्वया, एकेन, दिशः, च, सर्वाः, दृष्ट्वा, अद्भुतम्, रूपम्, इदम्, तव, उग्रम्, लोकत्रयम्, प्रव्यथितम्, महात्मन् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
महात्मन्	हे भगवन् !	इदम्	यह
हि	निश्चय करके	अन्तरम्	अन्तर यानी मध्यभाग
द्यावापृथिव्योः	आकाश और पृथिवी का	त्वया	तुझ

एकेन=एककरके
व्याप्तम्=व्याप्त है
च=और
सर्वाः=सब
दिशः=दिशा
+अपि=भी
त्वया=तुझकरके
+व्याप्ताः=व्याप्त हैं

तव=तेरे
इदम्=इस
उग्रम्=उग्र
अद्भुतम्=अद्भुत
रूपम्=रूपको
दृष्ट्वा=देखकरके
लोकत्रयम्=तीनोंलोक
प्रव्यथितम्=भयभीतहुये हैं

भावार्थ।

आकाश और पृथिवी के बीच में आप अकेला ही व्याप्त होरहे हो, और सम्पूर्ण दिशा भी आपही करके व्याप्त होरही हैं, आपके इस अद्भुत उग्र व्यापक भयानकरूप को देखकर तीनों लोक पीड़ा को प्राप्त हो रहे हैं ॥ २० ॥

मूलम्।

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति । स्वस्तीत्युक्त्वा सिद्धमहर्षिसंघाः स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः २१

पदच्छेदः।

अमी, हि, त्वाम्, सुरसंघाः, विशन्ति, केचित्, भीताः, प्राञ्जलयः, गृणन्ति, स्वस्ति, इति, उक्त्वा, सिद्धमहर्षिसंघाः, स्तुवन्ति, त्वाम्, स्तुतिभिः, पुष्कलाभिः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

हि=निश्चय करके
अमी=ये
सुरसंघाः=देवतालोग
त्वाम्=तुझमें
विशन्ति=प्रवेश करते हैं
केचित्=कोई
भीताः=डरेहुये
+ च=और
+ केचित्=कोई
प्राञ्जलयः=हाथ जोड़े हुये
गृणन्ति=प्रार्थनाकरते हैं

अन्वयः शब्दार्थ

+ च=और
स्वस्ति इति="स्वस्ति" ऐसा
उक्त्वा=कहकरके
सिद्धमहर्षिसंघाः=सिद्ध और महर्षियों के समूह
त्वाम्=तुझको
पुष्कलाभिः=बड़े बड़े
स्तुतिभिः=स्तोत्रों से
स्तुवन्ति=स्तुति करते हैं

भावार्थ।

हे भगवन्! पृथिवी के भार दूर करने के लिये देवताओं के समूह के समूह मनुष्यरूप धारणकर परस्पर युद्ध करते हुये आपके मुखों में प्रवेश कररहे हैं, और कोई एक भयभीत होकर आपके आगे हाथ जोड़ रहे हैं, स्वस्तिहो, कल्याण हो, ऐसे कहकर ऋषियों और सिद्धों के समूह पुष्कल यानी बड़े बड़े स्तोत्रों से आपकी स्तुति करते हैं॥ २१॥

मूलम्।

रुद्राऽऽदित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ

मरुतश्चोष्मपाश्च । गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे २२

पदच्छेदः।

रुद्रादित्याः, वसवः, ये, च, साध्याः, विश्वे, अश्विनौ, मरुतः, च, ऊष्मपाः, च, गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः, वीक्षन्ते, त्वाम्, विस्मिताः, च, एव, सर्वे ॥

अन्वयः शब्दार्थ

रुद्रादित्यावसवः = ग्यारह रुद्र, बारह सूर्य और आठ वसु
च=और
ये=जो
साध्याः=साध्य जाति के देवता
विश्वे=विश्वेदेव
अश्विनौ=अश्विनीकुमार

अन्वयः शब्दार्थ

मरुतः=मरुद्गण
च=और
ऊष्मपाः=पितरलोक
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः = गन्धर्व यक्ष असुर और सिद्धोंके समूह
त्वाम्=तुझको
सर्वेएव=सबही
विस्मिताः=आश्चर्ययुक्त
वीक्षन्ते=देखते हैं

भावार्थ।

रुद्र, आदित्य, वसु, साध्य जातिवाले देवता, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, मरुत्, पितर और गन्धर्वों के समूह, यक्ष, असुर तथा सिद्धों के समूह ये सब विस्मय को प्राप्त हुये आपके रूप को देखरहे हैं ॥ २२ ॥

मूलम् ।

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् । बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् २३

पदच्छेदः ।

रूपम्, महत्, ते, बहुवक्त्रनेत्रम्, महाबाहो, बहुबाहूरुपादम्, बहूदरम्, बहुदंष्ट्राकरालम्, दृष्ट्वा, लोकाः, प्रव्यथिताः, तथा, अहम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

महाबाहो=हेलम्बीभुजावाले
बहुवक्त्रनेत्रम्=अनेक हैं मुख और आंख जिसमें
बहुबाहूरुपादम्=बहुत हैं भुजा जंघा और पैर जिसमें
बहूदरम्=बहुत हैं उदर जिसमें
बहुदंष्ट्राकरालम्=बहुत हैं कराल दाढ़ जिसमें

अन्वयः शब्दार्थ।

ते=तेरे
महत्=बड़े
रूपम्=रूपको
दृष्ट्वा=देख करके
लोकाः=लोक
प्रव्यथिताः=भयभीतहुये हैं
तथा=और
अहम्=मैं
+ अपि=भी
+प्रव्यथितः=डररहाहूं

भावार्थ।

फिर कैसा यह आपका रूप है, बहुत हैं मुख और नेत्र जिसमें, और बहुतही बड़ी बड़ी हैं भुजायें जिसमें, और बहुत हैं ऊरु जिनमें, और बहुत हैं पाद तथा उदर जिसमें, और बहुत हैं कराल दाढ़ जिसमें, ऐसे आपके रूप को देख करके लोक पीड़ा को प्राप्त हुये हैं, और मैं भी पीड़ित होरहा हूं ॥ २३ ॥

मूलम्।

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् । दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो २४

पदच्छेदः।

नभःस्पृशम्, दीप्तम्, अनेकवर्णम्, व्यात्ताननम्, दीप्तविशालनेत्रम्, दृष्ट्वा, हि, त्वां, प्रव्यथितान्तरात्मा, धृतिम्, न, विन्दामि, शमम्, च, विष्णो ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
विष्णो	=हे पालनकर्ता!	दीप्तम्	=प्रकाशमान
हि	=निश्चय करके	अनेकवर्णम्	=अनेक आकृति हैं जिसमें
नभःस्पृशम्	=आकाश को स्पर्श कर रहा है रूप जिसका	व्यात्ताननम्	=फैलाहुआ है मुख जिसका

दीप्तविशालनेत्रम् = प्रज्वलित विशालनेत्र हैं जिसके ऐसे

त्वाम्=तुझको

दृष्ट्वा=देखकर

प्रव्यथितान्तरात्मा = दुःखित हुआ है अन्तःकरण जिसका ऐसा मैं

धृतिम्=धैर्यको

च=और

शमम्=शान्तिको

न=नहीं

विन्दामि=प्राप्त होता हूं

भावार्थ।

फिर कैसा आपका रूप है, आकाश को जिसने आच्छादन करलिया है, और सर्व ओरसे प्रकाशमान हैं आकृति जिसमें, सर्व ओर से खुले हुये हैं मुख जिसमें, और बड़े प्रकाशमानहैं नेत्र जिसमें, ऐसे आपके रूपको देखकर मेरा मन भयको प्राप्त हुआहै, हे विष्णो! अब मैं धैर्य और सुखको नहीं प्राप्त होसक्ताहूं ॥ २४ ॥

मूलम्।

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि। दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास २५

पदच्छेदः।

दंष्ट्राकरालानि, च, ते, मुखानि, दृष्ट्वा, एव, काला-

नलसन्निभानि, दिशः, न, जाने, न, लभे, च, शर्म, प्रसीद, देवेश, जगन्निवास ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

दंष्ट्राकरालानि=भयानक दाढ़ हैं जिसमें
च=और
कालानलसन्निभानि=प्रलयाग्नि के तुल्य हैं जो ऐसे
ते=तेरे
मुखानि=मुखों को
दृष्ट्वा=देख करके
एव=ही
दिशः=दिशाओं को

अन्वयः **शब्दार्थ**

न जाने=नहीं जानता हूं मैं
+ च=और
शर्म=शान्तिको
न लभे=नहीं प्राप्त होता हूं मैं
देवेश=हे देवताओं के स्वामी
जगन्निवास=हे जगत् के आश्रय
+ त्वम्=तू
प्रसीद=प्रसन्न हो

भावार्थ ।

अर्जुन कहता है कि, हे भगवन् ! आपके भयंकर दाढ़ों करके आपके मुख बड़े भयानक होरहे हैं, प्रलयकाल की अग्निके तुल्य आपके मुखों को देखकर मुझे सब दिशाओं का भ्रम होरहा है, अर्थात् पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर को मैं नहीं जानता हूं, हे स्वामिन् ! आपके इस रूप को देखकर मैं सुखको नहीं प्राप्त

होता हूं, हे देवेश ! जगत् के आधार मेरेप्रति प्रसन्न हो, ताकि मैं निर्भय होकर सुख को प्राप्त होऊं ॥ २५ ॥

मूलम् ।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवा-
ऽवनिपालसङ्घैः । भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहाऽस्मदीयैरपि योधमुख्यैः २६

पदच्छेदः ।

अमी, च, त्वाम्, धृतराष्ट्रस्य, पुत्राः, सर्वे, सह, एव, अवनिपालसङ्घैः, भीष्मः, द्रोणः, सूतपुत्रः, तथा, असौ, सह, अस्मदीयैः, अपि, योधमुख्यैः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अमी=ये
सर्वे=सब
एव=ही
धृतराष्ट्रस्य=धृतराष्ट्र के
पुत्राः=पुत्र
च=और
अवनिपालसङ्घैः=राजाओं के समूह
सह=साहित
भीष्मः=भीष्म

अन्वयः शब्दार्थ

द्रोणः=द्रोण
तथा=और
असौ=इस
सूतपुत्रः=कर्ण के
+ च=और
अस्मदीयैः=हमारे
योधमुख्यैः=मुख्ययोधों
सह=सहित
त्वाम्=तेरे तरफ़
+ द्रवन्ति=दौड़े जाते हैं

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ ।

अर्जुन कहता है कि, जिन दुर्योधनादिक शत्रुओं से मुझ को शंका थी वे धृतराष्ट्र के पुत्र, शल्य आदिक राजाओं के समूहों के सहित आपके मुखों में प्रवेश करते जाते हैं और इतर योद्धा जो अजयरूप करके लोक में प्रसिद्ध हैं, और हमारी सेनाके जो धृष्टद्युम्नादिक मुख्य योद्धा हैं, वेभी आपके मुखों में शीघ्र प्रवेश करते जाते हैं ॥ २६ ॥

मूलम् ।

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि । केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः २७

पदच्छेदः ।

वक्त्राणि, ते, त्वरमाणाः, विशन्ति, दंष्ट्राकरालानि, भयानकानि, केचित्, विलग्नाः, दशनान्तरेषु, संदृश्यन्ते, चूर्णितैः, उत्तमाङ्गैः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
त्वरमाणाः	दौड़ते हुये	भयानकानि	भयानक हैं जो ऐसे
दंष्ट्राकरालानि	काठिन हैं दाढ़ जिसमें	ते	तेरे
+ च	और	वक्त्राणि	मुखों में

विशन्ति=प्रवेश करते हैं
+ तेषाम्=उनमें से
केचित्=कोई
दशनान्तरेषु=दांतों के बीच में
चूर्णितैः उत्तमाङ्गैः=टुकड़े टुकड़े कियेहुयेशिरों के सहित
विलग्नाः=लटके हुये
संदृश्यन्ते=देखे जाते हैं

भावार्थ।

आपके भयानक और कराल दाढ़वाले मुखों में भयभीत हुये दुर्योधनादिक सब प्रवेश करते जाते हैं, उनमें से कोई तो आपके दाढ़ों के बीच में लटकते हुये और उनके शिर चूर्ण हुये दिखाई पड़ते हैं ॥ २७ ॥

मूलम्।

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति । तथा तवाऽमी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राण्यभितो ज्वलन्ति २८

पदच्छेदः।

यथा, नदीनाम्, बहवः, अम्बुवेगाः, समुद्रम्, एव, अभिमुखाः, द्रवन्ति, तथा, तव, अमी, नरलोकवीराः, विशन्ति, वक्त्राणि, अभितः, ज्वलन्ति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यथा=जैसे
नदीनाम्=नदियों के
अम्बुवेगाः=प्रवाह

अन्वयः शब्दार्थ

बहवः=बहुत होकर
समुद्रम्=समुद्र के
अभिमुखाः=सम्मुख

द्रवन्ति=दौड़ते हैं
तथा=वैसे
एव=ही
अमी=ये
नरलोकवीराः=मनुष्यों में शूरवीर लोग
अभितः=सब तरफ़ से
तव=तेरे
ज्वलन्ति=प्रकाशमान
वक्त्राणि=मुखों में
विशन्ति=प्रवेश करते हैं

भावार्थ।

जैसे नदियों के वेग से बहते हुये जल समुद्र केही सम्मुख हुये दौड़ते हैं, और समुद्रमेंही प्रवेश करते जाते हैं, वैसेही नरों में जो भीष्म द्रोणादि शूरवीर हैं, वे सब आपके प्रज्वलित अग्नि के सदृश मुखों में दौड़ते हुये प्रवेश करते जाते हैं ॥ २८ ॥

मूलम्।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः। तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः २९

पदच्छेदः।

यथा, प्रदीप्तम्, ज्वलनम्, पतङ्गाः, विशन्ति, नाशाय, समृद्धवेगाः, तथा, एव, नाशाय, विशन्ति, लोकाः, तव, अपि, वक्त्राणि, समृद्धवेगाः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यथा=जैसे

समृद्ध-वेगाः=दौड़तेहुये यानी उड़ते हुये

पतङ्गाः=पांखियां

नाशाय=मरने के लिये

प्रदीप्तम्=प्रकाशमान

ज्वलनम्=अग्नि में

विशन्ति=प्रवेश करते हैं

तथा एव=वैसेही

अन्वयः शब्दार्थ

नाशाय=मरने के लिये

लोकाः=मनुष्यादिलोग

समृद्ध-वेगाः=बड़े वेगसे दौड़ते हुये

तव=तेरे

वक्त्राणि=मुखों में

अपि=ही

विशन्ति=प्रवेश करते हैं

भावार्थ ।

जैसे पतिंगे अपने नाशके लिये प्रज्वलित अग्नि में बड़े वेगसे प्रवेश करते हैं वैसेही ये सब अपने नाश के लिये बड़े वेग से आपके मुखों में प्रवेश करते हैं ॥ २९ ॥

मूलम् ।

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान् सम-
ग्रान् वदनैर्ज्वलद्भिः । तेजोभिरापूर्य्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ३०

पदच्छेदः ।

लेलिह्यसे, ग्रसमानः, समन्तात्, लोकान्, समग्रान्, वदनैः, ज्वलद्भिः, तेजोभिः, आपूर्य्य, जगत्, समग्रम्, भासः, तव, उग्राः, प्रतपन्ति, विष्णो ॥

अन्वयः शब्दार्थ

विष्णो=हे कृष्ण
समन्तात्=चारों तरफ़ से
समग्रान्=संपूर्ण
लोकान्=लोकोंको
ज्वलद्भिः=जलते हुये
वदनैः=मुखों करके
ग्रसमानः=ग्रास करताहुआ
लेलिह्यसे=तू भक्षण करता है

अन्वयः शब्दार्थ

तव=तेरी
उग्राः=बड़ी
भासः=कान्ति
तेजोभिः=तेजों करके
समग्रम्=संपूर्ण
जगत्=संसार को
आपूर्य=व्याप्त करके यानी परिपूर्ण करके
प्रतपन्ति=तपा रही है

भावार्थ।

जो दुर्योधनआदिक अतिवेग करके आपके मुखों में प्रवेश कररहे हैं वे सब मानो ग्रसमान होरहे हैं, और उनको आप भक्षण करके आप अपने प्रज्वलित मुखों करके स्वाद को लेरहे हैं, अपने तेज करके संपूर्ण जगत्को सर्वओरसे आप पूर्ण कररहे हो, और आपका उग्रप्रकाश जगत्को तपायमान कररहाहै॥३०॥

मूलम्।

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद। विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ३१

पदच्छेदः ।

आख्याहि, मे, कः, भवान्, उग्ररूपः, नमः, अस्तु, ते, देववर, प्रसीद, विज्ञातुम्, इच्छामि, भवन्तम्, आद्यम्, न, हि, प्रजानामि, तव, प्रवृत्तिम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
उग्ररूपः	भयंकर रूप	आद्यम्	कारणरूप को
भवान्	तू	विज्ञातुम्	जानने के लिये
कः	कौन है	इच्छामि	मैं इच्छा करता हूं
मे	मेरेलिये		
आख्याहि	कह	हि	क्योंकि
ते	तेरे अर्थ	तव	तेरी
नमः	नमस्कार	प्रवृत्तिम्	मायाको यानी ऐसे भयंकर रूपको
अस्तु	है		
देववर	हे श्रेष्ठदेव !		
प्रसीद	प्रसन्नहो	न	नहीं
भवन्तम्	तुझ	प्रजानामि	जानताहूं मैं

भावार्थ ।

अर्जुन कहता है कि, हे भगवन्! इसप्रकार आपका भयानक उग्ररूप किस निमित्त को लेकर प्रकट हुआ है मेरेप्रति इसे कहिये, हे देववर! हे देवताओं में श्रेष्ठ! आपप्राति मेरा नमस्कार है, आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों, मैं आपका पहिलेवाला चतुर्भुज रूप देखना

चाहताहूं, और आपकी प्रवृत्ति को मैं नहीं जानताहूं कि आप किस निमित्त को लेकर प्रकट हुये हैं ॥ ३१ ॥

मूलम्।

श्रीभगवानुवाच-

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धोलोकान् समाहर्त्तुमिह प्रवृत्तः। ऋतेपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ३२

पदच्छेदः।

कालः, अस्मि, लोकक्षयकृत, प्रवृद्धः, लोकान्, समाहर्त्तुम्, इह, प्रवृत्तः, ऋते, अपि, त्वाम्, न, भविष्यन्ति, सर्वे, ये, अवस्थिताः, प्रत्यनीकेषु, योधाः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
भगवान् उवाच	भगवान्बोलते भये	समाहर्त्तुम्	नाश करने के लिये
अहम्	मैं	इह	इस संसार में
प्रवृद्धः	पुरातन	प्रवृत्तः	प्रवृत्त हुआ हूं
कालः	काल	+ अर्जुन	हे अर्जुन !
लोकक्षयकृत्	लोकका नाश करनेवाला	त्वाम्	तुझ
		ऋते	विना
अस्मि	हूं	ये	जो
लोकान्	लोकों को	प्रत्यनीकेषु	शत्रुवोंकीसेनामें

अवस्थिताः=खड़े हुये हैं
ते=वे
अपि=भी
सर्वे=सब
योधाः=शूरवीर
न=नहीं
भविष्यन्ति=बचेंगे

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! मैं कालहूं, सब का संहार करनेवाला हूं, अपनी क्रियाशक्ति करके मैं वृद्धि को प्राप्त हुआ हूं, और दुर्योधनादिकों के भक्षण करने के लिये यहां पर मैं प्रवृत्त हुआहूं, हे अर्जुन ! तुम्हारे विना भी ये सब योद्धा जो इस युद्ध में विद्यमान हैं, इनमें से कोई भी नहीं रहेगा, सबको मैं भक्षण करजाऊंगा ॥ ३२ ॥

मूलम्।

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्
भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्। मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ३३

पदच्छेदः।

तस्मात्, त्वम्, उत्तिष्ठ, यशः, लभस्व, जित्वा, शत्रून्, भुङ्क्ष्व, राज्यम्, समृद्धम्, मया, एव, एते, निहताः, पूर्वम्, एव, निमित्तमात्रम्, भव, सव्यसाचिन् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

सव्यसाचिन् = हे वाम दहिने हाथ से बाण के चलाने वाले
तस्मात्=इसलिये
त्वम्=तू
उत्तिष्ठ=खड़ा हो
यशः=यशको
लभस्व=प्राप्त हो
शत्रून्=शत्रुवों को
जित्वा=जीत करके
समृद्धम्=शत्रुरहित अकण्टक

अन्वयः शब्दार्थ

राज्यम्=राज्य को
भुङ्क्ष्व=भोग
एते=ये सब
पूर्वम्=पहिले सेही
एव=निःसन्देह
मया=मुझकरके
एव=ही
निहताः=मारेगये हैं
+ त्वम्=तू
निमित्तमात्रम्=निमित्तमात्र
भव=होजा

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! तुम्हारे बग़ैर भी ये सब शूरवीर मुझ करके मारे पड़े हैं, तुम अब युद्ध के लिये उद्यत हो, भीष्मादिक महाशूरवीर जो देवताओं करके भी अजेय हैं, उनको तुम कैसे जीत सके, मैंने इनको प्रथमही मार रक्खा है, तुम केवल निमित्तमात्र होकर यश को प्राप्त होवो, और शत्रुरहित अकण्टक राज्य को भोगो ताकि लोक कहैं

कि अर्जुन ने भीष्मादिकों को जय किया ॥ ३३ ॥

मूलम् ।

द्रोणञ्च भीष्मञ्च जयद्रथञ्च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् । मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ३४

पदच्छेदः ।

द्रोणम्, च, भीष्मम्, च, जयद्रथम्, च, कर्णम्, तथा, अन्यान्, अपि, योधवीरान्, मया, हतान्, त्वम्, जहि, मा, व्यथिष्ठाः, युध्यस्व, जेतासि, रणे, सपत्नान् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

द्रोणम्=द्रोणको
च=और
भीष्मम्=भीष्मको
च=और
जयद्रथम्=जयद्रथको
च=और
कर्णम्=कर्णको
तथा=और
मया=मुझकरके
हतान्=मारे हुये
अन्यान्=अन्य

अन्वयः शब्दार्थ

योधवीरान्=रणशूरों को
अपि=भी
त्वम्=तू
जहि=मार
मा=मत
व्यथिष्ठाः=खेदकर
युध्यस्व=लड़
रणे=लड़ाई में
सपत्नान्=शत्रुओं को
जेतासि=जीतेगा तू

भावार्थ ।

हे अर्जुन ! भीष्म, द्रोण, जयद्रथ, कर्ण और और जितने शूरवीर हैं, इन सबको मैंने पहिले सेही मारडाला है, इन हतेहुओं को तुम जय करो, व्यथा को मत प्राप्त हो, रणमें तू शत्रुओं को जीतेगा ॥ ३४ ॥

मूलम् ।

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी । नमस्कृत्य भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ३५

पदच्छेदः ।

एतत्, श्रुत्वा, वचनम्, केशवस्य, कृताञ्जलिः, वेपमानः, किरीटी, नमस्कृत्य, भूयः, एव, आह, कृष्णम्, सगद्गदम्, भीतभीतः, प्रणम्य ॥

अन्वयः शब्दार्थ
केशवस्य=कृष्णके
एतत्=इस
वचनम्=वचनको
श्रुत्वा=सुन करके
कृताञ्जलिः=हाथ जोड़े हुये
+ च=और
वेपमानः=कांपता हुआ

अन्वयः शब्दार्थ
किरीटी=मुकुटधारी अर्जुन
नमस्कृत्य=प्रणाम करके
भूयः=फिर
एव=भी
भीतभीतः=डराहुआ
प्रणम्य=प्रणाम करके

सगद्गदम्=गद्गदवाणी के साथ
कृष्णम्=कृष्णसे
आह=कहता भया

भावार्थ ।

जिस कालमें धृतराष्ट्र ने भीष्मादिकों को भगवान् के मुखमें मराहुआ सुना, और भगवान् ने भी अर्जुन के प्रति अपने मुखसे कहा कि मैंने इन सबको पहिले सेही मार रक्खा है, तुम केवल निमित्तमात्र होजावो, तब धृतराष्ट्र के चित्त में यह वार्ता फुरी कि यदि अब इनकी संधि आपस में होजाय तो अच्छी बात है, धृतराष्ट्र के इस अभिप्राय को जानकर संजय कहता है कि संधि कदापि अब नहीं होगी, क्योंकि केशव के वचन को श्रवण करके मुकुटधारी अर्जुन कम्पायमान होकर हाथ जोड़कर पुनः पुनः नमस्कार करके और प्रणाम करके भयभीत होता हुआ गद्गद वाणी से कृष्ण के प्रति कहता है ॥ ३५ ॥

मूलम् ।

अर्जुन उवाच-

स्थानेहृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च । रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः ३६

पदच्छेदः ।

स्थाने, हृषीकेश, तव, प्रकीर्त्या, जगत्, प्रहृष्यति,

अनुरज्यते, च, रक्षांसि, भीतानि, दिशः, द्रवन्ति, सर्वे, नमस्यन्ति, च, सिद्धसङ्घाः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

अर्जुन उवाच=अर्जुन बोलता भया कि

हृषीकेश=हे इन्द्रियों के स्वामिन् !

स्थाने=यह बात ठीक है

तव=तेरे

+**माहात्म्यस्य**=माहात्म्य के

प्रकीर्त्या=कथनकरने से

जगत्=संसार

प्रहृष्यति=प्रसन्न होता है

च=और

+**त्वयि**=तेरे बिषे

अन्वयः **शब्दार्थ**

अनुरज्यते=अनुरागको प्राप्त होताहै

भीतानि=डरेहुये

रक्षांसि=राक्षसलोग

दिशः=दिशोंको यानी इधर उधर

द्रवन्ति=भागते हैं

च=और

सर्वे=सम्पूर्ण

सिद्धसङ्घाः=सिद्धों के समूह

+**त्वाम्**=तुझको

नमस्यन्ति=प्रणाम करते हैं

भावार्थ।

हे हृषीकेश ! केवल मैंही आपकी कीर्ति करके हर्ष को नहीं प्राप्त होताहूं, किन्तु आपकी कीर्ति करके सारा जगत् अत्यन्त हर्ष को प्राप्त होता है, और जितने राक्षस हैं वे सब भयभीत होकर चारों दिशों में भागते हैं, और संपूर्ण सिद्धों के समूह आपको ही नमस्कार करते हैं ॥ ३६ ॥

मूलम्।

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे। अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ३७

पदच्छेदः।

कस्मात्, च, ते, न, नमेरन्, महात्मन्, गरीयसे, ब्रह्मणः, अपि, आदिकर्त्रे, अनन्त, देवेश, जगन्निवास, त्वम्, अक्षरम्, सत्, असत्, तत्, परम्, यत् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

महात्मन्=हे महात्मन्!
अनन्त=हे सनातन!
देवेश=हे देवेश!
जगन्निवास=हेसर्वव्यापिन्!
ब्रह्मणः=ब्रह्माके
अपि=भी
आदिकर्त्रे=आदिकर्ता
च=और
गरीयसे=ब्रह्मासे भी गुरुतरयानी श्रेष्ठतर ऐसे

अन्वयः शब्दार्थ

ते=तेरेलिये
कस्मात्=क्योंकर
न नमेरन्=न नमस्कार करें
यत्=जो कुछ
सत्=स्थूल
असत्=सूक्ष्म है
तत्=सोई
त्वम्=तू
परम्=परम
अक्षरम्=अविनाशी है

भावार्थ।

अर्जुन कहता है कि, हे महात्मन्! क्यों न वे सब

आपको नमस्कार करें, क्योंकि ब्रह्माजीके भी आदिकर्ता आपही हैं, हे अनन्त ! हे देवेश ! हे जगन्निवास ! आपही अक्षर हो, और स्थूल सूक्ष्मरूप जगत् से आप परे हो ॥ ३७ ॥

मूलम्।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्। वेत्तासि वेद्यञ्च परञ्च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ३८

पदच्छेदः।

त्वम्, आदिदेवः, पुरुषः, पुराणः, त्वम्, अस्य, विश्वस्य, परम, निधानम्, वेत्ता, असि, वेद्यम्, च, परम्, च, धाम, त्वया, ततम्, विश्वम्, अनन्तरूप ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
त्वम्=तू	वेत्ता=जाननेवाला
आदिदेवः=आदिदेव है	च=और
पुराणः=पुरातन	वेद्यम्=जाननेयोग्य
पुरुषः=पुरुष है	+ त्वम्=तूही
त्वम्=तू	असि=है
अस्य=इस	+ त्वम्=तू
विश्वस्य=विश्वका	परम्=परम
परम्=श्रेष्ठ	धाम=धाम है
निधानम्=स्थान है	च=और

अनन्तरूप=हे अनन्तरूप !
त्वया=तुझ करके ही
+ इदम्=यह
विश्वम्=संसार
ततम्=व्याप्त है

भावार्थ।

आपही आदिदेव हो, आपही सब देवताओं के आदिकारण हो, आपही पुरुषहो, आपही पुराण हो यानी अनादि हो, आपही इस विश्व के परमकारण और जाननेवाले हो, आपही जानने योग्य भी हो, और आपही परमधाम यानी परमतत्त्वहो, हे अनन्त ! आपही करके सारा जगत् व्याप्त है ॥ ३८ ॥

मूलम्।

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं
प्रपितामहश्च। नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ३९

पदच्छेदः।

वायुः, यमः, अग्निः, वरुणः, शशाङ्कः, प्रजापतिः, त्वम्, प्रपितामहः, च, नमः, नमः, ते, अस्तु, सहस्रकृत्वः, पुनः, च, भूयः, अपि, नमः, नमः, ते ॥

अन्वयः शब्दार्थ
त्वम्=तू
वायुः=वायु है
यमः=यम है

अन्वयः शब्दार्थ
अग्निः=अग्नि है
वरुणः=वरुण है
शशाङ्कः=चन्द्रमा है

प्रजापतिः=ब्रह्मा है
च=और
प्रपितामहः=ब्रह्मा का भी पिता है
ते=तेरेलिये
नमः=नमस्कार
नमः=नमस्कार
सहस्रकृत्वः=हज़ारों बार
अस्तु=होवे

पुनः=फिर
च=और
भूयः=फिर
अपि=भी
नमः=नमस्कार
नमः=नमस्कार
ते=तुझको
+ अस्तु=हो

भावार्थ।

अर्जुन कहता है कि, हे प्रभो! संपूर्ण जो जगत् है, जो प्राण है, प्राणोंका नियामक जो यम है, संपूर्ण देवताओं का मुख जो अग्नि है, और प्राणियों के अन्न का पचानेवाला है, ओषधियों का स्वामी जो चन्द्रमा है, संपूर्ण जगत् का प्रकाशक जो सूर्य है, प्रजापति जो ब्रह्मा है, ब्रह्माका स्रष्टा जो जगदीश्वर है, ये सब आपके ही रूप हैं, मैं आपके लिये बार बार नमस्कार करताहूं ॥ ३९ ॥

मूलम्।

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व । अनन्तवीर्याऽमितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ४०

पदच्छेदः ।

नमः, पुरस्तात्, अथ, पृष्ठतः, ते, नमः, अस्तु, ते, सर्वतः, एव, सर्व, अनन्तवीर्य, अमितविक्रमः, त्वम्, सर्वम्, समाप्नोषि, ततः, असि, सर्वः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

पुरस्तात्=आगे से
अथ=और
पृष्ठतः=पीछे से
ते=तुझको
नमः=नमस्कार
अस्तु=होवे
सर्वतः=सब तरफ़ से
एव=भी
नमः=नमस्कार
ते=तुझको
+ अस्तु=होवे
सर्व=हे सर्व !

अन्वयः **शब्दार्थ**

अनन्तवीर्य=हे अनन्त पराक्रमवाला !
त्वम्=तू
अमितविक्रमः=अतुल सामर्थ्य वाला है
+ यतः=जिसकारण
+ त्वम्=तू
सर्वम्=सबवस्तुओंको
समाप्नोषि=प्राप्त होरहा है
ततः=इसलिये
+ त्वम् एव=तूही
सर्वः=सर्वरूप
असि=है

भावार्थ ।

अर्जुन कहता है कि, हे भगवन् ! आपके अग्रभाग को और पृष्ठभाग को मेरा नमस्कार हो, संपूर्ण दिशाओं में स्थित आपके सर्वरूप को मेरा नमस्कार

हो, आप अनन्तपराक्रमवाले हैं, अनन्तवीर्य यानी बलवाले हैं, संपूर्ण जगत् को व्याप्य करके आप स्थित हैं, आप सर्वरूप हैं ॥ ४० ॥

मूलम्।

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव
हे सखेति। अजानता महिमानं तवेदं मया
प्रमादात् प्रणयेन वापि ४१

पदच्छेदः।

सखा, इति, मत्वा, प्रसभम्, यत्, उक्तम्, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखे, इति, अजानता, महिमानम्, तव, इदम्, मया, प्रमादात्, प्रणयेन, वा, अपि ॥

अन्वयः शब्दार्थ

सखा=सखा
इति=ऐसा
मत्वा=मानकरके
+ च=और
तव=तेरे
इदम्=इस
महिमानम्=माहात्म्य को
अजानता=न जानते हुये
प्रमादात्=प्रमादसे
वा अपि=अथवा

अन्वयः शब्दार्थ

प्रणयेन=प्रीति से
हे कृष्ण=हे कृष्ण !
हे यादव=हे यादव !
हे सखे=हे सखे !
इति=ऐसा
यत्=जो
प्रसभम्=हठपूर्वक
मया=मुझकरके
उक्तम्=कहागया है

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ ।

आपके प्रभाव को न जानकर मैं नित्य आपका अपराध करता रहा, और अपना सखा जान कर मूढ़ता से जो मैंने कहा, हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखे ! सो मैंने आपका बड़ा तिरस्कार किया, वह सब मैंने आपकी महिमा को न जानकर किया है, प्रमाद से अथवा स्नेहसे जो मैंने ऐसा कहाहै, उसको मैं अब आपसे क्षमा कराताहूं ॥ ४१ ॥

मूलम् ।

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु । एकोऽथवाप्यच्युत तत् समक्षं तत् क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ४२

पदच्छेदः ।

यत्, च, अवहासार्थम्, असत्कृतः, असि, विहारशय्यासनभोजनेषु, एकः, अथवा, अपि, अच्युत, तत्, समक्षम्, तत्, क्षामये, त्वाम, अहम, अप्रमेयम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
च	और	+ त्वम्	तू
अच्युत	हे अच्युत	अवहासार्थम्	हँसी में
यत्	जो		

विहारशय्यासनभोजनेषु = विहार शय्या आसन और भोजन के समय

असत्कृतः असि = तिरस्कार किया गया है

एकः=अकेला

अथवा अपि तत्समक्षम् = या औरों के सामने भी

तत्=उसको

अहम्=मैं

त्वाम्=तुझ

अप्रमेयम्=प्रमाणरहित से

क्षामये=क्षमा कराता हूं

भावार्थ।

हे अच्युत ! जो मैंने हँसी में, विहार में, क्रीड़ा में, आसन में, शय्या में, भोजनादिकों में अकेला, अथवा बहुतों के सम्मुख, आपका तिरस्कार किया है, वह सब मैं आपसे क्षमा कराताहूं ॥ ४२ ॥

मूलम्।

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् । न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ४३

पदच्छेदः।

पिता, असि, लोकस्य, चराचरस्य, त्वम्, अस्य, पूज्यः, च, गुरुः, गरीयान्, न, त्वत्समः, अस्ति, अभ्यधिकः, कुतः, अन्यः, लोकत्रये, अपि, अप्रतिमप्रभाव ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

अस्य=इस
चराचरस्य=चर और अचर
लोकस्य=लोकका
त्वम्=तू
पिता=पिता
असि=है
च=और
पूज्यः=पूजा के योग्य है
गरीयान्=श्रेष्ठतर
गुरुः=उपदेशक
त्वत्समः=तेरे समान

अन्वयः **शब्दार्थ**

न=नहीं
अस्ति=है
अप्रतिम-प्रभाव=हे अतुलप्रभाव वाले !
अपि=निश्चय करके
लोकत्रये=तीनों लोकों में
अन्यः=और कोई
+ त्वत्तः=तुझसे
अभ्यधिकः=बढ़कर
कुतः=कहां है

भावार्थ ।

इस चर अचर लोकके आपही पिता हैं, आपही पूज्य हैं यानी पूजा करने के योग्य हैं, आपही ब्रह्मा आदिकों के गुरु हैं, आपके तुल्य दूसरा कोई नहीं है, और तीनोंलोकों में आपही अतुलप्रभाववाले हैं ॥ ४३ ॥

मूलम् ।

तस्मात् प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वा-
महमीशमीड्यम् । पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ४४

पदच्छेदः।

तस्मात्, प्रणम्य, प्रणिधाय, कायम्, प्रसादये, त्वाम्, अहम्, ईशम्, ईड्यम्, पिता, इव, पुत्रस्य, सखा, इव, सख्युः, प्रियः, प्रियायाः, अर्हसि, देव, सोढुम्॥

अन्वयः शब्दार्थ

तस्मात्=इसलिये
ईशम्=ईश्वर
+ च=और
ईड्यम्=पूजने योग्य
ऐसे
त्वाम्=तुझको
कायम्=शरीर
प्रणिधाय=नीचाकर
प्रणम्य=प्रणाम करके
अहम्=मैं
प्रसादये=प्रसन्न कराताहूं
देव=हे देव
+ इव=जैसे

अन्वयः शब्दार्थ

पिता=पिता
पुत्रस्य=पुत्रके
सखा=मित्र
सख्युः=मित्रके
+ च=और
इव=जैसे
प्रियः=प्रियपति
प्रियायाः=स्त्री के
+ दोषम्=दोषको
+ सहते=सहन करता है
तथा=वैसेही
सोढुम्=सहने को
अर्हसि=योग्य है तू

भावार्थ।

आपके सदृश दूसरा कोई नहीं है, मैं आपको वारंवार भूमिपर दण्डवत् पतित होकर प्रणाम करता हूं, और आपको प्रसन्न करने के लिये मैं वारंवार प्रणाम करताहूं, आपही स्तुति करने के योग्य हैं,

जैसे पिता पुत्र के अपराध को क्षमा करता है, सखा मित्र के अपराध को क्षमा करता है, और पति भार्या के अपराध को क्षमा करताहै, वैसे ही आप भी मेरे अपराध को क्षमा करैं ॥ ४४ ॥

मूलम्।

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे। तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ४५

पदच्छेदः ।

अदृष्टपूर्वम्, हृषितः, अस्मि, दृष्ट्वा, भयेन, च, प्रव्यथितम्, मनः, मे, तत्, एव, मे, दर्शय, देव, रूपम्, प्रसीद, देवेश, जगन्निवास ॥

अन्वयः शब्दार्थ

देवेश=हे देवपते

जगन्निवास=हे वासुदेव

देव=हे देव

प्रसीद=प्रसन्न हो

च=और

मे=मेरे लिये

तत् एव=उसी पूर्व

रूपम्=रूपको

अन्वयः शब्दार्थ

दर्शय=दिखा

अदृष्टपूर्वम्=नहीं देखे हुये पूर्वरूप को

दृष्ट्वा=देख करके

हृषितः अस्मि=प्रसन्न तो हुआ हूं मैं

+ च=परन्तु

भयेन=भयकरके

मे=मेरा
मनः=चित्त
प्रव्यथितम्=दुःखित होरहा है

भावार्थ।

आपके अदृष्टपूर्व रूप को अर्थात् विश्वरूप को जिसको किसीने पूर्व नहीं देखा था, उसको देखकर मैं हर्ष को प्राप्त हुआ हूं, और भय करके मेरा मन पीड़ा को प्राप्त है, हे देव ! उसी पूर्ववाले अपने चतुर्भुजरूप को मेरे प्रति दिखलाइये, हे देवेश ! हे जगन्निवास ! प्रसन्न हो ॥ ४५ ॥

मूलम्।

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव। तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ४६

पदच्छेदः।

किरीटिनम्, गदिनम्, चक्रहस्तम्, इच्छामि, त्वाम्, द्रष्टुम्, अहम्, तथा, एव, तेन, एव, रूपेण, चतुर्भुजेन, सहस्रबाहो, भव, विश्वमूर्ते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

सहस्रबाहो=हे सहस्रबाहो
विश्वमूर्ते=हे विराट्रूप
तथा एव=वैसाही यानी पहिले का ऐसा

अन्वयः शब्दार्थ

किरीटिनम्=मुकुटधारी
त्वाम्=तुझको
गदिनम्=गदाधारी
चक्रहस्तम्=चक्रधारी

अहम्=मैं
द्रष्टुम्=देखना
इच्छामि=चाहताहूं
+ ततः=इसलिये
तेन एव=उसी
चतुर्भुजेन=चतुर्भुज
रूपेण=रूपसे
भव=तू होजा

भावार्थ ।

अपने किरीट-गदा-चक्रयुक्त स्वरूप को मुझे दिखाइये, उसी पूर्वरूप को मैं देखना चाहताहूं, हे सहस्रबाहो ! हे विश्वमूर्ते ! उसी अपने चतुर्भुजरूप को धारण करो ॥ ४६ ॥

मूलम् ।

श्रीभगवानुवाच–

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् । तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ४७

पदच्छेदः ।

मया, प्रसन्नेन, तव, अर्जुन, इदम्, रूपम्, परम्, दर्शितम्, आत्मयोगात्, तेजोमयम्, विश्वम्, अनन्तम्, आद्यम्, यत्, मे, त्वदन्येन, न, दृष्टपूर्वम् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**
श्रीभगवानुवाच=श्रीभगवान् कहते हैं
अर्जुन=हे अर्जुन

अन्वयः **शब्दार्थ**
प्रसन्नेन=प्रसन्नतापूर्वक
मया=मुझ करके

आत्मयोगात्=अपने योग बलसे
इदम्=यह
परम्=श्रेष्ठ
रूपम्=रूप
दर्शितम्=दिखायां गया है
तव=तुझको
यत्=जो
मे=मेरा
तेजोमयम्=तेजोमय
विश्वम्=विराट्
अनन्तम्=अनन्त
आद्यम्=आदिरूप है
+ तत्=सो
त्वदन्येन=तेरे सिवाय दूसरेकरके
न=नहीं
दृष्टपूर्वम्=देखा गया है पहिले

भावार्थ।

श्रीभगवान् अर्जुन के प्रति कहते हैं कि, हे अर्जुन ! मैंने प्रसन्न होकर अपने योगबल से इस तेजोमय विश्वरूप को तुझे दिखाया है, यह आदि अन्त से रहित है, इस रूप को सिवाय तेरे और किसी ने आजतक नहीं देखा है ॥ ४७ ॥

मूलम्।

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः। एवं रूपः शक्योऽहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ४८

पदच्छेदः।

न, वेदयज्ञाध्ययनैः, न, दानैः, न, च, क्रियाभिः,

न, तपोभिः, उग्रैः, एवम्, रूपः, शक्यः, अहम्, नृलोके, द्रष्टुम्, त्वदन्येन, कुरुप्रवीर ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

कुरुप्रवीर=हे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ
नृलोके=मनुष्य लोकमें
त्वदन्येन=तेरे सिवाय दूसरे करके
एवं रूपः=इस प्रकार के रूपवाला
अहम्=मैं
द्रष्टुम्=देखने को
+ न शक्यः=दुष्प्राप्यहूँ
न=न
वेदयज्ञाध्ययनैः=वेदाध्ययन और यज्ञादिकों के करने से

अन्वयः **शब्दार्थ**

च=और
न=न
दानैः=दानकरके
न=न
क्रियाभिः=कर्मों करके
न=न
उग्रैः=उग्र
तपोभिः=तपों करके
च=भी
शक्यः=प्राप्त होने योग्य हूं मैं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! मेरे इस विश्वरूप को यज्ञों करके, वेदों के अध्ययन करके, उग्र तपों और दानों करके, अनेक प्रकार की क्रियाओं करके, और

अनेक साधनों करके कोई भी देखने को समर्थ नहीं है, और सिवाय तेरे कौरवों में भी कोई इस मेरे विश्वरूप के देखने को समर्थ नहीं है ॥ ४८ ॥

मूलम् ।

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं
घोरमीदृङ्ममेदम् । व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ४९

पदच्छेदः ।

मा, ते, व्यथा, मा, च, विमूढभावः, दृष्ट्वा, रूपम्, घोरम्, ईदृक्, मम, इदम्, व्यपेतभीः, प्रीतमनाः, पुनः, त्वम्, तत्, एव, मे, रूपम्, इदम्, प्रपश्य ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

ईदृक्=इस प्रकार
मम=मेरे
इदम्=इस
घोरम्=भयानक
रूपम्=रूपको
दृष्ट्वा=देखकर
ते=तुझको
व्यथा=दुःख
मा=न हो

अन्वयः **शब्दार्थ**

विमूढभावः=मूढ़ता भी
मा=न हो
व्यपेतभीः=निर्भय होता हुआ
च=और
प्रीतमनाः=प्रसन्न चित्त होता हुआ
पुनः=फिर

त्वम्=तू
तत् एव=उसी
इदम्=इस

मे=मेरे
रूपम्=रूपको
प्रपश्य=देख

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! तुमको भय निमित्तक पीड़ा मतहो, और तुम मूढ़भावको भी मत प्राप्तहो, मेरे इस विश्व घोररूपको देखकर तू भय से रहित हो, और प्रसन्नमनवाला हो, अब मेरे उसी पूर्ववाले रूपको देख ॥ ४९ ॥

मूलम् ।

संजय उवाच–

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः । आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ५०

पदच्छेदः ।

इति, अर्जुनम्, वासुदेवः, तथा, उक्त्वा, स्वकम्, रूपम्, दर्शयामास, भूयः, आश्वासयामास, च, भीतम्, एनम्, भूत्वा, पुनः, सौम्यवपुः, महात्मा ॥

अन्वयः शब्दार्थ
संजय उवाच = संजय राजा से कहता है कि
वासुदेवः=कृष्ण

अन्वयः शब्दार्थ
इति=इस प्रकार
अर्जुनम्=अर्जुन को
उक्त्वा=कहकर

भूयः=फिर
तथा=पूर्व दिखाये हुये
स्वकम्=अपने
रूपम्=रूपको
दर्शयामास=दिखाते भये
च=और
पुनः=फिर
महात्मा=महापुरुष

सौम्यवपुः=शान्तरूप
भूत्वा=होकरके
एनम्=इस
भीतम्=डरेहुये
+ अर्जुनम्=अर्जुन को
आश्वासयामास=धैर्य देते भये

भावार्थ।

संजय धृतराष्ट्र से कहता है कि, हे राजन्! वासुदेव इस प्रकार अर्जुन से कहकर किरीटादि युक्त अपने पूर्ववाले चतुर्भुजरूप को पुनः अर्जुन को दिखाते भये, और कृष्ण सौम्यरूप होकर भयभीत अर्जुन को आश्वासन करते भये॥ ५०॥

मूलम्।

अर्जुन उवाच–

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ५१

पदच्छेदः।

दृष्ट्वा, इदम्, मानुषम्, रूपम्, तव, साम्यम्, जनार्दन, इदानीम्, अस्मि, संवृत्तः, सचेताः, प्रकृतिम्, गतः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अर्जुन उवाच	अर्जुन कहता भया	इदानीम्	अब
जनार्दन	हे जनार्दन !	सचेताः	प्रसन्नचित्तवाला
तव	तेरे	संवृत्तः	हुआ
इदम्	इस	अस्मि	हूं मैं
सौम्यम्	शान्त	+ च	और
मानुषम्	मनुष्यसम्बन्धी	+ स्वाम्	अपने
रूपम्	रूपको	+ पूर्वम्	पहिलेवाले
दृष्ट्वा	देख करके	प्रकृतिम्	स्वभाव को
		गतः	प्राप्त हुआहूं

भावार्थ ।

भगवान् के पूर्ववाले चतुर्भुजरूप को देखकर अर्जुन निर्भय होकर कहता है कि, हे जनार्दन ! आप के इस सौम्य मनुष्यरूप को देखकर मैं स्वस्थ हुआ हूं, और भयसे रहित होकर अपने पूर्ववाले स्वभाव को प्राप्त हुआहूं ॥ ५१ ॥

मूलम् ।

श्रीभगवानुवाच—

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ५२

पदच्छेदः ।

सुदुर्दर्शम्, इदम्, रूपम्, दृष्टवान्, असि, यत्, मम,

देवाः, अपि, अस्य, रूपस्य, नित्यम्, दर्शनकाङ्क्षिणः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

मम=मेरे
यत्=जिस
इदम्=इस
सुदुर्दर्शम्=अतिदुर्दर्श
रूपम्=रूपको
दृष्टवान्=देखता भया
असि=है तू
नित्यम्=नित्य

अन्वयः शब्दार्थ

देवाः=देवता
अपि=भी
अस्य=इस
रूपस्य=रूपके
दर्शनकाङ्क्षिणः=दर्शन के चाहनेवाले
+ सन्ति=हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे मित्र! जिस मेरे विश्वरूप को तूने देखाहै, ऐसा मेरा रूप देवताओं के भी देखने को अशक्य है, और देवता भी मेरे उस विश्वरूप के देखने की इच्छा नित्यही करते हैं ॥ ५२ ॥

मूलम्।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ५३

पदच्छेदः।

न, अहम्, वेदैः, न, तपसा, न, दानेन, न, च, इज्यया, शक्यः, एवंविधः, द्रष्टुम्, दृष्टवान्, असि, माम्, यथा ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अहम्=मैं
न=न
वेदैः=वेदों करके
न=न
तपसा=तपकरके
न=न
दानेन=दानकरके
च=और
न=न

अन्वयः शब्दार्थ

इज्यया=यज्ञकरके
एवंविधः=इसप्रकार
द्रष्टुम्=देखनेको
शक्यः=योग्यहूं
यथा=जैसे
माम्=मुझको
+ त्वम्=तू
दृष्टवान्=देखता भया
असि=है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! वेदों के अध्ययन करके, दानों करके, तपों करके, और अनेक प्रकार की पूजा करके, मैं इस प्रकार देखने को अशक्यहूं, जैसे कि तूने मेरे रूपको देखा है, ऐसा आजतक किसीने भी नहीं देखा है ॥ ५३ ॥

मूलम्।

भक्त्या त्वनन्यया शक्यस्त्वहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुञ्च तत्त्वेन प्रवेष्टुञ्च परंतप ५४

पदच्छेदः।

भक्त्या, तु, अनन्यया, शक्यः, तु, अहम्, एवंविधः, अर्जुन, ज्ञातुम्, द्रष्टुम्, च, तत्त्वेन, प्रवेष्टुम्, च, परंतप ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

तु=और
अर्जुन=हे अर्जुन
परंतप=हे श्रेष्ठ तप करनेवाला
अनन्यया=अभेद
भक्त्या=भक्ति करके
च=और
तत्त्वेन=यथार्थ ज्ञान करके

अन्वयः **शब्दार्थ**

अहम्=मैं
ज्ञातुम्=जानने को
तु=और
द्रष्टुम्=देखने को
च=और
प्रवेष्टुम्=प्रवेश करने को
एवंविधः=इसप्रकार
शक्यः=योग्यहूं

भावार्थ।

अर्जुन कहता है कि, हे भगवन्! यदि तपआदिकों करके भी आप देखने को अशक्यहो, तब फिर किस उपाय करके आप देखने को शक्यहो, भगवान् कहते हैं कि, हे कौन्तेय! मेरी निष्ठावाली जो अनन्यप्रेमाभक्ति है, उसी से मैं इस प्रकार देखने को शक्य हूं ॥ ५४ ॥

मूलम्।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ५५

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयोगोनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

मत्कर्मकृत्, मत्परमः, मद्भक्तः, सङ्गवर्जितः, निर्वैरः, सर्वभूतेषु, यः, सः, माम्, एति, पाण्डव ॥

अन्वयः शब्दार्थ

पाण्डव=हे अर्जुन
यः=जो
मत्कर्मकृत्=मेरे अर्थ कर्म करनेवाला है
मत्परमः=मैंहीहूं परम पुरुषार्थ जिसका
मद्भक्तः=मेरा भक्त है जो

अन्वयः शब्दार्थ

सङ्गवर्जितः=सङ्गरहित है जो
सर्वभूतेषु=सब प्राणियों में
निर्वैरः=विरोधरहित है जो
सः=वह
माम्=मुझको
एति=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

संपूर्ण शास्त्रका सारभूत जो गीताशास्त्र है उसके भी सार अर्थको आदरपूर्वक कल्याण की इच्छावालों के प्रति सम्यक् अनुष्ठान के लिये भगवान् अब कहते हैं कि, हे सौम्य ! मेरी प्रीति के लिये वेदोक्त कर्मों को करता हुआ मेरे परायण जो मेरा भक्त है, और संपूर्ण जनों के सम्बन्ध से रहित होकर मुझमेंही मन को लगाकर जो विचरता है, और सब प्राणियों में विरोध रहित है वह मुझको ही प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥

ग्यारहवां अध्याय समाप्त ॥

बारहवा अध्याय ।

मूलम् ।

अर्जुन उवाच-

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः १

पदच्छेदः ।

एवम्, सततयुक्ताः, ये, भक्ताः, त्वाम्, पर्युपासते, ये, च, अपि, अक्षरम्, अव्यक्तम्, तेषाम्, के, योगवित्तमाः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अर्जुन उवाच=अर्जुन कहताहै
ये=जो
सततयुक्ताः=निरन्तरयुक्तहुये
भक्ताः=भक्तलोग
त्वाम्=तुझको
एवम्=इस प्रकार यानी विश्वरूप करके
पर्युपासते=उपासना करते हैं
च=और

अन्वयः शब्दार्थ

ये=जो
अक्षरम्=अविनाशी
अव्यक्तम्=अव्यक्त को यानीनिर्गुण रूप को
+ पर्युपासते=उपासनाकरते हैं
अपि=निश्चयकरके
तेषाम्=उनमें से
के=कौन
योगवित्तमाः=योग के श्रेष्ठ ज्ञाता हैं

भावार्थ।

अर्जुन कहता है कि, हे भगवन्! पूर्वले अध्याय के अन्त में जो आपने कहा है कि "मद्भक्तो यः स एति माम्" जो मेरा भक्त है, सो मुझको ही प्राप्त होता है, इस स्थान में मुझ को मत् शब्द के अर्थ में संशय होताहै, क्या निराकार वस्तु मत् शब्द करके आपने कहाहै, अथवा साकार वस्तु आपने कहा है, अर्थात् आपके निराकाररूप को वह भक्त प्राप्त होता है, अथवा साकाररूप को प्राप्त होता है, क्योंकि मत् शब्द के अर्थ दोनों बनते हैं, और अनन्य शरण होकर जो आपकरके कहेहुये कर्मों में नित्यही प्रवृत्त हैं, और जो आपके साकाररूप का निरन्तरही चिन्तन करता है, और जिसने संपूर्ण एषणा का त्याग किया है, और जो नित्यही निर्गुण निराकार ब्रह्मकी उपासना करता है, उन दोनों के मध्य में कौन अतिशय करके श्रेष्ठ है, यह आप कृपा करके कहिये ॥ १ ॥

मूलम्।

श्रीभगवानुवाच—

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः २

पदच्छेदः।

मयि, आवेश्य, मनः, ये, माम्, नित्ययुक्ताः, उपासते,

श्रद्धया, परया, उपेताः, ते, मे, युक्ततमाः, मताः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

ये=जो
परया=परम
श्रद्धया=श्रद्धा करके
उपेताः=युक्त हुये
+ च=और
मनः=मनको
मयि=मेरे में
आवेश्य=प्रवेशाकरके

अन्वयः शब्दार्थ

नित्ययुक्ताः=निरन्तरयुक्तहुये
माम्=मुझ विश्वरूप को
उपासते=उपासनाकरते हैं
ते=वे
मे=मेरे
युक्ततमाः=श्रेष्ठ अभ्यासी
मताः=समझेगये हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे नरसिंह! मुझ वासुदेव भगवान् परमेश्वर सगुण ब्रह्म में जो मन को प्रवेश करके और नित्य मुझसे युक्त होकरके मेरी उपासना करता है, और सात्त्विक वृत्ति करके श्रद्धावान् है, वह अतिशय करके श्रेष्ठ अभ्यासी समझा गया है ॥ २ ॥

मूलम्।

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यञ्च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ३

पदच्छेदः।

ये, तु, अक्षरम्, अनिर्देश्यम्, अव्यक्तम्, पर्युपासते, सर्वत्रगम्, अचिन्त्यम्, च, कूटस्थम्, अचलम्, ध्रुवम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तु=और
ये=जो पुरुष
अक्षरम्=अविनाशी
अनिर्देश्यम्=अकथनीय
सर्वत्रगम्=सर्वत्रगति
अचिन्त्यम्=दुर्विज्ञेय
कूटस्थम्=कूटस्थ

अन्वयः शब्दार्थ

ध्रुवम्=स्थिर
अचलम्=अचल
अव्यक्तम्=अव्यक्त को
पर्युपासते=उपासना करते हैं
च=और

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ ।

हे पार्थ ! जो मेरे निर्गुण अक्षरस्वरूप की उपासना करते हैं, वे मेरे निर्गुणरूप को ही प्राप्त होते हैं, वह मेरा रूप अनिर्देश्य है, यानी वाणी करके कथन नहीं किया जासक्ता है, क्योंकि वाणी की प्रवृत्ति केवल गुण जातिवाले पदार्थों में होती है, निर्विशेष में यानी गुण जातिरहित पदार्थों में नहीं होती है, और जिस कारण वह गुण जाति आदिकों से भी रहित है, इसी वास्ते सर्वव्यापी है, और सर्वका कारण है, और द्वैतसे रहित भी है, जो परिच्छिन्न कार्य होता है उसी के गुण जाति आदिक धर्म भी होते हैं, अपरिच्छिन्न चेतन गुण जाति आदिकों से रहित है, और कूटस्थ माया और मायाके कार्यका भी अधिष्ठान है,

और नित्य है, उसी ब्रह्मको निदिध्यासनादिकों करके साक्षात् करते हैं ॥ ३ ॥

मूलम्।

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ४

पदच्छेदः।

सन्नियम्य, इन्द्रियग्रामम्, सर्वत्र, समबुद्धयः, ते, प्राप्नुवन्ति, माम्, एव, सर्वभूतहिते, रताः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

सर्वत्र=सब काल में
समबुद्धयः=समान है बुद्धि जिनकी
+ च=और
सर्वभूतहिते रताः=सब प्राणियों के हित बिषे प्रीति रखने वाले हैं जो
च=और

अन्वयः **शब्दार्थ**

इन्द्रियग्रामम्=इन्द्रियों के समूह को
सन्नियम्य=रोक करके
+पूर्वोक्तप्रकारेण उपासते=पूर्व कहे हुये प्रकार से उपासना करते हैं जो
ते=वे
माम् एव=मुझकोही
प्राप्नुवन्ति=प्राप्त होते हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! संपूर्ण विषयों की तरफ़ से इन्द्रियग्राम के रोकने का नामही शम है,

यदि विद्वान् को भोगों की अभिलाषा है तो उसकी इन्द्रियों का संयम नहीं होसक्ता है, जिस पुरुष की बुद्धि भोगों में तुल्य है, यानी हर्ष शोक से रहित है, और सम्यक्ज्ञान करके राग द्वेष का कारण अज्ञान जिसका नष्ट होगया है, उसी की इन्द्रियों का संयम आपसे आप होजाता है, और इसीवास्ते वह विद्वान् सर्वत्र आत्मदृष्टि करकेही और हिंसारूपी कारण से रहित होकर संपूर्ण भूतों के प्रति अभयदान देता है, यानी न उसको किसी से भय है, और न उससे औरों को भय है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्ताऽसक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ५

पदच्छेदः ।

क्लेशः, अधिकतरः, तेषाम्, अव्यक्ताऽसक्तचेतसाम्, अव्यक्ता, हि, गतिः, दुःखम्, देहवद्भिः, अवाप्यते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अव्यक्तासक्तचेतसाम् =	अव्यक्तयानी निर्गुण ब्रह्म में है आसक्त चित्तजिनका	अधिकतरः=	अधिकतर
		क्लेशः=	क्लेश है
		हि=	क्योंकि
तेषाम्=	उनको	अव्यक्तागतिः =	अव्यक्तकी प्राप्ति

देहवद्भिः=देहधारी पुरुषों करके

दुःखम्=दुःखसे

अवाप्यते=प्राप्त कीजाती है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! सगुणब्रह्म के जो उपासक हैं, वे भोगों से मनको हटाकर सगुण ब्रह्म में परम श्रद्धा करके मनको प्रवेश करते हैं, और ऐसा करने में उनको भी क्लेश होता है, और जो निर्गुणब्रह्म के उपासक हैं व जिनका मन निर्गुण ब्रह्म में ही आसक्त होरहा है, उनको तो पूर्ववालों से भी अति क्लेश होता है, क्योंकि अक्षररूप ब्रह्मकी प्राप्ति बड़े कष्ट करके होती है, और जो देहाभिमानी हैं, वे यदि सर्व साधनों करके युक्त भी हों तोभी उनको निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती है, इसी वास्ते निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति की इच्छावाले को देहाभिमान का त्याग और वेदान्त शास्त्र का श्रवण करना अवश्य है॥ ५॥

मूलम्।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ६

पदच्छेदः।

ये, तु, सर्वाणि, कर्माणि, मयि, संन्यस्य, मत्पराः, अनन्येन, एव, योगेन, माम्, ध्यायन्तः, उपासते॥

अन्वयः शब्दार्थ

तु=और
ये=जो
सर्वाणि=संपूर्ण
कर्माणि=कर्मोंको
मयि=मुझमें
संन्यस्य=अर्पण करके
मत्पराः=मेरेआश्रित हुये

अन्वयः शब्दार्थ

अनन्येन=अभेद
योगेन=योग करके
एव=ही
माम्=मुझको
ध्यायन्तः=ध्यानकरतेहुये
उपासते=उपासना करते हैं

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोकसे है)

भावार्थ।

पूर्व भगवान् ने सगुण निर्गुण के उपासकों की निष्ठा का निरूपण किया है, अब भक्तों की निष्ठाका निरूपण करते हैं, और कहते हैं कि, हे अर्जुन ! भोग मोक्ष दोनों में जो भक्त निःस्पृहहैं, और मुझ कृष्ण के चरणकमलों के रसको ग्रहण करते हैं, उनको मैं परम पद जो मोक्ष है उसको देता हूं, यद्यपि मैं ईश्वर सबको मुक्तिका दाताहूं तथापि जो कर्मी और मुमुक्षु हैं, उनसे यत्न कराकर ज्ञानद्वारा उनको मोक्ष देताहूं, और जो निष्काम भक्त हैं और मोक्षकी इच्छा भी नहीं करते हैं, मैं उनको विना यत्न कराये हुये मोक्ष देताहूं॥ ६॥

मूलम्।

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि न चिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ७

पदच्छेदः।

तेषाम्, अहम्, समुद्धर्ता, मृत्युसंसारसागरात्, भवामि, न, चिरात्, पार्थ, मयि, आवेशितचेतसाम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

+च=और
पार्थ=हे अर्जुन
मयि=मुझ में
आवेशितचेतसाम्=लगा है चित्त जिनका
तेषाम्=उनका
अहम्=मैं

अन्वयः शब्दार्थ

मृत्युसंसारसागरात्=मृत्युरूपी संसारसागर से
नचिरात्=जल्दी
समुद्धर्ता=उद्धार करनेवाला
भवामि=होता हूं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जिनका चित्त मुझ में एकाग्र है, उनको मैं मिथ्या अज्ञानरूपी संसारसागर से विनाही परिश्रम आत्मज्ञान द्वारा उद्धार कर देताहूं, और शुद्ध चिद्घन ब्रह्म में स्थित कर देताहूं ॥ ७ ॥

मूलम्

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अतऊर्ध्वं न संशयः ८

पदच्छेदः ।

मयि, एव, मनः, आधत्स्व, मयि, बुद्धिम, निवेशय, निवसिष्यसि. मयि, एव, अतः, ऊर्ध्वम्, न, संशयः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

मयि=मुझमें
एव=ही
मनः=मनको
आधत्स्व=लगा तू
मयि=मुझमेंही
बुद्धिम्=बुद्धिको
निवेशय=प्रवेश कर तू

अन्वयः शब्दार्थ

अतः ऊर्ध्वम्=इसके बाद यानीदेहत्याग के पश्चात्
मयिएव=मुझमेंही
नसंशयः=निःसंदेह
निवसिष्यसि=निवास करेगा तू

भावार्थ ।

भगवान् प्रथम सगुण ब्रह्मके उपासकों की स्तुति करके अब अपनी प्राप्तिके साधनों का विधान करते हैं और कहते हैं कि, हे अर्जुन! मुझ सगुण ब्रह्म में तू संकल्परूप मन को और निश्चयात्मिक बुद्धि को स्थापन करके और विषयों के संगका त्याग करके मुझ ईश्वरकाही चिन्तन कर, इसप्रकार जब तू मेरा चिन्तन करेगा, तब तू मुझमेंही लयको प्राप्त होगा, इसमें संशय नहीं है ॥ ८ ॥

मूलम्।

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ९

पदच्छेदः।

अथ, चित्तम्, समाधातुम्, न, शक्नोषि, मयि, स्थिरम्, अभ्यासयोगेन, ततः, माम्, इच्छ, आप्तुम्, धनंजय ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

धनंजय=हे अर्जुन !
अथ=अगर
मयि=मुझमें
स्थिरम्=अचल
चित्तम्=चित्त
समाधातुम्=समाधान करने को यानी स्थिर करने को

अन्वयः **शब्दार्थ**

न=नहीं
शक्नोषि=समर्थ है तू
ततः=तो
अभ्यासयोगेन=योगाभ्यास करके
माम्=मुझे
आप्तुम्=पानेको
इच्छ=इच्छाकर

भावार्थ।

भगवान् अब सगुण ब्रह्म के ध्यान में जो अशक्त पुरुष हैं, उनकी अशक्ति की तारतम्यता करके तीन साधनों का विधान करते हैं और कहते हैं कि राम कृष्णादिकों की मूर्तियों में चित्त को स्थिर करना उचित है, अर्थात्

बाह्य मूर्ति को देख कर हृदय में उसको ध्येयाकार करके स्थापन करना चाहिये, क्योंकि विना आलम्ब के चित्त की स्थिरता नहीं होसक्ती है, मूर्ख लोग भगवान् के तात्पर्य को न जानकर केवल घंटा हिलाया करते हैं, और जन्मभर घंटे हिलाते रहते हैं, पर उनको कुछ भी फल नहीं होता है, और जो पुरुष राम कृष्णादिकों की मूर्तियों में चित्त के स्थिर करने में समर्थ नहीं हैं, उनके लिये भगवत्सम्बन्धी धर्मों का करना उचित है, और जो उनके करने में भी असमर्थ हैं उनके लिये संपूर्ण कर्मों के फलका त्याग करनाही विधान है, यदि तू हे अर्जुन! चित्तको मुझ में स्थापन करने के लिये भी समर्थ नहीं है तो संपूर्ण बाह्य विषयों से चित्तको हटाकर पुनः मुझमें स्थापन करनेका अभ्यास कर, और उसी अभ्यासयोग करके ही मुझ ईश्वर की प्राप्ति की इच्छा कर ॥ ९ ॥

मूलम् ।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्म परमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि १०

पदच्छेदः ।

अभ्यासे, अपि, असमर्थः, असि, मत्कर्म, परमः, भव, मदर्थम्, अपि, कर्माणि, कुर्वन्, सिद्धिम्, अवाप्स्यसि ॥

अन्वयः शब्दार्थ

+ यदि=अगर
अभ्यासे=अभ्यासमें
अपि=भी
असमर्थः=असमर्थ
असि=है तू
+ ततः=तो
मत्कर्मपरमः=मेरेलिये कर्मपरायण

अन्वयः शब्दार्थ

भव=हो
मदर्थम्=मेरे निमित्त
कर्माणि=कर्मों को
कुर्वन्=करता हुआ
अपि=भी
सिद्धिम्=सिद्धि को
अवाप्स्यसि=प्राप्त होगा तू

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! यदि तू अभ्यासयोग में भी असमर्थ है, तो मेरी प्रीतिका साधन जो मेरा कीर्तन, श्रवण, पूजा आदि हैं, उनमें तू अपने मनको लगा, तब उन भगवत्सम्बन्धी धर्मों को करने से निष्काम होकर अन्तःकरण की शुद्धिद्वारा विज्ञान की उत्पत्ति के पश्चात् तू मोक्षरूपी शान्ति को प्राप्त होवेगा ॥ १० ॥

मूलम्।

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ११

पदच्छेदः।

अथ, एतत, अपि, अशक्तः, असि, कर्तुम्, मद्योगम्,

आश्रितः, सर्वकर्मफलत्यागम्, ततः, कुरु, यतात्मवान् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अथ	=अगर	+ च	=और
एतत्	=यह	यतात्मवान्	=समाहित चित्त वाला होता हुआ
अपि	=भी	सर्वकर्मफलत्यागम्	=संपूर्ण कर्मों के फल के त्याग को
कर्तुम्	=करने को	कुरु	=कर तू
अशक्तः	=असमर्थ		
असि	=है तू		
ततः	=तो		
मद्योगम्	=मेरेयोगको		
आश्रितः	=आश्रयकियेहुये		

भावार्थ।

हे अर्जुन ! यदि विषयवासना करके आक्रान्त चित्त होनेसे भी तू पूर्वोक्त धर्मों के करने में असमर्थ है तब संपूर्ण जगत् का ईश्वर जो मैंहूं, तिस मुझमें ही, संपूर्ण कर्मों को समर्पण कर, और मेरेही शरण को प्राप्त हो ॥ ११ ॥

मूलम्।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते । ध्यानात् कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् १२

पदच्छेदः।

श्रेयः, हि, ज्ञानम्, अभ्यासात्, ज्ञानात्, ध्यानम्, विशिष्यते, ध्यानात्, कर्मफलत्यागः, त्यागात्, शान्तिः, अनन्तरम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
ज्ञानम्	ज्ञान
हि	निश्चय करके
अभ्यासात्	अभ्यास से
श्रेयः	श्रेष्ठ है
ज्ञानात्	ज्ञान से
ध्यानम्	ध्यान
विशिष्यते	अधिक श्रेष्ठ है
ध्यानात्	ध्यान से
कर्मफलत्यागः	कर्म के फल का त्याग
+ श्रेयः	श्रेष्ठ है
त्यागात्	कर्म के फलके त्याग से
शान्तिः	शान्ति
अनन्तरम्	अत्यन्त श्रेष्ठ है

भावार्थ।

अब भगवान् संपूर्ण कर्मों के फलके त्याग की स्तुति को करते हैं, और कहते हैं कि, हे प्रियमित्र! आत्मज्ञान के लिये जो श्रवणादिकों का अभ्यास है, उस अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है, और श्रुति करके प्राप्त भया जो ज्ञान है, उससे निदिध्यासन नामक जो तत्त्वज्ञानका कारण है, वह श्रेष्ठ है, और उससे भी अज्ञानी करके कियाहुआ जो संपूर्ण कर्मों के फलका त्याग है, वह श्रेष्ठ है, इसप्रकार भगवान् कारण की

स्तुतिको करते हैं, क्योंकि कारण के विना कार्य होता नहीं है, साधनों के विना कोई वस्तु सिद्ध होती नहीं, फिर कारण की स्तुति करके भगवान् कहते हैं कि, हे सौम्य! कर्मों के फलके त्याग से भी शान्ति यानी मोक्ष अत्यन्त श्रेष्ठ है, क्योंकि उसको प्राप्त होकर पुरुष सर्वदुःखों से निवृत्त होजाता है ॥ १२ ॥

मूलम्।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी १३

पदच्छेदः।

अद्वेष्टा, सर्वभूतानाम्, मैत्रः, करुणः, एव, च, निर्ममः, निरहंकारः, समदुःखसुखः, क्षमी

अन्वयः **शब्दार्थ**
सर्वभूतानाम् = सब प्राणियों का
अद्वेष्टा=नहीं द्वेष करने वाला
च=और
मैत्रः=मित्रता करने वाला है जो

अन्वयः **शब्दार्थ**
करुणः एव=दयाकरनेवाला है जो
निर्ममः=मोहरहित
+च=और
निरहंकारः=अहंकार रहित है जो

समदुःखसुखः = समान है दुःख और सुख जिसको

क्षमी=क्षमा करने वाला है जो

(इस श्लोकका सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ।

जीवन्मुक्तों की जीवन्मुक्ति के साधन जो धर्म हैं, उन धर्मोंको भगवान् अब मुमुक्षुवों के हित के लिये निरूपण करते हैं, यह कहते हुये कि हे पार्थ! जीवन्मुक्त ज्ञानी अपने आत्मा में ही संपूर्ण भूतों को देखता हुआ किसी प्राणीमात्र से द्वेष नहीं करता है, किन्तु बराबरवालों से मैत्री करता है, और दुःखियोंपर दया करता है, और सर्वभूतों को अभयदान देता है, देहमें और देह के उपकरणों में अहं मम प्रत्यय से रहित होताहै, और अद्वैत आत्मबोध करके अहंकाररूपी मल से भी रहित होताहै, और राग द्वेष से रहित होने से सुख दुःख में भी समबुद्धिवाला होता है, और दूसरों करके ताड़ना कियाहुआ भी उसका मन क्षोभको नहीं प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

मूलम्।

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः १४

पदच्छेदः ।

सन्तुष्टः, सततम्, योगी, यतात्मा, दृढनिश्चयः, मयि, अर्पितमनोबुद्धिः, यः, मद्भक्तः, सः, मे, प्रियः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

सततम्=निरन्तर
सन्तुष्टः=सन्तुष्ट है जो
यतात्मा=समाहित है चित्त जिसका
दृढनिश्चयः=दृढ है निश्चय जिसका
मयि=मुझमें

अन्वयः **शब्दार्थ**

अर्पितमनोबुद्धिः=अर्पण किया है मन और बुद्धिको जिसने ऐसा
यः योगी=जो पुरुष योगी
मद्भक्तः=मेरा भक्त है
सः=वह
मे=मेरा
प्रियः=प्यारा है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे कमलनयन ! जो लाभ अलाभ में सर्वकाल सन्तुष्ट रहते हैं, और जो समाहित चित्तहैं, और जिनके शरीर इन्द्रियादिक भी चपलता से रहित हैं, और वादी के कुतर्कों से जिनका निश्चय चलायमान नहीं होताहै, और जिन्होंने अपने अन्तःकरण को मुझमें समर्पण किया है, ऐसा जो मेरा भक्त है वह मुझको प्यारा है ॥ १४ ॥

मूलम्।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः १५

पदच्छेदः।

यस्मात्, न, उद्विजते, लोकः, लोकात्, न, उद्विजते, च, यः, हर्षामर्षभयोद्वेगैः, मुक्तः, यः, सः, च, मे, प्रियः॥

अन्वयः शब्दार्थ

यस्मात्=जिस संन्यासी से
लोकः=जीव
न=नहीं
उद्विजते=उद्वेग करता है
च=और
यः=जो
लोकात्=जीव से
न=नहीं
उद्विजते=उद्वेग करता है

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
यः=जो
हर्षामर्षभयोद्वेगैः=हर्ष, क्रोध, और भय के उद्वेगसे
मुक्तः=रहित है
सः=वह
मे=मेरा
प्रियः=प्यारा है

भावार्थ।

हे प्रियदर्शन! अद्वैत ब्रह्ममें निष्ठावाला जो ज्ञानी है, वह किसीसे भी तपायमान नहीं होता है, और न कोई उससे तपायमान होताहै, प्रियपदार्थ के लाभ होने से जिसका मन हर्षको नहीं प्राप्त होताहै, और

इष्ट पदार्थ के नाश होनेपर भी जिसका मन विषाद को नहीं प्राप्त होता है, और चित्तकी व्याकुलता का हेतु जो उद्वेग है उससे भी जो रहित है, ऐसा जो भक्त है सो मेरेको प्यारा है ॥ १५ ॥

मूलम् ।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः १६

पदच्छेदः ।

अनपेक्षः, शुचिः, दक्षः, उदासीन[illegible]व्यथः, सर्वारम्भपरित्यागी, यः, मद्भक्तः, सः, मे, प्रियः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अनपेक्षः	इच्छारहित	सर्वारम्भपरित्यागी	संपूर्ण कर्मोंको त्याग किया है जिसने ऐसा
शुचिः	पवित्र	यः	जो पुरुष
दक्षः	चतुर	मद्भक्तः	मेरा भक्त है
उदासीनः	उदासीन है जो	सः	वह
गतव्यथः	दूर हुआ है दुःख जिसका	मे	मेरा
		प्रियः	प्यारा है

भावार्थ ।

जो संपूर्ण भोगों से निःस्पृह है, और जो अन्तर बाहर से शुद्ध है, और जो पक्षपात से रहित है, और

दुष्टों करके ताड़ना कियाहुआ भी जो व्यथा को नहीं प्राप्त होता है, और जिसने इस लोक अथवा परलोक के फल के देनेवाले कर्मोंका त्याग करदिया है, ऐसा जो मेरा भक्त है, सो मेरे को अतिप्यारा है ॥ १६ ॥

मूलम् ।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः १७

पदच्छेदः ।

यः, न, हृष्यति, न, द्वेष्टि, न, शोचति, न, काङ्क्षति, शुभाशुभपरित्यागी, भक्तिमान्, यः, सः, मे, प्रियः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
यः	जो
न	नहीं
हृष्यति	हर्षित होता है
न	नहीं
द्वेष्टि	द्वेष करता है
न	नहीं
शोचति	शोचकरता है
न	नहीं
काङ्क्षति	इच्छाकरताहै
+ च	और
शुभाशुभपरित्यागी	शुभ और अशुभ कर्मों को त्याग किया है जिसने ऐसा
यः	जो पुरुष
भक्तिमान्	भक्त है
सः	वह
मे	मेरा
प्रियः	प्यारा है

भावार्थ।

हे कौन्तेय ! जो इष्टकी प्राप्ति में हर्ष को नहीं प्राप्त होता है, और अनिष्टकी प्राप्ति में खेदको नहीं प्राप्त होता है, और जो प्राप्त वस्तुके नाश होने पर शोक को नहीं प्राप्त होताहै, और अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति की इच्छा नहीं करता है, और पुण्य और पाप को जिसने त्याग दिया है, ऐसा जो मेरा भक्त है, वह मुझको अतिशय करके प्यारा है ॥ १७ ॥

मूलम्।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः १८

पदच्छेदः।

समः, शत्रौ, च, मित्रे, च, तथा, मानापमानयोः, शीतोष्णसुखदुःखेषु, समः, सङ्गविवर्जितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
शत्रौ	शत्रु में	मानापमानयोः	मान और अपमान में
च	और	च	और
मित्रे	मित्रमें	शीतोष्णसुखदुःखेषु	शीत उष्ण सुख और दुःख में
समः	बराबर है जो		
तथा	वैसाही		

+ अपि=भी
समः=तुल्य है जो

सङ्गविवर्जितः=सङ्ग से रहित यानी विषय में लिप्यमान नहीं है जो

इस श्लोकका सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ ।

जो शत्रु व मित्र में तथा पूजा और तिरस्कार में भी सम है, और जो शीतोष्णादिकों की प्राप्ति में भी सम है, अर्थात् अध्यास से रहित है, और जो विषय में लिप्यमान नहीं है ॥ १८ ॥

मूलम् ।

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः १९

पदच्छेदः ।

तुल्यनिन्दास्तुतिः, मौनी, सन्तुष्टः, येन, केनचित्, अनिकेतः, स्थिरमतिः, भक्तिमान्, मे, प्रियः, नरः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
तुल्यनिन्दास्तुतिः=	तुल्य है निन्दा और स्तुति जिसको	येनकेनचित्=	जिस किसी करके यानी यथालाभ में
मौनी=	चुपचाप है जो	सन्तुष्टः=	सन्तुष्ट है जो

अनिकेतः=नहीं है एक जगह आसन जिसका
स्थिरमतिः=स्थिर है बुद्धि जिसकी ऐसा
भक्तिमान्=भक्त
नरः=मनुष्य
मे=मुझको
प्रियः=प्यारा है

भावार्थ ।

जो निन्दा स्तुति में सम है, और जो अपने गुणों और अवगुणों के निरूपण होनेपर भी सम है, और जिसकी वाणी संयुक्त है, और अपनी प्राप्त अवस्था में सन्तुष्ट रहता है, और अद्वैत में जिसकी बुद्धि स्थिर है, ऐसा जो मेरा भक्त है, वह मुझको प्यारा है ॥ १९ ॥

मूलम् ।

ये तु धर्मामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः २०

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो
नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

ये, तु, धर्मामृतम्, इदम्, यथोक्तम्, परि उप आसते, श्रद्दधानाः, मत्परमाः, भक्ताः, ते, अतीव, मे, प्रियाः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
तु=और

अन्वयः शब्दार्थ
ये=जो

भक्ताः=भक्त
श्रद्दधानाः=श्रद्धावान्
मत्परमाः=मेरे आश्रितहुये
इदम्=इस
धर्मामृतम्=धर्मरूपी अमृत को
यथोक्तम्=पूर्व कहे प्रकार
पर्युपासते=उपासना करते हैं
ते=वे
मे=मुझको
अतीव=अत्यन्त
प्रियाः=प्यारे हैं

भावार्थ।

अद्वेष्टादिक जो जीवन्मुक्त के स्वभावभूत चिह्न हैं, वे सब मुमुक्षु के लिये आत्मज्ञानके साधन हैं, इसीपर भगवान् कहते हैं कि जो श्रेष्ठ मुमुक्षुजन हैं, और मुझ करके कहे हुये धर्मोंको अमृत की तरह उपासना करते हैं, और यत्न करके श्रद्धा करके उनका अनुष्ठान करते हैं, वे उत्तम ज्ञानरूपी भक्ति को प्राप्त होते हैं, और वे मुझको अत्यन्त प्यारे हैं ॥ २० ॥

बारहवां अध्याय समाप्त ॥

तेरहवां अध्याय।

मूलम्।

श्रीभगवानुवाच-
इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञमिति तद्विदः १

पदच्छेदः ।

इदम्, शरीरम्, कौन्तेय, क्षेत्रम्, इति, अभिधीयते, एतत्, यः, वेत्ति, तम्, प्र आहुः, क्षेत्रज्ञम्, इति, तद्विदः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

कौन्तेय=हे कुन्ती के पुत्र अर्जुन!
इदम्=यह
शरीरम्=शरीर
क्षेत्रम्=क्षेत्र
इति=करके
अभिधीयते=कहाजाता है
एतत्=इसको

अन्वयः शब्दार्थ

यः=जो
वेत्ति=जानता है
तम्=उसको
तद्विदः=यथार्थदर्शी पुरुष
क्षेत्रज्ञम्=क्षेत्रज्ञ
इति=करके
प्राहुः=कहते हैं

भावार्थ ।

आदि के छः अध्यायों करके भगवान् ने त्वंपदके अर्थ का निरूपण किया है, और फिर मध्य के छः अध्यायों करके तत्पद के अर्थका निरूपण किया है, अब अन्त के छः अध्यायों करके तत्पद और त्वंपदके अखण्डार्थका यानी अभेद अर्थ का निरूपण करते हैं, विना जीवात्मा और परमात्मा के अभेदज्ञान के पुरुषों का मृत्युसे तरना नहीं होता है, इसी वास्ते अब भगवान् जीवों के उद्धार के लिये तत्पद और त्वंपद के लक्षार्थ के अभेदज्ञान को कहते हैं । और अभेद

ज्ञानका नामही आत्मज्ञान है, भेदज्ञानका नामही अज्ञान है, अभेदज्ञान मुक्तिका कारण है, और भेद ज्ञान बन्धन का कारण है ॥ प्र० ॥ जीव तो शरीर शरीरप्रति भिन्न है, उसकी शुद्ध ब्रह्मके साथ ऐक्यता कैसे होसक्ती है ॥ उ० ॥ जीवोंका भेद और संसार ये सब अविद्या ने ब्रह्म में ही कल्पना कर रक्खा है, वास्तव से जीव शुद्ध है, और ब्रह्मरूप है, इसी वार्ता के निरूपण करनेके लिये त्रयोदश अध्यायका प्रारम्भ भगवान् करते हैं, और कहते हैं कि, हे पार्थ ! यह जो भोगका आश्रय स्थूल शरीर है, सो मन इन्द्रियों के सहित जड़ है, और मिथ्या है, इसीका नाम क्षेत्र है, जैसे खेती कर्मों करके पकती है, और काटी जाती है, फिर समय पर बोई जाती है, और काटी जाती है, इसीतरह कर्मों के करने से शरीर मिलता है, पकता है, फिर नष्ट होजाता है, बार बार उत्पन्न होता, और नाश होताही चलाजाता है, और जैसे खेत में मम अभिमान होताहै, वैसे ही इस शरीर में भी मम अभिमान होता है, इसवास्ते इसको क्षेत्र कहा है, जो इस क्षेत्ररूपी शरीरका जाननेवाला है, और जो इसके अन्तर चेतन आत्मा है उसका नाम क्षेत्रज्ञ है ॥ १ ॥

मूलम्।

क्षेत्रज्ञञ्चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम २

पदच्छेदः।

क्षेत्रज्ञम्, च, अपि, माम्, विद्धि, सर्वक्षेत्रेषु, भारत, क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः, ज्ञानम्, यत्, तत्, ज्ञानम्, मतम्, मम ॥

अन्वयः शब्दार्थ

भारत=हे भरतवंशी, अर्जुन !
सर्वक्षेत्रेषु=सब क्षेत्रों बिषे
माम्=मुझको
अपि=ही
क्षेत्रज्ञम्=क्षेत्रज्ञ
विद्धि=जान तू
च=और

अन्वयः शब्दार्थ

यत्=जो
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः=क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का
ज्ञानम्=ज्ञान है
तत्=वह
ज्ञानम्=ज्ञान
मम=मेरा
मतम्=मानागया है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि ब्रह्मासे आदि लेकर स्थावर पर्यन्त जितने क्षेत्र हैं, यानी शरीर हैं, उन सबमें चेतन रूप क्षेत्रज्ञ एकही है, वह चेतनरूप क्षेत्रज्ञ कैसा है, स्वप्रकाश है, द्वैत से रहित है, व्यापक है, उसी प्रकाश क्षेत्रज्ञ में अविद्या ने संपूर्ण कर्ता आदि धर्म्मवाले अन्तःकरणादि को भ्रम करके आरोपित कर रक्खा है, उस भ्रमको त्याग करके सबमें मुझ एकको ही क्षेत्रज्ञ आत्मारूप करके तू जान, क्योंकि मैं ही सबके अन्तर आत्मा अचलरूप करके स्थित हूं, और माया करके

मुझ और क्षेत्रज्ञ में भेद कल्पित है, सो आत्मविद्या करके उस भेदको और भेदके कार्यको त्याग करके निर्विकार सदा मुक्त स्वभाव, चिद्घन, अद्वैतरूप मुझ कोही तू जान, क्योंकि कल्पित बन्ध क्षेत्रज्ञ में है, वास्तव में नहीं है, वास्तव से वह भी नित्यमुक्त स्वभाववालाही है, जैसे मायाने मुझमें सर्वज्ञत्वादिक धर्म कल्पना किये हैं, वैसेही क्षेत्रज्ञमें अल्पज्ञत्वादिक धर्म भी मायानेही कल्पना कियेहैं, वास्तव से वे दोनों नहीं हैं, उन दोनों धर्मोंका कूटस्थ आत्मा के साथ वास्तव से कोई सम्बन्ध भी नहींहै, इसी से जीवगत जो बन्ध है, वह ईश्वरमें नहीं है, और सर्वज्ञत्वादिक धर्म जीवमें नहीं हैं, इसी हेतु से दोनों धर्मोंका संकर भी नहीं होता है, और जीव ईश्वरका सोपाधिक भेद है, वास्तव से भेद नहीं है ॥ २ ॥

मूलम्।

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक् च यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ३

पदच्छेदः।

तत्, क्षेत्रम्, यत्, च, यादृक्, च, यद्विकारि, यतः, च, यत्, सः, च, यः, यत्प्रभावः, च, तत्, समासेन, मे, शृणु ॥

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
यतः=जिसकारण
यत्=जो
तत्=वह
क्षेत्रम्=स्थूलशरीर
यादृक्=इच्छादि धर्मवाला
च=और
यद्विकारि=इन्द्रियादि विकारवाला है
च=और
यतः=जिसकारण
यत्=जो

अन्वयः शब्दार्थ

सः=वह क्षेत्रज्ञ है
च=और
यः=जो
यत्प्रभावः=अचिन्त्य ऐश्वर्य योग शक्ति आदि प्रभाव करके युक्त है
तत्=उसको
समासेन=संक्षेप से
मे=मुझ से
शृणु=सुन तू

भावार्थ।

संक्षेप से भगवान् ने अखण्डार्थ को कहा अब विस्तार से उसी अर्थ को कहते हैं ॥ तत्क्षेत्रं ॥ हस्तपादादिकों का समुदायरूप जो शरीर है, इसी का नाम क्षेत्र है, यह स्वरूप से जड़ है, दृश्य है, और परिच्छिन्न है, इच्छाआदि धर्मोंवाला है, विकारों करके युक्त है, कारण से उत्पन्न हुआ कार्यरूप है, और क्षेत्रज्ञ वह है, जो स्वरूप करके चेतन और आनन्द है, और जिसमें उपाधि कृत्य शक्ति है ॥ शङ्का ॥ यह

प्रसिद्ध है कि जिसका कोई पहिले विस्तार करके निरूपण करता है, उसीको फिर वह संक्षेप से निरूपण करता है, सो पहिले इसका विस्तार करके किसने निरूपण किया है ॥ समाधान ॥ यह आगेवाले वाक्य से सिद्ध होगा ॥ ३ ॥

मूलम् ।

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ४

पदच्छेदः ।

ऋषिभिः, बहुधा, गीतम्, छन्दोभिः, विविधैः, पृथक्, ब्रह्मसूत्रपदैः, च, एव, हेतुमद्भिः, विनिश्चितैः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

ऋषिभिः=ऋषियों करके
बहुधा=बहुत प्रकारसे
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोःज्ञानम्=क्षेत्र क्षेत्रज्ञ का ज्ञान
गीतम्=कथन किया गया है
विविधैः=बहुत प्रकार के
छन्दोभिः=वेदों करके
पृथक्=अलग अलग
+गीतम्=गाया गया है

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
हेतुमद्भिः=हेतुवाले
विनिश्चितैः=निश्चय किये हुये
ब्रह्मसूत्रपदैः=ब्रह्मसूत्र पदों करके यानी वेदान्तशास्त्र करके
एव=भी
+गीतम्=कहागया है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! संपूर्ण धर्मों के जाननेवाले वसिष्ठादिकों ने बहुत प्रकार से चित्त की शुद्धि के लिये मोक्ष के साधनों में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ कथन किया है, और ऋगादि वेद के मन्त्रों ने भी बहुत प्रकार से इनका पृथक् पृथक् कथन किया है, और ब्रह्मसूत्रों ने यानी वेदान्तसूत्रों ने और श्रुतिवाक्य ने भी इनका कथन किया है, और निश्चय की उत्पादक जो युक्तियां हैं उन्होंने भी इनका कथन किया है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ५

पदच्छेदः ।

महाभूतानि, अहंकारः, बुद्धिः, अव्यक्तम्, एव, च, इन्द्रियाणि, दश, एकम्, च, पञ्च, च, इन्द्रियगोचराः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
महाभूतानि=	पञ्चतन्मात्रा यानी शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध
च=	और
अहंकारः=	अहंकार
बुद्धिः=	बुद्धि निश्चय करनेवाली अन्तःकरण की वृत्ति

अव्यक्तम्=मूलाज्ञान या प्रकृति
च=और
दशइन्द्रियाणि=दशोंइन्द्रियां यानी पांच ज्ञान इन्द्रिय और पांचकर्म इन्द्रिय

एकम् एव=एक मन
च=और
पञ्च=पांच
इन्द्रियगोचराः=इन्द्रियों के विषय यानी आकाशादि पञ्चमहाभूत

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ! अव्यक्त यानी प्रधान महत्तत्त्व यानी बुद्धि महाभूत यानी अहंकार पञ्चतन्मात्रा पांच ज्ञानेन्द्रिय पांच कर्मेन्द्रिय एक मन और पञ्चमहाभूत ये सब मिलकर चौबीस तत्त्व कहेजाते हैं, इन्हीं का नामही क्षेत्र है, सांख्य के मतसे यह प्रक्रिया भगवान् ने कही है, अपने मतसे पूर्व आठ प्रकार के भेदवाली प्रकृति कही है, उसीका नाम माया, और ईश्वरी शक्ति भी है, सृष्टिके आदिकाल में मायाविशिष्ट ईश्वर में जो इच्छा होती है, उसीका नाम बुद्धि है, फिर इच्छाके अनन्तर मैं एकसे बहुत होजाऊं, ऐसा संकल्प ईश्वर में होता है, तत्पश्चात् आकाशादि पांच महाभूत उत्पन्न होते हैं, इसरीति से अपने मत से भगवान् ने आठ प्रकार के भेदवाली प्रकृति पूर्व कही है॥ ५॥

मूलम्।

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ६

पदच्छेदः।

इच्छा, द्वेषः, सुखम्, दुःखम्, संघातः, चेतना, धृतिः, एतत्, क्षेत्रम्, समासेन, सविकारम्, उदाहृतम्॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

इच्छा=इस लोक वा परलोक के पदार्थों की चाह
द्वेषः=द्वेष
सुखम्=अनुकूलता
दुःखम्=प्रतिकूलता
संघातः=स्थूल शरीर

अन्वयः **शब्दार्थ**

चेतना=ज्ञानात्मिका वृत्ति
धृतिः=धैर्य
एतत्=यह
क्षेत्रम्=क्षेत्र
सविकारम्=विकारवान्
समासेन=संक्षेप करके
उदाहृतम्=कहागया है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! कणाद जो नैयायिक है, उसने इच्छा आदिक आत्मा के धर्म कहे हैं, सो सब क्षेत्रके धर्महैं, आत्माके नहीं हैं, और सुख और सुखके साधनों में जो चित्तकी वृत्ति होती है, उसीका नाम इच्छाहै, और उसी इच्छाका नाम काम, और राग भी है, और दुःख और दुःखके साधनों में

जो चित्तकी ऐसी वृत्ति होती है कि मुझको दुःख कदापि न होवे, इसीका नाम द्वेष है, उसीका नाम क्रोध, और ईर्षा भी है, सब पुरुषों को जो अनुकूल होता है, उसीका नाम सुख है, और जो सबको प्रतिकूल होता है, उसीका नाम दुःख है, और पांचभूतों का विकाररूप इन्द्रियों के सहित जो संघातरूपी स्थूल शरीर है, उसीका नाम क्षेत्र है, और वेदान्त प्रमाणसे जन्य जो वृत्ति है, उसका नाम चेतनावृत्ति है, और देह इन्द्रियादिकों के धारण करनेवाली जो वृत्तिहै, उसका नाम धृति है, अन्तःकरण और उसके धर्मोंका नाम भी क्षेत्र है, क्योंकि ये भी सब जन्म नाशादि विकारों करके युक्त हैं, महाभूतों से लेकर धृतिपर्यन्त ये सब विकार कहेजाते हैं, इसीवास्ते इन सबका नाम क्षेत्रहै, और क्षेत्रज्ञ इनसे जुदा है, और निर्विकार है, और इस क्षेत्रका साक्षी है, और इससे परे है, इस रीति से भगवान् ने क्षेत्र, और क्षेत्रज्ञके स्वरूपको दिखायाहै ६॥

मूलम्।

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ७

पदच्छेदः।

अमानित्वम्, अदम्भित्वम्, अहिंसा, क्षान्तिः, आर्जवम्, आचार्योपासनम्, शौचम्, स्थैर्यम्, आत्मविनिग्रहः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अमानित्वम्	मानरहित	आचार्योपासनम्	गुरुकी सेवा
अदम्भित्वम्	दम्भरहित	शौचम्	शुद्धता
अहिंसा	हिंसारहित	स्थैर्यम्	चित्तकीस्थिति
क्षान्तिः	क्षमा	आत्मविनिग्रहः	मनका रोकना
आर्जवम्	नम्रता		

(इस श्लोकका सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ।

भगवान् अब ज्ञानके साधनों को दिखाते हैं, और कहते हैं कि अपने में कोई गुण हो वा न हो अपनी प्रतिष्ठा के लिये अपनीही बड़ाई करनी इसीका नाम मानित्व है, यानी अपने को मानवाला जानना, और मानसे रहित होनेका नाम अमानित्व है १ संसार में पूजा कराने के लिये पाखण्ड करके अपने को धर्मध्वज करानेका नाम दम्भ है, दम्भ से रहित होनेका नाम अदम्भ है २ मन, वाणी, शरीर करके जीवोंको पीड़ा देने का नाम हिंसा है, उससे रहित होने का नाम अहिंसा है ३ और दूसरों करके कियेहुये तिरस्कार के सहन करने का नाम क्षान्ति है ४ कुटिल स्वभावसे रहित होनेका नाम आर्जव है ५ जो अपने लोभसे विना दूसरों को सत्यका उपदेश करता है,

उसीका नाम आचार्य है ६ मृत्तिका जलआदि करके बाह्य शरीर की शुद्धिका नाम बाह्यशौच है ७ शत्रुभावना करके दूसरों के साथ द्वेष न करने का नाम स्थैर्यता है ८ और जो देह इन्द्रियादिकों की स्वाभाविकी बाह्यवृत्ति है, उसको रोक करके मोक्षमार्ग में अन्तर्मुख वृत्ति करने का नाम आत्मविनिग्रह है ६ ॥ ७ ॥

मूलम् ।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ८

पदच्छेदः ।

इन्द्रियार्थेषु, वैराग्यम्, अनहंकारः, एव, च, जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

इन्द्रियार्थेषु=इन्द्रियों के विषयों में

एव=निश्चय करके

वैराग्यम्=वैराग्यता

अनहंकारः=अहंकार न करना

अन्वयः शब्दार्थ

च=और

जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्=जन्म मृत्यु जरा रोग दुःख और दोषों का देखना

(इस श्लोकका सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ।

इस लोक और परलोकके भोगों में इच्छाके अभाव का नाम वैराग्य है १० हम उत्तम हैं, पूज्य हैं, बुद्धिमान् हैं, इसीका नाम अहंकार है, इससे रहित होने का नाम अनहंकृति है ११ गर्भ में प्रवेश करके जो योनि द्वारा बाहर आना है, इसका नाम जन्म है १२ और प्राणों के वियोगका नाम मरण है १३ शरीर इन्द्रियादिकों की शक्तिके निरोधका नाम जरा है १४ और ज्वरादि रोगों का नाम व्याधि है १५ और आध्यात्मिकादिक दुःखों के देखने का नाम दोषानुदर्शन है १६ ॥ ८ ॥

मूलम्।

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यञ्च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ९

पदच्छेदः।

असक्तिः, अनभिष्वङ्गः, पुत्रदारगृहादिषु, नित्यम्, च, समचित्तत्वम्, इष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
पुत्रदारगृहादिषु	पुत्र स्त्री और घर आदिकों में	अनभिष्वङ्गः	पुत्र आदिकोंके सुख और दुःख में अपनेको सुखी और दुःखी न मानना
असक्तिः	न फँसारहना		
च	और		

इष्टानिष्टोपपत्तिषु	इष्ट और अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति में	नित्यम्	निरन्तर
		समचित्तत्वम्	तुल्य चित्त रहना

भावार्थ।

हे पार्थ ! प्रीतिमात्रका नाम सक्ति अर्थात् विषयों में जो प्रीति है उसका नाम सक्ति है, उससे रहित होनेका नाम असक्ति है १७ पुत्र, भार्या आदिकों में तादात्म्य अध्यासका नाम अभिष्वङ्ग है, उससे रहित होनेका नाम अनभिष्वङ्ग है १८ और इष्ट, अनिष्ट की प्राप्ति में चित्तको एकरस रहने का नाम समचित्तता है १९ ॥ ९ ॥

मूलम्।

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि १०

पदच्छेदः।

मयि, च, अनन्ययोगेन, भक्तिः, अव्यभिचारिणी, विविक्तदेशसेवित्वम्, अरतिः, जनसंसदि ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
च	और	अव्यभिचारिणी	दूसरी तरफ़ न जानेवाली
मयि	मेरे में	भक्तिः	भक्ति
अनन्ययोगेन	अभिन्न योग करके		

विविक्तदेशसेवित्वम्	एकान्त देश का सेवन करना	जनसंसदि	मनुष्यों के समूह में
		अरतिः	प्रीति न रखना

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोकसे है)

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे कौन्तेय ! मुझ वासुदेव बिषे अनन्य भक्ति होनी, व्यभिचार से रहित रहना, एकान्त स्थानमेंही सदैव रहना, और भोगी और विषयी जो पुरुष हैं उनके संगका सदैव त्याग करना २०॥१०॥

मूलम् ।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ११

पदच्छेदः ।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम्, तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्, एतत्, ज्ञानम्, इति, प्रोक्तम्, अज्ञानम्, यत्, अतः, अन्यथा ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम्	वेदान्तशास्त्र का नित्य विचार करना	तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्	तत्त्व ज्ञान के अर्थ को देखना यानी जानना

एतत्=यह सब
ज्ञानम् इति=ज्ञान करके
प्रोक्तम्=कहागया है
यत्=जो
अतः=इससे
अन्यथा=और है
+ तत्=वह
अज्ञानम्=अज्ञान है

भावार्थ।

आत्मा विषयक जो ज्ञान है, उसीका नाम आत्मज्ञान है, उसीमें निष्ठावाला होना, और वेदान्तवाक्यजन्य जो तत्त्वज्ञान है ॥ अहं ब्रह्मास्मि ॥ मैंही ब्रह्मरूप हूं, ऐसा जो आत्माका साक्षात्कार करनेवाला ज्ञान है, वही अज्ञान और अज्ञानका कार्य जो भ्रान्ति ज्ञान है, उसका नाशक है, और वही ज्ञान अमानित्वादि साधनोंका फलरूप भी है, अज्ञान और अज्ञान के कार्योंका नाश होजानाही उसका फल है, और चिद्रूप परमानन्द की प्राप्ति का जो विचार करना है, वह भी आत्मज्ञान का साधन है, ये जो बीस आत्मज्ञान के साधन कहे हैं, ज्ञान के अर्थ होने से इनका नाम भी ज्ञानही है, और जो इनसे विपरीत मानित्वादिक हैं, उनका नाम अज्ञान है, अज्ञान को त्याग करके ज्ञानका ग्रहण करना चाहिये ॥ ११ ॥

मूलम्।

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते १२

पदच्छेदः ।

ज्ञेयम्, यत्, तत्, प्रवक्ष्यामि, यत्, ज्ञात्वा, अमृतम्, अश्नुते, अनादिमत, परम्, ब्रह्म, न, सत्, तत्, न, असत्, उच्यते ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

यत्=जो
ज्ञेयम्=जाननेयोग्य है
तत्=उसको
प्रवक्ष्यामि=कहूंगा मैं
यत्=जिसको
ज्ञात्वा=जानकर
+मनुष्यः=मनुष्य
अमृतम्=अमरभाव को
अश्नुते=प्राप्त होता है
अनादिमत्=अनादिवाला

अन्वयः **शब्दार्थ**

परम्=बड़े से बड़ा
ब्रह्म=ब्रह्म है
तत्=वह
न=न
सत्=स्थूल
+च=और
न=न
असत्=सूक्ष्म
उच्यते=कहाजाता है

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ पूर्वोक्त ज्ञान करके ज्ञेय वस्तु क्या है ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! जो वस्तु मुमुक्षुवों को ज्ञेय है, यानी अवश्यही जानने योग्य है, उसको मैं तेरे प्रति कहूंगा, जिसको जानकर पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है, हे अर्जुन ! वही अनादि परंब्रह्म है, न वह स्थूल है, न वह सूक्ष्म है, स्थूल जो

पृथिवी आदिक हैं, और सूक्ष्म जो आकाशादिक हैं, उनसे वह परे है ॥ १२ ॥

मूलम् ।

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति १३

पदच्छेदः ।

सर्वतः, पाणिपादम्, तत्, सर्वतः, अक्षिशिरोमुखम्, सर्वतः, श्रुतिमत्, लोके, सर्वम्, आवृत्य, तिष्ठति ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

सर्वतः=चारों तरफ़
पाणिपादम्=हाथ पैर हैं जिसके
सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्=सब तरफ़ हैं आंख शिर और मुख जिसके
सर्वतः=सब तरफ़

अन्वयः **शब्दार्थ**

श्रुतिमत्=कर्ण हैं जिसके
+ इति=ऐसा
तत्=वह ब्रह्म
लोके=लोकमें
सर्वम्=सबको
आवृत्य=ढांक करके
तिष्ठति=स्थित है

भावार्थ।

प्रश्न ॥ वह ब्रह्म कैसा है ॥ उत्तर ॥ जिसके सर्व ओर हाथ हैं, और सर्वओर जिसके पांव हैं, और सर्वओर जिसके नेत्र हैं, और सर्वओर जिसके शिर हैं,

और सर्वओर जिसके मुख हैं, और सर्वओर जिसके कर्ण हैं, और जो सबको आच्छादित करके स्थित है, और जो अपनी सत्ता स्फूर्ति करके सबको चलायमान करता हुआ भी आप अचल है, अर्थात् क्रियाआदिक विकारों को नहीं प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

मूलम् ।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च १४

पदच्छेदः ।

सर्वेन्द्रियगुणाभासम्, सर्वेन्द्रियविवर्जितम्, असक्तम्, सर्वभृत्, च, एव, निर्गुणम्, गुणभोक्तृ, च ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

+ तत्=वह ब्रह्म
सर्वेन्द्रियगुणाभासम्=सब इन्द्रियों के सम्बन्ध से विषयाकार प्रतीत होता है
+ परन्तु=परन्तु
सर्वेन्द्रियविवर्जितम्=सब इन्द्रियों से पृथक् है

अन्वयः **शब्दार्थ**

असक्तम्=असङ्ग है
च=और
सर्वभृत्=सबका पालन करनेवाला है
निर्गुणंएव=गुणरहित भी है
च=परन्तु
गुणभोक्तृ=गुणों का भोगनेवाला है

भावार्थ।

जो अन्तर बाहर संपूर्ण इन्द्रियों के गुणों और उनके संकल्पादिकों का प्रकाशक है, और आप संपूर्ण इन्द्रियों से रहित है, और जो सबके साथ सम्बन्ध से रहित होताहुआ सबको धारण कररहा है, और जो माया उपाधि करके सबका पालन पोषण कररहा है, वह वास्तव से निर्गुण है, परन्तु माया करके संपूर्ण गुणोंका भोक्ता है ॥ १४ ॥

मूलम्।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् १५

पदच्छेदः।

बहिः, अन्तः, च, भूतानाम्, अचरम्, चरम्, एव, च, सूक्ष्मत्वात्, तत्, अविज्ञेयम्, दूरस्थम्, च, अन्तिके, च, तत् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

भूतानाम्=प्राणियों के
अन्तः=अन्दर है
च=और
बहिः=बाहर है
च=और
अचरम्=स्थिर है

अन्वयः **शब्दार्थ**

च=और
चरम्एव=चरभी है
सूक्ष्मत्वात्=सूक्ष्म होने से
तत्=वह
अविज्ञेयम्=जानने योग्य नहीं है

तत्=वह
दूरस्थम्=दूर है
च=और
अन्तिके=समीप भी है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! संपूर्ण भूत और भतों के कार्य जो चर अचर हैं, ये सब कल्पित हैं, इनके जो अन्तर और बाहर प्राप्त होरहा है, वह अति सूक्ष्म होनेसे अविज्ञेय है, अर्थात् किसी इन्द्रिय करके जाना नहीं जाता है, इसीवास्ते अज्ञानियों से अतिदूर है, क्योंकि उनको ऐसा निश्चय होरहा है कि, परमेश्वर जगन्नाथ में है, बद्रीनारायण में है, इसीवास्ते उसको दूर जानकर पहाड़ों में पड़े भटकते हैं, और जो ज्ञानी हैं उनके वह ईश्वर अतिसमीप है, क्योंकि वे उसको अपना आत्मा जानते हैं, अपना आत्मा किसीको भी दूर नहीं है ॥ १५ ॥

मूलम् ।

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च १६

पदच्छेदः ।

अविभक्तम्, च, भूतेषु, विभक्तम्, इव, च, स्थितम्, भूतभर्तृ, च, तत, ज्ञेयम, ग्रसिष्णु, प्रभविष्णु, च ॥

अन्वयः शब्दार्थ
तत्=वह ब्रह्म

अन्वयः शब्दार्थ
ज्ञेयम्=जानने योग्य है

अविभक्तम्=विभागरहित है
च=और
भूतेषु=भूतों में
विभक्तम्=विभाग किया हुआ
इव=सा
स्थितम्=स्थित है
च=और
+ तत्=वह

भूतभर्तृ=भूतों का पालनकरने वाला है
च=और
ग्रसिष्णु=भक्षण करने वाला है
च=और
प्रभविष्णु=उत्पत्ति करने वाला है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ! जैसे आकाश सब घट मठादिकों में विभाग से रहित भी है, परन्तु घट मठादिक उपाधियों करके विभागवाला प्रतीत होता है, वैसेही वह ब्रह्मचेतन भी संपूर्ण भूतों में विभाग से रहित भी है, परन्तु विभागवालों की तरह उन उपाधियों करके प्रतीत होता है, अर्थात् प्रति शरीर भिन्न भिन्न की तरह प्रतीत होता है ॥ प्रश्न ॥ क्षेत्रज्ञ संपूर्ण देहों में एकही व्यापक है, परन्तु ब्रह्म जो जगत् के जन्मादिकों का कारण है, वह उससे जुदा है, ऐसा क्यों नहीं मानते हैं ॥ उत्तर ॥ ब्रह्मचेतनही क्षेत्रज्ञरूप करके जानने के योग्य है, वही ब्रह्म जगत् की स्थितिकाल में ज़गत्का पोषण करता है, और प्रलयकाल में वही सबको ग्रास करलेता है, यानी

संपूर्ण जगत् को अपने में लय कर लेता है, और फिर सृष्टिकाल में सबको उत्पन्न करदेता है, और जैसे कल्पित सर्पका आधार रज्जु है, वैसेही कल्पित जगत् का आधार ब्रह्म है ॥ १६ ॥

मूलम्।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् १७

पदच्छेदः।

ज्योतिषाम्, अपि, तत्, ज्योतिः, तमसः, परम्, उच्यते, ज्ञानम्, ज्ञेयम्, ज्ञानगम्यम्, हृदि, सर्वस्य, विष्ठितम् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

तत्=वह ब्रह्म
ज्योतिषाम्=ज्योतियों का
अपि=भी
ज्योतिः=ज्योति
तमसः=अज्ञान से
परम्=परे
उच्यते=कहाजाता है
ज्ञानम्=ज्ञानस्वरूप है जो

अन्वयः **शब्दार्थ**

ज्ञेयम्=जानने योग्य है जो
ज्ञानगम्यम्=ज्ञान करके जानने योग्य है जो ऐसा
+ तत्=वह ब्रह्म
सर्वस्य=सबके
हृदि=हृदयबिषे
विष्ठितम्=स्थित है

भावार्थ।

प्रश्न ॥ यदि सर्वत्र विद्यमान होनेपर भी उस

ब्रह्म की प्रतीति नहीं होती है, तब उसको तमरूप आप क्यों नहीं मानते हो ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! जितने बाह्य सूर्यादिक प्रकाशवाले हैं, और जितने अन्तर हृदय के बुद्धिआदिक प्रकाश वाले हैं, ये सब उसी ब्रह्मके प्रकाश से प्रकाशमान हैं, अर्थात् सबका वह प्रकाशक है, उसीकी सत्ता करके ये सब प्रकाशवाले होरहे हैं, फिर वह अज्ञान रूपी तमके सम्बन्ध से भी रहित है ॥ प्रश्न ॥ सब लोग उसको ऐसा प्रकाशक क्यों नहीं जानते हैं ॥ उत्तर ॥ अमानित्वादिक साधनों करकेही वह जाना जाता है, सो साधन सब में नहीं हैं ॥ प्रश्न ॥ यदि साधनों करके वह जाना जाता है, तब वह किसी दूसरे देश में स्थित होगा ॥ उत्तर ॥ नहीं, किन्तु प्राणीमात्र के हृदय में वह स्थित है, सामान्य रूप करके वह सर्वत्र व्यापक है, परन्तु विशेष रूप करके प्राणियों के हृदय में ही स्थित है, वास्तव से वही अपना आत्मा है, भ्रान्ति करके मूर्खों को दूर प्रतीत होता है, और भ्रान्ति के दूर होने से वही अतिसमीप प्रतीत होता है ॥ १७ ॥

मूलम्।

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते १८

पदच्छेदः ।

इति, क्षेत्रम्, तथा, ज्ञानम्, ज्ञेयम्, च, उक्तम्, समासतः, मद्भक्तः, एतत्, विज्ञाय, मद्भावाय, उपपद्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

इति=इस प्रकार
क्षेत्रम्=क्षेत्र
तथा=और
ज्ञानम्=ज्ञान
च=और
ज्ञेयम्=ज्ञेय
समासतः=संक्षेप से

अन्वयः शब्दार्थ

उक्तम्=कहागया है
मद्भक्तः=मेरा भक्त
एतत्=इसको
विज्ञाय=जान करके
मद्भावाय=मेरे भाव को
उपपद्यते=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! महाभूतों से लेकर धृति पर्यन्त यह क्षेत्रका स्वरूप मैंने तुझ से कहा है, और ज्ञानके विंशति साधनों करके ज्ञानका स्वरूप तेरेप्रति कहा है, और ज्ञेय जो ब्रह्म है, उसका भी स्वरूप मैंने तेरे प्रति कथन किया है, सो इतनाही संपूर्ण वेदका अर्थ है, अब आत्मज्ञानका जो अधिकारी है, उसको कहते हैं, हे पार्थ ! जो मेरे शरण को प्राप्त हुआ है, और अन्य के शरणको नहीं गया है, वही आत्मज्ञानको प्राप्त होकर मोक्षको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

मूलम्।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् १९

पदच्छेदः।

प्रकृतिम्, पुरुषम्, च, एव, विद्धि, अनादी, उभौ, अपि, विकारान्, च, गुणान्, च, एव, विद्धि, प्रकृतिसम्भवान्॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

प्रकृतिम्=प्रकृति
च=और
पुरुषम्=पुरुष
उभौ=दोनोंको
एव=निश्चय करके
अनादी=अनादि
विद्धि=जान तू
च=और

अन्वयः **शब्दार्थ**

विकारान्=बुद्धि देह इन्द्रियादि विकार
च=और
गुणान्=सुखदुःखादिको
अपि=भी
प्रकृतिसम्भवान्=प्रकृति से पैदा हुआ
एव=निश्चय करके
विद्धि=जान तू

भावार्थ।

पूर्व जो सप्तम अध्याय में भगवान्ने पर अपररूप करके दो प्रकार की प्रकृति कही है, उसी को अब

अनादि रूप करके कथन करते हैं, हे कमलनयन ! क्षेत्ररूप करके जो अपरा प्रकृति है, और क्षेत्रज्ञ रूप करके जो जीव है, सो दोनोंको तुम अनादि जानो, इन दोनों का कोई भी आदि कारण विद्यमान नहीं है, क्योंकि, प्रवाहरूप करके अनादि जगत्का कारण प्रकृति भी अनादि मानी जाती है, और पञ्चमहाभूत, एकादश इन्द्रिय ये जितने विकार हैं, और सुखादिक जो गुण हैं, इन सबकी उत्पत्ति प्रकृति से ही जानो ॥ १९ ॥

मूलम् ।

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते २०

पदच्छेदः ।

कार्यकारणकर्तृत्वे, हेतुः, प्रकृतिः, उच्यते, पुरुषः, सुखदुःखानाम्, भोक्तृत्वे, हेतुः, उच्यते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
कार्यकारणकर्तृत्वे	कार्य कारण के उत्पन्न करने म
हेतुः	हेतु
प्रकृतिः	प्रकृति
उच्यते	कहीजाती है
सुखदुःखानाम्	सुख और दुःखों के
भोक्तृत्वे	भोगने में
हेतुः	हेतु
पुरुषः	पुरुष यानी जीव
उच्यते	कहाजाता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ! कार्य जो शरीरादिक हैं, और करण जो इन्द्रिय हैं, इन दोनों की उत्पत्ति में प्रकृतिही कारण है, और क्षेत्रज्ञ जो जीवात्मा है, सो सुख दुःखके भोगने में कारण है ॥ २० ॥

मूलम्।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु २१

पदच्छेदः।

पुरुषः, प्रकृतिस्थः, हि, भुङ्क्ते, प्रकृतिजान्, गुणान्, कारणम्, गुणसङ्गः, अस्य, सदसद्योनिजन्मसु ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
प्रकृतिस्थः	प्रकृति में स्थित हुआ
पुरुषः	पुरुष
प्रकृतिजान्	प्रकृति से पैदा हुये
गुणान्	सुख और दुःखों को
हि	निःसन्देह
भुङ्क्ते	भोक्ता है
+ च	और
अस्य	इस पुरुष के
सदसद्योनिजन्मसु	अच्छे और बुरे योनियों के जन्मोंबिषे
गुणसङ्गः	गुणसङ्ग ही यानी प्रकृति के कार्य दुःख सुखरूपी गुणों सेआसक्तिही
कारणम्	कारण है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे कौन्तेय ! पुरुष माया के साथ तादात्म्याध्यास को प्राप्त होकर माया के गुण सुख दुःखादिकों का भोक्ता होता है, वास्तव से वह अभोक्ता है, वह मायाके सम्बन्ध से अपने को ऐसा मानता है कि मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं, मैं पण्डित हूं, मैं मूढ़ हूं, और मायाका सम्बन्धही इस पुरुषके देवतिर्यक् मनुष्यादि योनियों की प्राप्तिका कारण है, जिस पुरुषका मायाके साथ सम्बन्ध नष्ट होजाता है, वही मुक्त होजाता है ॥ २१ ॥

मूलम् ।

उपद्रष्टाऽनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः २२

पदच्छेदः ।

उपद्रष्टा, अनुमन्ता, च, भर्ता, भोक्ता, महेश्वरः, परमात्मा, इति, च, अपि, उक्तः, देहे, अस्मिन्, पुरुषः, परः॥

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
अस्मिन्=इस
देहे=देहमें
परःपुरुषः=उत्तम पुरुष
उपद्रष्टा=साक्षी

अन्वयः शब्दार्थ

अनुमन्ता=अनुमान करने वाला
भर्त्ता=पालन करने वाला
च=और

भोक्ता=भोगनेवाला
महेश्वरः=महेश्वर
परमात्मा=परमात्मा
इति=करके
अपि=भी
उक्तः=कहागया है

भावार्थ।

पूर्व भगवान् ने कहाथा कि, प्रकृति के सम्बन्ध सेही पुरुषको संसार होता है, और सम्बन्ध के छूट जाने से पुरुष मुक्त होजाता है, जिस पुरुष को प्रकृति के सम्बन्ध से संसार होता है, उसका वास्तव स्वरूप कैसा है, सो कहते हैं, हे मित्र ! अविद्याका कार्य जो यह स्थूल देह है, इसमें वर्तमान जो जीवात्मा है, सो देह से भिन्न है, इसी से इसका वास्तव स्वरूप असंसारी है, इसी वास्ते यह आत्मा उपद्रष्टा है, यानी संपूर्ण देह के व्यापारों से रहित है, जैसे यज्ञ कर्म में यजमानादिक सब अपने अपने व्यापारों को करते हैं, परन्तु ऋत्विग् व्यापार से रहित तटस्थ होकर सबके व्यापारों को देखता है, यदि वह आप यज्ञविद्या में निपुण भी होता है, तथापि यजमानादिकों के कर्मों के गुण दोषों को देखताही रहता है, आप कुछ भी नहीं करता है, वैसेही देह इन्द्रियादिकों के व्यापारों के होनेपर भी आप आत्मा व्यापार से रहितही रहता है, और उनके समीप रहकर उनके व्यापारों का द्रष्टाभी है, पर कर्ता नहीं है, किन्तु साक्षीरूप विकार से रहित होकर स्थित रहता है और बाह्य

वस्तुवों के द्रष्टा जो मन बुद्धि चक्षुआदि हैं, उनका भी द्रष्टा है, और देहादिकों के व्यापारों के होनेपर भी जो उनको व्यापारों से हटाता नहीं है उसी का नाम अनुमन्ता है, और जो देहादिक संघातको सत्ता देकर उनका धारण कररहा है उसी का नाम भर्ता है, और जो वास्तव से निर्विकार है, पर सबका अधिष्ठान होने से अपनी चेतनता करके संपूर्ण बुद्धिकी वृत्तियों को प्रकाशता है उसी का नाम भोक्ता है, और सर्वका आत्मा होने से और स्वतन्त्र होने से वही महेश्वर भी है, और अविद्या करके कल्पित देहादिकों के अन्तर जो बुद्धि आदिक हैं, उनके भी अन्तर होने से उसका नाम परमात्मा भी है, वह भ्रान्ति करके संसार को प्राप्त हुआ है, वास्तव से वह मेरा स्वरूपही है, इसीवास्ते इस देह में वह परपुरुष भी कहाजाता है ॥ २२ ॥

मूलम् ।

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिञ्च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते २३

पदच्छेदः ।

यः, एवम्, वेत्ति, पुरुषम्, प्रकृतिम्, च, गुणैः, सह, सर्वथा, वर्त्तमानः, अपि, न, सः, भूयः, अभिजायते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यः=जो
पुरुषम्=पुरुषको
च=और
प्रकृतिम्=प्रकृति को
एवम्=इसप्रकार
वेत्ति=जानता है
सः=वह
गुणैःसह=गुणों के साथ

अन्वयः शब्दार्थ

सर्वथा=सब प्रकार से
वर्तमानः=बर्तता हुआ
अपि=भी
भूयः=फिर
न=नहीं
अभिजायते=पैदा होता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि यथोक्त प्रकार करके जो मुमुक्षु पुरुष प्रत्यगात्मा को जानता है, यानी साक्षात्कार करता है, वही मिथ्याभूत बाधित प्रकृति को गुणों के सहित जानता है, वही अपने को ऐसा मानता है कि मेरा अज्ञान और अज्ञान के कार्य सब निवृत्त होगये हैं ऐसा जो ज्ञानी है वह प्रारब्धकर्मको वर्तता हुआ और शास्त्रीय तथा लौकिक कर्मों को उल्लङ्घन करके देह त्यागनेपर अज्ञानियों की तरह संसार को नहीं प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

मूलम्।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे २४

पदच्छेदः।

ध्यानेन, आत्मनि, पश्यन्ति, केचित्, आत्मानम्, आत्मना, अन्ये, सांख्येन, योगेन, कर्मयोगेन, च, अपरे ॥

अन्वयः शब्दार्थ

केचित्=कोई
आत्मानम्=आत्मा को
आत्मना=मन करके
आत्मनि=अपने में
ध्यानेन=ध्यानद्वारा
पश्यन्ति=देखते हैं
च=और
अन्ये=कोई

अन्वयः शब्दार्थ

सांख्येन=सांख्य
योगेन=योगद्वारा
+ च=और
अपरे=कोई
कर्मयोगेन=कर्मयोगद्वारा
+आत्मानम्=आत्मा को
+ पश्यन्ति=देखते हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! संसार में चार प्रकार के पुरुष हैं-उत्तम, मध्यम, मन्द, अतिमन्द। चारों में से उत्तम पुरुषोंके लिये जीव ब्रह्मकी ऐक्यता का जो ज्ञान है, वही मोक्षका साधन है, और जो श्रवण करके मनन में तत्पर होते हैं, वे मध्यम पुरुष हैं, और जो ईश्वरार्पण बुद्धि करके फलाभिलाषा से रहित होकर कर्मों को करके चित्तकी शुद्धिद्वारा आत्मा को देखते हैं, वे मन्द अधिकारी हैं, और अतिमन्द अधिकारी को आगे कहेंगे ॥ २४ ॥

मूलम् ।

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वाऽन्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः २५

पदच्छेदः ।

अन्ये, तु, एवम्, अजानन्तः, श्रुत्वा, अन्येभ्यः, उपासते, ते, अपि, च, अतितरन्ति, एव, मृत्युम्, श्रुतिपरायणाः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
तु	और
ये	जो
अन्ये	कोई
एवम्	इसप्रकार
अजानन्तः	नहीं जानते हुये
अन्येभ्यः	औरों से
श्रुत्वा	सुन करके
उपासते	उपासना करते हैं
ते	वे
अपि	भी
श्रुतिपरायणाः	श्रवणपरायण होतेहुये
मृत्युम्	मृत्यु को यानी संसार को
च एव	निश्चय करके
अतितरन्ति	अत्यन्त तर जाते हैं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जो पूर्वोक्त साधनों को नहीं जानते हैं, और विवेक करके अन्तरात्मा को नहीं देखते हैं, परन्तु श्रद्धायुक्त होकर दयालु आचार्य से श्रवण करके आचार्य के कहे अनुसार

रीति से उपासना करते हैं, वही अतिमन्द अधिकारी हैं, और वे भी मृत्युसंसार से तरजाते हैं ॥ २५ ॥

मूलम् ।

यावत्संजायते किञ्चित् सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् तद्विद्धि भरतर्षभ २६

पदच्छेदः ।

यावत्, संजायते, किञ्चित्, सत्त्वम्, स्थावरजङ्गमम्, क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्, तत्, विद्धि, भरतर्षभ ॥

अन्वयः शब्दार्थ
भरतर्षभ=हे भरत वंशियों में श्रेष्ठ
यावत्=जहांतक
किञ्चित्=जो कुछ
स्थावरजङ्गमम्=अचर चर
सत्त्वम्=पदार्थ

अन्वयः शब्दार्थ
संजायते=पैदा होता है
तत्=उसको
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्=क्षेत्रऔरक्षेत्रज्ञ के संयोग से
+ उत्पन्नम्=उत्पन्न हुआ
विद्धि=जान तू

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे भरतवंश में श्रेष्ठ, अर्जुन! अनादि अनिर्वचनीय अविद्या और उसका कार्य जितना जड़ जगत् है इसीका नाम क्षेत्र है, और उससे भिन्न सच्चिदानन्दरूप शुद्ध निर्गुण ब्रह्मका

नाम क्षेत्रज्ञ है, क्षेत्रज्ञ और क्षेत्रका जो अनादि मायाकृत्य तादात्म्याध्यास है, यानी सत्य मिथ्यारूप जो सम्बन्ध है, उस सम्बन्ध से संपूर्ण स्थावर जङ्गमरूप जगत् उत्पन्न होता है, इसीवास्ते जीव के बन्ध का निमित्त कारण आत्माका अज्ञान है, यह अज्ञान जीव ब्रह्मकी ऐक्यताके ज्ञानसे नष्ट होजाताहै, अतएव ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सब अध्यासरूपी जगत् है ॥२६॥

मूलम्।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति २७

पदच्छेदः।

समम्, सर्वेषु, भूतेषु, तिष्ठन्तम्, परमेश्वरम्, विनश्यत्सु, अविनश्यन्तम्, यः, पश्यति, सः, पश्यति ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

यः=जो
सर्वेषु= सब
भतेषु=प्राणियों के
विनश्यत्सु=नाश होनेपर
परमेश्वरम्=परमेश्वर को
अविनश्यन्तम्=अविनाशी

अन्वयः **शब्दार्थ**

च=और
समम्=बराबर
तिष्ठन्तम्=स्थित हुआ
पश्यति=देखता है
सः=वह
पश्यति=देखता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! ब्रह्मा से लेकर

स्थावर पर्यन्त जितने जीव हैं सब परस्पर विषम स्वभाववाले और परिणाम स्वभाववाले हैं, परन्तु उन सबमें एकही चेतन स्थित है, उस चेतन को जो समरूप से देखता है, और सम्पूर्ण जगत् के बाध होनेपर भी जिसका बाध नहीं होताहै, ऐसा जो देखता है, और जो ज्ञानरूपी चक्षु करके देखता है, और बाह्य चर्मचक्षुओं से नहीं देखता है, वही आत्मा को देखता है, जैसे स्वप्नभ्रम का दर्शी अपने को देखता हुआ भी नहीं देखता है, और जाग्रत् होने पर वही अपने को स्वप्नभ्रम से रहित स्पष्ट देखता है, और जो भ्रान्ति से रज्जु को सर्परूप देखता है वह रज्जुको देखता हुआ भी नहीं देखता है वैसेही अज्ञानी देहादि जड़वर्ग जो आत्मारूप करके स्थित है, उनको जड़रूपसे वही चिदात्मा देखता है, और जो तत्त्वदर्शी है, यानी भ्रान्ति ज्ञान से रहित है वह आत्मा को स्पष्ट देखता है ॥ २७ ॥

मूलम्।

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततोयाति परांगतिम् २८

पदच्छेदः।

समम्, पश्यन्, हि, सर्वत्र, समवस्थितम्, ईश्वरम्, न, हिनास्ति, आत्मना, आत्मानम्, ततः, याति, पराम्, गतिम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

+यः=जो

हि=निश्चयपूर्वक

सर्वत्र=सब जगहों में

ईश्वरम्=ईश्वर को

समवस्थितम्=तुल्य स्थित

+च=और

समम्=समान स्थिर

पश्यन्=देखता हुआ

आत्मना=आत्मा करके

अन्वयः शब्दार्थ

आत्मानम्=आत्मा को

न=नहीं

हिनस्ति=मारता है

+सः=वह

ततः=इसी लिये

पराम्=उत्तम

गतिम्=गतिको यानी मोक्षको

याति=प्राप्त होता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! जो ज्ञानवान् सर्वत्र स्थित ईश्वरको सबमें तुल्यही देखता है, वह अपने करके अपने को नहीं हनन करता है, इसी से वह परमगति यानी मोक्षको ही प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

मूलम्।

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।
यःपश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति २९

पदच्छेदः।

प्रकृत्या, एव, च, कर्माणि, क्रियमाणानि, सर्वशः, यः, पश्यति, तथा, आत्मानम्, अकर्तारम्, सः, पश्यति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

च=और

सर्वशः=सबप्रकार

प्रकृत्या=प्रकृति करके

क्रियमाणानि=कियेजाते हुये

कर्माणि=कर्मों को

यः=जो

पश्यति=देखता है

तथा=और

अन्वयः शब्दार्थ

आत्मानम्=आत्मा को

अकर्तारम्=अकर्ता

पश्यति=देखता है

सः=वही

एव=ही

पश्यति=देखता है यानी वही आत्मदर्शी है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! मन वाणी शरीरादि रूप करके परिणत जो प्रकृति यानी माया है, उस प्रकृति करकेही संपूर्ण कर्म किये जाते हैं, आत्मा कर्मों को नहीं करता है, क्योंकि आत्मा अक्रिय है, इसप्रकार जो प्रकृति को ही कर्ता देखता है, और आत्मा को अकर्ता देखता है वही आत्मा को देखता है, अन्य नहीं ॥ २९ ॥

मूलम्।

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ३०

पदच्छेदः।

यदा, भूतपृथग्भावम्, एकस्थम्, अनुपश्यति, ततः, एव, च, विस्तारम्, ब्रह्म, सम्पद्यते, तदा ॥

अन्वयः शब्दार्थ

च=और

यदा=जिस कालमें

भूतपृथग्भावम्=भूतों के पृथग्भाव को यानी भूतों के भिन्न भिन्न रूपको

अन्वयः शब्दार्थ

एकस्थम्=एक आत्मा बिषे स्थित

अनुपश्याति=देखता है

ततः=उसके पीछे

तदाएव=उसीसमय

विस्तारम्=विस्तृत

ब्रह्म=ब्रह्मको

सम्पद्यते=प्राप्त होता है

भावार्थ।

पूर्ववाले वाक्य करके भगवान् ने क्षेत्रज्ञ में भेददृष्टि को दूर किया है, अब इस वाक्य करके क्षेत्र में भेददृष्टि को दूर करते हैं, और कहते हैं कि, हे पार्थ! जिस काल में ज्ञानवान् संपूर्ण स्थावर जङ्गमरूप जगत् को एकही आत्मा में स्थित हुआ देखता है, यानी अधिष्ठान चेतन से कल्पितका अभेद देखता है, और शास्त्र और आचार्य के उपदेश करके सबको मिथ्या और आत्मा से अभिन्न जानता है, और कल्पित के नाश से अधिष्ठान का नाश नहीं मानता है, उसीकाल वह ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

मूलम्।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्माऽयमव्ययः।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ३१

पदच्छेदः।

अनादित्वात्, निर्गुणत्वात्, परमात्मा, अयम्, अव्ययः, शरीरस्थः, अपि, कौन्तेय, न, करोति, न, लिप्यते॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

अनादित्वात्=अनादि होने से
+ च=और
निर्गुणत्वात्=निगुण होने से
शरीरस्थः=शरीर बिषे स्थित होता हुआ
अपि=भी
अयम्=यह

अन्वयः **शब्दार्थ**

परमात्मा=परमात्मा
अव्ययः=अविनाशी है
कौन्तेय=हे कुन्तीके पुत्र
+ सः=वह
न=न
करोति=करता है
+ च=और
न=न
लिप्यते=कर्म फल से लिप्त होता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! जो विकारी होता है, वह उत्पत्तिवाला होता है पर आत्मा ऐसा नहीं है, वह निर्विकार है, इसीवास्ते अनादि है, और जो

धर्मोंवाला होताहै, वही जन्मादिकवाला भी होता है, पर आत्मा ऐसा नहीं है, इसीवास्ते जन्मादिकों से वह रहित है, और इसी कारण वह नाशसे भी रहित है, शरीरादि कर्मोंको करता भी है, पर उनके फल के साथ लिपायमान नहीं होता है, शरीर में स्थित होता हुआ भी शरीर के धर्मों के साथ लिपायमान नहीं होता है ॥ ३१ ॥

मूलम् ।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ३२

पदच्छेदः ।

यथा, सर्वगतम्, सौक्ष्म्यात्, आकाशम्, न, उपलिप्यते, सर्वत्र, अवस्थितः, देहे, तथा, आत्मा, न, उपलिप्यते ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

यथा=जैसे
सौक्ष्म्यात्=सूक्ष्मता के कारण
सर्वगतम्=सर्वव्यापी
आकाशम्=आकाश
न=नहीं
उपलिप्यते=लिप्त होता है किसी वस्तु से

अन्वयः **शब्दार्थ**

तथा=वैसेही
सर्वत्र=सब जगह
देहे=देहबिषे
अवस्थितः=स्थित होता हुआ भी
आत्मा=आत्मा
न=नहीं
उपलिप्यते=लिप्त होता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे कौन्तेय ! जैसे आकाश सूक्ष्म होने से और सर्वगत होने से किसी के साथ लिपायमान नहीं होताहै, वैसेही सब देहों में स्थित आत्मा भी अतिसूक्ष्म होनेसे देहों के साथ और उनके धर्मों के साथ लिपायमान नहीं होता है ॥ ३२ ॥

मूलम्।

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ३३

पदच्छेदः।

यथा, प्रकाशयति, एकः, कृत्स्नम्, लोकम्, इमम्, रविः, क्षेत्रम्, क्षेत्री, तथा, कृत्स्नम्, प्रकाशयति, भारत ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

भारत=हे भारत
यथा=जैसे
एकः=एक
रविः=सूर्य
इमम्=इस
कृत्स्नम्=सारे
लोकम्=लोकको

अन्वयः **शब्दार्थ**

प्रकाशयति=प्रकाशता है
तथा=वैसेही
क्षेत्री=क्षेत्रज्ञ आत्मा
कृत्स्नम्=संपूर्ण
क्षेत्रम्=शरीर को
प्रकाशयति=प्रकाशता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे मित्र ! जैसे एकही सूर्य

संपूर्ण लोकों को प्रकाश करता है, पर उनके धर्मों से लिपायमान नहीं होताहै, वैसेही एकही क्षेत्रज्ञ आत्मा संपूर्ण जड़ जगत् को प्रकाश करता है, और उनके धर्मों के साथ लिपायमान नहीं होताहै, और न उनके भेद करके भेद को प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥

मूलम्।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षञ्च ये विदुर्यान्ति ते परम् ३४

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे प्रकृतिपुरुषनिर्देशयोगोनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

पदच्छेदः।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः, एवम्, अन्तरम्, ज्ञानचक्षुषा, भूतप्रकृतिमोक्षम्, च, ये, विदुः, यान्ति, ते, परम् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

ये=जो
एवम्=इसप्रकार
ज्ञानचक्षुषा=ज्ञानरूपी चक्षु से

अन्वयः **शब्दार्थ**

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः=क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के
अन्तरम्=भेदको
च=और

भूतप्रकृतिमोक्षम्=माया से छूटने के उपायको
विदुः=जानते हैं
ते=वे
परम्=परमात्मा को
यान्ति=प्राप्त होते हैं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे गुडाकेश ! जो पुरुष क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेदको ज्ञानरूपी चक्षु करके देखता है, और आत्मज्ञान करके जो अज्ञान की निवृत्ति को जानता है, वही परमपद यानी मोक्षको प्राप्त होताहै ॥३४॥

तेरहवां अध्याय समाप्त ॥

चौदहवां अध्याय ।

मूलम् ।

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः १

पदच्छेदः ।

परम्, भूयः, प्रवक्ष्यामि, ज्ञानानाम्, ज्ञानम्, उत्तमम्, यत्, ज्ञात्वा, मुनयः, सर्वे, पराम्, सिद्धिम्, इतः, गताः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
ज्ञानानाम्=ज्ञानों में
उत्तमम्=श्रेष्ठ

अन्वयः शब्दार्थ
परम्=परमार्थनिष्ठ
ज्ञानम्=ज्ञानको

भूयः=फिर
प्रवक्ष्यामि=कहूंगा मैं
यत्=जिसको
ज्ञात्वा=जानकरके
सर्वे=सब
मुनयः=मुनिलोग
इतः=इस शरीर के त्यागके पीछे
पराम्=परम
सिद्धिम्=सिद्धिको यानी मोक्षको
गताः=प्राप्त हुये हैं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! अब मैं फिर ज्ञानके साधनों में से उत्तम जो आत्मज्ञान का साधन है, उसको तुम्हारे प्रति कहताहूं, जिस साधन को प्राप्त होकर संपूर्ण मुनिलोग मोक्षको प्राप्त हुये हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च २

पदच्छेदः ।

इदम्, ज्ञानम्, उपाश्रित्य, मम, साधर्म्यम्, आगताः, सर्गे, अपि, न, उपजायन्ते, प्रलये, न, व्यथन्ति, च ॥

अन्वयः शब्दार्थ
+ मनुष्याः=मनुष्यजन
इदम्=इस
ज्ञानम्=ज्ञान को

अन्वयः शब्दार्थ
उपाश्रित्य=उपासना करके
मम=मेरे
साधर्म्यम्=स्वरूप को

आगताः=प्राप्त हुये
सर्गे=सृष्टि के उत्पत्ति के समय
अपि=भी
न=नहीं

उपजायन्ते=पैदा होते हैं
च=और
प्रलये=प्रलयकाल में
न=नहीं
व्यथन्ति=दुःख पाते हैं

भावार्थ ।

हे अर्जुन ! जो मैं तुम्हारे प्रति ज्ञानका साधन कहता हूं उसके अनुष्ठान करने से विद्वान् मेरे स्वरूप के साथ अभेदताको प्राप्त होते हैं और जिनका मेरे साथ अभेद होजाता है वे फिर भूतों की उत्पत्तिकाल में भी उत्पन्न नहीं होते हैं, और प्रलयकाल में ब्रह्माके नाश होने पर भी नाशको नहीं प्राप्त होते हैं ॥२॥

मूलम् ।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ३

पदच्छेदः ।

मम, योनिः, महत्, ब्रह्म, तस्मिन्, गर्भम्, दधामि, अहम्, सम्भवः, सर्वभूतानाम्, ततः, भवति, भारत ॥

अन्वयः शब्दार्थ
भारत=हे अर्जुन
मम=मेरी

अन्वयः शब्दार्थ
योनिः=त्रिगुणात्मिका माया

महद्ब्रह्म=कारणब्रह्म है
तस्मिन्=उस बिषे
अहम्=मैं
गर्भम्=चिदाभासको यानी हिरण्य गर्भकेबीजको
दधामि=धारण करता हूं

ततः=उस मायोपहित ब्रह्म से
सर्वभूतानाम्=सब प्राणियों की
सम्भवः=उत्पत्ति
भवति=होती है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! संपूर्ण भूतों की वृद्धि का हेतु जो होवे उसीका नाम महद्ब्रह्म है, और उसीका नाम प्रकृति भी है, वही प्रकृति मुझे परमेश्वर के गर्भ धारण करने का स्थल है, उस प्रकृति यानी मायारूपी योनि में मैं गर्भ को यानी इच्छारूपी संकल्प को धारण करताहूं "बहुस्यां प्रजायेयम्, मैं एकसे बहुत हों और प्रजारूप होकर उत्पन्न हूं" जैसे पुरुष ब्रीहि यवादि आहारद्वारा अपने में लीन अलक्ष सन्तति के लिये स्त्रीकी योनि में वीर्य सिञ्चनद्वारा गर्भको धारण कराता है, और वही वीर्य योनि में जाकर शरीर होजाता है, वैसेही प्रलयकाल में क्षेत्रज्ञ अविद्या काम कर्मादिकों के लिये चिदाभासरूपी वीर्य को सिञ्चन करके मायाकी वृत्तिरूपी गर्भ को मैं धारण करताहूं, उसी गर्भाधानसे ब्रह्माआदिकों के शरीरों की उत्पत्ति होती है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ४

पदच्छेदः ।

सर्वयोनिषु, कौन्तेय, मूर्तयः, सम्भवन्ति, याः, तासाम्, ब्रह्म, महत्, योनिः, अहम्, बीजप्रदः, पिता ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

कौन्तेय=हे कुन्ती के पुत्र
सर्वयोनिषु=सब योनियों में
याः=जो
मूर्तयः=मूर्त्तियांयानी अवयव विशेषयुक्त देह
सम्भवन्ति=उत्पन्न होते हैं
तासाम्=उनकी

अन्वयः **शब्दार्थ**

योनिः=उत्पत्ति की आधार रूप माता
महत्ब्रह्म=प्रकृति है
+च=और
अहम्=मैं
बीजप्रदः=बीज को देने वाला
पिता=पिताहूं

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ संपूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति मायासे कैसे होती है ॥ उत्तर ॥ जितनी देव मनुष्यादि योनियों में जरायुजादिक भेद करके मूर्तियां यानी शरीर हैं, उन सबका कारण महद्ब्रह्म यानी प्रकृति है, वही मातृस्थान योनि कही जाती है, उस प्रकृति में चिदा-

भासरूप गर्भाधान का कर्ता मैंही परमेश्वर हूं ॥ ४ ॥

मूलम् ।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ५

पदच्छेदः ।

सत्त्वम्, रजः, तमः, इति, गुणाः, प्रकृतिसम्भवाः, निबध्नन्ति, महाबाहो, देहे, देहिनम्, अव्ययम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
महाबाहो	हे लम्बी भुजावाले अर्जुन
प्रकृतिसम्भवाः	प्रकृति से उत्पन्न हुये
सत्त्वम्	सत्त्व
रजः	रज
तमः	तम
इति	करके
गुणाः	तीनों गुण
अव्ययम्	अविनाशी
देहिनम्	जीव को
देहे	शरीर में
निबध्नन्ति	बांध रखते हैं

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ गुण कितने हैं और कैसे वे अपने सम्बन्ध करके पुरुषको बन्धायमान करते हैं ॥ उत्तर ॥ सत्त्व, रज, तम तीन गुणहैं, और वे प्रकृति से उत्पन्न हुये हैं, इसलिये त्रिगुणात्मक प्रकृति है, तथापि वे गुण न्यून अधिक होने से उत्पत्तिवाले कहे जाते हैं, अर्थात्

प्रकृति के सकाश से यानी ज़रिये से परस्पर अङ्गाङ्गीभावको प्राप्त होकर न्यून अधिकता से परिणाम को जब प्राप्त होते हैं, तब वे प्रकृतिसम्भव कहेजाते हैं, यानी प्रकृति से उत्पन्न हुये कहेजाते हैं, और इन्द्रियों का समुदायरूप जो शरीर है, उसके साथ तादात्म्याध्यास करके जीवको बन्धायमान करते हैं, जैसे आकाश में स्थित सूर्य का अचल प्रतिबिम्ब भूतल में जल कम्पादिक विकार संयुक्त दिखाई देता है, वैसेही निर्विकार अव्यय आत्मा गुण इनके सम्बन्ध से बन्धायमान दिखाई देता है, वास्तव से वह असङ्ग अविकार है ॥ ५ ॥

मूलम्।

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ६

पदच्छेदः।

तत्र, सत्त्वम्, निर्मलत्वात्, प्रकाशकम्, अनामयम्, सुखसङ्गेन, बध्नाति, ज्ञानसङ्गेन, च, अनघ ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अनघ	हे निष्पाप, अर्जुन	प्रकाशकम्	प्रकाशमान
		च	और
तत्र	उन तीनों गुणों में से	अनामयम्	शान्तरूप
		सत्त्वम्	सत्त्वगुण

निर्मलत्वात्=स्वच्छ होने के कारण
सुखसङ्गेन=सुखके सङ्ग से
+ च=और
ज्ञानसङ्गेन=ज्ञानके सङ्ग से
देहिनम्=जीवको
बध्नाति=बांधता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! उन गुणों में से जो सत्त्वगुण है, वह निर्मल और प्रकाशक है, और दुःखका विरोधी सुखकारक है, और सत्त्वगुण से दो वृत्ति उत्पन्न होती हैं, एक सुखरूपवृत्ति, दूसरी ज्ञानरूपवृत्ति, जब पुरुष बिषे सत्त्वगुण उत्कट होता है, तब वह कहता है कि मैं सुखी हूं, मैं ज्ञानी हूं, येही वृत्तियां आत्मा को बन्धायमान करती हैं ॥ ६ ॥

मूलम् ।

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ७

पदच्छेदः ।

रजः, रागात्मकम्, विद्धि, तृष्णासङ्गसमुद्भवम्, तत्, निबध्नाति, कौन्तेय, कर्मसङ्गेन, देहिनम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
कौन्तेय=हे कुन्ती के पुत्र
रजः=रजोगुण
अन्वयः शब्दार्थ
रागात्मकम्=रागका उत्पन्न करनेवाला

+ च=और

तृष्णासङ्गसमुद्भवम्=तृष्णासङ्गका उत्पन्न करने वाला

विद्धि=जान तू

तत्=वह रजोगुण

देहिनम्=जीव को

कर्मसङ्गेन=कर्म के सङ्गसे

निबध्नाति=बांधता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जिस करके भोगों में प्रीति होवे, उसीका नाम राग है, और रागही है स्वरूप जिसका उसका नाम रजोगुण है, वह रजोगुण तृष्णा और आसङ्ग से उत्पन्न होता है, प्राप्त होने योग्य पदार्थों की जो अभिलाषा है अर्थात् उनकी प्राप्तिकी जो इच्छा है, उसीका नाम तृष्णा है, और प्राप्त हुये पदार्थों को नाश से रक्षा करने के उपायका नाम आसङ्ग है, इन दोनों से रागरूप रजोगुण उत्पन्न होता है, वही गुण इस जीवको कर्म के सम्बन्ध करके बन्धायमान करलेता है, मैं इस कर्म को करताहूं, मैं इसके फलको भोगूंगा, इसतरह के आग्रहका नाम कर्मसङ्ग है, यही कर्मसङ्ग अकर्ता आत्मा को भी बन्धायमान करलेता है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ८

पदच्छेदः।

तमः, तु, अज्ञानजम्, विद्धि, मोहनम्, सर्वदेहिनाम्, प्रमादालस्यनिद्राभिः, तत्, निबध्नाति, भारत ॥

अन्वयः शब्दार्थ

भारत=हे अर्जुन
तमः=तमको
तु=तो
अज्ञानजम्=अज्ञान से उत्पन्न हुआ
सर्वदेहिनाम्=सब प्राणियों का

अन्वयः शब्दार्थ

मोहनम्=मोहनेवाला
विद्धि=जान तू
तत्=वह तमोगुण
देहिनम्=जीव को
प्रमादालस्यनिद्राभिः=प्रमाद आलस्य और निद्रासे
निबध्नाति=बांधता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! तमोगुण सत्त्व, रजसे भिन्न है, और आवरणरूप अज्ञान से उत्पन्न हुआ है, और संपूर्ण जीवों को भ्रान्ति करनेवाला है, यह तमोगुण प्रमाद, आलस्य और निद्रा करके जीव को बन्धायमान करलेता है ॥ ८ ॥

मूलम्।

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत ९

पदच्छेदः ।

सत्त्वम्, सुखे, सञ्जयति, रजः, कर्मणि, भारत, ज्ञानम्, आवृत्य, तु, तमः, प्रमादे, सञ्जयति, उत ॥

अन्वयः शब्दार्थ

भारत=हे अर्जुन
उत=ऐसा कहा गया है कि
सत्त्वम्=सतोगुण
सुखे=सुखमें
सञ्जयति=लगाता है
रजः=रजोगुण

अन्वयः शब्दार्थ

कर्मणि=कर्म में
+सञ्जयति=लगाता है
तु=और
तमः=तमोगुण
ज्ञानम्=ज्ञानको
आवृत्य=आवरण करके
प्रमादे=प्रमाद में
सञ्जयति=लगाता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जिसकाल में सत्त्वगुण उत्कृष्ट होता है, उसकाल में जीवको सुख में जोड़देता है अर्थात् दुःखके कारण को तिरस्कार करके पुरुष के हृदय में सुखका आविर्भाव करदेता है, और जब रजोगुण अधिक होता है, तब सुख के हेतुको तिरस्कार करके पुरुष को कर्म में जोड़देता है, और जिसकाल में सत्त्व रज दोनों न्यून होते हैं, केवल तमोगुणही अधिक होता है उस काल में उत्पन्न हुये ज्ञानको आच्छादन करके प्रमाद में जीव को जोड़देता है ॥ ६ ॥

मूलम्।

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा १०

पदच्छेदः।

रजः, तमः, च, अभिभूय, सत्त्वम्, भवति, भारत, रजः, सत्त्वम्, तमः, च, एव, तमः, सत्त्वम्, रजः, तथा॥

अन्वयः शब्दार्थ

भारत=हे अर्जुन
+ यदा=जब
रजः=रजोगुणको
च=और
तमः=तमोगुण को
अभिभूय=दबा करके
सत्त्वम्=सतोगुण
भवति=वृद्धिको प्राप्त होता है
+ तदा=तब
सत्त्वगुणकार्याणि = सतोगुण के कार्य
ज्ञानानन्दादिकानि भवन्ति = ज्ञान आनन्दादि होतेहैं

अन्वयः शब्दार्थ

+ यदा=जब
रजः=रजोगुण
सत्त्वम्=सतोगुणको
च=और
तमः=तमोगुणको
+ अभिभूय=दबाकर
+ भवति=वृद्धि को प्राप्त होता है
+ तदा रजोगुणकार्याणि तृष्णादिकानि भवन्ति = तब रजोगुणके कार्य तृष्णा आदि उत्पन्न होते हैं
तथा=और

तमः=तमोगुण
+ यदा=जब
सत्त्वम्=सतोगुणको
+ च=और
रजः=रजोगुणको
+ अभिभय=दबाकर
+ भवति=वृद्धि को प्राप्त होता है

+तदाज्ञानावरणादिकानि तमोगुणकार्याणि भवन्ति = तब ज्ञान आवरणादि तम के कार्य उत्पन्नहोतेहैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ! जिस काल में रज और तमको तिरस्कार करके सत्त्वगुण बढ़ता है, उस काल में सत्त्वगुण अपने कार्य को करता है, और जब सत्त्व और तमको तिरस्कार करके रजोगुण बढ़ता है, तब वह अपने कार्यको करता है, यानी क्रिया कराने में पुरुष को प्रवृत्त करता है, और जब सत्त्व और रजको तिरस्कार करके तमोगुण बढ़ता है, तब वह अपने कार्य आलस्यादिकों को उत्पन्न करता है॥ १०॥

मूलम्।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन् प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ११

पदच्छेदः।

सर्वद्वारेषु, देहे, अस्मिन्, प्रकाशः, उपजायते, ज्ञानम्, यदा, तदा, विद्यात्, विवृद्धम्, सत्त्वम्, इति, उत ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यदा=जिस समय
अस्मिन्=इस
देहे=देह बिषे
सर्वद्वारेषु=सब दरवाज़ों में यानी श्रोत्रादि इन्द्रियों में
प्रकाशः=प्रकाशरूपबुद्धि
उपजायते=उत्पन्न होती है

अन्वयः शब्दार्थ

+ यत्=जो
ज्ञानम्=ज्ञान
+ उच्यते=कहाजाता है
तदा=उससमय
सत्त्वम्=सतोगुणको
विवृद्धम्=बढ़ा हुआ
विद्यात्=जाने
इति=ऐसा
उत=कहा गया है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! भोगका आश्रय जो स्थूल शरीर है, उसके संपूर्ण श्रोत्रादिक द्वारों में जब स्वच्छ बुद्धिकी वृत्ति विशेष उत्पन्न होती है, तब वही शब्दादिक विषयों को विषय करनेवाला ज्ञान कहाजाता है, उस ज्ञानरूपी प्रकाश करके सत्त्वगुण की वृद्धि जानी जाती है ॥ ११ ॥

मूलम्।

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ १२

पदच्छेदः ।

लोभः, प्रवृत्तिः, आरम्भः, कर्मणाम्, अशमः, स्पृहा, रजसि, एतानि, जायन्ते, विवृद्धे, भरतर्षभ ॥

अन्वयः शब्दार्थ
भरतर्षभ=हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ
रजसि विवृद्धे = रजोगुण के बढ़नेपर
लोभः=लोभ
प्रवृत्तिः=प्रवृत्ति
आरम्भः=उद्योग

अन्वयः शब्दार्थ
कर्मणाम्=कर्मोंकी
अशमः=अशान्ति
+ च=और
स्पृहा=इच्छा
एतानि=ये सब
जायन्ते=उत्पन्नहोते हैं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे सव्यसाचिन् ! क्षण क्षण में पदार्थों विषे जो अभिलाषा है, उसी का नाम लोभ है, बहुत धनके होनेपर भी अधिक धन की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने का नाम प्रवृत्ति है, और गृहादि कार्यों में उद्यमही करते रहने का नाम आरम्भ है, इस कामको आज करलिया है, और इस काम को कल करूंगा, इस तरह के काम्य कर्मों का नाम अशम है, जिस किसी उपाय करके धनादिकों का संपादन करना चाहिये ऐसी इच्छाका नाम स्पृहा है, हे भरतवंश में श्रेष्ठ, अर्जुन ! रजोगुण के वृद्ध होने

पर ये सब पूर्वोक्त वृत्तियां उत्पन्न होती हैं, इन्हीं करके रजोगुण की वृद्धि जानी जाती है ॥ १२ ॥

मूलम् ।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन १३

पदच्छेदः ।

अप्रकाशः, अप्रवृत्तिः, च, प्रमादः, मोहः, एव, च, तमसि, एतानि, जायन्ते, विवृद्धे, कुरुनन्दन ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

कुरुनन्दन=हे कुरुपुत्र
तमसि विवृद्धे=तमोगुण के बढ़ने पर
अप्रकाशः=अज्ञान
च=और
अप्रवृत्तिः=सुस्ती
च=और

अन्वयः **शब्दार्थ**

प्रमादः=प्रमाद
+ च=और
मोहः=मोह
एतानि=ये
एव=निश्चय करके
जायन्ते=उत्पन्न होते हैं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे कुरुनन्दन ! तमोगुण के वृद्ध होनेपर अप्रकाश, अप्रवृत्ति, प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं अर्थात् जब ये सब चिह्न मनुष्य विषे दिखाई देते हैं तब मालूम होजाता है कि अब इस मनुष्य में तमोगुण की वृद्धि होरही है ॥ १३ ॥

मूलम्।

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान् प्रतिपद्यते १४

पदच्छेदः।

यदा, सत्त्वे, प्रवृद्धे, तु, प्रलयम्, याति, देहभृत्, तदा, उत्तमविदाम्, लोकान्, अमलान्, प्रतिपद्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तु=और
यदा=जब
देहभृत्=देहाभिमानी जीव
सत्त्वेप्रवृद्धे=सतोगुण की वृद्धि में
प्रलयम्=मरणको
याति=प्राप्त होता है

अन्वयः शब्दार्थ

तदा=तब
+सः=वह
अमलान्=निर्मल
उत्तमविदाम्=उत्तम उपासकों के
लोकान्=लोकोंको
प्रतिपद्यते=प्राप्त होता है

भावार्थ।

भगवान् अब मृत्युकाल में सत्त्वादिगुण की वृद्धि के फलको कहते हैं, हे सव्यसाचिन्! जो देहधारी सत्त्वगुण की वृद्धि काल में देहको त्यागता है वह उत्तम मल से रहित हिरण्यगर्भादिक योनियों को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

मूलम्।

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते १५

पदच्छेदः।

रजसि, प्रलयम्, गत्वा, कर्मसङ्गिषु, जायते, तथा, प्रलीनः, तमसि, मूढयोनिषु, जायते ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

रजसि=रजोगुण में
प्रलयम्=नाशको
गत्वा=प्राप्त होकर
कर्मसङ्गिषु=कर्मसङ्गियों में यानी कर्माधिकारि मनुष्ययोनियों में

अन्वयः **शब्दार्थ**

जायते=उत्पन्न होता है
तथा=और
तमसि=तमोगुण में
प्रलीनः=मरा हुआ
मूढयोनिषु=मूढ़योनियों यानीपशुआदि योनियों में
जायते=उत्पन्न होता है

भावार्थ।

जो रजोगुण की वृद्धिकाल में प्राणको त्यागता है, वह कर्माधिकारी मनुष्य लोकमें जन्म लेता है, और जो तमोगुण की वृद्धिकाल में प्राणको त्यागता है, वह मूढ़ पशुआदि योनियों को प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

मूलम् ।

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् १६

पदच्छेदः ।

कर्मणः, सुकृतस्य, आहुः, सात्त्विकम्, निर्मलम्, फलम्, रजसः, तु, फलम्, दुःखम्, अज्ञानम्, तमसः, फलम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

सुकृतस्य कर्मणः=शुभ कर्म के
निर्मलम्=निर्मल
फलम्=फलको
सात्त्विकम्=सात्त्विक फल सुख
आहुः=कहते हैं
तु=और
रजसः=रजोगुण के

अन्वयः शब्दार्थ

फलम्=फलको
दुःखम्=दुःख
आहुः=कहते हैं
+च=और
तमसः=तमोगुण के
फलम्=फलको
अज्ञानम्=अज्ञान
+आहुः=कहते हैं

भावार्थ ।

सुकृतकर्मों का फल सात्त्विक निर्मल सुख होता है, पाप करके मिश्रित पुण्यकर्मों का फल सुख दुःख मिश्रित होता है, और तमोगुणजन्य अधर्म का फल केवल दुःखही होता है ॥ १६ ॥

मूलम् ।

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च १७

पदच्छेदः ।

सत्त्वात्, संजायते, ज्ञानम्, रजसः, लोभः, एव, च, प्रमादमोहौ, तमसः, भवतः, अज्ञानम्, एव, च ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

सत्त्वात्=सतोगुण से
ज्ञानम्=ज्ञान
संजायते=उत्पन्न होताहै
रजसः=रजोगुण से
लोभः=लोभ
+ संजायते=उत्पन्न होता है
च=और
तमसः=तमोगुण से

अन्वयः **शब्दार्थ**

एव=निश्चय करके
प्रमादमोहौ=प्रमाद और मोह
भवतः=उत्पन्न होते हैं
च=और
अज्ञानम्=अज्ञान
एव=भी
+ संजायते=उत्पन्न होता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! सत्त्वगुण के अधिक होने से सूक्ष्म पदार्थों का विचार करनेवाला ज्ञान उत्पन्न होता है, और रजोगुण के अधिक होने से लोभ उत्पन्न होता है, और तमोगुण के अधिक होने से प्रमाद और मोहादिक उत्पन्न होते हैं ॥ १७ ॥

मूलम् ।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधोगच्छन्ति तामसाः १८

पदच्छेदः ।

ऊर्ध्वम्, गच्छन्ति, सत्त्वस्थाः, मध्ये, तिष्ठन्ति, राजसाः, जघन्यगुणवृत्तिस्थाः, अधः, गच्छन्ति, तामसाः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

सत्त्वस्थाः=सतोगुण में स्थित हुये पुरुष
ऊर्ध्वम्=ऊपर के लोकोंको
गच्छन्ति=प्राप्त होते हैं
राजसाः=रजोगुणी पुरुष
मध्ये=मध्यलोक में यानी मनुष्य लोक में

अन्वयः **शब्दार्थ**

तिष्ठन्ति=आते हैं
+ च=और
तामसाः=तमोगुणी पुरुष
जघन्यगुणवृत्तिस्थाः=निकृष्टगुण की वृत्ति में स्थित हुये
अधः=अधोलोक को
गच्छन्ति=प्राप्त होते हैं

भावार्थ

भगवान् कहते हैं कि, जो पुरुष सत्त्वगुण में स्थित हैं यानी जो सात्त्विक स्वभाववाले हैं, और शास्त्रज्ञान में प्रीतिवाले हैं, वे मरकर ऊर्ध्व ब्रह्मलोक में गमन करते हैं, और जो राजस स्वभाववाले हैं, और लोभादिकों करके जिनकी नित्यही कर्मों के करने में प्रवृत्ति

बनी रहती है, वे मध्यलोक में अर्थात् इसी मनुष्यलोक में जन्मते मरते हैं, और जो तामसी हैं, अर्थात् जो निकृष्ट तमोगुणवृत्तिवाले हैं, वे पशुआदि योनियों में मर करके जन्मते हैं ॥ १८ ॥

मूलम् ।

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टाऽनुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति १९

पदच्छेदः ।

न, अन्यम्, गुणेभ्यः, कर्तारम्, यदा, द्रष्टा, अनुपश्यति, गुणेभ्यः, च, परम्, वेत्ति, मद्भावम्, सः, अधिगच्छति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यदा=जब
द्रष्टा=देखनेवाला यानी विवेकी पुरुष
गुणेभ्यः=गुणों से
अन्यम्=पृथक्
कर्तारम्=कर्ता को
न=नहीं
अनुपश्यति=देखता है
च=और

अन्वयः शब्दार्थ

गुणेभ्यः=गुणों से
परम्=पृथक्
+आत्मानम्=आत्माको
वेत्ति=जानता है
+ तदा=तब
सः=वह
मद्भावम्=मेरे भाव को
अधिगच्छति=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे चन्द्रमुख ! कार्य कारण विषयाकार करके गुणही परिणाम को प्राप्त होते हैं, देह इन्द्रिय मन बुद्धि और अहंकाररूपी विषयाकारता को प्राप्त हुये जो गुण हैं, वेही सम्पूर्ण कर्मों के कर्ता हैं, जो इन्हींको कर्ता देखता है, और इनसे भिन्न और कोई कर्ता को जो नहीं देखता है, और गुणों से परे अक्रिय साक्षी आत्मा को जो अकर्ता देखता है, वही पुरुष मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है ॥१६॥

मूलम् ।

गुणानेतानतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते २०

पदच्छेदः ।

गुणान्, एतान्, अतीत्य, त्रीन्, देही, देहसमुद्भवान्, जन्ममृत्युजरादुःखैः, विमुक्तः, अमृतम्, अश्नुते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
देहसमुद्भवान्	देह में उत्पन्न हुये	जन्ममृत्युजरादुःखैः	जन्म मरण जराआदि दुःखों से
एतान्	इन	विमुक्तः	छूटा हुआ
त्रीन्	तीनों	अमृतम्	मोक्षको
गुणान्	गुणों को	अश्नुते	प्राप्त होता है
अतीत्य	उल्लंघन करके		
देही	जीव		

भावार्थ।

प्रश्न ॥ आपके स्वरूप को वह कैसे प्राप्त होताहै ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे कुरुनन्दन ! मायारूपी सत्त्व, रज, तम जो तीन गुण हैं, येही शरीर की उत्पत्ति में बीजभूत हैं, जो इन तीनों गुणों को और इनके कार्यों को आत्मज्ञान करके अतिक्रमण कर जाता है, वह जन्म मृत्यु जराआदिक दुःखों से छूट कर मोक्षको प्राप्त होता है ॥ २० ॥

मूलम्।

कैर्लिङ्गैस्त्रीन् गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन् गुणानतिवर्तते २१

पदच्छेदः।

कैः, लिङ्गैः, त्रीन्, गुणान्, एतान्, अतीतः, भवति, प्रभो, किम्, आचारः, कथम्, च, एतान्, त्रीन्, गुणान्, अतिवर्तते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

प्रभो=हे प्रभो
कैः=किन
लिङ्गैः=लक्षणों करके
एतान्=इन
त्रीन्=तीनों
गुणान्=गुणों से

अन्वयः शब्दार्थ

+ देही=जीव
अतीतः=अतीत यानी पृथक्
भवति=होता है
+ तस्य=उस पुरुषका
आचारः=व्यवहार

किम्=क्या है
च=और
कथम्=कैसे
एतान्=इन
त्रीन्=तीनों
गुणान्=गुणों को
+ सः=वह
अतिवर्तते=उल्लंघन करता है

भावार्थ।

अब इस वाक्य करके अर्जुन गुणातीत के चिह्नों को और आचार को पूछता है, अर्जुन कहता है कि, हे भगवन्! जो तीनों गुणों से अतीत है, वह कौनसे चिह्नों करके जाना जाता है, उन चिह्नों को मेरेप्रति कहिये, और गुणातीतका आचार कैसा होता है, वह यथेष्ट आचार को करता है, या शास्त्रविहित आचार को करता है, फिर वह गुणों से रहित कैसे होजाता है, और गुणों से रहित होने का उपाय क्या है॥ २१॥

मूलम्।

प्रकाशञ्च प्रवृत्तिञ्च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति २२

पदच्छेदः।

प्रकाशम्, च, प्रवृत्तिम्, च, मोहम्, एव, च, पाण्डव, न, द्वेष्टि, सम्प्रवृत्तानि, न, निवृत्तानि, काङ्क्षति॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
पाण्डव	हे अर्जुन	विवेकी	विवेकी पुरुष

सम्प्रवृत्तानि=उत्पन्न हुये
प्रकाशम्=ज्ञान से जो सतोगुणका कार्य है
च=और
प्रवृत्तिम्=कर्म में प्रवृत्ति से जो रजोगुणका कार्य है
च=और
मोहम्=मोहसे जो तमोगुणका कार्य है
एव=निश्चय करके
न द्वेष्टि=नहीं द्वेष करता है
च=और
न=न
निवृत्तानि=इनकी निवृत्तिको
काङ्क्षति=चाहता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे कमलनयन ! जिन चिह्नों करके गुणातीत ज्ञानाजाता है, उन चिह्नोंको मैं तुम्हारे प्रति कहताहूं, सत्त्वगुणका कार्य जो प्रकाश है, रजोगुणका कार्य जो प्रवृत्ति है, और तमोगुणका कार्य जो मोह है, सो जो पुरुष इन कार्यों के प्रवृत्त होनेपर दुःखबुद्धि करके इनसे द्वेष नहीं करता है, (क्योंकि उसको भलीप्रकार गुणों और गुणोंके कार्यों में मिथ्यात्व निश्चय होगयाहै) और जो गुणों के कार्योंको नाशकी सामग्री से नाशकी इच्छा नहीं करता है, (क्योंकि उसको स्वप्नवत् मिथ्यात्व निश्चय होने से द्वेषादि नहीं सताते हैं) वही गुणातीत कहा जाता है ॥ २२ ॥

मूलम् ।

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येवं योऽवतिष्ठति नेङ्गते २३

पदच्छेदः ।

उदासीनवत्, आसीनः, गुणैः, यः, न, विचाल्यते, गुणाः, वर्तन्ते, इति, एवम्, यः, अवतिष्ठति, न, इङ्गते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यः=जो
उदासीनवत्=उदासीन पुरुष के समान
आसीनः=स्थित हुआ
गुणैः=तीनों गुणों करके
न=नहीं
विचाल्यते=चलायमान होता है
+च=और
यः=जो
इतिएवम्=ऐसा

अन्वयः शब्दार्थ

+वेद=जानता है कि
गुणाः=तीनोंगुण
वर्तन्ते=बर्तते हैं
+अहम् एषांसाक्षी=मैंइनकासाक्षी
+एभ्यःपृथक्अस्मि=इनसे पृथक् हूं
+सः=वह
अवतिष्ठति=शान्त स्थितहै
+च=और
न इङ्गते=न चलायमान होता है

भावार्थ ।

पूर्व वाक्य करके भगवान् ने गुणातीत के लक्षण को कहा है, अब इस वाक्य करके उसके आचार को

कहते हैं कि, हे पार्थ ! जैसे दो आदमी परस्पर झगड़ा करतेहुयों के पास एक उदासीन पुरुष बैठा है, परन्तु दोनों में से किसीका पक्षपात नहीं करता है, और दोनों में से किसी के साथ राग द्वेष नहीं रखता है, वैसेही विद्वान् राग द्वेष से रहित होकर अपने आत्मा में स्थित होताहुआ गुणों के कार्य सुख दुःखादिक से राग द्वेष नहीं करता है, और न उन्हों करके चलायमान होता है, वह ऐसा मानताहै कि देह इन्द्रियादि रूप करके परिणाम को प्राप्त हुये २ गुण परस्पर बर्तते हैं, और मैं सूर्य की तरह इन सबका प्रकाशक हूं, इनके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसा निश्चय करके जो विद्वान् अपने स्वरूप से चलायमान नहीं होता है, वही गुणातीत कहाजाता है ॥ २३ ॥

मूलम्।

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः२४

पदच्छेदः।

समदुःखसुखः, स्वस्थः, समलोष्टाश्मकाञ्चनः, तुल्यप्रियाप्रियः, धीरः, तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
समदुःखसुखः=	तुल्य है दुःख और सुख जिसको	स्वस्थः=	अपने स्वरूप बिषे स्थितहै जो

समलोष्टाश्मकाञ्चनः = तुल्य है ढेला पत्थर और सोनाजिसको

तुल्यप्रियाप्रियः = तुल्य है प्रिय और अप्रिय पदार्थ जिसको

धीरः = धैर्यवान् है जो

तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः = तुल्य है अपनी निन्दा और स्तुति जिसको

(इस श्लोकका सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ ।

हे पार्थ ! सुख दुःखको सम जानकर जिसकी बुद्धि उनमें स्वस्थ रहती है, और ग्रहण त्याग से रहित होने के कारण माटीका ढेला और पत्थर और स्वर्ण जिसके बुद्धि में तुल्य है, और सुख दुःख के साधन जो प्रिय अप्रिय हैं, वेभी जिसको तुल्य हैं, और अपनी निन्दा और स्तुति भी जिसको तुल्य है, वही विद्वान् गुणातीत कहाजाता है ॥ २४ ॥

मूलम् ।

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते २५

पदच्छेदः ।

मानापमानयोः, तुल्यः, तुल्यः, मित्रारिपक्षयोः, सर्वारम्भपरित्यागी, गुणातीतः, सः, उच्यते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
मानापमानयोः	= मान और अपमान में
तुल्यः	= तुल्य है जो
मित्रारिपक्षयोः	= मित्र और शत्रु पक्ष में
तुल्यः	= तुल्य है जो
सर्वारम्भपरित्यागी	= सब कर्मों के आरम्भ को त्याग किया है जिसने ऐसा
सः	= वह पुरुष
गुणातीतः	= गुणोंसे अतीत
उच्यते	= कहाजाता है

भावार्थ।

मान, सत्कार और आदर ये तीनों पर्याय शब्द हैं, अर्थात् ये तीनों एकही अर्थ के वाचक हैं, और अपमान, तिरस्कार, अनादर ये तीनों एकही अर्थ के वाचक हैं, मान और अपमान में जिसकी बुद्धि तुल्य रहती है, यानी मान होने से हर्षको जो नहीं प्राप्त होता है, और अपमान होनेसे जो द्वेषको नहीं प्राप्त होता है, और मित्र शत्रु में भी जिसकी बुद्धि तुल्य है, यानी न मित्र से राग है, और न शत्रु से द्वेषहै, और सम्पूर्ण कर्मों के आरम्भका जिसने त्याग करदिया है, वही गुणातीत कहाजाता है ॥ २५ ॥

मूलम्।

माञ्च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते २६

पदच्छेदः ।

माम्, च, यः, अव्यभिचारेण, भक्तियोगेन, सेवते, सः, गुणान्, समतीत्य, एतान्, ब्रह्मभूयाय, कल्पते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
यः=जो पुरुष
माम्=मुझको
अव्यभिचारेण=अनन्य
भक्तियोगेन=भक्तियोग से

अन्वयः शब्दार्थ

सेवते=सेवता है
सः=वह
एतान्=इन
गुणान्=गुणों को
समतीत्य=उल्लंघन करके
ब्रह्मभूयाय=ब्रह्मभाव को
कल्पते=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे दीर्घबाहु ! जो मुझको दृढ़ भक्तियोग करके चिन्तन करताहै, वह तीनों गुणों को उल्लंघन करके मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

मूलम् ।

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च २७

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पदच्छेदः।

ब्रह्मणः, हि, प्रतिष्ठा, अहम्, अमृतस्य, अव्ययस्य, च, शाश्वतस्य, च, धर्मस्य, सुखस्य, ऐकान्तिकस्य, च ॥

अन्वयः शब्दार्थ अन्वयः शब्दार्थ

हि=निश्चय करके
अव्ययस्य=अविनाशी
अमृतस्य=अमृतरूप
ब्रह्मणः=ब्रह्मकी
प्रतिष्ठा=मूर्ति
अहम्=में हूं
च=और
शाश्वतस्य=सनातन
धर्मस्य=धर्मकी
च=और
ऐकान्तिकस्य=अत्यन्त
सुखस्य=सुखकी
च=भी
+ प्रतिष्ठा=मूर्ति
+ अहम्=मैं
+ अस्मि=हूं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे कमलनेत्र ! अतिदृढ़ जो हरि की भक्ति है, वही गुणों से अतीत होने का मुख्य साधन है, और मायाशबल ब्रह्म की यह प्रतिष्ठा है, यानी उसका वास्तव स्वरूप जो निर्विकल्प द्वैत से रहित चिद्घन है, सो मैंही तत्पदका लक्ष्यहूं, इस वास्ते जो मेरी उपासना करते हैं, वे मोक्ष को प्राप्त होते हैं, और जो मेरा नित्य स्वरूप है, उसको जो मेरा भक्त चिन्तन करताहै वह संसारसे तरजाता है ॥ २७ ॥

चौदहवां अध्याय समाप्त ॥

पन्द्रहवां अध्याय ।

मूलम् ।

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् १

पदच्छेदः ।

ऊर्ध्वमूलम्, अधःशाखम्, अश्वत्थम, प्राहुः, अव्ययम्, छन्दांसि, यस्य, पर्णानि, यः, तम्, वेद, सः, वेदवित् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

ऊर्ध्वमूलम्=ऊपर को है जड़ जिसकी
अधःशाखम्=नीचे को है शाखा जिसकी
+ च=और
यस्य=जिसके
पर्णानि=पत्ते
छन्दांसि=वेद हैं
+ एवम्=ऐसे
अश्वत्थम्=वृक्षरूप संसार को

अन्वयः शब्दार्थ

अव्ययम्=अविनाशी
प्राहुः=कहते हैं
यः=जो
तम्=उसको
वेद=जानता है
सः=वह
वेदवित्=वेदका जाननेवाला है यानीआत्मदर्शी है

भावार्थ।

पूर्व अध्याय में भगवान् ने गुणों को बन्धन का हेतु कथन करके गुणों से अतीत को जीवन्मुक्त का कथन किया है, और गुणों से अतीत होना निष्काम भक्ति करके कथन किया है, यानी भक्ति करके चित्त की शुद्धि होती है, चित्तकी शुद्धि होने से चित्त में विवेक होताहै, और विवेक से वैराग्य उत्पन्न होताहै, और वैराग्यही आत्मज्ञानका साधन है, इसीवास्ते भगवान् वैराग्य की उत्पत्ति के लिये प्रथम संसार को वृक्षरूप करके इस पन्द्रहवें अध्याय में वर्णन करते हैं ॥ ऊर्ध्वमिति ॥ स्वप्रकाशचेतनरूप जो ब्रह्म है, यानी संपूर्ण संसार के बाध होनेपर भी जो अबाधित है, और जो माया करके संपूर्ण संसार भ्रम का अधिष्ठानरूप ब्रह्महै, और जो मूलकारण इस संसाररूपी वृक्षका है उसी का नाम ऊर्ध्वमूल है, यह सर्वोपरि है, यानी उत्कृष्ट कारण है, ऊर्ध्व का अर्थ उत्कृष्ट भी है, और मूलका अर्थ कारण भी है और ॥ अधःशाखमिति ॥ हिरण्यगर्भादिक जो उपाधियां हैं, जो सर्व ओर फैलीहुई हैं वे सब मानो इस संसाररूपी वृक्ष की शाखा हैं, और सब शाखा शीघ्रही विनाशवाली होने के कारण विश्वास के योग्य नहीं हैं, कलतक रहेंगी या न रहेंगी ऐसा भी उनके प्रति नहीं है, मायित संसाररूपी वृक्षका नाश विना आत्मज्ञान के

नहीं होता है, यह संसार प्रवाहरूप करके अनादि है, इसीवास्ते इसको अव्यय कहा है, और कर्मकाण्डरूपी वेदभाग इस संसाररूपी वृक्षके पत्ते हैं, जो पुरुष इस संसाररूपी वृक्षको गुरुशास्त्रद्वारा मायारूप करके विनश्वर जानता है, और जो संसाररूपी वृक्ष के मूल ब्रह्म को नित्य जानता है, वही वेद के अर्थ को जानता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अधश्चोर्ध्वञ्च प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः । अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके २

पदच्छेदः ।

अधः, च, ऊर्ध्वम्, च, प्रसृताः, तस्य, शाखाः, गुणप्रवृद्धाः, विषयप्रवालाः, अधः, च, मूलानि, अनुसन्ततानि, कर्मानुबन्धीनि, मनुष्यलोके ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तस्य=उस वृक्षकी
शाखाः=शाखायें
अधः=नीचेको
च=और
ऊर्ध्वम्=ऊपरको

अन्वयः शब्दार्थ

प्रसृताः=फैलीहुई हैं
च=और
अधः=नीचेकी तरफ़
+ तस्य=उसके
विषयप्रवालाः=विषयरूपी कोमलपत्ते

गुणप्रवृद्धाः=तीनोंगुणों करके बढ़े हुये हैं

च=और

मनुष्यलोके=मनुष्यलोकमें

कर्मानुबन्धीनि=कर्म से बँधी हुई

+ तस्य=उसकी

मूलानि=जड़

अनुसन्ततानि=चारों तरफ़ को फैली हुई हैं

भावार्थ।

पूर्व वाक्य करके भगवान् ने संसाररूपी वृक्ष के वेत्ताकी स्तुति की है, अब वैराग्य की उत्पत्ति के लिये दूसरी रीति से संसाररूपी वृक्षका भगवान् वर्णन करते हैं॥ अधश्चोर्ध्वमिति॥ हे अर्जुन! जो खोटे आचरण वाले हैं, वह अधः यानी पशुआदि योनियों को प्राप्त होते हैं, और जो उत्तम आचरणवाले हैं, वे देवादि योनियों में जाते हैं, यानी मनुष्य से लेकर तृण पर्यन्त जितने देहधारी हैं, वे सब इस संसाररूपी वृक्षकी नीचेकी शाखा हैं, और हिरण्यगर्भ से लेकर जितने देवता आदिक देहधारी हैं, वे सब ऊपर की शाखा हैं, और देह इन्द्रियादि रूप करके परिणत जो गुण हैं, उन्हीं गुणों करके सब शाखायें वृद्धिको प्राप्त हुई हैं, और शब्दस्पर्शादि रूप जो विषय हैं, वे मानो उन शाखाओं के पत्ते हैं, और जो॥ अधश्च मूलानि॥ कहा है, सो यहांपर॥ अधः॥ शब्द करके ऊर्ध्वका ग्रहण है, अर्थात् उन शाखाओं के वासना-

रूपी जो मूल है, वही ऊर्ध्व है, और वही धर्माऽधर्मादिकों की प्रवृत्तिका कारण है, इस संसाररूपी वृक्षको वासनारूपी मूलों ने गूथन कर रक्खा है, इस मनुष्यलोक में वही वासनारूपी मूलही बन्धन का कारण है, अर्थात् जो वासना से कर्म करता है, उस कर्म से फिर वासना होती है, ये दोनों बीजांकुरवत् हैं, इसीसे जन्म मृत्युकी धारा चलीजाती है, इस संसाररूपी वृक्षका आत्मज्ञानरूपी कुल्हाड़ा करके ही छेदन होसक्ता है, क्योंकि यह दीर्घकालका पेड़ है, मुमुक्षुवों को उचित है, कि इस वृक्ष के छेदन करने में यत्न करें ॥ २ ॥

मूलम्।

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा। अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ३

पदच्छेदः।

न, रूपम्, अस्य, इह, तथा, उपलभ्यते, न, अन्तः, न, च, आदिः, न, च, संप्रतिष्ठा, अश्वत्थम्, एनम्, सुविरूढमूलम्, असङ्गशस्त्रेण, दृढेन, छित्त्वा ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
इह	इस संसार में	रूपम्	आकार
अस्य	इस वृक्षका	तथा	वैसा यानी लौकिक

न=नहीं
उपलभ्यते=पायाजाता है
अस्य=इसका
न आदिः=न आदि है
च=और
न संप्रतिष्ठा=न मध्य है
च=और
न अन्तः=न अन्त है

सुविरूढमूलम्=भलीप्रकार जमी हुई है जड़ जिसकी ऐसे
एनम्=इस
अश्वत्थम्=वृक्षको
दृढेन=तीव्र
असङ्गशस्त्रेण=असङ्गरूपी शस्त्र से
छित्त्वा=काट करके

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे मित्र ! जैसा वेद में संसाररूपी वृक्षका स्वरूप निरूपण किया है, वैसा उसका स्वरूप प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि देखते देखते वह नष्ट होताजाता है, जैसे स्वप्न के पदार्थ, मरीचिकाका जल, और गन्धर्वनगर देखते देखते नष्ट होते जाते हैं, और इस संसाररूपी वृक्ष का आदि अन्तभी प्रतीत नहीं होता है, और न इसकी प्रतिष्ठा यानी स्थिति प्रतीत होती है कि यह कहां से हुआ है और कहां स्थित है, और इसका उच्छेदन करना भी अति कठिन है, क्योंकि अनादि अविद्या करके

इसका मूल बड़ा मज़बूत बँधा है, यह अश्वत्थनामक संसाररूपी वृक्ष वैराग्यरूपी दृढ़शस्त्र करके छेदन करने के योग्य है ॥ ३ ॥

मूलम्।

ततः पदं तत् परिमार्गितव्यं यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः। तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ४

पदच्छेदः।

ततः, पदम्, तत्, परिमार्गितव्यम्, यस्मिन्, गताः, न, निवर्तन्ति, भूयः, तम्, एव, च, आद्यम्, पुरुषम्, प्रपद्ये, यतः, प्रवृत्तिः, प्रसृता, पुराणी ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

ततः=उसके पीछे
तत्=वह
पदम्=पद
परिमार्गितव्यम् = तलाश करने के योग्य है
यस्मिन्=जिसमें
गताः=प्राप्त हुये
भूयः=फिर
+पुरुषाः=मनुष्य

अन्वयः **शब्दार्थ**

न=नहीं
निवर्तन्ति=लौट आते हैं
च=और
तम्एव=उसी
आद्यम्=आदि
पुरुषम् +पुरुषस्य शरणम् = पुरुषके शरण को
यतः=जिससे

पुराणी=अनादि
प्रवृत्तिः=प्रवृत्ति
प्रसृता=फैलीहुई है
प्रपद्ये=प्राप्तहूं मैं

भावार्थ।

हे कौन्तेय ! विष्णुका पद खोजने योग्य है, जिस पदमें सज्जन पुरुष आत्मज्ञान करके प्राप्त हुये फिर जन्म मरणरूपी संसारको नहीं प्राप्त होते हैं, और जिस परमात्मा की सत्ता करके सम्पूर्ण जगत् फैल रहा है, और जिसके सकाश से संसाररूपी वृक्षकी प्रवृत्ति अनादि काल की होरही है, और जो सारे जगत् में व्यापक होरहा है, उसके शरणको हमलोग प्राप्त हों, ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये ॥ ४ ॥

मूलम्।

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः। द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ५

पदच्छेदः।

निर्मानमोहाः, जितसङ्गदोषाः, अध्यात्मनित्याः, विनिवृत्तकामाः, द्वन्द्वैः, विमुक्ताः, सुखदुःखसंज्ञैः, गच्छन्ति, अमूढाः, पदम्, अव्ययम्, तत् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
निर्मानमोहाः	दूर होगये हैं मान और मोह जिनके	जितसङ्गदोषाः	जीता है सङ्ग के दोषों को जिन्होंने

अध्यात्मनित्याः=वेदान्तशास्त्र में नित्य लगे हैं जो
विनिवृत्तकामाः=अत्यन्त निवृत्त हुई हैं कामना जिनकी
सुखदुःखसंज्ञैः=सुख और दुःख नामक
द्वन्द्वैः=द्वन्द्व से
विमुक्ताः=मुक्तहुये हैं जो ऐसे
अमूढाः=विद्वान् पुरुष
तत्=उस
अव्ययम्=अविनाशी
पदम्=पदको
गच्छन्ति=प्राप्त होते हैं

भावार्थ ।

भगवान् अब ज्ञानके अङ्गोंको कहते हैं कि, हे प्रियदर्शन ! दूर होगया है मान और मोह जिनका, और जीतलिया है सङ्गदोष जिन्होंने, अर्थात् जो राग द्वेषादिकों से रहित हैं, और अध्यात्मविद्या में यानी आत्मविचार में नित्यही प्रीतिवाले हैं, और दूर होगई है मनकी कामना जिनकी और सुख दुःखादिकों का हेतु जो शीत उष्ण क्षुधा पिपासा आदि द्वन्द्व हैं, उनसे जो रहित हैं, ऐसे जो अमूढ़ यानी अज्ञान से रहित ज्ञानवान् पुरुष हैं, वे उस विष्णु के अव्यय पदको प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

मूलम् ।

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ६

पदच्छेदः।

न, तत्, भासयते, सूर्यः, न, शशाङ्कः, न, पावकः, यत्, गत्वा, न, निवर्तन्ते, तत्, धाम, परमम्, मम॥

अन्वयः शब्दार्थ

+ योगिनः=योगीलोग
यत्=जिसको
गत्वा=प्राप्त होकर
न=नहीं
निवर्तन्ते=लौट आते हैं
तत्=वह
मम=मेरा
परमम्=उत्तम
धाम=स्थान है
तत्=उसको
सूर्यः=सूर्य
न=नहीं

अन्वयः शब्दार्थ

भासयते=प्रकाश कर सक्ता है
+ च=और
शशाङ्कः=चन्द्रमा
न=नहीं
+ भासयते=प्रकाश कर सक्ता है
+ च=और
न=न
पावकः=अग्नि
+ भासयते=प्रकाश कर सक्ता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे प्रियमित्र ! जिस विष्णु के पदको प्राप्त होकर पुनः ज्ञानवान् मृत्युलोक को वापस नहीं आते हैं, उस पदको सबका प्रकाशक सूर्य भी प्रकाश नहीं करसक्ता है, और अग्नि भी उसको प्रकाश नहीं करसक्ता है, और न चन्द्रमा प्रकाश करसक्ता है, क्योंकि सूर्य अग्नि चन्द्रमा ये

सब जड़ हैं, जिस चेतन परमात्मा की सत्ता पाकरके ये सब आप प्रकाशमान होरहे हैं, उस चेतन को जड़ कैसे प्रकाश करसक्के हैं, किन्तु कदापि नहीं प्रकाश करसक्के हैं, भगवान् कहते हैं कि, हे कौन्तेय! जहांपर जाकर ज्ञानी संसार में फिरकर नहीं आते हैं, वही मेरा धाम यानी स्वरूप है ॥ ६ ॥

मूलम्।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ७

पदच्छेदः।

मम, एव, अंशः, जीवलोके, जीवभूतः, सनातनः, मनःषष्ठानि, इन्द्रियाणि, प्रकृतिस्थानि, कर्षति ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

जीवलोके=संसार में
सनातनः=सनातन
जीवभूतः=कर्ता भोक्ता जीव
ममएव=मेराही
अंशः=अंश है
+ सः=वह जीव

अन्वयः **शब्दार्थ**

प्रकृतिस्थानि=प्रकृति यानी आकाशादि से उत्पन्न हुये करण आदि गोलकों विषे स्थित हुये
इन्द्रियाणि=इन्द्रियों को
मनःषष्ठानि=जिनमें छठा मन है
कर्षति=खींचता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, मेरी माया शक्ति करके निरंश चेतन की अंश की तरह जीव प्रतीत होता है, जैसे जलमें सूर्यका प्रतिबिम्ब सूर्य से भेदवाला प्रतीत होताहै, और जैसे घटमें आकाश महाकाश से भेद वाला प्रतीत होताहै, वैसेही प्राणों को धारण करने से जीव भी मिथ्या अंश की तरह प्रतीत होता है, वास्तव से जीव नित्य है, परिच्छेद से रहित है, उपाधि करके परिच्छेदवाला प्रतीत होता है, परमात्मा के साथ जीवका कल्पित भेद है, वास्तव भेद नहीं है, अज्ञान करके जीव परमात्मा के साथ अप्राप्त की तरह प्रतीत होता है, ज्ञान करके प्राप्तकी तरह प्रतीत होताहै, जैसे कण्ठका भूषण भ्रान्ति करके खोया हुआ प्रतीत होता है, भ्रान्ति के निवृत्त होजाने पर प्राप्त की तरह प्रतीत होताहै, जीव अपने स्वरूप परमात्मा को नित्यही प्राप्त है, तब भी अज्ञान करके उसको वह स्वरूप प्राप्त की तरह अप्राप्त जीव ब्रह्म का भेद माया करके प्रतीत होता है, ज्ञान करके माया की निवृत्ति होने से फिर अभेद उनमें होजाता है, अनादि अविद्या के बाध होनेपर उसका कार्य जो संसार है, उसका भी बाध होजाता है, और तभी फिर जीवका संसारित्वभाव भी दूर होजाता है, हे मित्र! पांच इन्द्रिय, छठा मन, ये सब विषयों की

उपलब्धि में जीवके साधन हैं, सुषुप्ति में ये मन आदिक अपने कारण में सूक्ष्मरूप करके स्थित होजाते हैं, इसलिये उस काल में भोग नहीं होता है, फिर जाग्रत् में फल देनेवाले कर्म उद्भव जब होते हैं, तब इन्द्रियादिक विषय ज्ञानकी सिद्धिके लिये जीवात्माको खींचलेते हैं, इसवास्ते अनात्मबुद्धिवालों को आत्मा के अज्ञानसे आवृत्ति होती है, और आत्मज्ञानवालों की अनावृत्ति होती है, अर्थात् वे नहीं जन्मते हैं ॥ ७ ॥

मूलम् ।

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ८

पदच्छेदः ।

शरीरम्, यत्, अवाप्नोति, यत्, च, अपि, उत्क्रामति, ईश्वरः, गृहीत्वा, एतानि, संयाति, वायुः, गन्धान्, इव, आशयात् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अपि=निश्चय से
ईश्वरः=जीव
यत्=जिस
शरीरम्=शरीर को
उत्क्रामति=छोड़ता है
च=और

अन्वयः शब्दार्थ

यत्=जिसको
अवाप्नोति=प्राप्त होता है
एतानि=इन
+इन्द्रियाणि=इन्द्रियों को
गृहीत्वा=ग्रहण करके
संयाति=लेजाता है

इव=जैसे
वायुः=पवन
आशयात्=पुष्पादि से
गन्धान्=गन्धको
+ संयाति=लेजाता है

भावार्थ ।

प्रश्न ॥ जीव कब इन्द्रियों को खींचलेता है ॥ उत्तर ॥ भगवान् कहते हैं कि, हे कमलनयन ! देह इन्द्रियादिकों का स्वामी जीव जब पूर्व शरीर से दूसरे शरीर में जाने लगता है, तब मन के साहित सब इन्द्रियों को लेकरके जाता है, जैसे वायु पुष्पों से गन्ध को खींच लेजाती है, वैसेही जीव भी सब इन्द्रियों को मन के साहित खींचकर देहान्तर में लेजाता है ॥ ८ ॥

मूलम् ।

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ९

पदच्छेदः ।

श्रोत्रम्, चक्षुः, स्पर्शनम्, च, रसनम्, घ्राणम्, एव, च, अधिष्ठाय, मनः, च, अयम्, विषयान्, उपसेवते ॥

अन्वयः शब्दार्थ
अयम्=यह जीव
श्रोत्रम्=कर्ण को
च=और
चक्षुः=नेत्रको

अन्वयः शब्दार्थ
स्पर्शनम्=त्वचाको
च=और
रसनम्=जिह्वा को
घ्राणम्=नासिका को

च=और
मनः=मनको
अधिष्टाय=आश्रय करके
विषयान्=विषयों को
एव=निःसंदेह
उपसेवते=भोगता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय, और एक मन इनको आश्रयण करके यह जीवात्मा शब्द स्पर्शादिक विषयों को भोगता है, अर्थात् देह इन्द्रियादिकों में स्वत्व का अध्यास करके सुख दुःखादिकों का यह जीवात्मा भोक्ता है, वास्तव से अभोक्ता है ॥ ९ ॥

मूलम् ।

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः १०

पदच्छेदः ।

उत्क्रामन्तम्, स्थितम्, वा, अपि, भुञ्जानम्, वा, गुणान्वितम्, विमूढाः, न, अनुपश्यन्ति, पश्यन्ति, ज्ञानचक्षुषः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
विमूढाः=मूर्खलोग
उत्क्रामन्तम्=एक शरीर से दूसरे शरीर को जातेहुये

अन्वयः शब्दार्थ
वा=अथवा
स्थितम्=शरीरों में स्थित हुये

भुञ्जानम्=शब्दादि विषयों को भोग करते हुये
वा=अथवा
गुणान्वितम्=तमोगुण से युक्त हुये
अपि=भी
+ जीवम्=जीवात्मा को
न=नहीं
अनुपश्यन्ति=देखते हैं
ज्ञानचक्षुषः=ज्ञानचक्षुवाले पुरुष
पश्यन्ति=देखते हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे कमलपत्राक्ष ! पूर्वले देहसे देहान्तर को गमन करते हुये अथवा उसी पूर्वले देह में स्थित हुये विषयों को आदर से भोगतेहुये सुख दुःखादिक गुणों करके युक्त जीवात्मा को विमूढ़ यानी अज्ञानी नहीं देखते हैं, परन्तु ज्ञानी पुरुष ज्ञानचक्षु करके उसको देखते हैं ॥ १० ॥

मूलम्।

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ११

पदच्छेदः।

यतन्तः, योगिनः, च, एनम्, पश्यन्ति, आत्मनि, अवस्थितम्, यतन्तः, अपि, अकृतात्मानः, न, एनम्, पश्यन्ति, अचेतसः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
यतन्तः	यत्न करनेवाले
योगिनः	योगी
एनम्	इस जीव को
आत्मनि	अपने हृदय में
अवस्थितम्	स्थित
पश्यन्ति	देखते हैं
च	और
अचेतसः	मन्दमति पुरुष
च	और
अकृतात्मानः	मलिन अन्तःकरणवाले
यतन्तः	यत्न करते हुये
अपि	भी
एनम्	इस जीवात्मा को
न पश्यन्ति	नहीं देखते हैं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, जो योग करके सम्पन्न हैं, वे यत्न से ध्यानादिकों करके अपनी बुद्धि में जल विषे सूर्य प्रतिबिम्बित आत्मा को देखते हैं, और जिनका चित्त शुद्ध नहीं है, वे यत्न करतेहुये भी अपनी बुद्धि में इसप्रकार अपने आत्मा को नहीं देखसके हैं ॥ ११ ॥

मूलम् ।

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् १२

पदच्छेदः ।

यत्, आदित्यगतम्, तेजः, जगत्, भासयते, अखि-

लम्, यत्, चन्द्रमसि, यत्, च, अग्नौ, तत्, तेजः, विद्धि, मामकम्॥

अन्वयः शब्दार्थ

यत्=जो
आदित्यगतम्=सूर्य में गया हुआ यानी सूर्य बिषे स्थित
तेजः=तेज
अखिलम्=संपूर्ण
जगत्=संसार को
भासयते=प्रकाश करता है
च=और

अन्वयः शब्दार्थ

यत्=जो
+ तेजः=तेज
चन्द्रमसि=चन्द्रमा में
+ च=और
यत्=जो
अग्नौ=अग्नि में
+ अस्ति=है
तत्=उस
तेजः=तेजको
मामकम्=मेराही स्वरूप
विद्धि=जान तू

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे सौम्य! जो सूर्य में स्थित चैतन्यस्वरूप प्रकाशमान ज्योति संपूर्ण जगत् को प्रकाश करनेवाली है, और जो चन्द्रमा व अग्नि में स्थित ज्योति है, वह सब तेज मेराही है, क्योंकि मेरी सत्ता करकेही वे सब प्रकाशमान हैं॥ १२॥

मूलम् ।

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीःसर्वाःसोमो भूत्वा रसात्मकः १३

पदच्छेदः ।

गाम्, आविश्य, च, भूतानि, धारयामि, अहम्, ओजसा, पुष्णामि, च, ओषधीः, सर्वाः, सोमः, भूत्वा, रसात्मकः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
अहम्=मैं
+ एव=ही
गाम्=पृथिवी में
आविश्य=प्रवेश करके
भूतानि=प्राणियों को
ओजसा=बलसे
धारयामि=धारण करताहूं

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
रसात्मकः=रसवाला
सोमः=चन्द्रमा
भूत्वा=होकर
सर्वाः=सब
ओषधीः=ओषधियों को
पुष्णामि=पुष्टकरताहूं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे सौम्य ! मैंही पृथिवी में प्रवेश करके अपने बलसे इस पृथिवी को धारण कर रहाहूं और मैंही चन्द्रमारूप होकर संपूर्ण ओषधियों को पुष्ट करताहूं ॥ १३ ॥

मूलम्।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् १४

पदच्छेदः।

अहम्, वैश्वानरः, भूत्वा, प्राणिनाम्, देहम, आश्रितः, प्राणापानसमायुक्तः, पचामि, अन्नम्, चतुर्विधम्॥

अन्वयः शब्दार्थ

अहम्=मैं
+एव=ही
वैश्वानरः=वैश्वानरअग्नि
भूत्वा=होकर
प्राणिनाम्=प्राणियों के
देहम्=शरीर को
आश्रितः=आश्रय करता हुआ

अन्वयः शब्दार्थ

+च=और
प्राणापानसमायुक्तः=प्राण और अपान वायु से संयुक्त हुआ
चतुर्विधम्=चारप्रकार के
अन्नम्=अन्नको
पचामि=पचाताहूं

भावार्थ।

और मैंही वैश्वानर यानी जठराग्निरूप होकर प्राणियों के देहके अन्तर स्थिर होकर चार प्रकार के अन्न (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य) को पचाताहूं॥१४॥

मूलम्।

सर्वस्य चाहंहृदि सन्निविष्टो मत्तःस्मृतिर्ज्ञान-

मपोहनञ्च। वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् १५

पदच्छेदः।

सर्वस्य, च, अहम, हृदि, सन्निविष्टः, मत्तः, स्मृतिः, ज्ञानम्, अपोहनम्, च, वेदैः, च, सर्वैः, अहम्, एव, वेद्यः, वेदान्तकृत्, वेदवित्, एव, च, अहम् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

अहम्=मैं
सर्वस्य=सब के
हृदि=हृदय में
सन्निविष्टः=स्थितहूं
च=और
मत्तः=मुझही करके
स्मृतिः=स्मृति
च=और
ज्ञानम्=ज्ञान
+ भवति=होता है
च=और
+ तयोः=उन दोनों का
अपोहनम्=नाश
+ एव=भी
+ भवति=होता है
च=और
सर्वैःवेदैः=सब वेदों करके
अहम् एव=मैंही
वेद्यः=जानने योग्यहूं
+ च=और
अहम्=मैं
वेदान्तकृत्=वेदान्त शास्त्र का करने वाला
+ च=और
वेदवित्एव=वेदका जानने वाला भी हूं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त जितने प्राणी जाति हैं, उन सबकी बुद्धियों में मैंही आत्मारूप होकर प्रविष्ट हुआ हूं, और मेरीही सत्ता करके उन सब जीवों को पूर्व अनुभूत पदार्थों की स्मृति होती है और विषय इन्द्रियों के संयोग से जन्य ज्ञानभी होता है और मेरेही सकाश से काम क्रोधादिकों करके व्याकुल चित्तवालों का नाश भी होताहै, और संपूर्ण वेदों करके मैंही वेद्यहूं, यानी जानने योग्यहूं, और वेदव्यासरूप होकर वेदान्तशास्त्र का प्रवर्तक भी मैंही हुआहूं, और सम्पूर्ण वेद के तात्पर्य का वेत्ताभी मैंही हूं ॥ १५ ॥

मूलम्।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते १६

पदच्छेदः।

द्वौ, इमौ, पुरुषौ, लोके, क्षरः, च, अक्षरः, एव, च, क्षरः, सर्वाणि, भूतानि, कूटस्थः, अक्षरः, उच्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
क्षरः=क्षर	इमौ=ये
च=और	द्वौ=दो
अक्षरः=अक्षर	पुरुषौ=पुरुष

लोके=लोक बिषे
एव=प्रसिद्ध
+ स्तः=हैं
सर्वाणि=संपूर्ण
भूतानि=भूतसमुदाय
क्षरः=क्षर
उच्यते=कहाजाताहै
च=और
कूटस्थः=सगुण चेतन
अक्षरः=अक्षर
+ उच्यते=कहाजाताहै

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! इस लोकमें उपाधि भेद करके पुरुष शब्द के दो वाक्य हैं, एक तो क्षर यानी नाशी है, दूसरा अक्षर यानी नाशरहित है, दोनों में से जितना कि भूतों का समुदायरूप कार्यमात्र है, वह क्षर कहाजाता है, और जो सबका कारण चेतनहै, वह अक्षर कूटस्थ कहा जाता है ॥ १६ ॥

मूलम् ।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः १७

पदच्छेदः ।

उत्तमः, पुरुषः, तु, अन्यः, परमात्मा, इति, उदाहृतः, यः, लोकत्रयम्, आविश्य, बिभर्ति, अव्ययः, ईश्वरः॥

अन्वयः **शब्दार्थ**
यः=जो
अव्ययः=अविनाशी
अन्वयः **शब्दार्थ**
ईश्वरः=ईश्वर
लोकत्रयम्=तीनों लोकों में

आविश्य=प्रवेश करके
बिभर्ति=उनको धारण करता है
+सः=वह
उत्तमः=उत्तम
पुरुषः=पुरुष

अन्यः=क्षर अक्षर से विलक्षण
परमात्मा=परमात्मा
इति=करके
तु=ही
उदाहृतः=कहागया है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ! पूर्ववाक्य से ये जो मैंने दो प्रकार के क्षर अक्षररूप कहे हैं, उन दोनों से विलक्षण निर्विकार उपाधि से रहित शुद्ध चेतन तीसरा है, वह परमात्मा शब्द करके कहा जाता है, उसीको निर्गुण ब्रह्म भी कहते हैं, वही ईश्वर संपूर्ण जगत् को अपनी सत्ता स्फूर्ति देकर धारण पालन कर रहा है ॥ १७ ॥

मूलम्।

यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः १८

पदच्छेदः।

यस्मात्, क्षरम्, अतीतः, अहम्, अक्षरात्, अपि, च, उत्तमः, अतः, अस्मि, लोके, वेदे, च, प्रथितः, पुरुषोत्तमः॥

अन्वयः शब्दार्थ
यस्मात्=चूंकि

अन्वयः शब्दार्थ
अहम्=मैं

क्षरम्=क्षर
च=और
अक्षरात्=अक्षरसे
अपि=भी
उत्तमः=अत्यन्त
अतीतः=परे हूं
अतः=इसलिये
लोके=लोक में
च=और
वेदे=वेद में
पुरुषोत्तमः=पुरुषोत्तम
प्रथितः=प्रसिद्ध
अस्मि=हूं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे मित्र ! जिस कारण क्षर जो माया का कार्य है, और अक्षर जो अव्याकृत संसारवृक्ष का बीजभूत माया है, इन दोनों से मैं रहित हूं इसलिये लोक और वेद में मेरा नाम पुरुषोत्तम है ॥ १८ ॥

मूलम् ।

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजते मां सर्वभावेन भारत १९

पदच्छेदः ।

यः, माम्, एवम्, असम्मूढः, जानाति, पुरुषोत्तमम्, सः, सर्ववित्, भजते, माम्, सर्वभावेन, भारत ॥

अन्वयः शब्दार्थ
भारत=हे अर्जुन !
यः=जो

अन्वयः शब्दार्थ
असंमूढः=विद्वान्
एवम्=इसप्रकार से

माम्=मुझको
पुरुषोत्तमम्=पुरुषोत्तम
जानाति=जानता है
सः=वह
सर्ववित्=सबका जाननेवाला
सर्वभावेन=सबभावसे
माम्=मुझको
भजते=भजता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे सौम्य! जो पुरुष असंमूढ़ यानी सांसारिक मोहसे रहित होकर मुझकोही साक्षात् पुरुषोत्तम जानता है, वह पुरुष सर्वप्रकार से मेराही भजन करता है ॥ १९ ॥

मूलम्।

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयाऽनघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात् कृतकृत्यश्च भारत २०

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तम-
योगोनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

पदच्छेदः।

इति, गुह्यतमम्, शास्त्रम्, इदम्, उक्तम्, मया, अनघ, एतत्, बुद्ध्वा, बुद्धिमान्, स्यात्, कृतकृत्यः, च, भारत ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अनघ=हे निष्पाप !
इति=इस प्रकार
इदम्=यह
गुह्यतमम्=गोप्य
शास्त्रम्=शास्त्र
मया=मुझकरके
उक्तम्=कहागया है

अन्वयः शब्दार्थ

भारत=हे अर्जुन !
एतत्=इसको
बुद्ध्वा=जानकरके
बुद्धिमान्=ब्रह्मज्ञानी
च=निःसन्देह
कृतकृत्यः=कृतार्थ
स्यात्=होता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे कौन्तेय ! हे अनघ=निष्पाप, अर्जुन ! इस अध्याय में सम्पूर्ण शास्त्रों का सारभूत और अतिगोप्य यह गीताशास्त्र का रहस्य मैंने तेरेप्रति कहा है, इस सारको जानकर बुद्धिमान् पुरुष कृतकृत्य होजाता है अर्थात् फिर उसको कुछ भी करने योग्य नहीं रहता है ॥ २० ॥

पन्द्रहवां अध्याय समाप्त ॥

सोलहवां अध्याय ।

मूलम् ।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् १

पदच्छेदः ।

अभयम्, सत्त्वसंशुद्धिः, ज्ञानयोगव्यवस्थितिः, दानम्, दमः, च, यज्ञः, च, स्वाध्यायः, तपः, आर्जवम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
अभयम्	भयरहित होना
सत्त्वसंशुद्धिः	शुद्ध अन्तःकरणका होना
ज्ञानयोगव्यवस्थितिः	ज्ञानयोग में स्थित रहना
दानम्	दान करना
दमः	इन्द्रियों का रोकना
च	और
यज्ञः	यज्ञ करना
स्वाध्यायः	वेद और शास्त्र का पढ़ना
तपः	तपकरना
च	और
आर्जवम्	कोमलहोना

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ ।

अब सोलहवें अध्याय में बन्ध मोक्ष का हेतु जो दैवासुरसंपदा है उसके स्वरूपको भगवान् प्रथम कथन करते हैं कि, हे मित्र ! ॥ अभयमिति ॥ शास्त्र करके उपदेश कियाहुआ जो अर्थ है संशयरहित उसके अनुष्ठान करनेका नाम अभय है ॥ सत्त्वसंशुद्धिरिति ॥ अन्तःकरण की शुद्धिका नाम सत्त्वसंशुद्धि है, छल कपट करके दूसरों के द्रव्यको वञ्चन करना, चित्त में और वार्ताको रखकर मुखसे और कथन करना, और

जो चित्त में होना उसको मुख से नहीं कहना, जो मुखसे कहना उसको नहीं करना इसीका नाम अन्तःकरण की अशुद्धि है, उससे रहित होने का नाम अन्तःकरण की शुद्धिहै, ॥ ज्ञानयोगव्यवस्थितिरिति ॥ शास्त्रद्वारा जो तत्त्ववस्तुका यथार्थ ज्ञान हुआ है उसी में चित्तको एकाग्र करके आरूढ़ होजाने का नामही ज्ञानयोगव्यवस्थिति है, जो अत्यन्त विवेकी पुरुष हैं उनके लिये भगवान् ने यह दैवी सम्पदा कही है, अब गृहस्थाश्रमियों के प्रति साधारण सम्पदा को कहते हैं ॥ दानमिति ॥ यथाशक्ति पदार्थ में अपने स्वत्वका त्याग करके दूसरे के स्वत्व को उत्पन्न करने का नामही दान है, और बाह्य इन्द्रियों के संयम का नाम दम है, और श्रुति स्मृति प्रतिपाद्य अग्निहोत्रादिकों के करने का नाम यज्ञ है, और काया वाचा मनसा करके शरीर को ईश्वर निमित्त कष्ट देना तप कहलाता है, और ऋगादि वेदों के विधिपूर्वक अध्ययन करने का नाम स्वाध्याय है, और कोमल स्वभाव होनेका नाम आर्जव है ॥ १ ॥

मूलम्।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् २

पदच्छेदः।

अहिंसा, सत्यम्, अक्रोधः, त्यागः, शान्तिः, अपै-

शुनम्, दया, भूतेषु, अलोलुप्तम्, मार्दवम्, ह्रीः, अचापलम्॥

अन्वयः शब्दार्थ

अहिंसा=मन, वाणी और शरीर करके किसी को दुःख न देना
सत्यम्=सत्यबोलना
अक्रोधः=क्रोध न करना
त्यागः=समस्त पदार्थों का त्याग करना

अन्वयः शब्दार्थ

शान्तिः=शान्तरहना
अपैशुनम्=चुगली न करना
भूतेषु=प्राणियों पर
दया=दया करना
अलोलुप्तम्=लोभ न करना
मार्दवम्=कोमलहोना
ह्रीः=लज्जा करना
अचापलम्=चपलता रहित होना

(इस श्लोकका सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! जीवमात्र की हिंसा न करनी, असत्यभाषण कदापि न करना, सदैवही सत्यभाषण करना, क्रोधका त्याग करना, दूसरों के छिद्रोंको न देखना, सब प्राणियोंपर दया करनी, विषयों की समीपता में भी विकार को न प्राप्त होना, और कोमल स्वभाव होना, लज्जा करना, हाथ पांव की वृथा चेष्टा से रहित होना ॥ २ ॥

मूलम् ।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ३

पदच्छेदः ।

तेजः, क्षमा, धृतिः, शौचम्, अद्रोहः, न, अतिमानिता, भवन्ति, सम्पदम्, दैवीम्, अभिजातस्य, भारत ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तेजः=तेजस्वी होना
क्षमा=सहनशीलता रखना
धृतिः=धैर्य रखना
शौचम्=शुद्धरहना
अद्रोहः=वैर न करना
न=न
अतिमानिता=अभिमान करना

अन्वयः शब्दार्थ

भारत=हे अर्जुन !
+ एतेगुणाः=ये सब गुण
दैवीम्=दैवसम्बन्धी
सम्पदम्=सम्पत्ति के सम्मुख
अभिजातस्य=पैदाहुयों के
भवन्ति=होते हैं

भावार्थ ।

तेजस्वीहोना, क्षमा करना, धैर्यता होनी, शुद्ध रहना, द्रोहसे रहितहोना, अतिमानी न होना, ये सब गुण दैवीसम्पद्वालों के हैं ॥ ३ ॥

मूलम्।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ४

पदच्छेदः।

दम्भः, दर्पः, अभिमानः, च, क्रोधः, पारुष्यम्, एव, च, अज्ञानम्, च, अभिजातस्य, पार्थ, सम्पदम्, आसुरीम्॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

च=और
दम्भः=पाखण्डकरना
दर्पः=नम्रता रहित होना
च=और
अभिमानः=अहंकार करना
क्रोधः=क्रोधकरना
पारुष्यम्=कठोरहोना
च=और
अज्ञानम्=अज्ञानता करना

अन्वयः **शब्दार्थ**

पार्थ=हे अर्जुन !
एव=निश्चय करके
+एतेगुणाः=ये सब गुण
आसुरीम्=असुरसम्बन्धी
सम्पदम्=सम्पत्ति के सम्मुख
अभिजातस्य=पैदाहुयों के
+ भवन्ति=होते हैं

भावार्थ।

पूर्व तीन वाक्यों करके भगवान् ने ग्रहण करने के लिये दैवीसम्पदा कही है, अब एक वाक्य करके त्याग करने के लिये आसुरी सम्पदा को कहते हैं कि, हे पार्थ ! अपने को धर्मात्मा प्रसिद्ध करने का

नाम दम्भ है, और धनको प्राप्त होकर गर्व करने का नाम दर्प है, दूसरों को अपने से नीचे जानने और अपनेकोही सबसे उत्तम जाननेका नाम अभिमान है, विनाही कारण के दूसरे को दुःख देनेवाली चित्त की वृत्तिका नाम क्रोध है, और कठोर वचन बोलने का नाम पारुष्य है, और कर्तव्य अकर्तव्यका विवेक न होने का नाम अज्ञान है, ये सब दुष्ट गुण आसुरी सम्पदावालों के हैं ॥ ४ ॥

मूलम् ।

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायाऽऽसुरी मता ।
माशुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ५

पदच्छेदः ।

॥ दैवी, सम्पद्, विमोक्षाय, निबन्धाय, आसुरी, मता, माशुचः, सम्पदम्, दैवीम्, अभिजातः, असि, पाण्डव ॥

अन्वयः शब्दार्थ

दैवीसंपद्=दैवीसंपत्ति
विमोक्षाय=मोक्षके लिये है
+च=और
आसुरी=आसुरीसम्पत्ति
निबन्धाय=बन्धनके लिये
मता=मानी गई है

अन्वयः शब्दार्थ

पाण्डव=हे अर्जुन!
माशुचः=मत शोचकर
दैवीम्=दैवी
सम्पदम्=संपत्तिकेसम्मुख
अभिजातः=पैदाहुआ
असि=है तू

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ! दैवीसम्पद् पुरुषों

को बन्धन से छुड़ानेवाली है, और आसुरीसम्पद् पुरुषों को बन्धन में डालनेवाली है, ऐसा सुनकर अर्जुन को सन्देह हुआ कि मैं कौनसी सम्पद् में उत्पन्न हुआहूं, उस सन्देह के दूर करने के लिये भगवान् कहते हैं कि, हे पाण्डव ! शोकको मतकर क्योंकि तू दैवीसम्पद् में उत्पन्न हुआ है ॥ ५ ॥

मूलम्।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ६

पदच्छेदः।

द्वौ, भूतसर्गौ, लोके, अस्मिन्, दैवः, आसुरः, एव, च, दैवः, विस्तरशः, प्रोक्तः, आसुरम्, पार्थ, मे, शृणु ॥

अन्वयः शब्दार्थ

एव=निश्चय करके
अस्मिन्=इस
लोके=लोक में
भूतसर्गौ=प्राणियों की सृष्टि
द्वौ=दोप्रकार की हैं
दैवः=देवसंबन्धी
च=और
आसुरः=असुरसंबन्धी

अन्वयः शब्दार्थ

दैवः=देवसंबन्धी सृष्टि
विस्तरशः=विस्तारपूर्वक
मे=मुझकरके
प्रोक्तः=कही गई है
+ अधुना=अब
पार्थ=हे अर्जुन !
आसुरम्=असुरसंबन्धी सृष्टि
शृणु=सुन तू

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! संसार में दो प्रकार की मनुष्यों की सृष्टि है, एक तो दैवी सृष्टि है, दूसरी आसुरी सृष्टि है, जो मनुष्यादि शास्त्रके संस्कारों से राग द्वेष रहित होकर धर्मपरायण होता है, वह देवता कहाता है, और जो शास्त्रके संस्कारों से शून्य राग द्वेष करके युक्त होताहै, वह असुर कहाजाता है, दोनों में से दैवसर्ग को मैंने तुम्हारे प्रति पूर्व कह दिया है, अब हम आसुरीसंपद् को विस्तार से कहते हैं, उसको तुम सुनो ॥ ६ ॥

मूलम् ।

प्रवृत्तिञ्च निवृत्तिञ्च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ७

पदच्छेदः ।

प्रवृत्तिम्, च, निवृत्तिम्, च, जनाः, न, विदुः, आसुराः, न, शौचम्, न, अपि, च, आचारः, न, सत्यम्, तेषु, विद्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ
आसुराः=असुरभाववाले
जनाः=जन
प्रवृत्तिम्=प्रवृत्तिमार्ग को
च=और

अन्वयः शब्दार्थ
निवृत्तिम्=निवृत्ति मार्ग को
न विदुः=नहीं जानते हैं
तेषु=उन बिषे

शौचम्=पवित्रता
न=नहीं
विद्यते=होती है
च=और
आचारः=आचार
न=नहीं
+ विद्यते=होता है
च=और
सत्यम्=सत्य
अपि=भी
न=नहीं
+ विद्यते=होता है

भावार्थ।

अब भगवान् त्यागने योग्य आसुरीसम्पद् को दिखाते हैं कि, हे पार्थ! श्रुतिबोधनकृत प्रवृत्ति का विषय जो धर्म है, और निवृत्ति का विषय जो अधर्म है, इन दोनों को आसुरी स्वभाववाले पुरुष नहीं जानसक्ते हैं, इसी वास्ते उनमें स्मृतिविहित शौच और आचार नहीं रहता है, और सत्यभाषण भी उनमें नहीं रहता है ॥ ७ ॥

मूलम्।

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत् कामहैतुकम् ८

पदच्छेदः।

असत्यम्, अप्रतिष्ठम्, ते, जगत्, आहुः, अनीश्वरम्, अपरस्परसम्भूतम्, किम्, अन्यत्, कामहैतुकम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
ते=वे लोग

अन्वयः शब्दार्थ
जगत्=संसार को

असत्यम्=असत्
अप्रतिष्ठम्=अनवस्थित
अनीश्वरम्=ईश्वररहित
अपरस्परसम्भूतम्=स्त्री औरपुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ

कामहैतुकम्=कामही कारण वाला
आहुः=कहते हैं
किम्अन्यत्=और क्या है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे नरसिंह ! वह आसुरी स्वभाववाले देहात्मवादी जगत् को कारणशून्य ही मानते हैं, अर्थात् जगत् को निराश्रय मानते हैं, यानी विनाही कर्ता के जगत् की उत्पत्ति को वे मानते हैं, ईश्वरको जगत् का कर्ता वे नहीं मानते हैं, इसीवास्ते शास्त्रविरुद्ध यथेष्टाचरण को वे करते हैं, और स्त्री पुरुष के संयोगसे ही वे जीवोंकी उत्पत्तिको मानते हैं, कोई दूसरा कारण नहीं मानते हैं ॥ ८ ॥

मूलम्।

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ९

पदच्छेदः।

एताम्, दृष्टिम्, अवष्टभ्य, नष्टात्मानः, अल्पबुद्धयः, प्रभवन्ति, उग्रकर्माणः, क्षयाय, जगतः, अहिताः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

नष्टात्मानः=नष्ट हुआ है मन जिनका

अल्पबुद्धयः=अल्प है बुद्धि जिनकी

उग्रकर्माणः=दुष्ट हैं कर्म जिनके

अहिताः=धर्म के वैरी हैं जो

अन्वयः शब्दार्थ

+ ईदृशाः पुरुषाः=ऐसे पुरुष

एताम्=इस पूर्वोक्त कहेहुये

दृष्टिम्=ख्याल को

अवष्टभ्य=धारण करके

जगतः=संसार के

क्षयाय=नाश के लिये

प्रभवन्ति=उत्पन्न होते हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे उत्तमपुरुष! देहात्मवादी जो चार्वाक हैं, वे तुच्छ विषयों में दृष्टि को आश्रयण करके परलोक के साधनों से भ्रष्ट होगये हैं, वे मर करके प्राणियों को पीड़ाकरने के लिये व्याघ्र सर्पादिकों की योनियों में उत्पन्न होते हैं॥ ९॥

मूलम्।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वाऽसद्ग्राहान् प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः १०

पदच्छेदः।

कामम्, आश्रित्य, दुष्पूरम्, दम्भमानमदान्विताः,

मोहात्, गृहीत्वा, असद्ग्राहान्, प्रवर्तन्ते, अशुचिव्रताः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

दम्भमानमदान्विताः = दम्भ, मान और मदसे युक्त पुरुष

दुष्पूरम् = कठिनता से पूर्ण होनेवाले

कामम् = कामको

आश्रित्य = आश्रय करके

+ च = और

अन्वयः **शब्दार्थ**

अशुचिव्रताः = अपवित्रव्रतको धारण कियेहुये

मोहात् = अज्ञान से

असद्ग्राहान् = दुराग्रहों को

गृहीत्वा = अङ्गीकार करके

प्रवर्तन्ते = प्रवृत्त होते हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे कौन्तेय ! दुःख करके भी जो कदापि पूर्ति को नहीं प्राप्त होती है ऐसी जो इच्छा यानी तृष्णा है उसीको वे आसुरीसंपद्वाले आश्रयण करके अपने को धर्मात्मा बताकर दम्भ और मान करके युक्त होते हैं, और अविवेक करके झूठे आग्रहों को आश्रयण करके कल्पित मन्त्रों करके कल्पित देवताओं के सिद्ध करने की इच्छा को करके शत्रु के मारने की इच्छा को करते हैं, और वह आसुरीसंपद्वाले झूठे हठों करके भोगों के लोभ से क्षुद्र भूतप्रेतों की उपासना को करते हैं, इसी वास्ते वे अशुद्धव्रतोंवाले कहे जाते हैं ॥ १० ॥

मूलम्।

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ११

पदच्छेदः।

चिन्ताम्, अपरिमेयाम्, च, प्रलयान्ताम्, उपाश्रिताः, कामोपभोगपरमाः, एतावत्, इति, निश्चिताः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
अपरिमेयाम्	परिमाण रहित है जो
च	और
प्रलयान्ताम्	प्रलयही है अन्त जिसका ऐसी
चिन्ताम्	चिन्ता को
उपाश्रिताः	आश्रय कियेहैं जो
+ च	और
कामोपभोगपरमाः	शब्दादि विषय भोग और स्त्री प्रसङ्ग की कामना है जिनको
+ च	और
एतावत्	इतनाही है संसार बिषे
+ अन्यत् किञ्चित् न	और कुछ नहीं है
इति	ऐसा
निश्चिताः	निश्चयवाले हैं जो

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ।

और जो प्रमाण से रहित चिन्ताहै, उसी भोगविषयिणी चिन्ता को वे मरण पर्यन्त आश्रयण करते हैं, और दृष्ट भोगों की प्राप्ति कोही वे परम पुरुषार्थ मानते हैं, और विषय सुख से परे वे और कोई सुखको नहीं मानते हैं, ऐसा उनका निश्चय है ॥ ११ ॥

मूलम्।

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् १२

पदच्छेदः।

आशापाशशतैः, बद्धाः, कामक्रोधपरायणाः, ईहन्ते, कामभोगार्थम्, अन्यायेन, अर्थसञ्चयान् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

च=और
आशापशशतैः=आशा के सैकड़ों पाशों से
बद्धाः=बँधेहुये हैं जो
+च=और
कामक्रोधपरायणाः=काम और क्रोध में तत्पर होरहे हैं जो

अन्वयः **शब्दार्थ**

+ईदृशाः पुरुषा=ऐसे पुरुष
अन्यायन=अन्यायों के साथ
कामभोगार्थम्=काम और भोगों के लिये
अर्थसञ्चयान्=धनके समूहों को
ईहन्ते=इच्छा करते हैं

भावार्थ।

और आशारूपी सैकड़ों फाँसों करके वे फँसे हुये हैं अर्थात् बन्धायमान होरहे हैं, और काम क्रोध परायण होरहे हैं, क्योंकि भोगों के लियेही वे सच्ची चेष्टाको करते हैं, और भोगों के भोगने के लिये वे अन्याय करके धनको उपार्जन करते हैं ॥ १२ ॥

मूलम्।

इदमद्य मया लब्धमिदम्प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् १३

पदच्छेदः।

इदम्, अद्य, मया, लब्धम्, इदम्, प्राप्स्ये, मनारथम्, इदम्, अस्ति, इदम्, अपि, मे, भविष्याति, पुनः, धनम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अद्य=आज
इदम्=यह
+ द्रव्यम्=धन
मया=मुझ करके
लब्धम्=प्राप्त हुआ है
+ च=और
मनोरथम्=मनको संतुष्ट करनेवाले

अन्वयः शब्दार्थ

इदम् } =इस धन को
धनम् }
+श्वोदिवसे=कलके दिन
प्राप्स्ये=पाऊंगा मैं
इदम्=यह
मे=मेरा
+ अस्ति=है
+ च=और

इदम्=यह
धनम्=धन
पुनः अपि=फिर भी

+ मे=मेराही
भविष्यति=होगा

भावार्थ।

और नित्यही ऐसी ऐसी कामनाओं को करते रहते हैं कि, यह धन हमको आज प्राप्त हुआ है, और भी धन हमको उपाय करके शीघ्रही मिलेगा, यह धन तो हमने पूर्वही संचय किया था, क्योंकि आगे हमको इससे सुख मिलेगा, इस तरह की चिन्ता करके वे सदैव व्याकुल हुये घोर नरकों में जाते हैं ॥ १३ ॥

मूलम्।

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी १४

पदच्छेदः।

असौ, मया, हतः, शत्रुः, हनिष्ये, च, अपरान्, अपि, ईश्वरः, अहम्, अहम्, भोगी, सिद्धः, अहम्, बलवान्, सुखी ॥

अन्वयः शब्दार्थ

असौ=यह
शत्रुः=वैरी
मया=मुझ करके
हतः=मारागया है

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
अपरान्=औरोंको
अपि=भी
हनिष्ये=मारूंगा

अहम्=मैं
ईश्वरः=समर्थ हूं
अहम्=मैं
भोगी=भोगनेवालाहूं

अहम्=मैं
बलवान्=बलवान् हूं
सुखी=सुखी हूं
सिद्धः=सिद्ध हूं

भावार्थ।

इस शत्रुको हमने मारलिया है, अब दूसरे शत्रुओं को भी मारेंगे, हमहीं सबके स्वामी हैं, हमहीं भोगी हैं, हमहीं बलवाले हैं, हमहीं सुखी हैं, हमारे तुल्य दूसरा संसार में कौन है ॥ १४ ॥

मूलम्।

आढ्योऽभिजनवानास्मि कोन्योऽस्तिसदृशोमया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः १५

पदच्छेदः।

आढ्यः, अभिजनवान्, अस्मि, कः, अन्यः, अस्ति, सदृशः, मया, यक्ष्ये, दास्यामि, मोदिष्ये, इति, अज्ञानविमोहिताः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
आढ्यः=धनवान्
+ च=और
अभिजनवान्=कुलीन
अस्मि=हूं म

अन्वयः शब्दार्थ
मया=मेरे
सदृशः=तुल्य
अन्यः=और
कः=कौन
अस्ति=है

यक्ष्ये=यज्ञ करूंगा मैं
दास्यामि=दानदूंगा मैं
मोदिष्ये=आनन्दित रहूंगा मैं
इति=इस प्रकार
अज्ञानविमोहिताः=अज्ञान करके मोहित हुये हैं जो
+ च=और

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ ।

हमहीं धनवान् हैं, हमहीं कुलीन हैं, और हमारे तुल्य संसार में कौन है, जगत् में स्तुति करनेवाले जो भट्टादिक हैं उनके प्रति हम दानको देवेंगे, हमहीं यज्ञ करेंगे, इस प्रकार के अज्ञान करके वे मोह को प्राप्त होरहे हैं ॥ १५ ॥

मूलम् ।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ १६

पदच्छेदः ।

अनेकचित्तविभ्रान्ताः, मोहजालसमावृताः, प्रसक्ताः, कामभोगेषु, पतन्ति, नरके, अशुचौ ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अनेकचित्तविभ्रान्ताः	अनेकविषयों सेचित्तभ्रान्त होरहा है जिनका	मोहजालसमावृताः	मोहरूपी जालसे ढके हुये हैं जो

कामभोगेषु=कामों और भोगों में
प्रसक्ताः=आसक्तहोरहे हैं जो
+ईदृशाः पुरुषाः=ऐसे पुरुष
अशुचौ=अपवित्र
नरके=नरक में
पतन्ति=गिरते हैं

भावार्थ।

अनेक प्रकार के सङ्कल्पों करके जिनका चित्त भ्रान्ति को प्राप्त होरहा है, और मोहरूपी जाल करके मत्स्य की तरह जो बन्धायमान होरहा है, फिर जिनका चित्त कामना के भोगों में ही आसक्त होरहा है, वे बार बार नरकों में ही गिरते हैं॥ १६॥

मूलम्।

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् १७

पदच्छेदः।

आत्मसम्भाविताः, स्तब्धाः, धनमानमदान्विताः, यजन्ते, नामयज्ञैः, ते, दम्भेन, अविधिपूर्वकम्॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आत्मसम्भाविताः	=अपने को बड़ा समझनेवाले हैं जो	धनमानमदान्विताः	=धन के मान और अहङ्कारसे भरे हुये हैं जो
स्तब्धाः	=नम्रता रहितहैं जो	+ईदृशाः	=ऐसे

ते=वे पुरुष
दम्भेन=दम्भ करके
अविधिपूर्वकम्=शास्त्रविधिरहित
नामयज्ञैः=नाममात्र यज्ञों करके
यजन्ते=यज्ञ करते हैं

भावार्थ ।

और जो कहते हैं कि, सम्पूर्ण गुणों करके हमहीं पूज्य हैं, इस प्रकार जो अपनेकोही पूज्य मानते हैं, और किसी के आगे नम्र भी नहीं होते हैं, और धन के मद करके जो युक्त हैं, और विधि से रहित दम्भपूर्वक जो केवल नाममात्र के लिये यज्ञों को करते हैं, वे नरकों में ही गिरते हैं ॥ १७ ॥

मूलम् ।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधञ्च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः १८

पदच्छेदः ।

अहंकारम्, बलम्, दर्पम्, कामम्, क्रोधम्, च, संश्रिताः, माम्, आत्मपरदेहेषु, प्रद्विषन्तः, अभ्यसूयकाः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
अहंकारम्=अहंकार को
बलम्=बलको
दर्पम्=अभिमान को

अन्वयः शब्दार्थ
कामम्=कामको
च=और
क्रोधम्=क्रोधको

संश्रिताः=आश्रय किये हुये हैं जो
+ च=और
आत्मपरदेहेषु=अपने और पराये देहों में
माम्=मुझ से

प्रद्विषन्तः=द्वेष करनेवाले हैं जो
+ च=और
+ मम=मेरी
अभ्यसूयकाः=निन्दा करने वाले हैं जो

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ ।

फिर अहंकार और बल तथा दर्प और काम व क्रोध कोही जिन्होंने आश्रयण किया है, और जो अपने शरीर में और मेरे भक्तों के शरीर में विद्यमान जो मैं हूं मेरे साथ जो द्वेष को करते हैं, और असूया को करते हैं ॥ १८ ॥

मूलम् ।

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु १९

पदच्छेदः ।

तान्, अहम्, द्विषतः, क्रूरान्, संसारेषु, नराधमान्, क्षिपामि, अजस्रम्, अशुभान्, आसुरीषु, एव, योनिषु ॥

अन्वयः शब्दार्थ
तान्=उन
द्विषतः=वैर रखनेवालों

अन्वयः शब्दार्थ
नराधमान्=नरों में अधम
क्रूरान्=निर्दयी

अशुभान्=अशुभकर्म करनेवालों को
अहम=मैं
एव=निश्चय करके
आसुरीषु=असुरसम्बन्धी

संसारेषु=संसाररूपी
योनिषु=योनियों में
अजस्रम्=बारंवार
क्षिपामि=फेंकताहूं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, उन क्रूरस्वभाववाले द्वेषियों अतिनीचों को मैं बारबार आसुरी योनियों में फेंकता हूं ॥ १९ ॥

मूलम् ।

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् २०

पदच्छेदः ।

आसुरीम्, योनिम्, आपन्नाः, मूढाः, जन्मनि, जन्मनि, माम्, अप्राप्य, एव, कौन्तेय, ततः, यान्ति, अधमाम्, गतिम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
मूढाः=मूर्ख पुरुष
आसुरीम्=असुरसम्बन्धी
योनिम्=योनि को
आपन्नाः=प्राप्त भये

अन्वयः शब्दार्थ
जन्मनि जन्मनि=जन्म जन्मान्तर में
+ अपि=भी
माम्=मुझको

अप्राप्य=न प्राप्त होकर
एव=अवश्य
कान्तेय=हे अर्जुन
अधमाम्=अधो
गतिम्=गतिको
ततः=तदनन्तर
यान्ति=प्राप्त होते हैं

भावार्थ ।

वह मूढ़ आसुरीयोनियों में प्राप्त होकर पुनः पुनः अधोगति को प्राप्त होते हैं, मुझको कदापि नहीं प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥

मूलम् ।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामःक्रोधस्तथालोभस्तस्मादेतत्त्रयंत्यजेत् २१

पदच्छेदः ।

त्रिविधम्, नरकस्य, इदम्, द्वारम्, नाशनम्, आत्मनः, कामः, क्रोधः, तथा, लोभः, तस्मात्, एतत्, त्रयम्, त्यजेत् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
कामः=काम
क्रोधः=क्रोध
तथा=और
लोभः=लोभ
इदम्=यह
त्रिविधम्=तीन प्रकार

अन्वयः शब्दार्थ
नरकस्य=नरकका
द्वारम्=द्वार है
+ च=और
आत्मनः=आत्मा का
नाशनम्=नाश करने वाला है

तस्मात्=इसलिये
एतत्=इन
त्रयम्=तीनों को
त्यजेत्=छोड़ै

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, काम, क्रोध, और लोभ, ये तीनोंही नरक के द्वार हैं, और पुरुषार्थ के घातक हैं, और संपूर्ण अनर्थों के मूलकारण हैं, और येही आसुरीसंपद् के भी मूलकारण हैं, हे अर्जुन ! इन तीनों के त्याग करने से संपूर्ण आसुरीसंपद् का भी त्याग होजाताहै, प्रथम तुम इन तीनोंका त्यागकरो २१॥

मूलम् ।

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनःश्रेयस्ततो याति परां गतिम् २२

पदच्छेदः ।

एतैः, विमुक्तः, कौन्तेय, तमोद्वारैः, त्रिभिः, नरः, आचरति, आत्मनः, श्रेयः, ततः, याति, पराम्, गतिम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
कौन्तेय=हे अर्जुन
एतैः=इन
त्रिभिः=तीनों
तमोद्वारैः=अन्धकार के द्वारों से

अन्वयः शब्दार्थ
विमुक्तः=छूटा हुआ
नरः=मनुष्य
आत्मनः=अपने
श्रेयः=कल्याण को
आचरति=करता है

+ च=और
ततः=तदनन्तर
पराम्=श्रेष्ठ
गतिम्=गति को
याति=प्राप्त होता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! ये जो तीन अज्ञान के द्वार मैंने तुम्हारे प्रति कहे हैं, जो पुरुष इन तीनों से रहित होकर अपने कल्याण के लिये यत्न करता है, वही परमगति को प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

मूलम्।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् २३

पदच्छेदः।

यः, शास्त्रविधिम्, उत्सृज्य, वर्तते, कामकारतः, न, सः, सिद्धिम्, अवाप्नोति, न, सुखम्, न, पराम्, गतिम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
यः=जो पुरुष
शास्त्रविधिम्=शास्त्रकीविधि को
उत्सृज्य=छोड़करके
कामकारतः=इच्छापूर्वक
वर्तते=बर्तता है

अन्वयः शब्दार्थ
सः=वह
न=न
सिद्धिम्=सिद्धि को
अवाप्नोति=प्राप्त होता है
न=न
सुखम्=सुखको

+ च=और	परम्=परम
न=न	गतिम्=गति को

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, जो हितका बोधन करें, और अपूर्व अर्थ को बतावे, उसी का नाम शास्त्र है, जो शास्त्रविधि को त्याग करके अपनी इच्छा के अनुसार यथेष्टाचरण करता है, वह चित्तकी शुद्धि को नहीं प्राप्त होता है, और न इस लोक न परलोक में सुखको प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

मूलम्।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि २४

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसम्पद्विभागयोगोनाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

पदच्छेदः।

तस्मात्, शास्त्रम्, प्रमाणम्, ते, कार्याकार्यव्यवस्थितौ, ज्ञात्वा, शास्त्रविधानोक्तम्, कर्म, कर्तुम्, इह, अर्हसि ॥

अन्वयः शब्दार्थ

ते=तेरेलिये

कार्याकार्यव्यवस्थितौ=कर्तव्य और अकर्तव्यकी व्याख्या में

शास्त्रम्=शास्त्र

+ एव=ही

प्रमाणम्=प्रमाण है

तस्मात्=इसलिये

अन्वयः शब्दार्थ

शास्त्रविधानोक्तम्=शास्त्र में कहे हुये विधान को

ज्ञात्वा=जान करके

इह=इस संसार में

कर्मकर्तुम्=कर्म करने को

अर्हसि=योग्य है तू

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! करने योग्य और न करने योग्य कार्य में तुमको शास्त्रही प्रमाण मानना चाहिये और शास्त्रविधान कियेहुये जो कर्म हैं, वही तुमको करने योग्य हैं ॥ २४ ॥

सोलहवां अध्याय समाप्त ॥

सत्रहवां अध्याय।

मूलम्।

अर्जुन उवाच-

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयाऽन्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः १

पदच्छेदः।

ये, शास्त्रविधिम्, उत्सृज्य, यजन्ते, श्रद्धयाऽन्विताः, तेषाम्, निष्ठा, तु, का, कृष्ण, सत्त्वम्, आहो, रजः, तमः॥

अन्वयः शब्दार्थ

ये=जो पुरुष
शास्त्रविधिम्=शास्त्रकी विधि को
उत्सृज्य=छोड़कर
श्रद्धयाऽन्विताः=श्रद्धासे युक्त
यजन्ते=यज्ञ करते हैं
तेषाम्=उनकी

अन्वयः शब्दार्थ

कृष्ण=हे कृष्ण
का=कौन
निष्ठा=निष्ठा है
आहो=क्या (वह)
सत्त्वम्=सत्त्व है
रजः=रज है
तु=या
तमः=तम है

भावार्थ।

अर्जुन कहता है कि, जो आलस्य से शास्त्रोक्तविधि को त्याग करके वृद्धों के व्यवहार के अनुसार श्रद्धा

से नित्यही देवता आदिकों का पूजन करते हैं, हे कृष्ण ! उनकी कौनसी निष्ठा है, सात्त्विकी है, या राजसी है, या तामसी है ॥ १ ॥

मूलम्।

श्रीभगवानुवाच–

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु २

पदच्छेदः।

त्रिविधा, भवति, श्रद्धा, देहिनाम्, सा, स्वभावजा, सात्त्विकी, राजसी, च, एव, तामसी, च, इति, ताम्, शृणु ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
श्रीभगवानुवाच	श्रीभगवान् बोलते भये
देहिनाम्	जीवों के
त्रिविधा	तीन प्रकारकी
श्रद्धा	श्रद्धा
भवति	होती है
सा	वह
स्वभावजा	स्वभाव से उत्पन्न भई
सात्त्विकी	सतोगुणवाली है
च एव	या
राजसी	रजोगुणवाली है
च	या
तामसी	तमोगुणवाली है
ताम्	उसको
इति	इसप्रकार
शृणु	सुन तू

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, जन्मान्तर के संस्कारों के अनुसार तीनप्रकार की जीवोंकी स्वाभाविक श्रद्धा होती है, एक सात्त्विकी, दूसरी राजसी, तीसरी तामसी ॥ २ ॥

मूलम्।

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ३

पदच्छेदः।

सत्त्वानुरूपा, सर्वस्य, श्रद्धा, भवति, भारत, श्रद्धामयः, अयम्, पुरुषः, यः, यच्छ्रद्धः, सः, एव, सः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

भारत=हे अर्जुन!
सर्वस्य=सबकी
श्रद्धा=श्रद्धा
सत्त्वानुरूपा=अन्तःकरणके अनुसार
भवति=होती है
यः=जो
अयम्=यह
पुरुषः=पुरुष

अन्वयः शब्दार्थ

+ **यथा**=जैसा
श्रद्धामयः=श्रद्धावाला है
च=और
यच्छ्रद्धः=जैसी श्रद्धा है उसकी
सः=वह
सःएव=वहीरूप
भवति=होजाता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, संपूर्ण प्राणीमात्र की श्रद्धा अपने अन्तःकरण के अनुसारही होती है, सत्त्वप्रधान अन्तःकरण में जन्मान्तर के कर्मों के अनुसारही सात्त्विकी श्रद्धा उत्पन्न होती है, और रजोगुणप्रधान अन्तःकरण में पूर्बले कर्मों के अनुसारही राजसी श्रद्धा उत्पन्न होती है, और तमोगुणप्रधान अन्तःकरण में जन्मान्तर के कर्मों के अनुसारही तामसी श्रद्धा उत्पन्न होती है, तीनों में से जैसी जिसकी श्रद्धा होती है, वैसाही उसको फल होता है, क्योंकि श्रद्धारूपही यह पुरुष है ॥ ३ ॥

मूलम्।

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ४

पदच्छेदः।

यजन्ते, सात्त्विकाः, देवान्, यक्षरक्षांसि, राजसाः, प्रेतान्, भूतगणान्, च, अन्ये, यजन्ते, तामसाः, जनाः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
सात्त्विकाः=सतोगुणी
देवान्=देवताओं को
यजन्ते=पूजते हैं

अन्वयः शब्दार्थ
राजसाः=रजोगुणी
यक्षरक्षांसि=यक्ष और राक्षसों को

यजन्ते=पूजते हैं
अन्ये=और
तामसाः=तमोगुणी
जनाः=मनुष्य

प्रेतान्=प्रेतोंको
च=और
भूतगणान्=भूतगणों को
यजन्ते=पूजते हैं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, प्रथम जब पुरुष की श्रद्धा ज्ञात होजाती है तब फिर पीछे उसकी निष्ठा भी ज्ञात होजाती है, जो शास्त्रीय ज्ञान से हीन पुरुष हैं, परन्तु स्वाभाविकी सात्त्विकी श्रद्धा करके वे देवताओं काही पूजन करते हैं, वे सात्त्विक कहेजाते हैं, और जो राजसी हैं, वे यक्ष राक्षसों का पूजन करते हैं, और जो तामसी हैं वे भूत प्रेतादिकोंका पूजन करते हैं, जैसी जैसी पूजा करते हैं वैसेही फलको प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ५

पदच्छेदः ।

अशास्त्रविहितम्, घोरम्, तप्यन्ते, ये, तपः, जनाः, दम्भाहंकारसंयुक्ताः, कामरागबलान्विताः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
अशास्त्रविहितम्	शास्त्रविधि से रहित
घोरम्	कठिन
तपः	तपको

ये=जो
जनाः=मनुष्य
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः=दम्भ अहङ्कार से युक्त
कामरागबलान्विताः=काम, राग और बलसे युक्त
तप्यन्ते=तपते हैं

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, जो पुरुष अशास्त्रीय घोर तप को करते हैं अर्थात् जो तप शास्त्रने नहीं विधान किया , उसको अपने मनसे दुराग्रह करके करते हैं, जैसे कि आजकल के जो पञ्चाग्नि तापनेवाले हैं, और नग्न अवधूत जो बने फिरते हैं, और जो धूनी बाल कर उलटे ऊपर लटकते हैं, जो जटा नखादिकों को बढ़ाते हैं, जो अपने हाथ से नहीं खाते हैं, इस तरह के जो दम्भ करके पुजाने के लिये पाखण्डरूपी तपको करते हैं, और अहङ्कार से भरेहुये हैं, और कहते हैं कि हम तपस्वी हैं, और मनमें उनके विषयोंकी अभिलाषा भरी हैं, वे सब आसुरनिश्चयवाले हैं ॥ ५ ॥

मूलम्।

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
माञ्चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ६

पदच्छेदः।

कर्षयन्तः, शरीरस्थम्, भूतग्रामम्, अचेतसः, माम्, च, एव, अन्तःशरीरस्थम्, तान्, विद्धि, आसुरनिश्चयान् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

च=और
ये=जो
अचेतसः=अज्ञानी
शरीरस्थम्=शरीर में स्थितहुये
भूतग्रामम्=इन्द्रियों को
+ च=और
अन्तःशरीरस्थम्=शरीर के भीतर स्थित हुये

अन्वयः **शब्दार्थ**

माम्=मुझको
एव=भी
कर्षयन्तः=दुःख देनेवाले हैं
तान्=उनको
आसुरनिश्चयान्=असुरस्वभाव वाले
विद्धि=जान तू

भावार्थ।

वे पूर्वोक्त जड़बुद्धिवाले शरीर में स्थित भूतों के समूह को पीड़ा करते हुये अन्तःशरीर के अन्तर्यामी-रूप करके मुझ स्थित कोभी पीड़ा करते हैं, इस वास्ते हे अर्जुन! उनको तू आसुरनिश्चयवाला जान ॥ ६ ॥

मूलम्।

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ७

पदच्छेदः।

आहारः, तु, अपि, सर्वस्य, त्रिविधः, भवति, प्रियः, यज्ञः, तपः, तथा, दानम्, तेषाम्, भेदम्, इमम्, शृणु ॥

अन्वयः शब्दार्थ

सर्वस्य=सबका
आहारः=आहार
तु=निश्चय करके
त्रिविधः=तीन प्रकारका
प्रियः=प्रिय
भवति=होता है
तथा=और
यज्ञः=यज्ञ
तपः=तप

अन्वयः शब्दार्थ

दानम्=दान
अपि=भी
+ त्रिविधः=तीन प्रकार का
+ भवति=होता है
तेषाम्=उनके
इमम्=इस
भेदम्=भेद को
शृणु=सुन तू

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, सात्त्विकी व राजसी व तामसी गुण करके आहार भी तीन प्रकारका हैं, तीन प्रकार के स्वभाववाले पुरुषों को तीन प्रकार का आहार यथाक्रमसे प्यारा होता है, अब यज्ञ व तप व दान के तीन प्रकार के भेदोंकोभी तू श्रवण कर ॥ ७ ॥

मूलम्।

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः । रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्याश्चाहाराः सात्त्विकप्रियाः ८

पदच्छेदः।

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः, रस्याः, स्निग्धाः, स्थिराः, हृद्याः, च, आहाराः, सात्त्विकप्रियाः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः = आयु और चित्त की स्थिरता, बल, आरोग्यता, सुख, प्रीति के बढ़ानेवाले

रस्याः = रस पैदा करनेवाले

स्निग्धाः = कोमलतायुक्त

अन्वयः **शब्दार्थ**

स्थिराः = पुष्ट करनेवाले

हृद्याः = मनको प्रसन्न करनेवाले

आहाराः = आहार

सात्त्विकप्रियाः = सतोगुणी पुरुषों को प्रिय हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, जो आहार आयु को बढ़ानेवाले हैं, बुद्धि में धैर्य को उत्पन्न करनेवाले हैं, और शरीर में बलको यानी सामर्थ्य को भी बढ़ानेवाले हैं, स्वादु और स्निग्ध हैं, और चित्त को प्यारे भी हैं, देखने से भी सुन्दर लगते हैं, अत्यन्त सफ़ाई से बनाये गये हैं, इस प्रकार के जो आहार हैं, वे सात्त्विक पुरुषों को प्यारे लगते हैं ॥ ८ ॥

मूलम्।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।

आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ९

पदच्छेदः ।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः, आहाराः, राजसस्य, इष्टाः, दुःखशोकामयप्रदाः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः =	कडुवे, खट्टे, नमकीन, बहुत गर्म, तेज़, रूखे और दाह करनेवाले	दुःखशोकामयप्रदाः =	दुःख, शोक और रोग को पैदा करनेवाले
+ च =	और	आहाराः =	आहार
		राजसस्य =	रजोगुणी को
		इष्टाः =	प्रिय हैं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, जो भोजन कटु और अति नमकीन या कसैले या अतितीक्ष्ण या अतिरूखे होते हैं, और भीतर पेटमें दाह करनेवाले होते हैं, वे दुःख, शोक और रोग को उत्पन्न करनेवाले होते हैं, और वेही राजस भोजन कहे जाते हैं ॥ ९ ॥

मूलम् ।

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितञ्च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् १०

पदच्छेदः।

यातयामम्, गतरसम्, पूति, पर्युषितम्, च, यत्, उच्छिष्टम्, अपि, च, अमेध्यम्, भोजनम्, तामसप्रियम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
अपि	और
यातयामम्	बीतगया है एक पहर जिसको
गतरसम्	चलागया है रस जिसका
पूति	दुर्गन्धि आगई है जिसमें
पयुषितम्	बासी होगया है जो
च	और
यत्	जो
उच्छिष्टम्	जूठा होगया है
च	और
अमेध्यम्	अपवित्र हो गया है जो ऐसा
भोजनम्	भोजन
तामसप्रियम्	तमोगुणी को प्रिय है

भावार्थ।

और जो भोजन एक पहर का पका हुआ है, और रस जिसका सूख गया है, जो दुर्गन्धिवाला होगया है, जो दूसरे का जूठा है, जो अपवित्र होगया है यानी साफ़ नहीं है, वह तामस भोजन कहा जाताहै ॥१०॥

मूलम्।

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ११

पदच्छेदः।

अफलाकाङ्क्षिभिः, यज्ञः, विधिदृष्टः, यः, इज्यते, यष्टव्यम्, एव, इति, मनः, समाधाय, सः, सात्त्विकः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यष्टव्यम् एव	यज्ञ करना अवश्य है	यः	जो
इति	इस प्रकार	यज्ञः	यज्ञ
मनः	मनको	विधिदृष्टः	विधिपूर्वक
समाधाय	समाधान करके	इज्यते	किया जाता है
अफलाकाङ्क्षिभिः	फलकी इच्छा रहित पुरुषों से	सः	वह यज्ञ
		सात्त्विकः	सात्त्विक है

भावार्थ।

अब भगवान् तीन प्रकार के यज्ञों को दिखाते हैं, और कहते हैं कि, जिस यज्ञ को शास्त्र ने विधान किया है, उसको ऐसा जानकर कि मुझको यह यज्ञ करना योग्य है, मनको एकाग्र करके फलकी अभिलाषा से रहित होकर जो यज्ञ किया जाता है, वह सात्त्विक यज्ञ कहाताहै ॥ ११ ॥

मूलम्।

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् १२

पदच्छेदः।

अभिसन्धाय, तु, फलम्, दम्भार्थम्, अपि, च, एव, यत्, इज्यते, भरतश्रेष्ठ, तम्, यज्ञम्, विद्धि, राजसम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तु=और

भरतश्रेष्ठ=हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ

फलम्=फल को

अभिसन्धाय=अन्तःकरण में रख करके

च=और

दम्भार्थम्=पाखण्ड के लिये

अन्वयः शब्दार्थ

अपि=भी

यत्=जो

इज्यते=यज्ञ किया जाता है

तम्=उस

यज्ञम्=यज्ञको

एव=निश्चय करके

राजसम्=रजोगुणी

विद्धि=जान तू

भावार्थ।

हे भरतवंश में श्रेष्ठ, अर्जुन ! जो यज्ञ चित्तकी शुद्धिके विना इस लोक और परलोक के सुख की इच्छा करके केवल दम्भसे किया जाता है उसको तू राजसी यज्ञ जान ॥ १२ ॥

मूलम्।

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते १३

पदच्छेदः।

विधिहीनम्, असृष्टान्नम्, मन्त्रहीनम्, अदक्षिणम्, श्रद्धाविरहितम्, यज्ञम्, तामसम्, परिचक्षते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
विधिहीनम्	विधिरहित
असृष्टान्नम्	भोजनरहित
मन्त्रहीनम्	मन्त्रहीन
अदक्षिणम्	दक्षिणारहित
श्रद्धाविरहितम्	श्रद्धारहित
यज्ञम्	यज्ञको
तामसम्	तामसीयज्ञ
परिचक्षते	कहते हैं

भावार्थ।

जो विधि से हीन यज्ञ है, जिस यज्ञमें अतिथियों के प्रति अन्न भी नहीं दियागया है, और जिस यज्ञमें मन्त्र भी स्वरहीन पढ़ेगये हैं, और दक्षिणा भी ब्राह्मणों के प्रति नहीं दियागया है, और जो श्रद्धा से रहित कियागया है, वह तामसी यज्ञ है ॥ १३ ॥

मूलम्।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते १४

पदच्छेदः।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम्, शौचम्, आर्जवम्, ब्रह्मचर्यम्, अहिंसा, च, शारीरम्, तपः, उच्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम्=देवता, ब्राह्मण, गुरु औरपण्डित का पूजन

शौचम्=शुद्ध रहना

आर्जवम्=कोमलचित्त होना

अन्वयः शब्दार्थ

ब्रह्मचर्यम्=ब्रह्मचर्य रहना

च=और

अहिंसा=दुःख न देना

+इदम्=यह

शारीरम्=शरीरसम्बन्धी

तपः=तप

उच्यते=कहाजाता है

भावार्थ।

अब भगवान् तीन प्रकार के तप का निरूपण करते हुये कहते हैं कि, ब्रह्मा आदिक देवताओं का और आचार्यादिक गुरुओं का और वेद के अर्थ के वेत्ता का पूजन करना व मृत्तिका तथा जल करके बाह्य शौचका करना और कोमलस्वभाव होना और निषिद्ध मैथुन के अभावरूप ब्रह्मचर्य को धारण करना और प्राणीमात्र की हिंसा न करना यह सब शारीरक तपहै ॥ १४ ॥

मूलम्।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते १५

पदच्छेदः।

अनुद्वेगकरम्, वाक्यम्, सत्यम्, प्रियहितम्, च, यत्, स्वाध्यायाभ्यसनम्, च, एव, वाङ्मयम्, तपः, उच्यते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
यत्	जो
वाक्यम्	वाणी
अनुद्वेगकरम्	दूसरे को उद्वेग नहीं करनेवालीहै
च	और
सत्यम्	सत्य है
प्रियहितम्	प्रिय और हित करने वाली है
च	और
स्वाध्यायाभ्यसनम्	वेदशास्त्र के पढ़ने की अभ्यास करने वाली है
+ तत्	वह
एव	निश्चय करके
वाङ्मयम्	वचनसम्बन्धी
तपः	तप
उच्यते	कहाजाता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, जो वाक्य दूसरे को उद्वेग न करे यानी दुःख न देवे, और सच्ची होवे किन्तु दूसरों को प्रिय होवे, और वेदके अभ्यास करके युक्त हो अर्थात् वेदके अर्थ के अनुकूल हो, वह वाणी का तप कहा जाता है ॥ १५ ॥

मूलम् ।

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते १६

पदच्छेदः ।

मनःप्रसादः, सौम्यत्वम्, मौनम्, आत्मविनिग्रहः,

भावसंशुद्धिः, इति, एतत्, तपः, मानसम्, उच्यते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
मनःप्रसादः	मनको प्रसन्न रखना
सौम्यत्वम्	नम्र रहना
मौनम्	चुप रहना
आत्मविनिग्रहः	मनकी वृत्ति को रोकना
भावसंशुद्धिः	चित्तशुद्धि होना
इति	इस प्रकार
एतत्	यह
मानसम्	मनसम्बन्धी
तपः	तप
उच्यते	कहाजाता है

भावार्थ।

मनका प्रसन्न रहना, सौम्यता होनी, अधिक भाषण नहीं करना, चित्तका निरोध करना, और कामादिक जो मनके खोटे संकल्प हैं उनका त्याग करना, इसी का नाम मानस तप है ॥ १६ ॥

मूलम्।

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत् त्रिविधं नरैः।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते १७

पदच्छेदः।

श्रद्धया, परया, तप्तम्, तपः, तत्, त्रिविधम्, नरैः, अफलाकाङ्क्षिभिः, युक्तैः, सात्त्विकम्, परिचक्षते ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

अफलाकाङ्क्षिभिः=फलकी इच्छा न करनेवाले
+ च=और
युक्तैः=एकाग्र चित्त वाले
नरैः=मनुष्यों करके
परया=परम

अन्वयः **शब्दार्थ**

श्रद्धया=श्रद्धासे
तप्तम्=तपा हुआ
+ यत्=जो
त्रिविधम्=तीन प्रकार का
तपः=तप है
तत्=वह
सात्त्विकम्=सतोगुणी
परिचक्षते=कहाजाता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, पूर्व कथन किया हुआ जो तीन प्रकार का तप है, उस तीन प्रकार के तप को जिन पुरुषों ने फल की कामना से रहित होकर तपा है, उसको सात्त्विक तप कहा है ॥ १७ ॥

मूलम्।

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् १८

पदच्छेदः।

सत्कारमानपूजार्थम्, तपः, दम्भेन, च, एव, यत्, क्रियते, तत्, इह, प्रोक्तम्, राजसम्, चलम्, अध्रुवम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

च=और

यत्=जो

चलम्=चल

अध्रुवम्=नाशवान्

तपः=तप

दम्भेन=दम्भ करके

सत्कारमानपूजार्थम्=सत्कारमान और पूजा के अर्थ

अन्वयः शब्दार्थ

एव=ही

क्रियते=किया जाता है

तत्=वह

इह=इस संसार में

राजसम्=रजोगुणी तप

प्रोक्तम्=कहागया है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, जो सत्कार और मान तथा पूजाके लिये दम्भ करके तप किया जाता है वह राजस तप कहा गया है, और यही व्यभिचारी तथा अनित्य फलवाला होता है ॥ १८ ॥

मूलम् ।

मूढग्राहेणात्मनो यत् पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् १९

पदच्छेदः ।

मूढग्राहेण, आत्मनः, यत्, पीडया, क्रियते, तपः, परस्य, उत्सादनार्थम्, वा, तत्, तामसम्, उदाहृतम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यत्=जो
तपः=तप
मूढग्राहेण=दुराग्रह करके
आत्मनः=इन्द्रियों की
पीडया=पीड़ा से
वा=अथवा
परस्य=दूसरे के

अन्वयः शब्दार्थ

उत्सादनार्थम्=नाश करने के लिये
क्रियते=कियाजाता है
तत्=वह तप
तामसम्=तमोगुणी
उदाहृतम्=कहा गया है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, जो पुरुष मूढ़ता से या दुराग्रह से शरीर इन्द्रियादिकों को पीड़ा देकर तप करते हैं, या दूसरों के नाश के लिये अनुष्ठान करते हैं, वह तामस तप कहा जाता है ॥ १९ ॥

मूलम् ।

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् २०

पदच्छेदः ।

दातव्यम्, इति, यत्, दानम्, दीयते, अनुपकारिणे, देशे, काले, च, पात्रे, च, तत्, दानम्, सात्त्विकम्, स्मृतम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
दातव्यम्	देना अवश्य है यानी धर्म है
इति	ऐसा
+विचारयित्वा	विचार करके
यत्	जो
दानम्	दान
देशे	शुद्धभूमि में
च	और
काले	पुण्यकाल में
च	और
पात्रे	शुद्ध पात्र में यानी विद्यासम्पन्नकुलीनमें
अनुपकारिणे	अनुपकारी पुरुष के लिये
दीयते	दियाजाता है
तत्	वह
दानम्	दान
सात्त्विकम्	सतोगुणी
स्मृतम्	समझा गयाहै

भावार्थ ।

यह वस्तु मुझको देने योग्य है, अवश्य ही किसी गरीब अनाथ को देना चाहिये ऐसी बुद्धि करके जो अनुपकारी के प्रति देता है, यानी बदले की कामना से रहित होकर उत्तम वेदपाठी के प्रति जो देता है, या पवित्र कुरुक्षेत्रादिक देशों में जाकर अधिकारियों के प्राति जो देता है, वह सात्त्विकदान कहाजाता है ॥२०॥

मूलम् ।

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् २१

पदच्छेदः।

यत्, तु, प्रत्युपकारार्थम्, फलम्, उद्दिश्य, वा, पुनः, दीयते, च, परिक्लिष्टम्, तत्, दानम्, राजसम्, स्मृतम्॥

अन्वयः शब्दार्थ

तु=और
यत्=जो
दानम्=दान
प्रत्युपकारार्थम्=प्रत्युपकार के अर्थ
वा पुनः=अथवा
फलम्=स्वर्गादि फल को

अन्वयः शब्दार्थ

उद्दिश्य=इच्छा करके
च=और
परिक्लिष्टम्=कृपणता सहित
दीयते=दिया जाता है
तत्=वह दान
राजसम्=रजोगुणी
स्मृतम्=समझा गया है

भावार्थ।

जो प्रत्युपकार के लिये देता है, यानी आज मैं इसको दान देऊंगा तो कल यह मेरा भी कुछ काम करेगा, आज मैं इसको नेवता देऊंगा तो कल को यह भी मुझे देगा, ऐसा ब्राह्मण और साधुलोग प्रायः करके करते हैं, और जो फल की इच्छा करके देते हैं, यानी थोड़ासा दान करना और स्वर्ग की प्राप्तिरूपी फलको मांगना या बड़े भारी क्लेशयुक्त होकर बिरादरी वग़ैरह की भयसे जो दान करते हैं, वह सब राजसदान कहा जाता है॥ २१॥

मूलम् ।

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् २२

पदच्छेदः ।

अदेशकाले, यत्, दानम्, अपात्रेभ्यः, च, दीयते, असत्कृतम्, अवज्ञातम्, तत्, तामसम्, उदाहृतम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
यत्=जो
दानम्=दान
अपात्रेभ्यः=कुपात्रों के लिये
अदेशकाले=निषिद्धदेश और काल में

अन्वयः शब्दार्थ

असत्कृतम्=सत्काररहित
अवज्ञातम्=निन्दापूर्वक
दीयते=दिया जाता है
तत्=वह दान
तामसम्=तमोगुणी
उदाहृतम्=कहागया है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, जो अपवित्र स्थान में अपवित्र काल में नट और भांड़ों के प्रति दान देते हैं, और जो अपात्र हैं अर्थात् जो दान के पात्र नहीं हैं, यानी गुंडे बदमाश हैं उनको दान देते हैं, या किसी याचक को तिरस्कार करके अर्थात् निरादर करके देते हैं, वह तामसदान कहाताहै, उसका फल भी नरकहै ॥ २२ ॥

मूलम्।

ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा २३

पदच्छेदः।

ॐम्, तत्, सत्, इति, निर्देशः, ब्रह्मणः, त्रिविधः, स्मृतः, ब्राह्मणाः, तेन, वेदाः, च, यज्ञाः, च, विहिताः, पुरा॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

ॐतत्सत्=ॐ तत्सत्
इति=करके
ब्रह्मणः=ब्रह्मका
निर्देशः=नाम
त्रिविधः=तीन प्रकारका
स्मृतः=समझागयाहै
च=और

अन्वयः **शब्दार्थ**

तेन=उसी ॐ तत् सत् करके
पुरा=पूर्वकाल बिषे
ब्राह्मणाः=ब्राह्मण
वेदाः=वेद
च=और
यज्ञाः=यज्ञ
विहिताः=बनाये गये हैं

भावार्थ।

जिन यज्ञादिक कर्मों के करने से अदृष्ट उत्पन्न होते हैं, उन यज्ञादिक कर्मों के करने के काल में जो कर्मों के अंगों में न्यूनता रहजाती है, उस न्यूनता के पूर्ण करने के लिये अब भगवान् ब्रह्मके नामों का उपदेश करते हैं, ॐ तत्सत् ये तीन परमात्माके उत्तम नाम

हैं, कर्म के आरम्भकाल में इनके उच्चारण करने से वह न्यूनता पूर्ण होजाती है, और सृष्टि के आदिकाल में ब्रह्माने इन तीनों नामोंको उच्चारण करके ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञों को उत्पन्न कियाहै, इसी वास्ते कर्म की न्यूनता भी इन नामों के उच्चारण करने से दूर होजाती है ॥ २३ ॥

मूलम्।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् २४

पदच्छेदः।

तस्मात्, ओम्, इति, उदाहृत्य, यज्ञदानतपःक्रियाः, प्रवर्तन्ते, विधानोक्ताः, सततम्, ब्रह्मवादिनाम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तस्मात्=इसलिये

ब्रह्मवादिनाम्=ब्रह्मनिष्ठों की

विधानोक्ताः=विधानपूर्वक कही हुई

यज्ञदानतपःक्रियाः=यज्ञदान तप की क्रिया

अन्वयः शब्दार्थ

ओम् इति=ॐ ऐसा

उदाहृत्य=उच्चारण करके

सततम्=निरन्तर

प्रवर्तन्ते=प्रवृत्त होती हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, ॐ यह नाम ब्रह्म का जिस

वास्ते वेद में प्रसिद्ध है, इसीवास्ते ब्रह्मवादी लोग ॐ ऐसा उच्चारण करके यज्ञ व दान और तप आदिक कर्म करने में प्रवृत्त होते हैं ॥ २४ ॥

मूलम् ।

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः२५

पदच्छेदः ।

तत्, इति, अनभिसंधाय, फलम्, यज्ञतपःक्रियाः, दानक्रियाः, च, विविधाः, क्रियन्ते, मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
तत् इति	तत् शब्द उच्चारण करके
च	और
फलम्	फलको
अनभिसंधाय	नहीं इच्छ करके
विविधाः	अनेकप्रकार
यज्ञतपःक्रियाः	यज्ञ और तप की क्रियायें
+ च	और
दानक्रियाः	दानकी क्रियायें
मोक्षकांक्षिभिः	मोक्ष के चाहने वाले पुरुषों करके
क्रियन्ते	की जाती हैं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, मुमुक्षुवों को उचित है कि अन्तःकरण की शुद्धि के लिये फलकी कामना से

रहित होकर और तत्शब्द को उच्चारण करके यज्ञ व तप और दानआदिक क्रियाओं में प्रवृत्त होवें ॥ २५ ॥

मूलम् ।

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत् प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते २६

पदच्छेदः ।

सद्भावे, साधुभावे, च, सत्, इति, एतत्, प्रयुज्यते, प्रशस्ते, कर्मणि, तथा, सत्, शब्दः, पार्थ, युज्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

पार्थ=हे अर्जुन
सद्भावे=सद्भाव में
च=और
साधुभावे=साधुभाव में
एतत्=यह
सत्=सत्शब्द
प्रयुज्यते=प्रयोग किया जाता है

अन्वयः शब्दार्थ

तथा=वैसाही
प्रशस्ते=मङ्गल
कर्मणि=कर्म में
इति=भी
सत्शब्दः=सत्शब्द
युज्यते=प्रयोग किया जाता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, सद्भाव में और साधुभाव में सत्शब्दका प्रयोग होता है, और जितने श्रेष्ठ मङ्गल के वाचक कर्म हैं, उनमें भी सत्शब्द का उच्चारण

किया जाता है, इसलिये विद्वानों को उचित है कि जब किसी उत्तम कर्म को करनेलगें तब सत् ऐसा उच्चारण करके करें ॥ २६ ॥

मूलम्।

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते २७

पदच्छेदः।

यज्ञे, तपसि, दाने, च, स्थितिः, सत्, इति, च, उच्यते, कर्म, च, एव, तदर्थीयम्, सत्, इति, एव, अभिधीयते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यज्ञे=यज्ञ में
च=और
तपसि=तप में
च=और
दाने=दान में
+ या=जो
स्थितिः=निष्ठा है
+ सा=सो
एव=निश्चय करके
सत् इति=सत्‌शब्द करके

अन्वयः शब्दार्थ

उच्यते=कही जाती है
च=और
तदर्थीयम्=ईश्वर-सम्बन्धी
कर्म=कर्म
+ अपि=भी
सत् इति=सत्‌शब्द करके
एव=ही
अभिधीयते=कहा जाता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि जिसकी यज्ञ और दान में पूरी पूरी निष्ठा है उसको उचित है कि कर्मों के प्रारम्भकाल में सत् शब्दको ज़रूर उच्चारण करें, जब ऐसा करेंगे तब अङ्गहीन भी कर्म पूर्ण फल देनेवाले होजावेंगे, और जो कर्म चित्तकी शुद्धि के लिये ब्रह्मार्पण बुद्धि करके किया जाताहै, उसके आरम्भ में भी सत् ऐसा शब्द अवश्य उच्चारण करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से ही वह सफल होता है॥ २७॥

मूलम्।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत् प्रेत्य नो इह २८

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगोनाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

पदच्छेदः।

अश्रद्धया, हुतम्, दत्तम्, तपः, तप्तम्, कृतम्, च, यत्, असत्, इति, उच्यते, पार्थ, न, च, तत्, प्रेत्य, नो, इह॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
पार्थ=	हे पार्थ!	यत्=	जो कर्म

अश्रद्धया=श्रद्धारहित
कृतम्=किया गया है
+ अथवा=या
हुतम्=हवन किया गया है
+ अथवा=या
दत्तम्=दियागया है
+ अथवा=या
+ यत्=जो
तपः=तप
तप्तम्=किया गया है
+ तत्=सो
असत्=असत

इति=करके
उच्यते=कहाजाता है
तत्=वह
न=न
प्रेत्य=परलोक के लिये
च=और
नो=न
इह=इस लोक के लिये
+ फलदायकः=फलदायक है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! जो अश्रद्धा करके अग्नि में हवन करता है, और जो अश्रद्धा करके दान देता है और श्रद्धाहीन होकर केवल दिखलावे के लिये तपको करता है, उन कर्मोंका फल असत् होता है, यानी कुछ भी फल नहीं होता अर्थात् विना श्रद्धा के कर्मादिक न तो इसलोक में फल देसक्ते हैं, और न परलोक में फल देसक्ते हैं ॥ २८ ॥

सत्रहवां अध्याय समाप्त॥

अठारहवां अध्याय ।

मूलम् ।

अर्जुन उवाच-

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक् केशिनिषूदन १

पदच्छेदः ।

संन्यासस्य, महाबाहो, तत्त्वम्, इच्छामि, वेदितुम्, त्यागस्य, च, हृषीकेश, पृथक्, केशिनिषूदन ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
महाबाहो=	हे दीर्घबाहु	वेदितुम्=	जानना
हृषीकेश=	हे इन्द्रियों के स्वामी	इच्छामि=	चाहताहूं
केशिनिषूदन=	हे केशी दैत्यके हन्ता	च=	और
+ अहम्=	मैं	त्यागस्य=	त्यागके
संन्यासस्य=	संन्यास के	+ तत्त्वम्=	तत्त्व को
तत्त्वम्=	तत्त्व को	पृथक्=	पृथक्
		+ वेदितुम्=	जानना
		+ इच्छामि=	चाहताहूं

भावार्थ ।

पूर्वले अध्याय में तीन प्रकारकी श्रद्धा भगवान् ने कही है, और अब उसी श्रद्धा के भेद से यज्ञादिक कर्मों का तीन प्रकारका भेदभी कहाहै, उसको श्रवण

करके अर्जुन को संन्यास के भेदका भी संदेह हुआ कि संन्यास भी तीन प्रकार का होगा, इस वास्ते अर्जुन पूछता है कि हे महाबाहो! गुणों के भेद से संन्यास के जानने की और त्याग के स्वरूप के जानने की मैं इच्छा करता हूं, हे केशी दैत्य के नाश करनेवाले! हे कृष्ण! संन्यास और त्याग के भेद को मुझसे कृपा करके कहिये ॥ १ ॥

मूलम्।

श्रीभगवानुवाच-

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः २

पदच्छेदः।

काम्यानाम्, कर्मणाम्, न्यासम्, संन्यासम्, कवयः, विदुः, सर्वकर्मफलत्यागम्, प्राहुः, त्यागम्, विचक्षणाः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
श्रीभगवानुवाच	= श्री भगवान् बोलते भये	कर्मणाम्	= कर्मों के
+ अर्जुन	= हे अर्जुन	न्यासम्	= त्याग को
कवयः	= कविलोग	संन्यासम्	= संन्यास
काम्यानाम्	= फलकी इच्छा से किये गये	विदुः	= जानते हैं
		+ च	= और
		विचक्षणाः	= पण्डित लोग

सर्वकर्मफलत्यागम्=संपूर्ण कर्म के फल के त्याग को
त्यागम्=संन्यास
प्राहुः=कहते हैं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! वेदविहित जो यज्ञादिक काम्य कर्म हैं, उनके त्यागकोही सूक्ष्मदर्शी विद्वान् संन्यास कहते हैं, और कोई एक विद्वान् चित्तकी शुद्धिके लिये संपूर्ण कर्मोंके फलके त्यागको ही संन्यास कहते हैं, अर्थात् कर्मों को करना चाहिये, परन्तु कर्मों के फलकी इच्छा को त्याग देना चाहिये यही त्याग संन्यास कहा जाता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ३

पदच्छेदः ।

त्याज्यम्, दोषवत्, इति, एके, कर्म, प्राहुः, मनीषिणः, यज्ञदानतपःकर्म, न, त्याज्यम्, इति, च, अपरे ॥

अन्वयः शब्दार्थ

दोषवत्=दोषयुक्त
कर्म=कर्म
त्याज्यम्=त्याग करने योग्य है

अन्वयः शब्दार्थ

इति=ऐसा
एके=कोई
मनीषिणः=पण्डित
प्राहुः=कहते हैं

च=और

यज्ञदानतपःकर्म=यज्ञ दान और तप आदि कर्म

न त्याज्यम्=नहीं छोड़ने योग्य हैं

इति=ऐसा

अपरे=कोई

+ प्राहुः=कहते हैं

भावार्थ।

भगवान् कर्मों के त्याग के विचार में आचार्यों के वाद विवाद को कहते हैं कि हे पार्थ! सांख्य मतवाले यह कहते हैं कि कर्मही बन्ध का हेतु है, क्योंकि सब कर्म हिंसारूपी दोष करके ग्रस्त हैं, कोई भी कर्म न करना चाहिये और कोई आचार्य कहते हैं कि अधिकारी पुरुष यज्ञ, दान, तप आदिक कर्मों को करें, उनके त्याग से दोष होता है ॥ ३ ॥

मूलम्।

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ४

पदच्छेदः।

निश्चयम्, शृणु, मे, तत्र, त्यागे, भरतसत्तम, त्यागः, हि, पुरुषव्याघ्र, त्रिविधः, संप्रकीर्तितः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

भरतसत्तम=हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ

अन्वयः शब्दार्थ

तत्र=तिस

त्यागे=त्याग बिषे

मे=मेरे
निश्चयम्=निश्चय को
शृणु=सुन तू
पुरुषव्याघ्र=हे पुरुषों में सिंह

त्यागः=त्याग
हि=निश्चयकरके
त्रिविधः=तीनप्रकारका
संप्रकीर्तितः=कहागया है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! अब तू मेरे निश्चय को श्रवण कर, कर्मों का त्याग तामसादिक भेदकरके तीन प्रकार का है, फल की इच्छा को त्याग करके कर्मों के करनेका नाम सात्त्विक त्याग है, और फल की इच्छा का त्याग न करके कर्मों के त्याग करनेका नाम राजस त्याग है, और प्रमाद से अथवा अज्ञान से फल की इच्छा सहित शुभकर्मों के त्याग करदेने का नाम तामस त्याग है, इन तीनों में से राजस और तामसकर्मों के त्याग का भी त्याग करदेना चाहिये, अर्थात् मुमुक्षुपुरुषों को सात्त्विक त्याग का ग्रहण करनाही उचित है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ५

पदच्छेदः ।

यज्ञदानतपःकर्म, न, त्याज्यम्, कार्यम्, एव, तत्, यज्ञः, दानम्, तपः, च, एव, पावनानि, मनीषिणाम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
यज्ञदानतपःकर्म	यज्ञ, दान और तप आदि कर्म
न त्याज्यम्	नहीं छोड़ने योग्य हैं
तत्	वह
कार्यम् एव	करने योग्य ही हैं
च	और

अन्वयः	शब्दार्थ
यज्ञः	यज्ञ
दानम्	दान
तपः	तप
मनीषिणाम्	पण्डितों को
एव	निःसंदेह
पावनानि	पवित्र करने वाले हैं

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जो मुमुक्षुजन हैं उनको कर्मों का त्याग कदापि न करना चाहिये, केवल फल की इच्छा का त्याग करके सदैव कर्म करना चाहिये, क्योंकि सब निष्काम कर्म अन्तःकरण की शुद्धिके हेतु हैं, और यज्ञ, दान, तपआदिक कर्म सब मनुष्यों को पवित्र करनेवाले हैं ॥ ५ ॥

मूलम्।

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ६

पदच्छेदः।

एतानि, अपि, तु, कर्माणि, सङ्गम्, त्यक्त्वा, फलानि,

च, कर्तव्यानि, इति, मे, पार्थ, निश्चितम्, मतम्, उत्तमम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

एतानि=ये
कर्माणि=कर्म
तु=तो
सङ्गम्=आसक्ति
च=और
फलानि=फलको
त्यक्त्वा=छोड़करके
अपि=अवश्य

अन्वयः शब्दार्थ

कर्तव्यानि=करनेयोग्य हैं
इति=ऐसा
मे=मेरा
पार्थ=हे अर्जुन
निश्चितम्=निश्चय किया हुआ
उत्तमम्=उत्तम
मतम्=मत है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ! ये जो यज्ञादिक कर्म हैं इनको "मैं इस कर्मको करता हूं, मैं इसके फलको भोगूंगा" इस प्रकारकी आसक्ति को त्यागकर करे और मुझको यज्ञादिक सब कर्म करने योग्य हैं, ऐसा निश्चय करके कर्मोंको करे, अभिमानसे अथवा फलकी इच्छा से कोई कर्म न करे, अपने वर्ण के अनुसार कर्मको धर्म समझ करके करे ॥ ६ ॥

मूलम्।

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ७

पदच्छेदः ।

नियतस्य, तु, संन्यासः, कर्मणः, न, उपपद्यते, मोहात्, तस्य, परित्यागः, तामसः, परिकीर्तितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
नियतस्य	नित्य
कर्मणः	संध्योपासनादि कर्म का
संन्यासः	त्याग
न	नहीं
उपपद्यते	करना योग्य है
तु	और
मोहात्	अज्ञान से
तस्य	उसका
परित्यागः	त्याग करना
तामसः	तमोगुणीत्याग
परिकीर्तितः	कहागया है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! चित्तकी शुद्धि का अर्थी जो पुरुष है, उसको नित्यकर्मों का त्याग कदापि न करना चाहिये, क्योंकि नित्यकर्मों का त्याग बनताही नहीं है, और अज्ञान से या मोह से जो नित्यकर्मों को त्याग देते हैं, उनका वह तामस त्याग है, वे त्याग के फल को नहीं प्राप्त होते हैं, किन्तु दोषके भागी होते हैं ॥ ७ ॥

मूलम् ।

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ८

पदच्छेदः ।

दुःखम्, इति, एव, यत्, कर्म, कायक्लेशभयात्,

त्यजेत्, सः, कृत्वा, राजसम्, त्यागम्, न, एव, त्यागफलम्, लभेत् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

दुःखम् एव=दुःखही है इसकर्म के करने में
इति=ऐसा
+ ज्ञात्वा=समझ करके
यत्=जो
कर्म=कर्म
कायक्लेश-भयात्=शरीरके क्लेश के डरसे

अन्वयः शब्दार्थ

त्यजेत्=त्याग किया जाता है
सः=वहत्यागी पुरुष
राजसम्=रजोगुणी
त्यागम्=त्याग को
कृत्वा=करके
त्यागफलम्=त्याग के फल को
न एव=कभी नहीं
लभेत्=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे कौन्तेय ! जो पुरुष देहादिकों में अति राग करके शरीर के भयसे नित्यकर्मों का त्याग करदेते हैं, वह त्याग राजसत्याग कहाजाता है, राजसत्यागवाले भी त्यागके फलको नहीं प्राप्त होते हैं, अर्थात् अन्तःकरण की शुद्धिरूपी फलको वे कदापि प्राप्त नहीं होते हैं ॥ ८ ॥

मूलम् ।

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलञ्चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ९

पदच्छेदः।

कार्यम्, इति, एव, यत्, कर्म, नियतम्, क्रियते, अर्जुन, सङ्गम्, त्यक्त्वा, फलम्, च, एव, सः, त्यागः, सात्त्विकः, मतः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अर्जुन	हे अर्जुन	त्यक्त्वा	छोड़कर
यत्	जो	इति	इस प्रकार
नियतम्	नित्य	क्रियते	कियाजाता है
एव	ही	सः	वह
कार्यम्	करने योग्य	त्यागः	त्याग
कर्म	कर्म	सात्त्विकः	सतोगुणी
सङ्गम्	आसक्ति	एव	निश्चय करके
च	और	मतः	मानागया है
फलम्	फलको		

भावार्थ।

हे पार्थ! जो पुरुष कर्मों में अपना अधिकार मानकर कहता है कि कर्म मुझे अवश्य ही करना चाहिये, ऐसा विचार करके और आसक्ति को व फल की इच्छा को त्याग करके नियम से नित्य नैमित्तिक कर्मोंको करताहै, उसका नाम सात्त्विकत्याग है॥ ९॥

मूलम्।

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्यते।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः १०

पदच्छेदः।

न, द्वेष्टि, अकुशलम्, कर्म, कुशले, न, अनुषज्यते, त्यागी, सत्त्वसमाविष्टः, मेधावी, छिन्नसंशयः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

छिन्नसंशयः=नाश हुआ है संशय जिसका

सत्त्वसमाविष्टः=परमात्मा में है निष्ठा जिसकी

मेधावी=बुद्धि से संयुक्त है जो ऐसा

त्यागी=त्यागी पुरुष

अकुशलम्=दुःखदायी

अन्वयः **शब्दार्थ**

कर्म=कर्म से

न=न

द्वेष्टि=द्वेष करता है

+ च=और

कुशले=सुखदायी कर्म में

न=न

अनुषज्यते=राग करता है

भावार्थ।

मुमुक्षुवों को चित्तकी शुद्धि के लिये कर्मों का सात्त्विकत्याग ग्रहण करना चाहिये, ऐसा भगवान् ने पूर्व कहा है, अब उस सात्त्विकत्याग के फल को भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ! जो मुमुक्षु चित्तकी शुद्धि के लिये वेदविहित कर्मों को करता है, वह ईश्वर की कृपादृष्टि से चित्त की शुद्धिद्वारा आत्मज्ञान को प्राप्त होताहै, और संशय विपर्यय ज्ञानसे रहित होकर काम्य कर्मों के साथ जो बन्धन के हेतु हैं द्वेष भी नहीं करता है, यही सात्त्विकत्याग का फल है ॥ १० ॥

मूलम् ।

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ११

पदच्छेदः ।

न, हि, देहभृता, शक्यम्, त्यक्तुम्, कर्माणि, अशेषतः, यः, तु, कर्मफलत्यागी, सः, त्यागी, इति, अभिधीयते ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

हि=क्योंकि
देहभृता=देहधारी पुरुष करके
अशेषतः=संपूर्ण
कर्माणि=कर्मों को
त्यक्तुम्=त्यागना
न=नहीं
शक्यम्=शक्य है

अन्वयः **शब्दार्थ**

यः=जो
कर्मफलत्यागी=कर्म के फल का त्यागी है
सः=वह
तु=ही
त्यागी=त्यागी
इति=करके
अभिधीयते=कहा जाता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि पूर्वोक्तप्रकार करके आत्मज्ञानी को संपूर्ण कर्मों का त्याग भी बनता है, परन्तु अज्ञानी को संपूर्ण कर्मों का त्याग नहीं बनता है, क्योंकि देहधारी संपूर्ण कर्मों का त्याग कदापि नहीं करसक्ता है, जिसने कर्मों के फलका त्याग करादिया है, वही त्यागी कहाजाता है ॥ ११ ॥

मूलम्।

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् १२

पदच्छेदः।

अनिष्टम्, इष्टम्, मिश्रम्, च, त्रिविधम्, कर्मणः, फलम्, भवति, अत्यागिनाम्, प्रेत्य, न, तु, संन्यासिनाम्, क्वचित् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
कर्मणः	कर्मका	प्रेत्य	मरकरके
फलम्	फल	फलम्	फल
त्रिविधम्	तीनप्रकार का है यानी	भवति	होता है
इष्टम्	शुभ	तु	और
अनिष्टम्	अशुभ	संन्यासिनाम्	संन्यासियों को
च	और	क्वचित्	कभी
मिश्रम्	शुभाशुभ	न	नहीं
अत्यागिनाम्	सकामकर्म करनेवालोंको	+ भवति	होता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! अज्ञानी कर्मकाण्डियों को ही अनिष्ट, इष्ट और मिश्रितकर्मों का फल होता है, पापकर्मों से जो तिर्यगादियोनियों की प्राप्ति होती है, वह अनिष्ट फल कहाजाता है और

पुण्यकर्मों करके जो देवता आदि योनियों की प्राप्ति होती है, वह इष्ट फल कहाता है, और पाप पुण्य मिश्रितकर्म से जो मनुष्यादि योनियों की प्राप्ति होती है, वह मिश्रितकर्म का फल है, इन तीन प्रकार के कर्मों के फलका न त्याग करनेवाला अज्ञानी होता है, और जो त्यागी हैं यानी जिन्होंने अज्ञान और अज्ञान के कार्यों का नाश कर दिया है, उनको कोई फल कदाचित् नहीं होता है ॥ १२ ॥

मूलम्।

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् १३

पदच्छेदः।

पञ्च, एतानि, महाबाहो, कारणानि, निबोध, मे, सांख्ये, कृतान्ते, प्रोक्तानि, सिद्धये, सर्वकर्मणाम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

महाबाहो=हे दीर्घबाहु
कृतान्ते=कर्मों की समाप्ति है जिसमें ऐसे
सांख्ये=वेदान्त शास्त्र बिषे
प्रोक्तानि=कहे हुये
एतानि=उन

अन्वयः शब्दार्थ

पञ्च=पांच
कारणानि=कारणों को
सर्वकर्मणाम्=सबकर्मों की
सिद्धये=सिद्धिके लिये
मे=मुझ से
निबोध=जान तू

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! कर्मों के त्यागके असंभव में अर्थात् हरएक से न होने में पांच कारण हैं, हे महाबाहो ! वे सब कारण वेदांत शास्त्र में कर्मों के क्षय करने के लिये कहे हैं, उनको भी तुम श्रवण करो, क्योंकि वे भी ब्रह्मविद्या के अङ्ग हैं॥ १३ ॥

मूलम्।

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् १४

पदच्छेदः।

अधिष्ठानम्, तथा, कर्ता, करणम्, च, पृथग्विधम्, विविधाः, च, पृथक्, चेष्टाः, दैवम्, च, एव, अत्र, पञ्चमम्॥

अन्वयः शब्दार्थ
अधिष्ठानम्=स्थूल शरीर
तथा=और
कर्ता=अहंकारी जीव
च=और
पृथग्विधम्=बहुतप्रकार की
करणम्=इन्द्रियां
च=और
विविधाः=बहुतप्रकार की
पृथक्=अलग अलग

अन्वयः शब्दार्थ
चेष्टाः=प्राणअपानादि के व्यापार
च=और
अत्र=इन बिषे
पञ्चमम्=पांचवें
दैवम्=दैव यानी सूर्य आदि देवता
एव=निश्चय करके

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ।

भगवान् अब पूर्व कहे हुये पांच हेतुवों को दिखाते हैं कि द्वेषादिकों की अभिव्यक्ति का अधिष्ठान इच्छा है और भूतों का कार्य जो जड़शरीर है, वह आत्मा में अध्यस्त है, और मैं कर्ता हूं ऐसी जो अहंकाररूप वृत्ति है, वह अहंकार से उत्पन्न आत्मा में अध्यस्त है, वह अहंकार सूक्ष्म भूतों का कार्य जड़ है, और शब्दादिक ज्ञान का साधन जो श्रोत्रादिक करण हैं, अर्थात् दशोंइन्द्रिय और मन और बुद्धि ये सब आत्मा में ही अध्यस्त हैं, और क्रियाशक्तिप्रधान जो प्राण है, और उसकी जो नानाप्रकार की क्रियायें हैं, वह भी भूतों का कार्य है, और आत्मा में अध्यस्त है, और संपूर्ण कर्मोंके ऊपर अनुग्रह करनेवाला जो पांचवां देव है, वह भी आत्मा में अध्यस्त है, अर्थात् ये पांचों आत्मा बिषे अध्यस्त हैं ॥ १४ ॥

मूलम्।

शरीरवाङ्मनोभिर्यत् कर्म प्रारभ्यते नरः ।
न्यायं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः १५

पदच्छेदः।

शरीरवाङ्मनोभिः, यत्, कर्म, प्रारभ्यते, नरः, न्यायम्, वा, विपरीतम्, वा, पञ्च, एते, तस्य, हेतवः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
एते=ये		पञ्च=पांचों	

हेतवः=कारण हैं
तस्य=उस कर्म के
यत्=जिस
न्यायम्=अच्छे
वा=या
विपरीतम्=बुरे
कर्म=कर्मको
नरः=मनुष्य
शरीरवाङ्मनोभिः=शरीर, वाणी और मनसे
प्रारभ्यते=आरम्भकरता है

भावार्थ।

भगवान् ने पूर्व पांच हेतुवों के स्वरूप का वर्णन किया, अब कर्मों के फलको कहते हैं कि, हे पार्थ! शरीर, मन और वाणी करके पुरुष जिस जिस कर्म को आरम्भ करता है, वह कर्म शास्त्रविहित हो या अविहित हो, धर्मरूप हो या अधर्मरूप हो, न्यायपूर्वक हो या अन्यायपूर्वक हो, उन सब कर्मों के पांचही हेतु पूर्व कहे प्रकार हैं॥ १५॥

मूलम्।

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः १६

पदच्छेदः।

तत्र, एवम्, सति, कर्तारम्, आत्मानम्, केवलम्, तु, यः, पश्यति, अकृतबुद्धित्वात्, न, सः, पश्यति, दुर्मतिः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
एवम्=इसप्रकार		सति=होते हुये	

यः=जो पुरुष
अकृतबुद्धित्वात्=अकृतबुद्धि से
तत्र=उसकर्मबिषे
केवलम्=शुद्ध
आत्मानम्=आत्मा को
कर्तारम्=कर्ता
पश्यति=देखता है
सः=वह
दुर्मतिः=दुर्बुद्धिपुरुष
+आत्मानम्=आत्माको
+यथार्थम्=यथार्थ
न=नहीं
पश्यति=देखता है

भावार्थ।

हे कौन्तेय ! पूर्वोक्त पांच हेतुवों करके संपूर्ण कर्मों के सिद्ध होने परभी शुद्ध स्वयंप्रकाश उदासीन आत्मा को जो कर्ता देखता है, वह असंस्कृत मतिवाला कुबुद्धि पुरुष आत्मा को यथार्थ स्वरूप से नहीं देखता है ॥ १६ ॥

मूलम्।

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाल्ँलोकान्न हन्ति न निबध्यते १७

पदच्छेदः।

यस्य, न, अहंकृतः, भावः, बुद्धिः, यस्य, न, लिप्यते, हत्वा, अपि, सः, इमान्, लोकान्, न, हन्ति, न, निबध्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ
यस्य=जिस पुरुषका
अहंकृतः=अहंकारी

अन्वयः शब्दार्थ
भावः=भाव
न=नहीं है

+ च=और
यस्य=जिसकी
बुद्धिः=बुद्धि
न=नहीं
लिप्यते=लिपायमान है
सः=वह
इमान्=इन
लोकान्=लोकों को

हत्वा=मारकर
अपि=भी
न=नहीं
हन्ति=मारता है
+ च=और
न=न
निबध्येत=बन्धनमें पड़ता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि जो पुरुष शास्त्र और आचार्य के उपदेशद्वारा आत्मा को अकर्ता अभोक्ता देखता है, और सहित कार्य के जिसका अज्ञान बाध होगया है और मैं कर्मों का कर्ता हूं, इस प्रकार की अकृतबुद्धि भी जिसकी बाधित होगई है, न मैं कर्मों का कर्ताहूं, और न मैं उनके फल का भोक्ता हूं, इस प्रकार के निश्चयात्मक जिसकी बुद्धि है, उसको कर्म के फल लिपायमान नहीं करते हैं, यदि ऐसा विद्वान् संपूर्ण लोकों को मार भी डाले, तब भी वह हनन क्रिया का कर्ता कदापि नहीं हो सक्ता है, और न वह हननक्रिया के फल से बन्धायमान होसक्ता है, इस वाक्य का आत्मज्ञानी की स्तुति में तात्पर्य है, क्योंकि जिसको सारा जगत् अपना आत्मारूप प्रतीत होता है, उससे अपने आपका मारना बनता नहीं और ब्रह्म-

ज्ञानी तो साक्षीरूप अक्रिय होता है, उसमें हननक्रिया कैसे होसक्ती है ॥ १७ ॥

मूलम् ।

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः १८

पदच्छेदः ।

ज्ञानम्, ज्ञेयम्, परिज्ञाता, त्रिविधा, कर्मचोदना, करणम्, कर्म, कर्ता, इति, त्रिविधः, कर्मसंग्रहः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

परिज्ञाता=ज्ञाता
ज्ञानम्=ज्ञान
ज्ञेयम्=ज्ञेय
त्रिविधा=ये तीन प्रकार के
कर्मचोदना=कर्म के हेतु हैं
+च=और

अन्वयः शब्दार्थ

कर्ता=कर्ता
करणम्=करण
कर्म=कर्म
इति=ऐसे
त्रिविधः=ये तीन प्रकार के
कर्मसंग्रहः=कर्मसंग्रह हैं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! घट, पटादिक पदार्थों का जो वृत्ति ज्ञान है, और जितने ज्ञेयपदार्थ घट, पटादिक ज्ञान के विषय हैं, और जो ज्ञाता है अर्थात् विषयों का जो भोक्ता है, ये तीनों सब कर्मों के प्रवर्तक हैं, और जो श्रोत्रादि करण हैं, और उन

करणों के जो श्रवणादिक कर्म हैं, और जो कर्ता है, ये तीनों कर्म के संग्रह हैं अर्थात् कर्म के आश्रय हैं॥ १८॥

मूलम्।

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि १९

पदच्छेदः।

ज्ञानम्, कर्म, च, कर्ता, च, त्रिधा, एव, गुणभेदतः, प्रोच्यते, गुणसंख्याने, यथावत्, शृणु, तानि, अपि॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
ज्ञानम्	ज्ञान	गुणसंख्याने	सांख्यशास्त्र में
च	और	त्रिधा	तीन प्रकार का
कर्म	कर्म	प्रोच्यते	कहा जाता है
च	और	तानि	उनको
कर्ता	कर्ता	अपि	भी
गुणभेदतः	गुणों के भेद से	यथावत्	यथार्थ
एव	ही	शृणु	सुन तू

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ! ज्ञान और कर्म और कर्ता ये तीनों गुणों के भेद से तीन तीन प्रकार के हैं, यह बात सांख्यशास्त्र में कही है, उसको भी तुम शास्त्र के अनुसार मुझ से श्रवण करो॥ १९॥

मूलम्।

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् २०

पदच्छेदः।

सर्वभूतेषु, येन, एकम्, भावम्, अव्ययम्, ईक्षते, अविभक्तम्, विभक्तेषु, तत्, ज्ञानम्, विद्धि, सात्त्विकम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
विभक्तेषु	पृथक् पृथक्
सर्वभूतेषु	सब प्राणियों में
येन	जिस ज्ञान करके
अविभक्तम्	विभागरहित
एकम्	एक
भावम्	भाव
अव्ययम्	आत्मा को
+ यः	जो
ईक्षते	देखता है
तत्	उसको
सात्त्विकम्	सतोगुणी
ज्ञानम्	ज्ञान
विद्धि	जान तू

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे कमलनयन ! ब्रह्मासे लेकर स्थावर पर्यन्त संपूर्ण भूतों में जिस अभेदज्ञान करके सब प्राणियों के विभाग होने पर भी एकही अविनाशी अविभक्तरूप आत्मा को विद्वान् लोक देखते हैं उस ज्ञान को तू सात्त्विकज्ञान जान ॥ २० ॥

मूलम्।

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान् पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् २१

पदच्छेदः ।

पृथक्त्वेन, तु, यत्, ज्ञानम्, नानाभावान्, पृथग्विधान्, वेत्ति, सर्वेषु, भूतेषु, तत्, ज्ञानम्, विद्धि, राजसम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
तु	तथा
यत्	जो
ज्ञानम्	ज्ञान
पृथग्विधान्	भिन्न भिन्न प्रकार के
नाना- भावान्	नानाभावों को
सर्वेषु	सब

अन्वयः	शब्दार्थ
भूतेषु	प्राणियों में
पृथक्त्वेन	पृथक् करके
वेत्ति	जानता है
तत्	उसको
राजसम्	रजोगुणी
ज्ञानम्	ज्ञान
विद्धि	जान तू

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे दीर्घबाहु ! संपूर्ण भूतों में स्थित जीवको अर्थात् शरीर शरीर के प्रति भिन्न भिन्न अन्तरात्मा को सुखी और दुःखी जिस ज्ञान करके पुरुष जानताहै उस ज्ञान को तू राजस ज्ञान जान ॥२१॥

मूलम् ।

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पञ्च तत्तामसमुदाहृतम् २२

पदच्छेदः ।

यत्, तु, कृत्स्नवत्, एकस्मिन्, कार्ये, सक्तम्,

अहैतुकम्, अतत्त्वार्थवत्, अल्पम्, च, तत्, तामसम्, उदाहृतम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
तु	तथा
यत्	जो ज्ञान
एकस्मिन्	एक
कार्ये	कार्य में
कृत्स्नवत्	सबतरफ़ से
अहैतुकम्	कारणरहित
च	और
अतत्त्वार्थवत्	फलरहित यानी अयथार्थ
सक्तम्	लगाहुआ है
+च	और
अल्पम्	तुच्छ है
तत्	वह ज्ञान
तामसम्	तमोगुणी
उदाहृतम्	कहागया है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे प्रियवर ! संसार में अनेक प्रकारके भूतों के कार्य विद्यमानभी हैं तब भी किसी एक कार्य प्रतिमादि में यानी काष्ठ पाषाण आदि की मूर्तिमें व्यापक ईश्वरको जिस ज्ञानकरके पुरुष जानता और मानताहै उस ज्ञानका वह अल्प विषय होने से वह ज्ञान अल्पही है और इसी कारण वह तामसज्ञान कहागया है ॥ २२ ॥

मूलम्।

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते २३

पदच्छेदः ।

नियतम्, सङ्गरहितम्, अरागद्वेषतः, कृतम्, अफलप्रेप्सुना, कर्म, यत्, तत्, सात्त्विकम्, उच्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यत्=जो

कर्म=कर्म

सङ्गरहितम्=सङ्गरहित

+च=और

अरागद्वेषतः=राग द्वेष से रहित

अन्वयः शब्दार्थ

अफलप्रेप्सुना=फल को न चाहनेवाले पुरुष करके

नियतम्=नित्य

कृतम्=किया गया है

तत्=वह कर्म

सात्त्विकम्=सतोगुणी

उच्यते=कहाजाता है

भावार्थ ।

हे कौन्तेय ! अभेदआत्मदर्शी का ज्ञान ग्रहण करने योग्य है, और जो भेदआत्मदर्शी हैं उनका ज्ञान त्यागने योग्य है, और जो परिच्छिन्न में समग्ररूप करके ईश्वर का ज्ञान है, वह सर्व प्रकार त्यागने योग्यहै, इस रीति से तीन प्रकार का ज्ञान भगवान् ने पूर्व कहा है, अब भगवान् तीन प्रकार के कर्म को कहते हैं । हे अर्जुन ! जो अहंकाररहित और फलकी कामनारहित कर्म कियाजाता है, वह सात्त्विककर्म कहाता है ॥ २३ ॥

मूलम् ।

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् २४

पदच्छेदः ।

यत्, तु, कामेप्सुना, कर्म, साहंकारेण, वा, पुनः, क्रियते, बहुलायासम्, तत्, राजसम्, उदाहृतम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तु=तथा
यत्=जो
कर्म=कर्म
साहंकारेण=सहित अहंकार के
वा पुनः=अथवा
बहुलायासम्=बहुतपरिश्रम करके

अन्वयः शब्दार्थ

कामेप्सुना=फलकी इच्छा करने वाले पुरुष करके
क्रियते=कियाजाता है
तत्=वह कर्म
राजसम्=रजोगुणी
उदाहृतम्=कहागया है

भावार्थ ।

जो कामना और अहंकारयुक्त कर्म कियाजाता है वह राजसकर्म कहाता है ॥ २४ ॥

मूलम् ।

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म तत्तामसमुदाहृतम् २५

पदच्छेदः।

अनुबन्धम्, क्षयम्, हिंसाम्, अनवेक्ष्य, च, पौरुषम्, मोहात्, आरभ्यते, कर्म, तत्, तामसम्, उदाहृतम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

+ यत्=जो
कर्म=कर्म
अनुबन्धम्=आगामी फल को
क्षयम्=द्रव्यादि के व्ययको
हिंसाम्=हिंसा को
च=और

अन्वयः शब्दार्थ

पौरुषम्=पौरुष को
अनवेक्ष्य=नहीं देखकरके
मोहात्=अज्ञान से
आरभ्यते=आरम्भ किया जाता है
तत्=वह
तामसम्=तमोगुणी
उदाहृतम्=कहागया है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! विना विचार मोह के वश होकर जिस कर्म का आरम्भ किया जाता है, और जिसके करने के अनन्तर पश्चात्ताप होता है, और जिस कर्म के करने में प्राणियों को पीड़ा होती है, और जिसका फल अशुभ नरक है, वह तामसकर्म कहाजाता है ॥ २५ ॥

मूलम्।

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते २६

पदच्छेदः ।

मुक्तसङ्गः, अनहंवादी, धृत्युत्साहसमन्वितः, सिद्ध्यसिद्ध्योः, निर्विकारः, कर्ता, सात्त्विकः, उच्यते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मुक्तसङ्गः=	त्यागकियाहै फलकी इच्छा जिसने	सिद्ध्यसिद्ध्योः =	सिद्धि और असिद्धि में
अनहंवादी=	अहंकाररहित हुआ है जो	निर्विकारः=	विकाररहित है जो ऐसा
धृत्युत्साहसमन्वितः =	धैर्यऔरउत्साहसे युक्तहै जो	कर्ता=	कर्ता
		सात्त्विकः=	सतोगुणी
		उच्यते=	कहाजाता है

भावार्थ ।

तीनप्रकारके कर्म का निरूपण करके अब भगवान् तीनप्रकार के कर्ता का निरूपण करते हैं । हे कौन्तेय ! जो फलकी कामना से रहित होकर और मैं इस कर्म का कर्ता हूं इसप्रकार के अहंकार से भी रहित होकर और धैर्य तथा उत्साह से युक्त होकर कर्म को करता है, और कर्म के फलकी सिद्धि असिद्धि में जिसका मन विकार को नहीं प्राप्त होता है, ऐसा जो कर्ता, उसी का नाम सात्त्विककर्ता है ॥ २६ ॥

मूलम् ।

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः २७

पदच्छेदः ।

रागी, कर्मफलप्रेप्सुः, लुब्धः, हिंसात्मकः, अशुचिः, हर्षशोकान्वितः, कर्ता, राजसः, परिकीर्तितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
हिंसात्मकः	=हिंसा करने वाला
रागी	=राग करनेवाला
कर्मफलप्रेप्सुः	=कर्म के फलको चाहने वाला
लुब्धः	=लोभ करने वाला
अशुचिः	=अपवित्र रहने वाला
हर्षशोकान्वितः	=हर्षऔरशोक से युक्त होने वाला
कर्ता	=कर्ता
राजसः	=रजोगुणी
परिकीर्तितः	=कहागया है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे कमलनयन ! जिसका चित्त अनेक प्रकार की कामना करके व्याकुल होकर फल की इच्छा को करता है, और परद्रव्य के हरने में भी जो लोभी है, और दूसरों की हिंसा करने में भी जिस का चित्त तत्पर रहता है, और जो स्नानादिक क्रिया से भी रहित है, और जो हर्ष शोक करके सदैव युक्त रहता है, ऐसा जो कर्ता है, वह रजोगुणी कर्ता कहा जाता है ॥ २७ ॥

मूलम् ।

अयुक्तःप्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते २८

पदच्छेदः।

अयुक्तः, प्राकृतः, स्तब्धः, शठः, नैष्कृतिकः, अलसः, विषादी, दीर्घसूत्री, च, कर्ता, तामसः, उच्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अयुक्तः=असमाहित चित्तवाला
प्राकृतः=विवेकरहित
शठः=मायावी
नैष्कृतिकः=कपटी
अलसः=आलसी
स्तब्धः=जड़बुद्धिवाला

अन्वयः शब्दार्थ

विषादी=दुःखी
च=और
दीर्घसूत्री=काहिली
कर्ता=कर्ता
तामसः=तमोगुणी
उच्यते=कहाजाता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि जिसका चित्त विषयों में ही आसक्त रहता है, और जिसकी बुद्धि संस्कृत नहीं है, और जो अनम्र है यानी किसी विद्वान् के भी आगे नम्र नहीं होता है, और जो शठ यानी धूर्त है, कृतघ्न है, आलसी है, विषयी है, और दीर्घसूत्री है यानी एक घड़ी भर के कामको जो दिनों तक भी नहीं करता है, ऐसा जो कर्ता है, वह तमोगुणी कहाजाता है ॥ २८ ॥

मूलम्।

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय २९

पदच्छेदः ।

बुद्धेः, भेदम्, धृतेः, च, एव, गुणतः, त्रिविधम्, शृणु, प्रोच्यमानम्, अशेषेण, पृथक्त्वेन, धनंजय ॥

अन्वयः शब्दार्थ

धनंजय=हे अर्जुन !
बुद्धेः=बुद्धि के
च=और
धृतेः=धैर्य के
प्रोच्यमानम्=कहेहुये
गुणतः=सत्त्वादि गुणों के कारण से

अन्वयः शब्दार्थ

त्रिविधम्=तीनप्रकारके
भेदम्=भेद को
पृथक्त्वेन=अलग अलग करके
अशेषेण=भली प्रकार से
एव=निश्चय करके
शृणु=सुन तू

भावार्थ ।

भगवान् गुणों के भेदसे बुद्धि व धैर्य के भेदों को भी कहते हैं। हे पार्थ ! बुद्धि और धृति भी गुणों के भेदसे तीन तीन प्रकार की हैं, उनके भेदोंको भी तू मुझ से श्रवण कर ॥ २९ ॥

मूलम् ।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ३०

पदच्छेदः ।

प्रवृत्तिम्, च, निवृत्तिम्, च, कार्याकार्ये, भया-

भये, बन्धम्, मोक्षम्, च, या, वेत्ति, बुद्धिः, सा, पार्थ, सात्त्विकी ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

पार्थ=हे अर्जुन !
या=जो
बुद्धिः=बुद्धि
प्रवृत्तिम्=प्रवृत्ति
च=और
निवृत्तिम्=निवृत्ति को
कार्याकार्ये=कार्य और अकार्य को
च=और

अन्वयः **शब्दार्थ**

भयाभये=भय और अभय को
बन्धम्=बन्ध
च=और
मोक्षम्=मोक्ष को
वेत्ति=जानती है
सा=वह
सात्त्विकी=सतोगुणी है

भावार्थ ।

प्रथम भगवान् बुद्धि के भेदों को कहते हैं कि, हे पार्थ ! बन्धका हेतु जो सकाम कर्ममार्ग है, वह प्रवृत्तिमार्ग है, और मोक्ष का साधन जो सकाम कर्मों का त्याग है, वह निवृत्तिमार्ग है, प्रवृत्तिमार्ग में कर्मों का करना विधान किया है, और निवृत्तिमार्ग में कर्मों का त्याग विधान किया है, प्रवृत्तिमार्ग जन्म मरणरूपी भय का हेतु है, और निवृत्तिमार्ग अभय का हेतु है, यानी संसाररूपी बन्धन से छूटने का हेतु है, इन सबके विभाग को जो बुद्धि जानती है, वह सात्त्विकी बुद्धि कही जाती है ॥ ३० ॥

मूलम् ।

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ३१

पदच्छेदः ।

यया, धर्मम्, अधर्मम्, च, कार्यम्, च, अकार्यम्, एव, च, अयथावत्, प्रजानाति, बुद्धिः, सा, पार्थ, राजसी ॥

अन्वयः शब्दार्थ

पार्थ=हे अर्जुन !
यया=जिस बुद्धि करके
+ पुरुषः=पुरुष
धर्मम्=धर्म
च=और
अधर्मम्=अधर्म को
एव च=ऐसेही
कार्यम्=कार्य

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
अकार्यम्=अकार्य को
अयथावत्=यथार्थ नहीं
प्रजानाति=जानता है
सा=वह
बुद्धिः=बुद्धि
राजसी=रजोगुणी
+ उदाहृता=कहीगई है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! जिस बुद्धि करके पुरुष धर्म व अधर्म के स्वरूप को नहीं जानता है, और कर्तव्य व अकर्तव्य के स्वरूप को यथार्थ नहीं जानता है, वह राजसी बुद्धि कहीजाती है ॥ ३१ ॥

मूलम् ।

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसाऽऽवृता ।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ३२

पदच्छेदः ।

अधर्मम्, धर्मम्, इति, या, मन्यते, तमसा, आवृता, सर्वार्थान्, विपरीतान्, च, बुद्धिः, सा, पार्थ, तामसी ॥

अन्वयः शब्दार्थ

पार्थ=हे अर्जुन !
या=जो
तमसा=तमोगुण से
आवृता=आवृत हुई
बुद्धिः=बुद्धि
अधर्मम्=अधर्म को
धर्मम्=धर्म

अन्वयः शब्दार्थ

इति=करके
च=और
सर्वार्थान्=सब अर्थों को
विपरीतान्=विपरीत
मन्यते=समझती है
सा=वह
तामसी=तमोगुणी है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे प्रियवर ! जो बुद्धि अज्ञान करके आच्छादित होरही है, और अधर्म को धर्मरूप करके जानती है, और धर्म को अधर्मरूप करके जानती है, ऐसी जो विपर्ययवाली बुद्धि है, वह तामसी बुद्धि कही जाती है ॥ ३२ ॥

मूलम् ।

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्याधृतिःसापार्थसात्त्विकी ३३

पदच्छेदः।

धृत्या, यया, धारयते, मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः, योगेन, अव्यभिचारिण्या, धृतिः, सा, पार्थ, सात्त्विकी ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
पार्थ	हे अर्जुन !	मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः	मन प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को
+ पुरुषः	पुरुष	धारयते	धारणकरताहै
योगेन	चित्तकी एकाग्रता से	सा	वह
यया	जिस	धृतिः	धृति
अव्यभिचारिण्या	दृढ	सात्त्विकी	सतोगुणी
धृत्या	धृति करके	+ उदाहृता	कहीगई है

भावार्थ।

अब भगवान् धृति के भेदों को कहते हैं कि, हे पार्थ ! समाधि के विना पुरुष जिस धृति करके मन और प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को धारण करता है, और जिस धृति के होने से विना प्रयत्न समाधि होजाती है, वह सात्त्विकी धृति है ॥ ३३ ॥

मूलम्।

यया तु धर्मकामार्थान् धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ३४

पदच्छेदः।

यया, तु, धर्मकामार्थान्, धृत्या, धारयते, अर्जुन,

प्रसङ्गेन, फलाकाङ्क्षी, धृतिः, सा, पार्थ, राजसी ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तु=और
अर्जुन=हे अर्जुन !
यया=जिस
धृत्या=धृति करके
फलाकाङ्क्षी=फलका चाहने वाला पुरुष
प्रसङ्गेन=प्रीतिपूर्वक

अन्वयः शब्दार्थ

धर्मकामार्थान्=धर्मार्थ कामों को
धारयते=धारण करता है
सा=वह
धृतिः=धृति
पार्थ=हे पार्थ !
राजसी=रजोगुणी
+ उदाहृता=कहीगई है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! फल की इच्छा से पुरुष जिस धृति करके धर्म अर्थ काम को कर्तव्यरूपता करके धारण करता है, वह राजसी धृति है ॥ ३४ ॥

मूलम्।

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा तामसी मता ३५

पदच्छेदः।

यया, स्वप्नम्, भयम्, शोकम्, विषादम्, मदम्, एव, च, न, विमुञ्चति, दुर्मेधाः, धृतिः, सा, तामसी, मता ॥

अन्वयः शब्दार्थ

+ पार्थ=हे अर्जुन !
दुर्मेधाः=दुर्बुद्धिपुरुष
यया=जिस धृति करके
स्वप्नम्=निद्रा को
भयम्=भय को
शोकम्=शोक को
विषादम्=दुःख को

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
एव=ऐसेही
मदम्=मद को
न विमुञ्चति=नहीं छोड़ता है
सा=वह
धृतिः=धृति
तामसी=तमोगुणी
मता=कही गई है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! जिस धृति करके पुरुष स्वप्न, भय, शोक, विषाद और मद को नहीं त्यागता है, वह तामसी धृति है ॥ ३५ ॥

मूलम् ।

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ३६

पदच्छेदः ।

सुखम्, तु, इदानीम्, त्रिविधम्, शृणु, मे, भरतर्षभ, अभ्यासात्, रमते, यत्र, दुःखान्तम्, च, निगच्छति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तु=और
भरतर्षभ=हे अर्जुन !

अन्वयः शब्दार्थ

इदानीम्=अब
त्रिविधम्=तीन प्रकार के

सुखम्=सुख को
मे=मुझसे
शृणु=सुन तू
यत्र=जिसमें
अभ्यासात्=अभ्यास के बलसे

+योगी=योगी
रमते=रमण करता है
च=और
दुःखान्तम्=दुःख के अन्त को
निगच्छति=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

भगवान् अब सुखके भेदों को निरूपण करते हैं कि, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ, अर्जुन ! अब तू तीन प्रकार के सुख को श्रवण कर, उस सुख में सावधानता से रमण करता हुआ पुरुष सम्पूर्ण दुःखों की शान्ति को प्राप्त होताहै ॥ ३६ ॥

मूलम् ।

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ३७

पदच्छेदः ।

यत्, तत्, अग्रे, विषम्, इव, परिणामे, अमृतोपमम्, तत्, सुखम्, सात्त्विकम्, प्रोक्तम्, आत्मबुद्धिप्रसादजम् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

यत्=जो सुख
अग्रे=पहले
विषम्इव=विषके तुल्य है

अन्वयः **शब्दार्थ**

+च=और
परिणामे=पीछे
तत्=वह

आत्मबुद्धिप्रसादजम् = आत्म विषयिणी बुद्धि के प्रसाद से पैदाहुआ
अमृतोपमम् = अमृतके तुल्य है
तत्=सो
सुखम्=सुख
सात्त्विकम्=सतोगुणी
प्रोक्तम्=कहा गया है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! ज्ञानकी प्राप्ति में जो वैराग्यादि साधन हैं, और चित्त को बाह्य विषयों से हटाकर अन्तरात्मा में उसके निरोध करने में जो अत्यन्त परिश्रम है, सो अत्यन्त कठिन होने से विष के तुल्य जीव को प्रतीत होते हैं, जैसे कोई विष खाने से अत्यन्त भय करता है, वैसेही जीव ज्ञान के साधनों से अत्यन्त भय करताहै, परन्तु वे साधन जब हठकरके किये जाते हैं, और उनसे समाधि की सिद्धिरूपी फलकी प्राप्ति होती है, तब वेही साधन अमृतरूपी फलके देनेसे अमृतरूप होजाते हैं, इस वार्ता को मूर्ख नहीं जानते हैं, और जो समाधि से सुखका लाभ होताहै वह सात्त्विकसुख कहाजाताहै ३७॥

मूलम् ।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ३८

पदच्छेदः ।

विषयेन्द्रियसंयोगात्, यत्, तत्, अग्रे, अमृतोपमम्, परिणामे, विषम्, इव, तत्, सुखम्, राजसम्, स्मृतम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यत्=जो सुख
विषयेन्द्रियसंयोगात्=विषय और इन्द्रियों के संयोग से
अग्रे=पहले
अमृतोपमम्=अमृतके तुल्य है
+ च=और
तत्=वही

अन्वयः शब्दार्थ

परिणामे=अन्त में
विषम्इव=विषके समान है
तत्=वह
सुखम्=सुख
राजसम्=रजोगुणी
स्मृतम्=समझा गया है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! विषय इन्द्रियों के सम्बन्ध से जन्य जो सुख है, वह भोगकाल में अमृत के तुल्य होता है, परन्तु जब भोगों से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं तब परिणाम में वह विषय विषके तुल्य होजाता है, जैसे विष खाने से पुरुष मरजाता है वैसेही भोगोंका सुख भी शरीर का नाशक है, ऐसा सुख राजससुख कहाजाताहै ॥ ३८ ॥

मूलम् ।

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।

निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ३९

पदच्छेदः।

यत्, अग्रे, च, अनुबन्धे, च, सुखम्, मोहनम्, आत्मनः, निद्रालस्यप्रमादोत्थम्, तत्, तामसम्, उदाहृतम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यत्=जो
सुखम्=सुख
निद्रालस्यप्रमादोत्थम्=निद्रा आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न हुआ है
च=और

अन्वयः शब्दार्थ

अग्रे=आगे
च=और
अनुबन्धे=पीछे
आत्मनः=मनका
मोहनम्=मोहनेवाला है
तत्=वह
तामसम्=तमोगुणी
उदाहृतम्=कहागया है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि जो सुख उत्पत्तिकाल में और परिणाम में निद्रा, आलस्य, प्रमाद करके युक्त है, वह सुख तामस सुख कहाजाता है ॥ ३९ ॥

मूलम्।

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ४०

पदच्छेदः ।

न, तत्, अस्ति, पृथिव्याम्, वा, दिवि, देवेषु, वा, पुनः, सत्त्वम्, प्रकृतिजैः, मुक्तम्, यत्, एभिः, स्यात्, त्रिभिः, गुणैः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

पृथिव्याम्=पृथिवी में
वा=अथवा
दिवि=स्वर्ग में
वापुनः=या
देवेषु=देवताओं में
यत्=जो
सत्त्वम्=प्राणी
प्रकृतिजैः=प्रकृतिसेउत्पन्न हुये

अन्वयः शब्दार्थ

एभिः=इन
त्रिभिः=तीनों
गुणैः=गुणों से
मुक्तम्=छूटाहुआ
स्यात्=हो
तत्=सो ऐसा कोई
न अस्ति=नहीं है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे मनुष्यों में श्रेष्ठ ! ऐसा पदार्थ इसलोक अथवा स्वर्गादि लोकों में कोई नहीं है, जो प्रकृति से जन्य न हो, और तीनों गुणों से रहित हो, अर्थात् सारा जगत् त्रिगुणात्मकही है ॥ ४० ॥

मूलम् ।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ४१

पदच्छेदः ।

ब्राह्मणक्षत्रियविशाम्, शूद्राणाम्, च, परन्तप, कर्माणि, प्रविभक्तानि, स्वभावप्रभवैः, गुणैः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
परन्तप	हे अर्जुन
ब्राह्मण-क्षत्रिय-विशाम्	ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्यों के
च	और
शूद्राणाम्	शूद्रों के
कर्माणि	कर्म
स्वभाव-प्रभवैः	स्वभावजन्य
गुणैः	गुणों करके
प्रविभक्तानि	अलग अलग हैं

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे परन्तप, अर्जुन ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों के कर्म जन्मान्तर के संस्कारजन्य गुणों करके ही पृथक् पृथक् हैं, यद्यपि शास्त्रों में भी इनके कर्म पृथक् पृथक् कहे हैं, तथापि शास्त्रों को भी जीवों के जन्मान्तर के संस्कारजन्य स्वभाव के गुणों की अपेक्षा आवश्यकता है ॥ ४१ ॥

मूलम् ।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ४२

पदच्छेदः ।

शमः, दमः, तपः, शौचम्, क्षान्तिः, आर्जवम्,

एव, च, ज्ञानम्, विज्ञानम्, आस्तिक्यम्, ब्रह्मकर्म, स्वभावजम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
शमः	अन्तःकरण का रोकना
दमः	इन्द्रियों का रोकना
तपः	शीत उष्ण आदि द्वन्द्व का सहना
शौचम्	पवित्र रहना
क्षान्तिः	क्षमा करना
आर्जवम्	नम्र रहना
ज्ञानम्	शास्त्रजन्य ज्ञानका ग्रहण करना
विज्ञानम्	अनुभव करना
च	और
आस्तिक्यम्	विश्वास ईश्वर में करना
स्वभावजम्	स्वभाव से उत्पन्न हुये
एव	निस्सन्देह
ब्रह्मकर्म	ब्राह्मण का कर्म है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! शम, दम, तप, शौच, क्षमा, कोमलता, शास्त्रीयज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता ये सब कर्म ब्राह्मण के स्वभावजन्य होते हैं ॥ ४२ ॥

मूलम्।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।

दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ४३

पदच्छेदः ।

शौर्यम्, तेजः, धृतिः, दाक्ष्यम्, युद्धे, च, अपि, अपलायनम्, दानम्, ईश्वरभावः, च, क्षात्रम्, कर्म, स्वभावजम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
शौर्यम्	=शूरता	दानम्	=दान देना
तेजः	=तेज	च	=और
धृतिः	=धैर्य	ईश्वर-भावः	=प्रभुता का प्रकट करना
दाक्ष्यम्	=चतुरता	स्वभाव-जम्	=स्वभाव जन्य
च	=और	क्षात्रम्कर्म	=क्षत्रियका कर्म है
युद्धे	=युद्ध में		
+ शत्रुभ्यः	=शत्रुओं से		
अपलायनम्	=न भागना		

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! पराक्रम, तेज, धैर्य, चतुरता, युद्धसे न भागना, दानी होना, ईश्वर में प्रेम रखना ये सब कर्म क्षत्रिय के स्वभावजन्य होते हैं ॥ ४३ ॥

मूलम् ।

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ४४

पदच्छेदः ।

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यम्, वैश्यकर्म, स्वभावजम्, परिचर्यात्मकम्, कर्म, शूद्रस्य, अपि, स्वभावजम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यम्	=खेती गौकी रक्षा और वणिजकरना	परिचर्यात्मकम्	=सेवा करना
स्वभावजम्	=स्वभावजन्य	शूद्रस्य	=शूद्र का
वैश्यकर्म	=वैश्य का कर्म है	अपि	=ही
		स्वभावजम्	=स्वभावजन्य
		कम	=कर्म है

भावार्थ ।

हे कमलनयन ! खेती करनी, व्यापार करना, पशुपालन करना, ये सब कर्म स्वभावसे ही वैश्यके होते हैं, और तीनों वर्णों की सेवा करना, कपटता से रहित होना, ये सब कर्म स्वभाव से ही शूद्र के होते हैं ॥ ४४ ॥

मूलम् ।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ४५

पदच्छेदः ।

स्वे, स्वे, कर्मणि, अभिरतः संसिद्धिम्, लभते, नरः, स्वकर्मनिरतः, सिद्धिम्, यथा, विन्दति, तत्, शृणु ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

स्वे स्वे=अपने अपने
कर्मणि=कर्म में
अभिरतः=तत्पर होता हुआ
नरः=मनुष्य
संसिद्धिम्=सिद्धि को
लभते=प्राप्त होता है
+ अद्य=अब

अन्वयः **शब्दार्थ**

यथा=जिस प्रकार
+ पुरुषः=मनुष्य
स्वकर्मनिरतः=अपने कर्म में लगा हुआ
सिद्धिम्=सिद्धि को
विन्दति=प्राप्त होता है
तत्=उसको
शृणु=सुन तू

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे प्रियवर ! वेद और स्मृतियों करके विहित जो कर्म हैं, उन कर्मों के अनुसारही पुरुष प्रीतिपूर्वक अपने अपने वर्णों के कर्मों को करता हुआ जिस प्रकार अन्तःकरण की शुद्धिरूपी सिद्धि को प्राप्त होता है, उसको तुम श्रवण करो ॥ ४५ ॥

मूलम् ।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ४६

पदच्छेदः ।

यतः, प्रवृत्तिः, भूतानाम्, येन, सर्वम्, इदम्, ततम्, स्वकर्मणा, तम्, अभ्यर्च्य, सिद्धिम्, विन्दति, मानवः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यतः=जिस करके
भूतानाम्=प्राणियों की
प्रवृत्तिः=प्रवृत्ति है
+ च=और
येन=जिस करके
इदम्=यह
सर्वम्=सब संसार
ततम्=व्याप्त है

अन्वयः शब्दार्थ

तम्=उस ईश्वर को
मानवः=मनुष्य
स्वकर्मणा=अपने कर्म द्वारा
अभ्यर्च्य=पूजन करके
सिद्धिम्=सिद्धि को
विन्दति=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे दीर्घबाहो ! जिस मायोपाधिक सर्वज्ञ परमेश्वर से भूतों की उत्पत्ति होती है, और जो परमेश्वर सारे जगत् में व्याप्त हो रहा है, उस व्यापक परमेश्वर का अपने अपने वर्णाश्रम कर्मों के अनुसार पूजन करकेही मनुष्य अन्तःकरण की शुद्धिरूपी सिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ४६ ॥

मूलम् ।

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ४७

पदच्छेदः ।

श्रेयान्, स्वधर्मः, विगुणः, परधर्मात्, स्वनुष्ठितात्, स्वभावनियतम्, कर्म, कुर्वन्, न, आप्नोति, किल्बिषम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
स्वधर्मः	अपना धर्म
विगुणः	गुणरहित भी
स्वनुष्ठितात्	भली प्रकार अनुष्ठान किये हुये
परधर्मात्	दूसरे के धर्म से
श्रेयान्	श्रेष्ठ है
+ हि	क्योंकि

अन्वयः	शब्दार्थ
स्वभावनियतम्	स्वभावजन्य
कर्म	कर्म को
+ पुरुषः	मनुष्य
कुर्वन्	करता हुआ
किल्बिषम्	पाप को
न आप्नोति	नहीं प्राप्तहोता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे प्रियमित्र ! यद्यपि दूसरे का धर्म वेदविहित और सम्यक् अनुष्ठित भी है, और अपना धर्म वेद अविहित भी है, तब भी दूसरे के धर्म से अपना धर्म श्रेष्ठ है, क्योंकि पुरुष अपने वर्ण के स्वभाव के अनुसार कर्मों को करता हुआ पाप को नहीं प्राप्त होताहै, हे अर्जुन ! अपने क्षात्रधर्म युद्ध को जो हिंसा करके युक्त है, उसको करता हुआ तू दोष को नहीं प्राप्त होवेगा ॥ ४७ ॥

मूलम् ।

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ४८

पदच्छेदः ।

सहजम्, कर्म, कौन्तेय, सदोषम्, अपि, न, त्यजेत्, सर्वारम्भाः, हि, दोषेण, धूमेन, अग्निः, इव, आवृताः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

कौन्तेय=हे अर्जुन !
सहजम्=जातिस्वभावजन्य
सदोषम्=दोषयुक्त
अपि=भी
कर्म=कर्म को
न त्यजेत्=न छोड़े
हि=क्योंकि

अन्वयः शब्दार्थ

सर्वारम्भाः=सब कर्म
दोषेण=दोष करके
आवृताः=आवृत हैं
इव=जैसे
धमेन=धूम से
अग्निः=अग्नि
+आवृतः=आवृत है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे कौन्तेय ! हिंसाप्रयुक्त युद्धादिक कर्म क्षत्रिय के लिये वेद ने विधान किया है, इसलिये वह पापका जनक नहीं है, और भिक्षा मांग करके खाना भिक्षुसंन्यासियों का धर्म है, तेरे लिये भिक्षादिक धर्म कलङ्क के हेतु हैं, इसलिये तुमको स्वभावजन्य दोषयुक्त कर्म को कदापि त्याग न करना चाहिये क्योंकि कोई भी अर्थात् जीवमात्र भी कर्म करने से विना एक क्षणमात्र भी स्थित नहीं रहसक्ता है, संपूर्ण जीवों के जन्मकाल में ही शरीर की उत्पत्ति

के साथ ही कर्म भी उत्पन्न होता है और जैसे धूम करके अग्नि आच्छादित रहता है वैसे संपूर्ण कर्मों का आरम्भ भी दोष करके आच्छादित रहता है, कोई भी कर्म कदाचित् भी निर्दोष नहीं होसक्ता है, इसीवास्ते विवेकी पुरुष को संपूर्ण जगत् दुःखरूपही प्रतीत होताहै, परन्तु अज्ञानी मूढ़ पुरुषों को जगत् सुखदायक प्रतीत होता है ॥ ४८ ॥

मूलम् ।

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ४९

पदच्छेदः ।

असक्तबुद्धिः, सर्वत्र, जितात्मा, विगतस्पृहः, नैष्कर्म्यसिद्धिम्, परमाम्, संन्यासेन, अधिगच्छति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
सर्वत्र	सब जगह
असक्तबुद्धिः	आसक्तिरहित है बुद्धिजिसकी
जितात्मा	जीता है अन्तःकरणको जिसने
विगतस्पृहः	दूर होगई है इच्छा जिसकी ऐसा
+ पुरुषः	पुरुष
संन्यासेन	असाधारण वैराग्यद्वारा
परमाम्	परम
नैष्कर्म्यसिद्धिम्	निष्काम सिद्धि को
अधिगच्छति	प्राप्त होता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि पुत्र, दारा आदिक जो हैं, सो सब मेरे हैं, और मैं इनका हूं, इस प्रकार की जो आसक्ति है, उससे जो रहित है और जिसने अपना मन अपने वश में करलिया है, और जो भोगों की इच्छासे भी रहित है, और नैष्कर्म्यसिद्धि नाम आत्मज्ञान का है, उस आत्मज्ञान को पुरुष पूर्वोक्त त्यागसेही प्राप्त होसक्ता है ॥ ४९ ॥

मूलम्।

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाऽऽप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ५०

पदच्छेदः।

सिद्धिम्, प्राप्तः, यथा, ब्रह्म, तथा, आप्नोति, निबोध, मे, समासेन, एव, कौन्तेय, निष्ठा, ज्ञानस्य, या, परा ॥

अन्वयः शब्दार्थ

कौन्तेय=हे अर्जुन !
यथा=जैसे
सिद्धिम्=सिद्धि को
प्राप्तः=प्राप्त हुआ
+ मनुष्यः=मनुष्य
ब्रह्म=ब्रह्म को

अन्वयः शब्दार्थ

आप्नोति=प्राप्त होता है
तथा=वैसाही
या=जो
ज्ञानस्य=ज्ञान का
परा=परम
निष्ठा=निष्ठा है

+ ताम्=उसको
समासेन=संक्षेप से
मे=मुझ करके
एव=निश्चयपूर्वक
निबोध=जान तू

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! अपने वर्णाश्रम के कर्मों करके ईश्वर का आराधन करे जब उसकी कृपादृष्टि से चित्त की शुद्धि होजावे, तत्पश्चात् जिस प्रकार से ब्रह्म का साक्षात्कार पुरुष करलेता है, उसको हे अर्जुन ! तुम मुझसे श्रवण करो ॥ ५० ॥

मूलम्।

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौव्युदस्यच ५१

पदच्छेदः।

बुद्धया, विशुद्धया, युक्तः, धृत्या, आत्मानम्, नियम्य, च, शब्दादीन्, विषयान्, त्यक्त्वा, रागद्वेषौ, व्युदस्य, च ॥

अन्वयः शब्दार्थ
विशुद्धया=निर्मल
बुद्धया=बुद्धि करके
युक्तः=युक्त हुआ
आत्मानम्=अन्तःकरण और इन्द्रिय आदिकों को

अन्वयः शब्दार्थ
धृत्या=धैर्य से
नियम्य=रोक करके
च=और
शब्दादीन्=शब्दादि
विषयान्=विषयों को

त्यक्त्वा=छोड़ करके	रागद्वेषौ=रागद्वेष को
च=और	व्युदस्य=दूर करके

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ।

अब भगवान् महान्फल देनेवाली ज्ञानकी निष्ठा को कहते हैं॥ ब्रह्मैवाहमस्मीति॥ मैं ब्रह्मरूप हूं, इस वाक्य से उत्पन्न हुई जो भ्रान्तिरहित बुद्धि है, उसी शुद्धबुद्धि करके युक्त पुरुष धैर्यता करके देह इन्द्रिय आदि संघात को अपने वश करके शब्दादिक विषयों का त्याग करता है, और फिर रागद्वेष को भी त्याग देता है॥ ५१॥

मूलम्।

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ५२

पदच्छेदः।

विविक्तसेवी, लघ्वाशी, यतवाक्कायमानसः, ध्यानयोगपरः, नित्यम्, वैराग्यम्, समुपाश्रितः॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
विविक्तसेवी=	एकान्त स्थान का सेवन करनेवाला	लघ्वाशी=	सूक्ष्म भोजन का करने वाला

यतवाक्कायमानसः = वाणी काय और मनसे
ध्यानयोगपरः = ध्यानयोगपरायण होता हुआ
+च=और
नित्यम् वैराग्यम् = नित्य वैराग्य को
समुपाश्रितः=प्राप्त हुआ

(इस श्लोक का सम्बन्ध अगले श्लोक से है)

भावार्थ।

हे पार्थ! वैराग्य को आश्रयण करके एकान्तदेश में रह करके भोजन का संयम करके शरीर, वाक्, मन को अपने वश में करके केवल ध्यानपरायण होजाता है॥ ५२॥

मूलम्।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ५३

पदच्छेदः।

अहंकारम्, बलम्, दर्पम्, कामम्, क्रोधम्, परिग्रहम्, विमुच्य, निर्ममः, शान्तः, ब्रह्मभूयाय, कल्पते॥

अन्वयः	शब्दार्थ
अहंकारम्	अहंकार को
बलम्	बल को
दर्पम्	अभिमान को
कामम्	काम को
क्रोधम्	क्रोध को
+च	और

परिग्रहम्=बाह्य सामग्री धनादि को
विमुच्य=छोड़कर
निर्ममः=ममतारहितहो
शान्तः=शान्ति को प्राप्त हुआ
ब्रह्मभूयाय=ब्रह्मभाव के लिये
कल्पते=समर्थ माना जाता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! जो पुरुष अपने को ऐसा मानता है कि ब्राह्मणादि महान्कुल में मैं उत्पन्न हुआ हूं इसवास्ते मैं ही बड़ा हूं, और झूठे आग्रहरूपी बलको आश्रयण कररक्खा है, और धर्म का अतिक्रमणरूपी दर्प करके भी युक्त है, और भोगों की अभिलाषारूपी जो काम यानी इच्छा है उससे भी युक्त है, उसको कदापि आत्मज्ञान की प्राप्ति नहीं होती हैं, और जो इनसे रहित है, और क्रोध तथा परिग्रह का भी जिसने त्याग करदिया है, और जो ममता से रहित शान्तचित्त है, उसीको ब्रह्म की प्राप्ति होती है॥ ५३॥

मूलम्।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ५४

पदच्छेदः।

ब्रह्मभूतः, प्रसन्नात्मा, न, शोचति, न, काङ्क्षति,

समः, सर्वेषु, भूतेषु, मद्भक्तिम्, लभते, पराम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
+ यः=जो पुरुष
प्रसन्नात्मा=प्रसन्नचित्त वाला
+ च=और
सर्वेषु=सब
भूतेषु=प्राणियों में
समः=समभाव रखने वाला
ब्रह्मभूतः=ब्रह्मरूप हुआ

अन्वयः शब्दार्थ
न शोचति=न शोचता है
+ च=और
न काङ्क्षति=न इच्छा करताहै
+ सः=वह
पराम्=परम
मद्भक्तिम्=मेरी भक्ति को
लभते=प्राप्त होता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! जिसको ऐसा निश्चय है कि मैं ब्रह्मरूप हूं, और जो सदैव प्रसन्नचित्त रहता है, और जो कभी शोक और मोह को नहीं प्राप्त होताहै, और न किसी पदार्थ की इच्छा करता है, और अपने तुल्यही सबको देखता है, वही ब्रह्माकाररूपी चित्तकी एकाग्रवृत्ति को प्राप्त होताहै ॥ ५४ ॥

मूलम्।

भक्त्यामामभिजानाति यावान् यश्चास्मितत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ५५

पदच्छेदः।

भक्त्या, माम्, अभिजानाति, यावान्, यः, च,

अस्मि, तत्त्वतः, ततः, माम्, तत्त्वतः, ज्ञात्वा, विशते, तदनन्तरम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यावान्=जैसा
च=और
यः=जो
अस्मि=मैं हूं
भक्त्या=भक्तिसे
माम्=मुझको
तत्त्वतः=यथार्थ
अभिजानाति=जानता है

अन्वयः शब्दार्थ

ततः=तत्पश्चात्
माम्=मुझको
तत्त्वतः=यथार्थ
ज्ञात्वा=जान करके
तदनन्तरम्=फिर
+ मयि एव=मुझमेंही
विशते=प्रवेश करता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ! निदिध्यासनरूपी मेरी भक्ति करके पुरुष यथार्थरूप से मुझको जानसक्ता है ॥ यावान् यश्चास्मि ॥ जितना कि मैं व्यापक और नित्य चैतन्यघन हूं उतनाही मुझको जानसक्ता है, मुझको यथार्थरूप से जान कर फिर वह देह त्याग करनेके पश्चात् मुझमें ही प्रवेश करता है ॥ ५५ ॥

मूलम् ।

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ५६

पदच्छेदः।

सर्वकर्माणि, अपि, सदा, कुर्वाणः, मद्व्यपाश्रयः, मत्प्रसादात्, अवाप्नोति, शाश्वतम्, पदम्, अव्ययम् ॥

अन्वयः — **शब्दार्थ**

सदा=सदा
सर्वकर्माणि=सब कर्मों को
कुर्वाणः=करता हुआ
अपि=भी
+ च=और
मद्व्यपाश्रयः=मेरे आश्रित होता हुआ

अन्वयः — **शब्दार्थ**

मत्प्रसादात्=मेरे प्रसाद से
शाश्वतम्=नित्य
अव्ययम्=अविनाशी
पदम्=पद को
अवाप्नोति=प्राप्त होता है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ! जो पुरुष मुझको आश्रयण करके संपूर्ण कर्मों को कामना से रहित होकर करता है, वह मेरी कृपा से नित्य पद जो मोक्ष है, उसको प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥

मूलम्।

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ५७

पदच्छेदः।

चेतसा, सर्वकर्माणि, मयि, संन्यस्य, मत्परः, बुद्धियोगम्, उपाश्रित्य, मच्चित्तः, सततम्, भव ॥

अन्वयः	शब्दार्थ
मत्परः	मेरे परायण होताहुआ
चेतसा	विवेकवती बुद्धि द्वारा
सर्वकर्माणि	संपूर्ण कर्मों को
मयि	मुझमें
संन्यस्य	अर्पणकरके
+ च	और
बुद्धियोगम्	बुद्धियोग को
उपाश्रित्य	आश्रय करके
सततम्	निरन्तर
मच्चित्तः	मुझमें चित्त वृत्ति का रखनेवाला
भव	हो तू

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! मेरी शरण को प्राप्त होकर मन करके संपूर्ण कर्मों को और उनके फलों को त्याग करके ज्ञानयोग को आश्रयण करता हुआ मुझमें ही मनको लगा ॥ ५७ ॥

मूलम्।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ५८

पदच्छेदः।

मच्चित्तः, सर्वदुर्गाणि, मत्प्रसादात्, तरिष्यसि, अथ, चेत्, त्वम्, अहंकारात्, न, श्रोष्यसि, विनङ्क्ष्यसि ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

मच्चित्तः=मुझमें है चित्त जिस का ऐसा तू
सर्वदुर्गाणि=संपूर्ण कष्टोंको
मत्प्रसादात्=मेरे प्रसाद से
तरिष्यसि=तरेगा

अन्वयः **शब्दार्थ**

अथचेत्=और अगर
त्वम्=तू
अहंकारात्=अहंकार से
न श्रोष्यसि=नहीं सुनेगा तो
विनङ्क्ष्यसि=नाश को प्राप्त होगा

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! मुझ में मन को जब तू लगावेगा तब संपूर्ण संसार के दुःखों से तू तर जावेगा यदि अहंकार को आश्रयण करके मेरे वचन को तू नहीं सुनेगा तो तू नाश को प्राप्त होवेगा ॥ ५८ ॥

मूलम्।

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्यइति मन्यसे।
मिथ्यैवव्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ५९

पदच्छेदः।

यत्, अहंकारम्, आश्रित्य, न, योत्स्ये, इति, मन्यसे, मिथ्या, एव, व्यवसायः, ते, प्रकृतिः, त्वाम्, नियोक्ष्यति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यत्=जो
अहंकारम्=अहंकार को
आश्रित्य=आश्रय करके
इति=ऐसा
मन्यसे=मानता है कि
नयोत्स्ये=मैं नहीं लडूंगा
+तु=तो
ते=तेरा

अन्वयः शब्दार्थ

+ अयम्=यह
व्यवसायः=निश्चय
मिथ्याएव=झूठा ही है
+ ते=तेरी
प्रकृतिः=प्रकृति
त्वाम्=तुझको
नियोक्ष्यति=लड़ावेगी

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! यदि तुम अहंकार को आश्रयण करके कहो कि, मैं युद्ध नहीं करूंगा, ऐसा तुम्हारा निश्चय मिथ्याही है, क्योंकि तुम्हारी जो प्रकृति है यानी क्षत्रिय का स्वभाव है, वही ज़बरदस्ती तुमको युद्ध में प्रेरित करेगा ॥ ५९ ॥

मूलम्।

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुंनेच्छसियन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपितत् ६०

पदच्छेदः।

स्वभावजेन, कौन्तेय, निबद्धः, स्वेन, कर्मणा, कर्तुम्, न, इच्छसि, यत्, मोहात्, करिष्यसि, अवशः, अपि, तत् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

कौन्तेय=हे अर्जुन
स्वेन=अपने
स्वभावजेन=स्वभावजन्य
कर्मणा=कर्म करके
निबद्धः=बँधाहुआ
+ त्वम्=तू
यत्=जिसको

अन्वयः शब्दार्थ

कर्तुम्=करना
नइच्छसि=नहीं चाहता है
तत्=उसको
मोहात्=अज्ञान से
अवशः=परवश हुआ
अपि=अवश्य
करिष्यसि=करेगा

भावार्थ ।

हे पार्थ ! यदि तू मोहके वश होकर क्षत्रियके स्वभावजन्य शूरवीरतादि कर्मों के करने की इच्छा नहीं भी करेगा, तबभी तुमको वे कर्म अवश्यही करने पड़ेंगे ॥ ६० ॥

मूलम् ।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ६१

पदच्छेदः ।

ईश्वरः, सर्वभूतानाम्, हृद्देशे, अर्जुन, तिष्ठति, भ्रामयन्, सर्वभूतानि, यन्त्रारूढानि, मायया ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अर्जुन=हे अर्जुन

अन्वयः शब्दार्थ

यन्त्रारूढानि=यन्त्र पर चढ़े हुवे

सर्वभूतानि=संपूर्ण प्राणियों को
मायया=मायाकरके
भ्रामयन्=भ्रमाताहुआ
ईश्वरः=ईश्वर
सर्वभूतानाम्=सब भूतों के
हृद्देशे=हृदय में
तिष्ठति=स्थित है

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! ईश्वर जो है सो संपूर्ण भूतों के हृदय में स्थित है, वह ईश्वर अपनी सत्तास्फूर्ति करके मायारूपी यन्त्रपर आरूढ़ हुये संपूर्णभूतों को सदैव भ्रमाता रहताहै॥ ६१॥

मूलम्।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परांशान्तिंस्थानंप्राप्स्यसिशाश्वतम्

पदच्छेदः।

तम्, एव, शरणम्, गच्छ, सर्वभावेन, भारत, तत्प्रसादात्, पराम्, शान्तिम्, स्थानम्, प्राप्स्यसि, शाश्वतम्॥

अन्वयः शब्दार्थ
भारत=हे अर्जुन
सर्वभावेन=सबभावना करके
अन्वयः शब्दार्थ
तम्एव=उसी
शरणम्=रक्षा करने वाले को

गच्छ=प्राप्तहो तू
तत्प्रसादात्=उसके प्रसाद से
पराम्=परम
शान्तिम्=शान्तिको
+ च=और
शाश्वतम्=नित्य
स्थानम्=स्थान को
प्राप्स्यसि=प्राप्तहोगा तू

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! तू उसी व्यापक चेतन परमेश्वरकी शरणको प्राप्तहो, जब तू उस परमेश्वर की शरणको प्राप्त होवेगा, तब फिर उसकी कृपादृष्टि करके तू परमशान्तिरूप मोक्षको प्राप्त हो जावेगा इसमें संशय नहीं है ॥ ६२ ॥

मूलम्।

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ६३

पदच्छेदः।

इति, ते, ज्ञानम्, आख्यातम्, गुह्यात्, गुह्यतरम्, मया, विमृश्य, एतत्, अशेषेण, यथा, इच्छसि, तथा, कुरु ॥

अन्वयः शब्दार्थ

ते=तेरेलिये
इति=इसप्रकार
गुह्यात्=गुप्त से

अन्वयः शब्दार्थ

गुह्यतरम्=अत्यन्त गुप्त
ज्ञानम्=जो ज्ञान
मया=मुझकरके

आख्यातम्=कहागया है
एतत्=उसको
अशेषेण=सबप्रकार से
विमृश्य=विचारकरके

यथा=जैसा
इच्छसि=चाहता है तू
तथा=वैसा
कुरु=कर

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! यह जो अतिशय करके गुह्य ज्ञान मैंने तेरेप्रति कथन किया है, इसको भली प्रकार विचारकर फिर जैसी तेरी इच्छा हो, वैसा कर ॥ ६३ ॥

मूलम् ।

सर्वगुह्यतमम्भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसिमेदृढमतिस्ततोवक्ष्यामितेहितम् ६४

पदच्छेदः ।

सर्वगुह्यतमम्, भूयः, शृणु, मे, परमम्, वचः, इष्टः, असि, मे, दृढमतिः, ततः, वक्ष्यामि, ते, हितम् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

सर्वगुह्यतमम्=अत्यन्त गुप्त
मे=मेरे
परमम्=परम
वचः=वचनको
भूयः=फिर

अन्वयः **शब्दार्थ**

शृणु=सुन तू
दृढमतिः=दृढ है बुद्धि जिसकी ऐसा तू
मे=मेरा
इष्टः=प्यारा

असि=है
ततः=इसलिये
ते=तेरे अर्थ
हितम्=हित के वचनों को
वक्ष्यामि=कहूंगा मैं

भावार्थ।

फिर भगवान् दयालुतापूर्वक अर्जुन के प्रति कहते हैं कि, हे अर्जुन ! सबसे अतिगोप्य वचन मेरा तू श्रवण कर, क्योंकि तू मुझको अतिप्यारा है, और मुझमेंही तेरी बुद्धि का दृढ़ विश्वास है, इसलिये मैं तेरे हित की कहताहूं ॥ ६४ ॥

मूलम्।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यन्ते प्रतिजाने प्रियोसि मे ६५

पदच्छेदः।

मन्मनाः, भव, मद्भक्तः, मद्याजी, माम्, नमस्कुरु, माम्, एव, एष्यसि, सत्यम्, ते, प्रतिजाने, प्रियः, असि, मे ॥

अन्वयः शब्दार्थ
मन्मनाः=मेरेमें चित्त रखनेवाला
मद्भक्तः=मेरा भजन करनेवाला
+ च=और

अन्वयः शब्दार्थ
मद्याजी=मेरा पूजन करनेवाला
भव=हो तू
माम्=मुझको
नमस्कुरु=नमस्कार कर

+ त्वम्=तू
माम्एव=मुझको ही
एष्यसि=प्राप्त होगा
ते=तेरे लिये, तुझ से
सत्यम्=सत्य

प्रतिजाने=प्रतिज्ञा करता हूं मैं
+ हि=क्योंकि
मे=मेरा
प्रियः=प्रिय
असि=है तू

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! तू मुझमें ही मन को लगा और मेराही अनन्यभक्त होकर मेराही पूजन कर, और मुझको ही तू नमस्कार कर ऐसा जब तू करेगा तब तू मुझको ही प्राप्त होवेगा, इसमें संशय नहीं है, मैं सत्यप्रातिज्ञा करके तुझसे ऐसा कहता हूं ॥ ६५॥

मूलम्।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहंत्वांसर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामिमाशुचः ६६

पदच्छेदः।

सर्वधर्मान्, परित्यज्य, माम्, एकम्, शरणम्, व्रज, अहम्, त्वाम्, सर्वपापेभ्यः, मोक्षयिष्यामि, मा, अशुचः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
सर्वधर्मान्=सब धर्मों को
परित्यज्य=छोड़ करके
एकम्=एक

अन्वयः शब्दार्थ
माम्=मुझ
शरणम्=रक्षा करनेवाले के शरणको

व्रज=प्राप्तहो तू
मा=मत
अशुचः=शोक कर
अहम्=मैं

त्वाम्=तुझको
सर्वपापेभ्यः=सब पापों से
मोक्षयिष्यामि=छुड़ा देऊंगा

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ! श्रुति स्मृति आदिकों में जो अनेक प्रकार के धर्म कहे हैं, और जो उनमें अनेक प्रकार के प्रायश्चित्त कहे हैं, और जो कृच्छ्रचान्द्रायणादिक नाना प्रकार के धर्म कहे हैं, और जो जाति आदिक नाना प्रकार के धर्म हैं, इन सब में अध्यास को त्याग करके निर्विघ्न भक्तियोग की सिद्धि के लिये मुझ एक परमात्मा की शरण को तू प्राप्त हो, जब तू ऐसा करेगा, तब मैं तुझको संपूर्ण पापों से छुड़ा देऊंगा, तू शोक मत कर ॥ ६६ ॥

मूलम्।

इदन्ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
नचाशुश्रूषवे वाच्यं नच मां योऽभ्यसूयति ६७

पदच्छेदः।

इदम्, ते, न, अतपस्काय, न, अभक्ताय, कदाचन, न, च, अशुश्रूषवे, वाच्यम्, न, च, माम्, यः, अभ्यसूयति॥

अन्वयः शब्दार्थ
इदम्=यह गीता शास्त्र

अन्वयः शब्दार्थ
ते=तेरे लिये

+ यत्क-थितम्=जो कहागया है

अतपस्काय=तपस्या न करने वाले के लिये

च=और

अभक्ताय=जो मेरा भक्त नहीं है उसके लिये

च=और

अशुश्रूषवे=श्रद्धारहित पुरुष के लिये

न=नहीं

वाच्यम्=कहने योग्य है

+ च=और

नकदाचन=उससे भी कभी नहीं

+ वाच्यम्=कहने योग्य है

यः=जो

माम्=मेरी

अभ्यसूयति=निन्दा करता है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन ! सम्पूर्ण शास्त्रों और वेदों का साररूप जो गीताशास्त्र है, उसको मैंने तेरे प्रति कथन किया है, सो तू इस गीताशास्त्र को अजितेन्द्रिय के प्रति, तपहीनके प्रति, जो मेरा भक्त नहीं है उसके प्रति, जो श्रोता गुरुभावना करके शुश्रूषा नहीं करता है उसके प्रति और जो मेरी असूया करता है उसके प्रति भी कथन न करना क्योंकि इनके प्रति कथन करने से कथन निष्फल होता है ॥ ६७ ॥

मूलम्।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ६८

पदच्छेदः।

यः, इमम्, परमम्, गुह्यम्, मद्भक्तेषु, अभिधास्यति, भक्तिम्, मयि, पराम्, कृत्वा, माम्, एव, एष्यति, असंशयः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यः=जो पुरुष
इमम्=इस
परमम्=परम
गुह्यम्=गुप्त
+ गीताशास्त्रम्=गीताशास्त्र को
मद्भक्तेषु=मेरे भक्तों से
अभिधास्यति=कहेगा

अन्वयः शब्दार्थ

+ सः=वह
मयि=मुझमें
पराम्=परम
भक्तिम्=भक्ति को
कृत्वा=करके
असंशयः=संशयरहित
माम्एव=मुझकोही
एष्यति=प्राप्तहोगा।

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! यह जो हमारा तुम्हारा संवादरूप गीताशास्त्र है इसको जो भक्तों के प्रति कथन करेगा, वह भक्ति से युक्त होकर मुझकोही प्राप्त होवेगा ॥ ६८ ॥

मूलम्।

नच तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता नच मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ६९

पदच्छेदः।

न, च, तस्मात्, मनुष्येषु, कश्चित्, मे, प्रियकृत्तमः, भविता, न, च, मे, तस्मात्, अन्यः, प्रियतरः, भुवि ॥

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
मनुष्येषु=मनुष्यों में
तस्मात्=उससे
कश्चित्=कोई
मे=मेरा
प्रियकृत्तमः=अधिकतर प्रिय करने वाला
न=नहीं

अन्वयः शब्दार्थ

भविता=होगा
च=और
भुवि=भूलोक में
तस्मात्=उस मनुष्य से
अन्यः=और कोई
मे=मेरा
प्रियतरः=ज़्यादाप्यारा
न=नहीं
भविता=होगा

भावार्थ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ! जो पुरुष संसार में लोकों के कल्याण के लिये इस गीताशास्त्र को प्रवृत्त करता है, उससे अधिक मुझको कोई भी प्यारा नहीं है, और इससे पूर्व भी कोई उससे प्यारा मुझको नहीं हुआ है, और न आगे होगा ॥ ६९ ॥

मूलम् ।

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टःस्यामिति मे मतिः ७०

पदच्छेदः ।

अध्येष्यते, च, यः, इमम्, धर्म्यम्, संवादम्, आवयोः, ज्ञानयज्ञेन, तेन, अहम्, इष्टः, स्याम्, इति, मे, मतिः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
यः=जो
इमम्=इस
धर्म्यम्=धर्मयुक्त
आवयोः=हम दोनों के
संवादम्=संवाद को
अध्येष्यते=पढ़ेगा यानी यथार्थ अर्थ को विचारेगा

अन्वयः शब्दार्थ

तेन=उससे
ज्ञानयज्ञेन=ज्ञानयज्ञ द्वारा
अहम्=मैं
इष्टः=पूजित
स्याम्=हूंगा
इति=ऐसी
मे=मेरी
मतिः=मति है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि जो पुरुष हमारे तुम्हारे संवादरूपी धर्मसम्बन्धी इस गीताशास्त्र को अध्ययन करेगा, उससे ज्ञानरूपी यज्ञ द्वारा मैं पूजित होजाऊंगा, ऐसा मेरा निश्चय है, और जो गीता को अध्ययन करके धारण करेगा वह कृतकृत्य होजावेगा ॥७०॥

मूलम् ।

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपिमुक्तःशुभाँल्लोकान् प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्

पदच्छेदः ।

श्रद्धावान्, अनसूयः, च, शृणुयात्, अपि, यः, नरः, सः, अपि, मुक्तः, शुभान्, लोकान्, प्राप्नुयात्, पुण्यकर्मणाम् ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

यः=जो
नरः=मनुष्य
श्रद्धावान्=श्रद्धासंपन्न
च=और
अनसूयः=ईर्ष्यारहित
अपि=केवल
शृणुयात्=सुनेगा
सः=वह
अपि=भी

अन्वयः **शब्दार्थ**

पापात्=पापसे
मुक्तः=छूटा हुआ
पुण्यकर्मणाम्=पुण्यकरने वाले पुरुषों के
शुभान्=शुभ
लोकान्=लोकों को
प्राप्नुयात्=प्राप्त होवेगा

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि जो पुरुष श्रद्धापूर्वक असूया से रहित होकर इस गीताशास्त्र को श्रवण करेगा, वह पापों से रहित होकर शुभकर्मियों के लोकों को प्राप्त होगा ॥ ७१ ॥

मूलम् ।

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रणष्टस्ते धनञ्जय ७२

पदच्छेदः ।

कच्चित्, एतत्, श्रुतम्, पार्थ, त्वया, एकाग्रेण, चेतसा, कच्चित्, अज्ञानसम्मोहः, प्रणष्टः, ते, धनञ्जय ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

पार्थ=हे अर्जुन !
त्वया=तुझ करके
एकाग्रेण=एकाग्र
चेतसा=चित्तद्वारा
कच्चित्=कुछ
एतत्=यह
श्रुतम्=सुनागया है यानी कुछ इसको तूने समझा है

अन्वयः **शब्दार्थ**

+ च=और
धनञ्जय=हे अर्जुन !
कच्चित्=कुछ भी
ते=तेरे
अज्ञानसम्मोहः=अज्ञान की अविवेकता
प्रणष्टः=नाश हुई है

भावार्थ ।

भगवान् कहते हैं कि, हे पार्थ ! यह जो मैंने गीताशास्त्र तेरे प्रति कथन किया है उसको तूने एकाग्रचित्त होकर धारण किया है या नहीं और अज्ञाननिमित्तक जो तुझको मोह उत्पन्न हुआ था, वह तेरा मोह नष्ट हुआ है या नहीं ॥ ७२ ॥

मूलम् ।

नष्टो मोहःस्मृतिर्लब्धात्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ७३

पदच्छेदः ।

नष्टः, मोहः, स्मृतिः, लब्धा, त्वत्प्रसादात्, मया, अच्युत, स्थितः, अस्मि, गतसंदेहः, करिष्ये, वचनम्, तव ॥

अन्वयः शब्दार्थ

+ अर्जुन उवाच = अर्जुन बोलता भया कि
अच्युत=हे अविनाशी!
त्वत्प्रसादात् = तुम्हारी प्रसन्नता से
+ मम=मेरा
मोहः=अज्ञान
नष्टः=नाश हुआ
+ च=और
मया=मुझ करके

अन्वयः शब्दार्थ

स्मृतिः=ज्ञान
लब्धा=प्राप्त हुआ है
+ च=और
गतसंदेहः=निःसंदेह
स्थितः=स्थित
अस्मि=मैं हूं
तव=तेरे
वचनम्=आज्ञा को
+ अहम्=मैं
करिष्ये=करूंगा

भावार्थ ।

अर्जुन कहता है कि, हे अच्युत ! तेरी कृपा से मेरा अज्ञानजन्य जो मोह था, वह सब नष्ट होगया है, और जीव ब्रह्म की ऐक्यताविषयक जो ज्ञान है, वह मुझको प्राप्त हुआ है, अब मैं संशयरहित होकर स्थितहूं, आपके वचन को अवश्य करूंगा ॥ ७३ ॥

मूलम्।

संजय उवाच-

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं लोमहर्षणम् ७४

पदच्छेदः।

इति, अहम्, वासुदेवस्य, पार्थस्य, च, महात्मनः, संवादम्, इमम्, अश्रौषम्, अद्भुतम्, लोमहर्षणम्॥

अन्वयः — शब्दार्थ

संजय उवाच=संजय कहता भया कि
अहम्=मैं
इति=इस प्रकार
महात्मनः=परमात्मा
वासुदेवस्य=श्रीकृष्णके
च=और

अन्वयः — शब्दार्थ

पार्थस्य=अर्जुन के
इमम्=इस
अद्भुतम्=अलौकिक
लोमहर्षणम्=रोमाञ्च करने वाला
संवादम्=संवाद को
अश्रौषम्=सुनता भया।

भावार्थ।

संजय अब धृतराष्ट्र के प्रति कहता है कि, हे राजन्, धृतराष्ट्र! इस प्रकार वासुदेव कृष्ण और अर्जुन के अति अद्भुत रोमाञ्च करनेवाले संवाद को सुनकर मैं बड़े हर्ष को प्राप्त हुआहूं॥ ७४॥

मूलम्।

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानिमं गुह्यमहं परम्।
योगंयोगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतःस्वयम्७५

पदच्छेदः।

व्यासप्रसादात्, श्रुतवान्, इमम्, गुह्यम्, अहम्, परम्, योगम्, योगेश्वरात्, कृष्णात्, साक्षात्, कथयतः, स्वयम्॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
इमम्	इस	योगेश्वरात्	योगेश्वर भगवान्
गुह्यम्	गुप्त	कृष्णात्	श्रीकृष्ण स
परम्	श्रेष्ठ	व्यासप्रसादात्	व्यासजी के वरदानद्वारा
योगम्	योग को	अहम्	मैं
स्वयम्	आप	श्रुतवान्	सुनता भया
साक्षात्	साक्षात्		
कथयतः	कहते हुये		

भावार्थ।

संजय कहता है कि, हे राजन्, धृतराष्ट्र! व्यास भगवान् की कृपा से परम गुह्य ज्ञानरूपी योग को मैंने श्रवण किया है, जिस ज्ञानरूपी योग को योगेश्वर श्रीकृष्णजी ने साक्षात् अपने मुखारविन्द से कथन किया है॥ ७५॥

मूलम् ।

राजन् संस्मृत्यसंस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ७६

पदच्छेदः ।

राजन्, संस्मृत्य, संस्मृत्य, संवादम्, इमम्, अद्भुतम्, केशवार्जुनयोः, पुण्यम्, हृष्यामि, च, मुहुः, मुहुः ॥

अन्वयः **शब्दार्थ**

च=और
राजन्=हे राजन् !
केशवार्जुनयोः=केशव और अर्जुन के
इमम्=इस
पुण्यम्=पुण्यदेनेवाले
अद्भुतम्=अलौकिक

अन्वयः **शब्दार्थ**

संवादम्=संवाद को
संस्मृत्य संस्मृत्य=बारबार स्मरण करके
मुहुःमुहुः=वारंवार
+अहम्=मैं
हृष्यामि=प्रसन्न होताहूं

भावार्थ ।

संजय कहताहै कि, हे राजन्, धृतराष्ट्र ! इस श्रीकृष्ण और अर्जुन के अद्भुत संवाद को पुनः पुनः स्मरण करके मैं बड़े हर्ष को प्राप्त होता हूं ॥ ७६ ॥

मूलम् ।

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान्राजन् हृष्यामि च पुनःपुनः ७७

पदच्छेदः।

तत्, च, संस्मृत्य, संस्मृत्य, रूपम्, अत्यद्भुतम्, हरेः, विस्मयः, मे, महान्, राजन्, हृष्यामि, च, पुनः, पुनः॥

अन्वयः शब्दार्थ

च=और
हरेः=कृष्ण के
तत्=उस
अत्यद्भुतम्=अत्यन्त अलौकिक
रूपम्=रूप को
संस्मृत्य संस्मृत्य=बार बार स्मरण करके
मे=मुझको

अन्वयः शब्दार्थ

महान्=बड़ा
विस्मयः=आश्चर्य होता है
च=और
राजन्=हे राजन्!
पुनः पुनः=वारंवार
+ अहम्=मैं
हृष्यामि=आनन्दित होताहूं

भावार्थ।

संजय कहता है कि, हे राजन्, धृतराष्ट्र! जो भगवान् ने अपना विश्वरूप अर्जुन को दिखाया है, उस अति अद्भुतरूप को भी पुनः पुनः स्मरण करके मैं वारंवार हर्ष को प्राप्त होता हूं॥ ७७॥

मूलम्।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः

तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ७८

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे संन्यासयोगो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

पदच्छेदः।

यत्र, योगेश्वरः, कृष्णः, यत्र, पार्थः, धनुर्धरः, तत्र, श्रीः, विजयः, भूतिः, ध्रुवा, नीतिः, मतिः, मम ॥

अन्वयः शब्दार्थ

+ राजन्=हे राजन्, धृतराष्ट्र!
यत्र=जहां
योगेश्वरः=योगेश्वर
कृष्णः=कृष्ण हैं
+ च=और
यत्र=जहां
धनुर्धरः=धनुर्धारी
पार्थः=अर्जुन हैं
तत्र=वहांही

अन्वयः शब्दार्थ

श्रीः=लक्ष्मी
विजयः=विजय
भूतिः=ऐश्वर्य
+ च=और
ध्रुवा=स्थिर
नीतिः=नीति है
+ इति=ऐसी
मम=मेरी
मातिः=संमति
+ अस्ति=है

भावार्थ।

संजय कौरवों के रक्षार्थ कहता है कि, हे राजन्,

धृतराष्ट्र! अब तू जय की आशा को त्याग करके पाण्डवों से मेल कर क्योंकि मुझको ऐसा जान पड़ता है कि जिस पक्ष में योगों के स्वामी ईश्वर कृष्ण हैं और जिस पक्ष में धनुर्धारी अर्जुन हैं, उसी पक्ष की जय होगी, उसी ओर राज्य और लक्ष्मी भी होगी ॥ ७८ ॥

अठारहवां अध्याय समाप्त ॥

इति श्रीभगवद्गीता भाषाटीका समाप्ता ॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अथ मोहमुद्गर ।

——:o:——

भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ।
प्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि नहि रक्षति डुकृञ्करणे ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते १
बालस्तावत् क्रीडासक्तस्तरुणस्तावत्तरुणीरक्तः ।
वृद्धस्तावच्चिन्तामग्नः पारे ब्रह्मणि क्वापि न लग्नः ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते २
अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम् ।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम् ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ३
दिनमपि रजनी सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः ।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ४
नारीस्तनभरजघननिवेशं दृष्ट्वा मायामोहावेशम् ।
एतन्मांसवसादिविकारं मनसि विचारय वारंवारम् ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ५
अग्रे वह्निः पृष्ठे भानुः रात्रौ चिबुकसमर्पितजानुः ।
करतलभिक्षा तरुतलवासस्तदपि न मुञ्चत्याशापाशः ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ६
रथ्याकर्पटविरचितकन्था पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थाः ।
नाहं न त्वं नायं लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ७

वयसि गते कः कामविकारः शुष्के नीरे कः कासारः।
क्षीणे वित्ते कः परिवारः तत्त्वे ज्ञाते कः संसारः।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ८
यावद्वित्तोपार्जनशक्तस्तावन्निजपरिवारे रक्तः।
पश्चाद्धावति जर्जरदेहे वार्त्तां पृच्छति कोपि न गेहे।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ९
जटिलो मुण्डितलुञ्चितकेशः काषायाम्बरबहुकृतवेशः।
पश्यन्नपि नहि पश्यति लोकः उदरनिमित्तं बहुकृतवेषः।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते १०
गेयं गीतानामसहस्रं ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रम्।
नेयं सज्जनसंगतिचित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम्।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ११
भगवद्गीता किञ्चिदधीता गङ्गाजललवकणिका पीता।
येनाकारि मुरारेरर्चा तस्य यमैर्न क्रियते चर्चा।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते १२
पुनरपिजननंपुनरपिमरणं पुनरपिजननीजठरे शयनम्।
इह संसारे भवदुस्तारे कृपयापारे पाहि मुरारे।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते १३
कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः का मे जननी को मे तातः।
इति परिभाषितसर्वासारं सर्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम्।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते १४

इति॥

अथ गङ्गाष्टक ।

भगवति भवलीलामौलिमाले तवाम्भः
कणमणुपरिमाणं प्राणिनो ये स्पृशन्ति ।
अमरनगरनारीचामरग्राहिणीनां
विगतकलिकलङ्कातङ्कमङ्के लुठन्ति १
ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुल्लासयन्ती
स्वर्लोकादापतन्ती कनकगिरिगुहा गण्डशैलात्स्खलन्ती ।
क्षोणीपृष्ठे लुठन्ती दुरितचयचमूनिर्भरं भर्त्सयन्ती
पाथोधिं पूरयन्ती सुरनगरसरित्पावनी नः पुनातु २
मज्जन्मातङ्गकुम्भच्युतमदमदिरामोदमत्तालिजालं
स्नानैः सिद्धाङ्गनानां कुचयुगविगलत्कुङ्कुमासङ्गपिङ्गम् ।
सायं प्रातर्मुनीनां कुशकुसुमचयैश्छन्नतीरस्थनीरं
पायान्नो गाङ्गमम्भः करिकरमकराक्रान्तरंहस्तरङ्गम् ३
आदावादिपितामहस्य नियमव्यापारपात्रे जलं
पश्चात्पन्नगशायिनो भगवतः पादोदकं पावनम् ।
भूयः शम्भुजटाविभूषणमणिर्जह्नोर्महर्षेरियं
कन्या कल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी भूतले ४
शैलेन्द्रादवतारणी निजजले मज्जज्जनोत्तारिणी
पारावारिविहारिणी भवभयश्रेणीसमुत्सारिणी ।
शेषाङ्गैरनुकारिणी हरशिरोवल्लीदलाकारिणी
काशीप्रान्तविहारिणी विजयते गङ्गा मनोहारिणी ५

कुतो वीचिर्वीचिस्तव यदि गता लोचनपथं
त्वमापीता पीताम्बरपुरनिवासं वितरसि ।
त्वदुत्सङ्गे गङ्गे पतति यदि कायस्तनुभृतां
तदा मातः शातक्रतवपदलाभ्योऽप्यतिलघुः ६
भगवति तव तीरे नीरमात्राशनोऽहं
विगतविषयतृष्णः कृष्णमाराधयामि ।
सकलकलुषभङ्गे स्वर्गसोपानसङ्गे
तरलतरतरङ्गे देवि गङ्गे प्रसीद ७
मातः शाम्भवि शम्भुसङ्गमिलिते मौलौ निधायाञ्जलिं
त्वत्तीरे वपुषोऽवसानसमये नारायणाङ्घ्रिद्वयम् ।
सानन्दं स्मरतो भविष्यति मम प्राणप्रयाणोत्सवे
भूयाद्भक्तिरविच्युता हरिहराद्वैतात्मिका शाश्वती ८

अथ द्वितीयाष्टक।

मातः शैलसुतासपत्नि वसुधाशृङ्गारहारावलि
स्वर्गारोहणवैजयन्ति भवतीं भागीरथीं प्रार्थये ।
त्वत्तीरे वसतस्त्वदम्बु पिबतस्त्वद्वीचिषु प्रेङ्खत-
स्त्वन्नाम स्मरतस्त्वदर्पितदृशः स्यान्मे शरीरव्ययः १
त्वत्तीरे तरुकोटरान्तरगतो गङ्गे विहङ्गोवरं
त्वन्नीरे नरकान्तकारिणि वरं मत्स्योऽथवा कच्छपः ।
नैवान्यत्र मदान्धसिन्धुरघटासंघट्टघण्टारण-
त्कारत्रस्तसमस्तवैरिवनितालब्धस्तुतिर्भूपतिः २
उक्षा पक्षी तुरग उरगः कोऽपि वा वारणो वा

वाराणस्यां जननमरणक्लेशदुःखासहिष्णुः।
न त्वन्यत्र प्रविरलरणत्कङ्कणक्वाणमिश्रं
वारस्त्रीभिश्चमरमरुता वीजितो भूमिपालः ३
काकैर्निष्कुषितं श्वभिः कवलितं गोमायुभिर्लुण्ठितं
स्रोतोभिश्चलितं तटाम्बुलुलितं वीचीभिरान्दोलितम्।
दिव्यस्त्रीकरचारुचामरमरुत्संवीज्यमानः कदा
द्रक्ष्येऽहं परमेश्वरि त्रिपथगे भागीरथि स्वं वपुः ४
अभिनवबिसवल्ली पादपद्मस्य विष्णो-
    र्मदनमथनमौलेर्मालतीपुष्पमाला।
जयति जयपताका काप्यसौ मोक्षलक्ष्म्याः
    क्षपितकलिकलङ्का जाह्नवी नः पुनातु ५
एतत्तालतमालसालसरलव्यालोलवल्लीलता
छन्नं सूर्यकरप्रतापरहितं शङ्खेन्दुकुन्दोज्ज्वलम्।
गन्धर्वामरसिद्धकिन्नरवधूत्तुङ्गस्तनास्फालितं
स्नानाय प्रतिवासरं भवतु मे गाङ्गं जलं निर्मलम् ६
गाङ्गं वारि मनोहारि मुरारिचरणच्युतम्।
त्रिपुरारिशिरश्चारि पापहारि पुनातु माम् ७
पापापहारि दुरितारि तरङ्गधारि
    शैलप्रचारि गिरिराजगुहाविदारि।
झंकारकारि हरिपादरजोपहारि
    गाङ्गं पुनातु सततं शुभकारि वारि ८

अथ तृतीयाष्टक।

कत्यक्षीणि करोटयः कति कति द्वीपिद्विपानां त्वचः

काकोलाः कति पन्नगाः कति सुधाधाम्नश्च खण्डाः कति।
किंच त्वंच कति त्रिलोकजननी त्वद्वारिपूरोदरे
मज्जज्जन्तुकदम्बकं समुदयत्येकैकमादाय यत् १
देवि त्वत्पुलिनाङ्गणे स्थितिजुषां निर्मानिनां ज्ञानिना
स्वल्पाहारनिबद्धशुद्धवपुषा तीर्णं गृहं श्रेयसे।
नान्यत्र क्षितिमण्डलेश्वरशतैः संरक्षितो भूपतेः
प्रासादो ललनागणैरधिगतो भोगीन्द्रभोगोन्नतः २
तत्तत्तीर्थगतैः कदर्थनशतैः किं तैरनर्थाश्रितै-
र्ज्योतिष्टोममुखैः किमीशाविमखैर्यज्ञैरवाज्ञाहृतैः।
सूते केशववासवादिविबुधागाराभिरामां श्रियं
गङ्गे देवि भवत्तटे यदि कुटीवासः प्रयासं विना ३
गङ्गातीरमुपेत्य शीतलशिलामालम्ब्य हेमाचलीं
यैराकर्णिकुतूहलाकुलतया कल्लोलकोलाहलः।
ते शृण्वन्ति सुपर्वपर्वतशिलासिंहासनाध्यासनाः
संगीतागमशुद्धसिद्धरमणीमञ्जीरधीरध्वनिम् ४
दूरं गच्छ सकच्छगं च भवतो नालोकयामो मुखं
रे पाराकवराकसाकमितरैर्नाकप्रदैर्गम्यताम्।
सद्यःप्रोद्यतमन्दमारुतरजःप्राप्ता कपोलस्थले
गङ्गाम्भःकणिका विमुक्तगणिकासङ्गाय संभाव्यते ५
विष्णोः संगतिकारिणी हरजटाजूटाटवीचारिणी
प्रायश्चित्तनिवारिणी जलकणैः पुण्यौघविस्तारिणी।
भूभृत्कन्दरदारिणी निजजले मज्जज्जनोत्तारिणी
श्रेयःसर्वविहारिणी विजयते गङ्गा मनोहारिणी ६

वाचालं विकलं खलं श्रितमलं कामाकुलं व्याकुलं
चाण्डालं तरलं निपीतगरलं दोषाविलं चाखिलम् ।
कुम्भीपाकगतं तमन्तककरादाकृष्य कस्तारये-
न्मातर्जह्नुनरेन्द्रनन्दिनि तव स्वल्पोदबिन्दुं विना ७
श्लेष्मश्लेषणायानलेऽमृतविले कासाकुले व्याकुले
कण्ठे घर्घरघोषनादमलिने काये च संमीलति ।
यां ध्यायन्नपि भारभङ्गुरतरां प्राप्नोति मुक्तिं नरः
स्नातुश्चेतसि जाह्नवी निवसतां संसारसन्तापहृत् ८

अथ चतुर्थाष्टक ।

नमस्तेऽस्तु गङ्गे त्वदङ्गप्रसङ्गा-
द्भुजङ्गास्तुरङ्गाः कुरङ्गाः प्लवङ्गाः ।
अनङ्गारिरङ्गाः सगङ्गाः शिवाङ्गा
भुजङ्गाधिपाङ्गी कृताङ्गा भवन्ति १
नमो जह्नुकन्ये न मन्ये त्वदन्यै-
र्निसर्गेन्दुचिह्नादिभिर्लोकभर्त्तुः ।
अतोऽहं नतोऽहं सतो गौरतोये
वसिष्ठादिभिर्गीयमानाभिधेये २
त्वदामज्जनात्सज्जनो दुर्जनो वा
विमानैः समानैः समानैर्हि मानैः ।
समायाति तस्मिन्पुरारातिलोके
पुरद्वारसंरुद्धदिक्पाललोके ३
स्वरावासदम्भोलिदम्भोऽपि रम्भा-
परीरम्भसंभावनाधीरचेताः ।

समाकाङ्क्षते त्वत्तटे वृक्षवाटी-
कुटीरे वसन्नेतुमायुर्दिनानि ४
त्रिलोकस्य भर्तुर्जटाजूटबन्धा-
त्स्वसीमान्तभागे मनाक्प्रस्खलन्तः।
भवान्या रुषा प्रौढसापत्नभावा-
त्करेणाहतास्त्वत्तरङ्गा जयन्ति ५
जलोन्मज्जदैरावतोद्दानकुम्भ-
स्फुरत्प्रस्खलत्सान्द्रसिन्दूररागे।
क्वचित्पद्मिनीरेणुभङ्गे प्रसङ्गे
मनः खेलतां जह्नुकन्यातरङ्गे ६
भवत्तीरवानीरवातोत्थधूली-
लवस्पर्शतस्तत्क्षणं क्षीणपापः।
जनोऽयं जगत्पावने त्वत्प्रसादा-
त्पदे पौरुहूतेऽपि धत्तेऽवहेलाम् ७
त्रिसंध्यानमल्लेखकोटीरनाना-
विधानेकरत्नांशुबिम्बप्रभाभिः।
स्फुरत्पादपीठे हठेनाष्टमूर्ते-
र्जटाजूटवासे नताः स्मः पदं ते ८

अथ पञ्चमाष्टक।

यदवधि तव नीरं पातकी नैति गङ्गे
तदवधि मलजालैर्नैव मुक्तः कलौ स्यात्।
तव जलकणिकालं पापिनां पापशुद्धौ
पतितपरमदीनांस्त्वं हि पासि प्रपन्नान् १

तव शिवजललेशं वायुनीतं समेत्य
सपदि निरयजालं शून्यतामेति गङ्गे ।
शमलगिरिसमूहाः प्रस्फुटन्ति प्रचण्डा-
स्त्वयि सखि विशतां नः पापशङ्का कुतः स्यात् २
तव शिवजलजालं निःसृतं यर्हि गङ्गे
सकलभुवनजालं पूतपूतं तदाऽभूत् ।
यमभटकलिवार्त्ता देवि लुप्ता यमोऽपि
व्यधिकृतवरदेहापूर्णकामाः सकामाः ३
मधुमधुवनपूगै रत्नपूगैर्नपूगै-
र्मधुमधुवनपूगैर्देवपूगैः सपूगैः ।
पुरहरपरमाङ्गे भासि मा एव गङ्गे
शमयसि विषतापं देवदेवस्य वन्द्यम् ४
चलितशशिकुलाभैरुत्तरङ्गैस्तरङ्गै-
रमितनदनदीनामङ्गसङ्गैरसङ्गैः ।
विहरसि जगदण्डे खण्डयन्ती गिरीन्द्रान्
रमयसि निजकान्तं सागरं कान्तकान्ते ५
तव परमहिमानं चित्तवाचाममानं
हरिहरविधिशक्रा नापि गङ्गे विदन्ति ।
श्रुतिकुलमभिधत्ते शङ्कितं तं गुणान्तं
गुणगणसुविलापैर्नेतिनेतीति सत्यम् ६
तवनुतिनतिनामान्यप्यघं पावयन्ति
ददति परमशान्तिं दिव्यभोगाञ्जनानाम् ।
इति पतितशरण्ये त्वां प्रपन्नोऽस्मि मात-

ललिततरतरङ्गे चाङ्गगङ्गे प्रसीद ७
शुभतरकृतयोगाद्विश्वनाथप्रसादा-
द्भवहरवरविद्यां प्राप्य काश्यां हि गङ्गे ।
भगवति तव तीरे नीरसारं निपीय
मुदितहृदयकञ्जे नन्दसूनुं भजेऽहम् ८

इति ॥

अथ गङ्गास्तव ।

इयं सुरतरङ्गिणी भवनवारिधेस्तारिणी
स्तुता हरिपदाम्बुजादुपगता जगत्संसदः ।
सुमेरुशिखरामरप्रियजला मलक्षालिनी
प्रसन्नवदना शुभा भवभयस्य विद्राविणी १
भगीरथरथानुगा सुरकरीन्द्रदर्पापहा
महेशमुकुटप्रभा गिरिशिरःपताकासिता ।
सुराऽसुरनरोरगैरजभवाच्युतैःसंस्तुता
विमुक्तिफलशालिनी कलुषनाशिनी राजते २
पितामहकमण्डलुप्रभवमुक्तिबीजालता
श्रुतिस्मृतिगणस्तुतद्विजकुलालवालावृता ।
सुमेरुशिखराभिदानिपतितात्रिलोकावृता
सुधर्मफलशालिनी सुखपलाशिनी राजते ३
चरद्विहगमालिनी सगरवंशमुक्तिप्रदा
मुनीन्द्रवरनन्दिनी दिवि मता च मन्दाकिनी ।
सदादुरितनाशिनी विमलवारिसंदर्शन-

प्रणामगुणकीर्तनादिषु जगत्सु संराजते ४
महाभिषसुताङ्गना हिमगिरीशकूटस्तना
सफेनजलहासिनी सितमरालसञ्चारिणी ।
चलल्लहरिसत्करा वरसरोजमालाधरा
रसोल्लसितगामिनी जलधिकामिनी राजते ५
क्वचिन्मुनिगणैः स्तुता क्वचिदनन्तसंपूजिता
क्वचित्कलकलस्वना क्वचिदधीरयादोगणा ।
क्वचिद्रविकरोज्ज्वला क्वचिदुदग्रपाताकुला
क्वचिज्जनविगाहिता जयति भीष्ममाता सती ६
स एव कुशली जनः प्रणमतीह भागीरथीं
स एव तपसां निधिर्जपति जाह्नवीमादरात् ।
स एव पुरुषोत्तमः स्मरति साधु मन्दाकिनीं
स एव विजयी प्रभुः सुरतरङ्गिणीं सेवते ७
तवामलजलचितं खगमृगामीनक्षतं
चलल्लहरिलोलितं रुचिरतीरजम्बालितम् ।
कदा निजवपुर्मुदा सुरनरोरगैः संस्तुतो-
ऽप्यहंत्रिपथगामिनी प्रियमतीव पश्याम्यहो ८
त्वत्तीरे वसतिं तवामलजलस्नानं तव प्रेक्षणं
त्वन्नामस्मरणं तवोदयकथासंलापनं पावनम् ।
गङ्गे मे तव सेवनैकनिपुणोऽप्यानन्दितश्चादृतः
स्तुत्वात्वोद्गतपातको भुवि कदा शान्तश्चरिष्याम्यहम् ९

इति ॥

वाचादत्त मनोदत्तं दत्तं तिलकुशोदकैः ॥
यःहरेत् त्रीणि दत्तानि रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

विनय ॥

—:o:—

हे परमात्मन् ! हे स्वामिन् ! यदि इस शरीर-सम्बन्धी मुझ दास की भक्ति आपके चरणकमल में निष्कपट और पाखण्डरहित हो तो आप कृपा करके इस मुझकृत टीकाको मुमुक्षुवों के प्रति फलदायक करिये ताकि वे इसको श्रद्धापूर्वक पढ़कर आपके प्रसादद्वारा अपने अन्तःकरण की शुद्धिहोने के पश्चात् आपके परमपद को प्राप्त होकर वारंवार जन्म मरण से रहित होजावें।

हरिः हरिः हरिः ॐ, ॐ, ॐ।

ज़ालिमसिंह,
पोस्टमास्टर जनरल
ग्वालियर.

Acc. 1138/९९३८